प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम सं० २०२४
मूल्य : १५-००

Gopal Mandir Lane
P. O. Chowkhamba, Post Box 8
Varanasi-1 (India)
1968
Phone : 3145

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ३०७६

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
182

GADANIGRAHA

OF

S'RĪ VAIDYA SOḌHALA

With

The 'Vidyotinī' Hindī Commentary

By

ŚRĪ INDRADEVA TRIPĀṬHĪ, B. I. M. S.

Edited by

ŚRĪ GAṄGĀ SAHĀYA PĀṆḌEYA, A M S.

PART-I

(PRAYOGA KHAṆḌ)

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1
1968

First Edition
1968
Price Rs. 15-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Post Box No 69
Chowk, Varanasi-1 (India)
Phone : 3076

भूमिका

वर्तमान काल मे वैद्यकशास्त्र का अनुशीलन करने की प्रवृत्ति जागरित हो रही है। किन्तु कालप्रभाव से रससिद्ध देववाणी के आस्वादनकर्ता धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। जब तक ग्रन्थ का भाषान्तर उपयोगी भाषा मे न उपलब्ध हो तब तक मूलग्रन्थ अनेक विशेषताओ से विभूषित होकर भी प्रचलन से परे ही रहता है। इस दृष्टि से इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन विवेचनापूर्ण हिन्दी भाषान्तर के साथ किया गया है। मध्यकालीन वैद्यक साहित्य का यह अनमोल ग्रन्थ इधर अनेक वर्षों से अनुपलब्ध रहा है। वैद्यक एवं प्राचीन वाङ्मय की विश्व-प्रसिद्ध प्रकाशन संस्था 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' वाराणसी ने इस उपयोगी ग्रन्थ का प्रकाशन कर वैद्यकशास्त्रानुसन्धानकर्ताओ का बहुत उपकार किया है। आयुर्वेद-साहित्य मे बृहत्त्रयी (चरक-सुश्रुत-वाग्भट) की आधार-शिला पर मध्ययुगीन आयुर्वेद के ग्रन्थ आधृत है। शाङ्गंधरसंहिता, भावप्रकाश, चक्रदत्त एवं योगरत्नाकर आदि विशिष्ट ग्रन्थ उन संहिता ग्रन्थो पर ही आधारित हैं। प्रस्तुत गदनिग्रह भी इसी वर्ग मे आता है।

वैद्य सोढल

इस ग्रन्थ के प्रणेता वैद्य सोढल वत्सगोत्रीय रायकवाल गुजराती[1] ब्राह्मण वैद्य नन्दन के पुत्र तथा संघदयालु के शिष्य थे[2]। इनके नाम के साथ जोशी उपाधि थी। वैद्य सोढल ने स्वयं अपने को ज्योति (ज्योतिष) शास्त्री कहा है[3]। इनका काल बारहवी शताब्दी माना गया है क्योकि १२५६ ई० के एक ताम्रपत्र मे, जो दूसरे भीमदेव का है, रायकवाल जाति के ब्राह्मण ज्योति सोढल के पुत्र को दान देने का उल्लेख मिलता है। रायकवाल जाति तथा ज्योति सोढल इन दोनो बातो से मालूम पड़ता है कि ये वही सोढल है जिन्होने गदनिग्रह की रचना की है। अत इनका समय बारहवी शताब्दी होना सम्भव है।

वैद्य सोढल को माधवनिदान तथा वृन्द की भी अच्छी जानकारी थी क्योकि इन्होने अपने गदनिग्रह के निदान प्रकरण में बहुत कुछ अश माधव के

---

१ गुजराती मानने का कारण यह है कि 'रायकवाल' जाति गुजरात मे ही वसती है।

२. देखें सोढल-विरचित 'गुणसंग्रह' नामक निघण्टु की प्रस्तावना—
वत्सगोत्रान्वयस्तत्र वैद्यनन्दननन्दनः। शिष्यः संघदयालोश्च रायकवालवंशजः॥
सोढलाख्यो भिषग्भानुपदपंकजषट्पद.। चकारेमं चिकित्सायां समग्रं गुणसंग्रहम्॥

३. देखिए श्री दुर्गाशंकर भाई का 'गुजरात नु वैद्यक : साहित्यिक निबन्ध'।

आधार पर ही लिखा है। माधव, वृन्द, चक्रदत्त तथा वंगसेन समकालीन थे। इनका समय ग्यारहवी शताब्दी माना जाता है और वैद्य सोढल बारहवीं शताब्दी मे हुए थे, इसका निर्णय पहले किया जा चुका है। कालनिर्णय से ज्ञात होता है कि वैद्य सोढल को चक्रदत्त एव वंगसेन के ग्रन्थो की जानकारी नही थी क्योकि चक्रदत्त के रसयोग का पुट इनके ग्रन्थ मे देखने को नही मिलता। पहले कहा गया है कि वैद्य सोढल गुजराती थे। इसमे यह भी प्रमाण है कि इनके रचित गदनिग्रह मे गुजरात मे होने वाली बहुत-सी ओषधियो के नाम देखने को मिलते हैं जिनके विवरण इनके रचित गुणसग्रह नामक निघण्टु के अतिरिक्त अन्य किसी निघण्टु मे नही मिलते।

बारहवी शताब्दी मे वैद्य सोढल ने ही सर्वप्रथम चिकित्सा-प्रणाली मे योगो को अलग करने की परिपाटी अपनाई थी। इसके बाद आचार्य शार्ङ्गधर ने इस शैली का अनुकरण किया।

प्राचीन संहिताओ के अनुसार वैद्य सोढल ने गदनिग्रह मे कायचिकित्सा, शल्य, शालाक्य आदि विभाग करने की प्रथा को अपनाया किन्तु उसको निबाह नही सके। गदनिग्रह मे अश्मरी आदि शल्यतन्त्र के रोग तो कायचिकित्सा मे आ गए हैं किन्तु ग्रन्थि, अपची, सद्योव्रण आदि रोगो को सोढल ने शालाक्यतन्त्र के रोगो के पीछे लिखकर माधव एवं वृन्द के प्रसिद्ध क्रम मे अन्तर कर दिया है। इनके गदनिग्रह के शल्याधिकार मे शस्त्र-चिकित्सा का उल्लेख नही किया गया है।

इस ग्रन्थ मे प्रयोगखण्ड (फार्माकोपिया भाग) पृथक् होने से औषध-निर्माण मे सुविधा हो गई है। ग्रन्थकार ने यह विभाग सम्भवत. इसलिये किया है कि उस समय एक नाम से कई विधियाँ प्रचलित होगी। उनमे से सोढल को जो योग मान्य हुए होगे उन्होने उनको अपना लिया है। जैसे फलघृत स्त्रीरोग मे प्रसिद्ध है किन्तु सोढल ने एक फलघृत बालग्रह के लिये दिया है (प्र० ख० १।३९३)। वाडवानल चूर्ण, अग्निमुख चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण के कई पाठ इस ग्रन्थ मे दिए गए हैं जो भिन्न-भिन्न रोगो के लिये हैं। सम्भव है उस समय एक योग के नाम से कई नुस्खे प्रचलित रहे हो जिनको सोढल ने लिखना प्रारम्भ किया हो और साथ ही योगो को प्रक्रियानुसार कल्पनाभेद से अलग-अलग संग्रह भी कर दिया हो।

ग्रन्थ मे कल्प के प्रयोग अधिक दिए गए हैं जो अन्य ग्रन्थो मे नही मिलते, यथा—सुवर्णकल्प, कुंकुमकल्प तथा अम्लवेतस कल्प। अम्लवेतस नाम से जो वस्तु बाजार मे प्राप्त होती है वह इनके वर्णन से सर्वथा पृथक् है—

'तेषां फलेभ्यो निर्यासः सोऽम्लत्वादम्लवेतसः।'

इस पद्यार्ध मे निर्यास को अम्लवेतस कहा गया है। ग्रन्थ मे रसोनकल्प तथा पलाण्डुकल्प का संग्रह बडे महत्त्व का है। सोढल का रसायन वाग्भट के आधार पर है किन्तु सोढल ने रसायन मे तिल का जो प्रयोग किया है वह इसी ग्रन्थ मे मिलता है—

दिने दिने कृष्णतिलं प्रकुञ्चं समश्नत' शीतजलानुपानम् ।
पोपः शरीरस्य भवन्त्यनल्पो दृढा भवन्त्यामरणाच्च दन्ताः ॥

इस ग्रन्थ का तिलप्रयोग काठियावाड में आज भी प्रसिद्ध है।

इस प्रकार ग्रन्थ की विशेषताओ को देखते हुए ज्ञात होता है कि स्वल्प साधन वाले चिकित्सको के लिये यह ग्रन्थ अधिक उपयोगी है। अनुवादक ने इस ग्रन्थ की उपादेयता को और अधिक बढा दिया है। अनुवाद मे इसका भी ध्यान रखा गया है कि विद्वान् चिकित्सक एवं आयुर्वेद के शिक्षार्थी निदानांश मे किए गए सविमर्श प्रयोगो के अनुवाद से लाभान्वित हो सकें। घृतादि निर्माण मे आने वाली कठिनाइयो को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ मे विशेष परिभाषाओ एवं सर्वसाधारण विधि का दिग्दर्शन करा दिया गया है।

नाप-तौल को सरल बनाने के लिये प्राचीन मान-परिभाषा के साथ आधुनिक नाप-तौल (ग्राम, लिटर) का समन्वयात्मक विवरण ग्रन्थ के अन्त मे दिया गया है जिससे चिकित्सको को यह सुविधा हो गई है कि इन बातो को जानने के लिये ग्रन्थान्तर का अन्वेषण न करना पड़े।

अनेक अप्रचलित शब्दो तथा द्रव्यो का अन्तर्भाव होने के कारण इसके अनुवाद कार्य मे बहुत श्रम करना पड़ा है। मूल ग्रन्थकार की वृत्ति को अक्षुण्ण रखते हुए इसमे सभी भावो का स्पष्टीकरण बहुत ही लगन के साथ किया गया है। अब इस एक ही ग्रन्थ का अध्ययन करने से एवं अपने साथ रखने से चिकित्सक सफलता प्राप्त कर सकता है।

मेरे मित्र विद्वद्वर पं० इन्द्रदेव जी त्रिपाठी आयुर्वेद, साहित्य, मीमांसा, एवं तर्क जैसे गहन विषयो के आचार्य एवं सिद्धहस्त लेखक है। इन्होने बड़ी लगन के साथ दृढता से इस कार्य को पूर्ण किया है। विश्वास है, वैद्य समाज इनके श्रम का पर्याप्त समादर करेगा और आगामी संस्करण के पूर्व अपने सत्परामर्शों से लाभान्वित करेगा।

अन्त मे मैं इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के लिये चौखम्बा परिवार का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

आरोग्य-निकेतन
वाराणसी-५

—गङ्गासहाय पाण्डेय

आत्मनिवेदन

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ (च० सू० १।४१)

अर्थात् जिस शास्त्र मे हित आयु, अहित आयु, सुख आयु, दुःख आयु— इन चार प्रकार की आयुओ के लिये हित (पथ्य), अहित (अपथ्य), आयु का मान (प्रमाण या अप्रमाण) और आयु का स्वरूप बताया गया हो उसे आयुर्वेद कहते है ।

आयुर्वेद मे स्वास्थ्य-रक्षण, रोग-निवारण तथा आयुर्वर्धन रूप लक्ष्य की पूर्ति के लिये तीन महत्त्व के सूत्र भी चरकाचार्य ने बताए है—

हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् ।
त्रिसूत्रं शाश्वत पुण्यं .... ॥ (च० सू० १।२४)

अर्थात् स्वस्थ तथा आतुरो के लिये उत्तम मार्ग बताने वाला हेतुज्ञान, लिंगज्ञान तथा औषधज्ञानरूप त्रिसूत्रज्ञान निरन्तर पुण्य देनेवाला है ।

वस्तुतः आयुर्वेद-ज्ञान के मुख्य दो ही प्रयोजन है—'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं, व्याधिताना व्याधिपरिमोक्ष' । इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये उपर्युक्त त्रिसूत्र-ज्ञान बहुत उत्तम साधन माना गया है। इसी के आधार पर चिकित्सा मे सुविधा के लिये आयुर्वेद के अष्टागो का प्रणयन हुआ और प्रत्येक अंग का अनेक प्रकार से विभाजन होते-होते आज एक-एक रोग के विशेष परिज्ञान के लिये अनेकानेक ग्रन्थो का निर्माण हो चुका है ।

प्राचीन सहिताएँ तथा आर्षग्रन्थ यद्यपि इसी बहुमूल्य ज्ञान से ओतप्रोत है किन्तु अपनी गम्भीरतावश वे अनेक शास्त्रो के पारंगत विद्वानो के लिये ही बोधगम्य है । अत' वैद्यप्रवर सोढल ने अनेक आर्ष ग्रन्थो का मन्थन कर आयुर्वेद के त्रिसूत्र-ज्ञान तथा अष्टाग-चिकित्सा से समन्वित गदनिग्रह नामक सरल सुबोध ग्रन्थ का निर्माण किया । इस ग्रन्थ मे शास्त्रीय सिद्धान्तो के विवेचन के साथ-साथ अनेक छोटे-बड़े अनुभूत योग, पथ्यापथ्य, आहार-विहार, मन्त्र-तन्त्र, टोटके-टोने तथा स्वस्थवृत्त आदि का उपदेश सुबोध शैली मे एक साथ प्राप्त हो जाता है । आयुर्वेद का ऐसा सर्वांगपूर्ण समन्वय अन्य ग्रन्थो मे सुलभ नही है ।

आयुर्वेद-साहित्य को गति देनेवाले वैद्य श्रीमान् यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने सर्वप्रथम इस ग्रन्थ का संवत् १९६७ मे उद्धार कर इसे स्वयं प्रकाशित किया

था। प्रयोग खण्ड का आसवाधिकार छप रहा था तभी बुन्दी-नगर-निवासी राजवैद्य श्रीप्रसाद शर्मा जी ने गदनिग्रह की एक प्राचीन प्रति आचार्य जी को लाकर दी। उसमे विषय कुछ अधिक था। उस अधिक अंश को उपयोगी समझकर आचार्य जी ने अपने १९६७ संवत् वाले संस्करण मे घृताधिकार के बाद परिशिष्ट रूप मे छपा दिया। किन्तु १९८० संवत् की द्वितीय आवृत्ति मे परिशिष्टगत सम्पूर्ण योगों को यथाप्रसंग तत्तद्रोगचिकित्सा मे व्यवस्थित कर ग्रन्थ मे समाहित कर लिया। इस तरह इस ग्रन्थ का कलेवर और साथ ही साथ उपयोगिता भी अपेक्षाकृत अधिक बढ गई। आचार्य जी के विद्वत्तापूर्ण सम्पादन-कौशल से समन्वित होकर यह ग्रन्थ जिस अनवद्य रूप मे आयुर्वेद-साहित्य को प्राप्त हुआ उसके लिये सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत् आपको निरन्तर स्मरण करता रहेगा; मैं तो विशेष रूप मे आजीवन उनका आभारी रहूँगा।

उनके आशीर्वादस्वरूप उनका स्वरचित परिशिष्ट अविकल रूप मे दे दिया गया है और द्वितीय परिशिष्ट मे उसका सरल भावानुवाद भी कर दिया गया है।

यह ग्रन्थ दो खण्डो मे विभाजित है। प्रथम खण्ड मे घृत-तैल-चूर्ण-वटी-अवलेह तथा आसवारिष्ट-संबन्धी छह अधिकार है जिनमे लगभग ६०० प्रत्यक्ष फलदायी योग हैं। द्वितीय खण्ड मे कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्य, भूततन्त्र, बालतन्त्र, विषतन्त्र, रसायन और वाजीकरण तथा पञ्चकर्माधिकार नामक ९ प्रकरण हैं। सर्वसाधारण के लाभ की दृष्टि से इसके हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता बहुत दिनो से प्रतीत हो रही थी। वाराणसी के लब्धप्रतिष्ठ यशस्वी चिकित्सक डा० गगासहाय जी पाण्डेय का अनुरोध भी प्रबल प्रेरक बन गया और भगवान् विश्वनाथ की कृपा तथा प्रातःस्मरणीय विद्वच्चूडामणि पद्मभूषण पूज्यपाद गुरुवर श्री पं० सत्यनारायण जी शास्त्री कविराज जी के शुभाशीर्वाद से आज हिन्दी अनुवाद-सहित यह उपयोगी ग्रन्थ आपके हाथो मे है।

इस ग्रन्थ मे अनेक अप्रचलित द्रव्यो तथा अप्रसिद्ध नामो का प्रयोग किया गया है जिनके निर्णय मे श्री हरनारायण शर्मा वैद्य, श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री वैद्य, आचार्य श्री शिवदत्त जी शुक्ल, श्री रमानाथ जी द्विवेदी, वनस्पति-विशेषज्ञ डा० बलवन्त सिंह जी एवं श्री राजकुमार द्विवेदी प्रभृति धुरधर विद्वानो का पूरा सहयोग प्राप्त न होता तो यह कार्य पूर्ण न हो पाता। इन महानुभावो के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

डा० गंगासहाय पाण्डेय जी का उपकार मैं कभी नही भूल सकूँगा जिन्होने

इस कार्य के लिये मुझे प्रेरणा दी, कार्यकाल मे जब-तब अनेक प्रकार की समस्याओ का समाधान किया तथा संशोधन सम्बन्धी सहयोग देकर इस प्रारब्ध कार्य को पूर्ण कराया।

अपने मित्रद्वय श्री द्रव्येश्वर झा तथा श्री श्यामसुन्दर पाठक के प्रति सम्मान प्रकट करता हूँ जिन्होने इस कार्य मे बराबर योग दिया है।

ग्रन्थ-निबन्धनसम्बन्धी सत्परामर्श तथा अनुवाद के सम्पादन कार्य के लिये भिषग्ररत्न पं० ब्रह्मशंकर मिश्र तथा पं० रामचन्द्र झा को हार्दिक साधुवाद अर्पित करता हूँ। 'चौखम्बा संस्कृत सीरीज' तथा 'चौखम्बा विद्याभवन' (वाराणसी) के योग्य सञ्चालक बाबू श्री मोहनदास जी गुप्त तथा श्री विट्ठलदास जी गुप्त विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होने अपने कार्यालय के अनेक कार्यों को शिथिल कर यथाशीघ्र इसे प्रकाशित किया एवं इस कार्य मे अग्रसर होने के लिये मुझे प्रोत्साहित किया।

अन्त मे विज्ञ पाठको से निवेदन है कि इसकी त्रुटियो से वे मुझे कृपया अवगत कराते रहेगे ताकि भविष्य मे उनकी पुनरावृत्ति न हो पावे। इस अनुवाद से यत्किंचित् भी जनकल्याण हो सका तो अपना श्रम सफल समझूँगा।

श्री वैद्य सोढल की कृति की यह व्याख्या श्री विश्वनाथ जी की कृपा से ही पूर्ण हो सकी है अतः उन्हे ही समर्पित है।

—इन्द्रदेव त्रिपाठी

विषयानुक्रमणिका

तैलाधिकारो द्वितीयः

चूर्णाधिकारस्तृतीयः

गुटिकाधिकारश्चतुर्थः

लेहाधिकारः पञ्चमः

आसवाधिकारः षष्ठः

टीकाकर्तृमङ्गलाचरणम्

(१)

ध्यात्वा भवामयकुलापहृतिप्रवीणं
श्रीशं नवाम्बुदकलेवरदिव्यशोभम् ।
धन्वन्तरीति शुभनामधरं करोमि
'विद्योतिनीं' सुविवृति गदनिग्रहस्य ॥

(२)

रमापतेः शंजनकस्य साधो-
र्भवस्य मेऽद्धा जनकस्य धूर्जटेः ।
भैषज्यवेत्तुस्तु विशिष्टतुष्ट्यै
सैवेन्द्रदेवेन कृता प्रकाशताम् ॥



गदनिग्रहः

'विद्योतिनी' हिन्दीव्याख्योपेतः



अथ प्रयोगखण्डः प्रथमः

मङ्गलाचरणम्—

करकिसलयसङ्गी यस्य पीयूषकुम्भः
परममरवधूनां भूयसे मङ्गलाय ।
स खलु निखिलदुग्धाम्भोधिरत्नेषु रत्न
हरतु दुरितराशीनाशु धन्वन्तरिर्वः ॥ १ ॥

मंगलाचरण—देवाङ्गनाओं के अतिशय मङ्गलार्थ जिसके करपल्लव में अमृत-कलश है, वह क्षीरसागर के सभी रत्नों में उत्तम रत्न धन्वन्तरि हम लोगों के दोष-समूहों को दूर करें ॥ १ ॥

त्रिभुवनजनरोगग्रामसंग्रामजेताऽ-
मृतभृतघृतकुम्भोद्[1]गूर्णहस्तायुधश्रीः ।
अमरमथितदुग्धाम्भोधिलब्धोदयोऽसौ
[2]दलयतु दुरितौघानाद्यवैद्याधिपो वः ॥ २ ॥

हाथ में धारण किये अमृत-पूर्ण कलश शस्त्र से सुशोभित, त्रिभुवन-जन-रोग-समुदाय-युद्ध में विजयी, देवताओं के द्वारा क्षीरसागर-मथन करने से प्रादुर्भूत, वैद्यों के प्रथम अधिपति धन्वन्तरि हम लोगों के दोष-समुदायों का नाश करें ॥ २ ॥

नानामुनिकृतैः श्लोकैः शोढलेनाल्पबुद्धिना ।
विबुधप्रतिबोधाय ग्रथ्यते गदनिग्रहः ॥ ३ ॥

मैं अल्पबुद्धि शोढल, अनेक मुनियों के बनाये हुए श्लोकों से विद्वानों के विशेष ज्ञान के लिये गदनिग्रह नामक ग्रन्थ बना रहा हूँ ॥ ३ ॥

ग्रन्थानुक्रमणिका—

घृतं तैलं च चूर्णानि गुटीलेहौ तथाऽऽसवाः ।
आदावेते ह्यनेकार्था ग्रन्थेऽस्मिन् गदनिग्रहे ॥ ४ ॥

---

१. '०कुम्भोद्गीर्ण०' इति पा० । २ 'विदलतु' इति पा० ।

ग्रन्थानुक्रमणिका—इस गदनिग्रह-नामक ग्रन्थ में पहले ये अनेक प्रयोजन (रोगनाशक) वाले घृत, तैल, चूर्ण, वटी, अवलेह तथा आसव कहे गये हैं ॥ ४ ॥

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विसूचिका ।
अलसश्च विलम्बी च कृमिरुक् पाण्डुकामले ॥ ५ ॥
हलीमकमसृक्पित्तं राजयक्ष्मोरसः क्षतम् ।
कासो हिक्का सह श्वासैः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ ६ ॥
छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानान्मदात्ययः ।
दाहो वातविकाराश्च वातरक्तोरुरुक् तथा ॥ ७ ॥
आमवातस्तथा शूलं शूलं च परिणामजम् ।
जरत्पित्तमथानाह उदावर्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ ८ ॥
हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातस्तथाऽश्मरी ।
प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ ९ ॥
मेदोदोषोदरं शोफो विद्रधिर्वृद्धिरेव च ।
कुष्ठं श्वित्रं शीतपित्तमुदर्दः कोठ एव च ॥ १० ॥
अम्लपित्तं विसर्पश्च विस्फोटोऽथ मसूरिका ।
इति कायचिकित्सायां मया रोगाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ११ ॥

मैने इस कायचिकित्सा में—ज्वर, अतिसार, ग्रहणी दोष, अर्शरोग, अजीर्ण, विसूचिका (हैजा), अलस (अलसकरोग), विलम्बी (विलम्बिका रोग), कृमि, पाण्डु-कामला (पीलिया), हलीमक (पाण्डु रोग का भेद), रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, कास, हिक्का, (हिचकी), श्वास, स्वरभेद, अरुचि, छर्दि (वमन), तृष्णा (प्यास), मूर्च्छा, पानमदात्यय (अधिक मद्यपान करने से उत्पन्न रोग), दाह, वातविकार, वातरक्त, ऊरुरोग, आमवात, शूल, परिणाम शूल, जरत्पित्त, आनाह, उदावर्त, गुल्मरोग, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी रोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेह पिडिका, मेदोदोष, उदर रोग, शोथ, विद्रधि, वृद्धि, कुष्ठ, श्वित्र, शीतपित्त, उदर्द, कोठ, अम्लपित्त, विसर्प, विस्फोट, मसूरिका, इन रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया है ॥ ५–११ ॥

शालाक्ये शिरसो रोगाः कर्णनेत्रामयास्तथा ।
नासामुखामयाश्चैव द्वितीयेऽङ्गे चिकित्सिताः ॥ १२ ॥

द्वितीय अङ्ग शालाक्य प्रकरण मे शिरोरोग, कर्ण, नेत्र, नासिका तथा मुख रोग की चिकित्सा का वर्णन किया गया है ॥ १२ ॥

गण्डमालाऽपची गण्डः पिटिकार्बुदग्रन्थयः ।
श्लीपदं व्रणशोफश्च सद्योव्रणचिकित्सितम् ॥ १३ ॥

भग्ननाडीव्रणौ चैव भगन्दरोपदंशकौ ।
शूकदोषाः क्षुद्ररोगाः शल्ये चाङ्गे चिकित्सिताः ॥ १४ ॥

तृतीय अंग शल्य प्रकरण में गण्डमाला, अपची, गलगण्ड (घेघा), पिटिका (पिडकी), अर्बुद, ग्रन्थि, श्लीपद (फीलपांव), व्रणशोथ, सद्योव्रण, भग्न (अस्थिभग्न), नाडीव्रण (नासूर), भगंदर, उपदंश (गर्मी), शूकदोष तथा क्षुद्र (छोटे २ फुटकर) रोग, इन रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है ॥ १३–१४ ॥

भूतोन्मादस्तथोन्मादस्तथाऽपस्मार एव च ।
भूततन्त्रे चतुर्थेऽङ्गे सनिदानाश्चिकित्सितम् ॥ १५ ॥

चतुर्थ अंग भूततन्त्र में, भूतोन्माद, उन्माद तथा अपस्मार की निदान-सहित चिकित्सा कही गई है ॥ १५ ॥

प्रदरो योनिव्यापच्च गर्भस्रावचिकित्सितम् ।
मूढगर्भोऽथ वन्ध्या च योनिशुक्रगदास्तथा ॥ १६ ॥
सूतिका स्तन्यदोषाश्च गाढनिर्लोमभेषजम् ।
बालरोगचिकित्सा च बालतन्त्रेऽथ पञ्चमे ॥ १७ ॥

पञ्चम अंग बालतन्त्र में, प्रदर, योनिव्यापद् (योनिरोग), गर्भस्राव, मूढगर्भ (गर्भ का उलट जाना या अटक जाना), वन्ध्या रोग (बांझपन), योनि-सम्बन्धी रोग, शुक्रसम्बन्धी रोग, सूतिका रोग, गाढलोम (अधिक बाल), निर्लोम (विनाबाल) रोग, बालरोग, इन रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है ॥ १६–१७ ॥

सर्पलूताविषे चैव वृश्चिकोन्दुरुजं विषम् ।
नखदन्तविषं चैव [1]खार्जूरं कृत्रिम विषम् ॥ १८ ॥
षष्ठे त्वङ्गे विषाख्ये च प्रोक्तं चैषां चिकित्सितम् ।

षष्ठ अंग विष प्रकरण में सर्प विष, लूता विष, लकड़ी का विष, वृश्चिक (बिच्छू) विष, उन्दरु विष (मूषकविष) नख विष, दन्त विष, खार्जूर (गोजर) का विष तथा कृत्रिम विष की चिकित्सा बताई गई है ॥ १८ ॥

रसायनं सप्तमं च वाजीकरणमष्टमम् ॥ १९ ॥
पञ्चकर्माधिकारे च स्नेहस्वेदविधिस्तथा ।
वमनं च विरेकश्च नस्यकर्मेत्यनुक्रमः ॥ २० ॥

सातवें प्रकरण में रसायन का निरूपण तथा आठवें प्रकरण में वाजीकरण का निरूपण किया गया है और पञ्चकर्माधिकार में स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन

---

१ खार्जूरमिति शतपदीविषमित्यर्थः ।

तथा नस्य कर्म का प्रतिपादन किया गया है यह इस ग्रन्थ का अनुक्रमण है ॥ १९–२० ॥

अथातः प्रथमो घृताधिकारः प्रारभ्यते ।

ज्वरे मञ्जिष्ठाद्यं घृतम्—

मञ्जिष्ठाऽतिविषा पथ्या वचा शुण्ठी च रोहिणी ॥ १ ॥
देवदारु हरिद्रा च द्रोणेऽपां पलिकान् पचेत् ।
क्वाथेऽस्मिन् साधयेत् पिष्टैर्घृतप्रस्थं पिचून्मितैः ॥ २ ॥
शृङ्गवेरकणाहिङ्गुद्विक्षारपटुपञ्चकैः ।
तत्कफावृतसर्वोत्थज्वरिणाममृतोपमम् ॥ ३ ॥
वर्ध्मगुल्मानिलश्वासकासपाण्डुविकारिणाम् ।
गलग्रन्थिप्रमेहार्शःप्लीहापस्मारशोफिनाम् ॥ ४ ॥
उदावर्तपरीतानां मन्दाग्निक्रिमिकुष्ठिनाम् ।

घृत प्रकरण—सिद्ध घृत बनाने के लिये गोघृत को ही श्रेष्ठ माना गया है । घृत सिद्ध करने के पहले घृत को मूर्च्छित करना चाहिए क्योंकि मूर्च्छित करने से घृत, साफ, आमदोष-रहित एवं वीर्यवान् बन जाता है ।

मूर्च्छित करने के लिये ६४ तोले घृत को पीतल की कलई की हुई कडाही में डालकर मन्दाग्नि पर गरम करे । झाग दूर होने पर नीचे उतार ले । उष्णता थोडी कम होने पर हर्र, बहेडा, आंवला, हल्दी और नागरमोथा, इन पाँचो औषधियों को चार तोले लेकर बिजौरे नीबू के रस में कल्क बनाकर डाल दे । बाद में दो सौ छप्पन तोले जल मिलाकर पाक करे, थोडा जल शेष रहने पर उतार कर सात दिन तक रहने दे । इसके बाद इस घृत के साथ क्वाथ, दूध, दही, द्रव पदार्थ और अन्य औषधियों के कल्क को मिलाकर मन्दाग्नि पर पाक करे । तैयार होने पर प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिलावे । यह घृत-पाक का सर्वसाधरण नियम है । घृत में मूत्र तथा क्षारीय द्रव्य मिलाना हो तो (आठ गुनी) बडी कडाही लेनी चाहिए । गोमूत्र आदि क्षारीय द्रव्य से उफान बहुत आते हैं ।

घृत सिद्ध होने पर कडाही नीचे उतार कर तुरन्त छान लेना चाहिए । शीतल होने तक रह जाने से घृत तथा तैल उड जाते है । घृत पुराना होने पर भी गुणयुक्त रहता है । घृत शीतवीर्य होता है । औषधियों के साथ परिपाक होने पर भी शीतवीर्य नष्ट नहीं होता है । बल्कि जिन २ औषधियों के साथ घृत तैयार किया जाता है उन २ औषधियों के गुण-वीर्य-विपाक आदि घृत में मिल जाते हैं । घृत रोग को शीघ्र दूर करता है । शरीर स्वस्थ, बलवान् एवं

कान्तिमान् बनता है। अन्य औषधों से निराश रोगी घृत सेवन से आराम पाता है। मन्दाग्नि, मलावरोध, आफरा बेचैनी, अरुचि, शिरदर्द आदि रोगों में आशातीत लाभ होता है। इससे हानि की सम्भावना नहीं होती है। सिद्ध घृत को, चीनी मिट्टी, काच या पुराने घृत-स्निग्ध मृत्तिकापात्र में मुह बन्द कर रखना चाहिए। वृन्द माधवकार के मतानुसार-एक वर्ष बाद सिद्ध घृत हीनवीर्य हो जाता है और तैल हीनवीर्य नहीं होता है किन्तु पुराना सिद्ध घृत गुणवान् ही रहता है और पुराना तैल दोषयुक्त हो जाता है, यह अनुभव सिद्ध है। इसकी मात्रा सामान्यतः सौम्य द्रव्य-सिद्ध घृत मे एक से दो तोला तक की दिन मे दो बार तथा तीक्ष्ण द्रव्यों से सिद्ध घृत आधा तोला से एक तोला तक दिन मे दो बार प्रयुक्त करने का विधान है।

अब अनुक्रमणिका के बाद घृताधिकार प्रारम्भ करते है।

ज्वर में मञ्जिष्ठाद्य घृत—मंजीठ, अतीस, हर्रे, वच, सोंठ, मांसरोहिणी, देवदारु, हल्दी, एक २ पल इन द्रव्यों को एक द्रोण जल मे क्वाथ करें। चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ मे कल्कार्थ सोंठ, पीपर, हिंगु, द्विक्षार (सज्जीखार, यवाखार) पटुपञ्चक (सेन्धानमक, सौवर्चल, विड, सांभर, सामुद्र) एक-एक अक्ष इन द्रव्यों के कल्क को मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत, कफसंसृष्ट, सन्निपातजन्य ज्वर रोगी; वर्ध्म, गुल्म, वात, श्वास, कास, पाण्डु विकार, गलग्रन्थि, प्रमेह, अर्श, प्लीहावृद्धि, अपस्मार, शोथ, उदावर्त, मन्दाग्नि, कृमि तथा कुष्ठ के रोगियों के लिये अमृत के समान है अर्थात् उपर्युक्त रोगों का नाश करता है॥ १—४॥

द्वितीयं मञ्जिष्ठाद्यं घृतम्—

मञ्जिष्ठा द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी॥ ५॥
नागरातिविषे चैव वचा कटुकरोहिणी।
हिङ्ग्वेतैरक्षमात्रैस्तु घृतप्रस्थ प्रसाधयेत्॥ ६॥
एतन्माञ्जिष्ठकं सर्पिर्बहून् रोगान्नियच्छति।
हिक्कां श्वास ज्वर दुष्टं ग्रहणी पाण्डुरोगताम्॥ ७॥
प्रमेहान्मधुमेहांश्च कृमीन् कुष्ठमरोचकम्।
कासं शोषमुदावर्तमपस्मार तथैव च॥ ८॥
प्लीहानं गण्डमालां च ह्यर्शांसि श्वयथुं तथा।

द्वितीय मञ्जिष्ठाद्य घृत—मंजीठ, आमा हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, हर्रे, सोंठ, अतीस, वच, कुटकी, हिंगु, एक एक अक्ष इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ तैल, तैल से चौगुना जल मिलाकर सिद्ध करे। यह माञ्जिष्ठकघृत, बहुत रोगों को, और हिक्का, श्वास, ज्वर, ग्रहणी दोष, पाण्डु रोग, प्रमेह, मधुमेह,

कृमि, कुष्ठ, अरोचक, कास, शोष (सूखा रोग), उदावर्त, अपस्मार, प्लीहा वृद्धि, गण्डमाला, अर्श तथा शोथ रोगों को दूर करता है ॥ ५-८ ॥

ज्वरे तिल्वकाद्यं घृतम्—

तिल्वकस्य पलान्यष्टौ त्रिवृन्मूलत्वचन्तथा ॥ ९ ॥
अंशुमत्युरुबूकं च बिल्वाद्यं च पृथक् पलम् ।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं फलत्रिकात् ॥ १० ॥
तत्साधयेज्जलद्रोणे चाष्टभागावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन दत्त्वा दध्नस्तथाऽऽढकम् ॥ ११ ॥
कर्षेण यावशूकस्य पक्वं तदवचूर्णयेत् ।
एतत्तु तैल्वकं नाम जीर्णज्वरविषापहम् ॥ १२ ॥
कृमिकुष्ठहरं चैव शोफपाण्ड्वामयापहम् ।

ज्वर में तिल्वकाद्य घृत—तिल्वक आठ पल, निशोथ का मूल तथा छाल आठपल, अंशुमती (शालपर्णी), उरुबूक (रक्तएरण्ड), बिल्वाद्य (बेल की छाल, गम्भारी, पाढी, अरणी, अरलू) अलग २ एक २ पल, यव, बैर, कुलथी एक २ प्रस्थ त्रिफला (आंवला, हर्र, बहेडा) एक प्रस्थ इन द्रव्यों को यव-कूटकर एक द्रोण जल मे क्वाथ करे । अष्टमांश शेष क्वाथ से एक प्रस्थ घृत, एक आढक दही, मिलाकर पकावे और सिद्ध होने पर छान कर, एक कर्ष यवाखार मिला दे । यह तैल्वक नामक घृत जीर्ण ज्वर तथा विष को दूर करता है । और कृमिरोग तथा कुष्ठ को हरने वाला और शोथ तथा पाण्डु रोग को नाश करने वाला है ॥ ९-१२ ॥

जीर्णज्वरे हारीतात्कटुकं घृतम्—

त्रिफलां पञ्चमूल्यौ द्वे कुलत्थान् बदरान् यवान् ॥ १३ ॥
द्विपलांस्तु जलद्रोणे त्वष्टभागावशेषितम् ।
निःक्वाथ्य विपचेत्कल्कं दत्त्वा प्रस्थं च सर्पिषः ॥ १४ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।
पुष्करातिविषे भार्गी शटी सप्तच्छदो वचा ॥ १५ ॥
रजन्यौ नक्तमालश्च पाठे द्वे शिग्रुतुम्बरू ।
सोमवल्कोऽर्कमूलानि मदनं कटुरोहिणी ॥ १६ ॥
तेजस्विनी सगोजिह्वा चन्दनं कण्टकारिका ।
किराततिक्तकं मुस्तं पटोलं सदुरालभम् ॥ १७ ॥
वयःस्था पिचुमन्दश्च कटुकं हिङ्गुना सह ।
एतानक्षसमान् दत्त्वा क्षारौ ह्यर्धपलोन्मितौ ॥ १८ ॥
लवणानां च पञ्चानां कर्षं कर्षं प्रदापयेत् ।

सिद्धं तन्मात्रया पीतं सर्वजीर्णज्वरापहम् ॥ १६ ॥
हृत्प्लीहग्रहणीदोषश्वासकासार्शसां हितम् ।
गुल्मघ्नं कटुकं नाम [1]कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ २० ॥
दीर्घकालप्रसक्तानां ज्वराणाममृतोपमम् ।

जीर्णज्वर मे हारीत-वर्णित कटुक घृत—त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा), दोनों पञ्चमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलू, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेगनी, गोखरू), कुलथी, बेर यव दो २ पल इन द्रव्यों को "यव कुट कर" एक द्रोण जल मे पकावे। परिस्रावित अष्टमांश शेष क्वाथ में एक प्रस्थ घृत तथा कल्कार्थ—पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, पुष्करमूल, अतीस, भांगरा, छतिवन, वच, आमा हल्दी, दारुहल्दी, नक्तमाल (करंज), लघु पाठा, राज पाठा, सहिजन बीज, तुम्बरु, सोमवल्क (रीठा करंज), मदार की जड़ मदनफल, कुटकी, ज्योतिष्मती, गोजिह्वा (वनगोभी), चन्दन, रेगनी, चिरायता, मोथा, परोरा की पत्ती, यवासा, वयस्था (गुडूची), निम्ब, कटूफल तथा हिंगु समभाग एक २ अक्ष इन द्रव्यों को लेकर कल्क बनाकर मिला दे और सज्जीखार, यवाखार, आधा २ पल, पाचों नमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड़ साँभर, सामुद्र) एक २ कर्ष छोड़ कर सिद्ध करे। इस घृत को मात्रापूर्वक पान करने से सभी प्रकार के जीर्ण ज्वर नष्ट होते हैं। हृदय रोग, प्लीहा वृद्धि, ग्रहणी दोष, श्वास, कास तथा अर्शरोग मे लाभप्रद है। यह आत्रेय महर्षि से पूजित, कटुक नामक घृत गुल्म को नष्ट करता है और चिरकालीन ज्वरों के लिये अमृत के समान है ॥ १२-२० ॥

अग्निमान्द्ये अग्निघृतम्—

शतं पलानि भल्लाताज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २१ ॥
चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पलीम् ॥ २२ ॥
हिङ्गुचव्याजमोदं च पञ्चैव लवणानि च ।
द्वौ क्षारौ हपुषां चात्र दद्यादर्धपलोन्मितम् ॥ २३ ॥
मस्त्वम्लरसचुक्राणां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ।
शृङ्गवेररसप्रस्थ घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४ ॥
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ।
अर्शांसि वातरोगं च प्लीहोदरजलोदरे ॥ २५ ॥
ग्रन्थ्यर्बुदापचीशोफकुष्ठमेदोऽनिलांस्तथा ।

---

१ 'सर्पिरात्रेयपूजितम्' इति पा० ।

ये च कुक्षिगता रोगा ये च बस्तिसमाश्रिताः ॥ २६ ॥
तान् सर्वान्नाशयत्येतत्सूर्यस्तम इवोदितः ।

अग्निसान्द्य में अग्निघृत—भल्लातक सौ पल एक-द्रोण जल में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष क्वाथ को उतार छान कर उसमें एक प्रस्थ घृत मिलाकर तथा त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), पिपरामूल, चित्रक, गजपीपर, हिंगु, चव्य, अजमोदा, पाचो नमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड, साभर, सामुद्र), यवाखार, सज्जीखार, हाऊवेर आधा २ पल इन द्रव्यों के कल्क और मस्तु (दही का तोड), अम्ल रस, शुक्र एक २ प्रस्थ, अद्रक का रस एक प्रस्थ छोडकर १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह अग्निघृत मन्दाग्नि के रोगियों के लिए हितकर है और अर्श वात रोग, प्लीहोदर तथा जलोदर में भी लाभप्रद है। यह घृत ग्रन्थि, अर्बुद, अपची, शोथ, कुष्ठरोग, मेदो रोग, वात विकार तथा जितने पेट तथा वस्ति के रोग हैं उन सभी रोगों का नाश करता है। जैसे सूर्य उदय होकर अन्धकार का नाश कर देता है ॥ २१–२६ ॥

ग्रहण्यां चाङ्गेरीघृतम्—

पिप्पली नागरं पाठा यवानी विश्वभेषजम् ॥ २७ ॥
भागांस्त्रिपलिकान् कृत्वा कषायमुपकल्पयेत् ।
भार्गी च पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यं सचित्रकम् ॥ २८ ॥
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ।
एतैः पलार्धकैर्द्रव्यैः कृत्वा कल्कं विपाचयेत् ॥ २९ ॥
पलानि सर्पिषस्तस्मिन् चत्वारिंशत्समावपेत् ।
चतुर्गुणेन दध्ना च चाङ्गेरीस्वरसेन च ।
मृद्वग्निना ततः साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ॥ ३० ॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम् ।
शोफप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ ३१ ॥
कासहिक्कारुचिश्वाससूदनं सर्वगुल्मनुत् ।

ग्रहणी दोष में चांगेरी घृत—पीपर, सोंठ, पाठा, अजवायन, सोंठ तीन २ पल लेकर चौगुने जल में चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ बनाये और उसमें भारंगी, पिपरामूल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), चव्य, चित्रक, गोखरू, पीपर, धनिया, बेल का गूदा, पाठा, अजवायन आधा २ पल इन द्रव्यों के कल्क मिलाकर चालिस पल घृत पकावे और चौगुना (एक सौ साठ पल) दही तथा चांगेरी का स्वरस डालकर मन्द आंच से घृत सिद्ध कर रक्खे। यह घृत, ग्रहणी दोष तथा अर्शविकार का नाश करता है। गुल्म रोग, हृदय के रोग, शोथ, प्लीहोदर (पुरातन प्लीहा वृद्धि), आनाह, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर का भी नाश

करता है और कास, हिक्का, अरुचि, श्वास को नष्ट करता है तथा सभी प्रकार के गुल्म को दूर करता है ॥ २७–३१ ॥

अग्निवेशात् गुदभ्रंशे द्वितीयं चाङ्गेरीघृतम्—

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ३२ ॥
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ।
चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेषां विपाचयेत् ॥ ३३ ॥
चतुर्गुणेन दध्ना तु तद्घृतं कफवातनुत् ।
अर्शांसि ग्रहणीरोगं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ३४ ॥
गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद् व्यपोहति ।

अग्निवेश-वर्णित गुदभ्रंश में द्वितीय चांगेरी घृत—सोंठ, पिपरामूल, चित्रक, गजपीपर, गोखरू, पीपर, धनिया, बेल का गूदा, पाठा, अजवायन, समभाग इन द्रव्यों के कल्क के साथ, चौगुने चांगेरी स्वरस से चौगुना दही मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत कफवातजन्य विकारों को दूर करता है तथा अर्श, ग्रहणी रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुभ्रंदश रोग तथा आनाह (पेट फूलना) का नाश करता है। (यहाँ घृत का परिमाण नहीं दिया गया है। अतः घृत के चतुर्थांश कल्क द्रव्य देव्य लेना चाहिए। द्रव का निर्देश नहीं है अतः चौगुना चांगेरी स्वरस छोड़ना चाहिए) ॥ ३२–३४ ॥

गुल्मे दाधिकं घृतम्—

बिडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योषजीरकैः ॥ ३५ ॥
हिङ्गुसौवर्चलक्षाररुग्वृक्षाम्लाम्लवेतसैः ।
बीजपूररसोपेतं सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् ॥ ३६ ॥
साधितं दाधिकं नाम गुल्महृत् प्लीहशूलनुत् ।

गुल्म रोग में दाधिक घृत—विडनमक, अनार, सेन्धानमक, चित्रक, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), स्याहजीरा, हिंगु, सौवर्चल नमक, यवाखार, रुक् (कूठ), वृचाम्ल (कोकमवृक्ष), अम्लवेत, समभाग इन द्रव्यों के कल्क के साथ विजौरा नीबू के रस सहित चौगुना दही मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह दाधिक नामक घृत गुल्म तथा प्लीहा-शूल को दूर करता है (स्नेह-निर्माण प्रकार के अनुसार कल्क, द्रव तथा स्नेह का परिमाण लेना चाहिए) ॥ ३५–३६ ॥

गुल्मे हपुषाद्यं घृतम्—

हपुषाव्योषमृद्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ॥ ३७ ॥
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद् घृतम् ।
सकोलमूलकद्रावं सदधिक्षीरदाडिमम् ॥ ३८ ॥
तत् परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविनाशनम् ।

योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ ३९ ॥
दाहुहृत्पार्श्वशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ।

गुल्मरोग में हपुषाद्य घृत—हपुषा (हाऊबेर), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), मुनक्का, चव्य, चित्रक, सेन्धा नमक, स्याहजीरा, पिपरामूल, अजवायन, समभाग इन द्रव्यों के कल्क के साथ, बेर तथा मूलक का स्वरस या शीतकषाय दूध, दही तथा अनार का रस इन द्रव द्रव्यों को अलग २ घृत के बराबर लेकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वात गुल्म का नाश करने वाला तथा शूल, आनाह को दूर करता है। यह घृत योनि रोग, अर्श, ग्रहणी दोष, श्वास, कास, अरुचि, ज्वर, दाहु-हृदय तथा पार्श्व-शूल को भी दूर करता है ॥ ३७–३९ ॥

अग्निवेशाद्रक्तपित्ते वासाद्य घृतम्—

समूलपत्रशाखस्य तुलां कुर्याद् वृषस्य च ॥ ४० ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ।
कल्केन वृषपुष्पाणामाढकं सर्पिषः पचेत् ॥ ४१ ॥
तत्सिद्धं पाययेद्युक्त्या पादांशमधुना युतम् ।
श्वासं कासं प्रतिश्यायं तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ४२ ॥
रक्तपित्तं क्षयं चैव विषं सर्पिर्नियच्छति ।

अग्निवेश-वर्णित रक्तपित्त मे वासाद्य घृत—मूल, पत्र, तथा शाखा सहित-अडूसा एक तुला लेकर एक द्रोण जल मे पकावे। अष्टमाग शेष क्वाथ मे, अडूसा के पुष्प का कल्क (घृत से चौथाई भाग) तथा एक आढक घृत मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस सिद्ध घृत को चौथाई मधु मिलाकर पान कराये। यह घृत श्वास, कास, प्रतिश्याय, तृतीयक-चतुर्थक ज्वर, रक्तपित्त, क्षय तथा विष को भी दूर करता है ॥ ४०–४२ ॥

हारीताद्रक्तपित्ते महावासाद्यं घृतम्—

वासकस्वरसे सर्पिः पयसा सह पाचयेत् ॥ ४३ ॥
कल्कैः कुटजभूनिम्बमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
उदीच्यमधुकानन्तासारिवोत्पलपद्मकैः[1] ॥ ४४ ॥
त्रायन्त्युत्पलमूर्वाभिर्मदयन्त्याश्च पल्लवैः ।
सिताक्षौद्रयुतं हन्याद्रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४५ ॥
पित्तं कासं च गुल्मं च स्वरभेदं हलीमकम् ।
ये चान्ये कीर्तिता रोगा रक्तपित्तकफाश्रयाः ॥ ४६ ॥
तान् सर्वान्नाशयत्येतत्पीयमानं हिताशिनः ।

---

१ 'सारिवोशीरपद्मकैः' इति पा०।

हारीत-वर्णित रक्तपित्त में महावासाद्यघृत—अडूसा का स्वरस दो भाग, दूध दो भाग, घृत एक भाग लेकर कोरैया, चिरायता, नीम, मोथा, मुलहठी, रक्त चन्दन, उदीच्य (सुगन्धवाला), मुलेठी, अनन्तमूल, सारिवा, नील कमल वा फूल, पद्म काष्ठ, त्रायमाणा, श्वेत कमल का फूल, दूर्वा, मेहदी का पत्ता—समभाग, घृत से चतुर्थांश इन द्रव्यों के कल्क के साथ सिद्ध करे। यह घृत शक्कर तथा मधु के साथ प्रयोग करने पर भयकर रक्तपित्त, पित्त, कास, गुल्म, स्वरभेद, तथा हलीमक रोग का नाश करता है। पथ्यपूर्वक भोजन करने वाले इस घृत का पान कर, रक्तपित्त कफाश्रित अन्य जितने रोग हैं उन सभी रोगों का नाश करते हैं ॥ ४३–४६ ॥

हारीताद् गुल्मे दशाङ्गं घृतम्—

यावशूको वचा व्योपं विडङ्गं कटुरोहिणी ॥ ४७ ॥
सौवर्चलं हरीतक्यश्चित्रकश्चाक्षसमितैः।
एभिः पचेद् घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरजलाढकम् ॥ ४८ ॥
तत्पक्वं वातगुल्मघ्नं कृमिप्लीहज्वरापहम्।
कासहिक्कारुचीर्हन्ति दशाङ्गं नाम दीपनम् ॥ ४९ ॥

हारीत वर्णित गुल्म रोग में दशांग घृत—यवाखार, वच, सोंठ, पीपर, मरिच, विडंग, कुटकी, कण्टकारी, सौवर्चल नमक, हर्रे, चित्रक एक २ अक्ष, इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत तथा एक आढक दूध और पानी (आधा दूध आधा पानी) मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत, वातगुल्म, कृमि, प्लीहा वृद्धि, तथा ज्वर का नाश करने वाला है और कास, हिक्का तथा अरुचि को नष्ट करता है। यह दशांग नाम का घृत उदराग्नि को दीप्त करने वाला है ॥ ४७–४९ ॥

गुल्मे हारीताल्लशुनघृतम्—

लशुनाण्डस्य शुद्धस्य तुलार्धं निस्तुपस्य च।
तदर्धं पञ्चमूलस्य ह्याढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ५० ॥
पादशेषे घृतप्रस्थं लशुनस्य रसं तथा ॥
दाडिमाम्लसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्धकैः ॥ ५१ ॥
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योपदीप्यकैः।
यवानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्धकैः ॥ ५२ ॥
सिद्धमेतद्धविः कल्कैर्गुल्मार्शोजठरापहम्।
वध्मपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषज्वरापहम् ॥ ५३ ॥
वातश्लेष्मामयांश्चान्यान् घृतमेतद्व्यपोहति।

हारीत-वर्णित गुल्म रोग में लशुनाद्य घृत—छिलका निकाला हुआ लहसुन

का जवा एक तुला, पंचमूल (विल्व, गम्भारी, पाठा, अरलु, अरणी) आधा तुला एक द्रोण जल में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में घृत एक प्रस्थ, लहसुन का स्वरस एक प्रस्थ, अनार का रस, इमली का पानी, सुरा, मस्तु, काञ्जिकाम्ल आधा प्रस्थ, त्रिफला (आवला हर्रे, बहेड़ा) देवदारु, सेन्धा नमक, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), अजवायन, अजमोदा, चव्य, हिंगु, अम्लबेंत आधा आधा पल इन द्रव्यों के कल्क के साथ पकावे। सिद्ध होने पर यह घृत अर्श तथा उदर रोग का नाश करता है। वर्ध्म, पाण्डु रोग, प्लीहावृद्धि, योनिदोष तथा ज्वर को दूर करता है। यह घृत वात-कफ जन्य अन्य तथा रोगों को भी दूर करता है॥ ५०–५३ ॥

हारीताद् गुल्मे नाराचकं घृतम्—

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका ॥ ५४ ॥
स्नुहीक्षीर विडङ्गानि घृत दशममुच्यते।
एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ ५५ ॥
चतुर्गुणेन तोयेन सम्यगेतन्मिताग्निना।
तस्य काले पिबेन्मात्रां पलार्धसंमितां नरः ॥ ५६ ॥
उष्णोदकानुपानं स्यादल्पत्वादस्य सर्पिषः
विरिक्ते च यवागूः स्यात्सर्पिषा परिवर्जिता ॥ ५७ ॥
रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक्।
वातगुल्ममुदावर्तं प्लीहार्शोवर्ध्मकुण्डलम् ॥ ५८ ॥
ग्रहणी दीपयेन्मेहान् कुष्ठदोषांश्च नाशयेत्।
नाराचमिति विख्यात सर्पिर्नाराचसंज्ञितम् ॥ ५९ ॥
भैषज्यं सम्प्रयोक्तव्यं नाराचमिव शत्रवे।

हारीत-वर्णित गुल्म रोग से नाराच घृत—चित्रक, त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा), दन्तीमूल, निशोथ, कण्टकारी, सेहुंड का दूध, विडंग एक २ कर्ष इन द्रव्यों के कल्क के साथ दसवा द्रव्य घृत एक कुडव चौगुना (एक प्रस्थ) जल मिलाकर, मन्द आच से सिद्ध करे। मनुष्य इस घृत को आधा पल की मात्रा में नियमित समय पर पान करे। इस घृत की मात्रा अल्प होने के कारण उष्ण जल के साथ पान करना चाहिए। बुद्धिमान वैद्य दस्त आने पर घृतरहित यवागू का प्रयोग करे या जंगली मांसरस के साथ भोजन करावे। प्रसिद्ध नाराच नामक यह घृत वातगुल्म, उदावर्त, प्लीह, अर्श, वर्ध्म-कुण्डल, प्रमेह तथा कुष्ठ रोगों का नाश करता है और ग्रहणी दोष को दूर कर उदराग्नि को दीप्त करता है।

इस औषधि को वैसे प्रयोग करना चाहिए जैसे शत्रु के लिये नाराच (बाण) का प्रयोग किया जाता है ॥ ५४–५९ ॥

कुष्ठे नीलिनीघृतम्—

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां वचां कटुकरोहिणीम् ॥ ६० ॥
व्याघ्रीं पचेद्विडङ्गं च पलिकानि जलाढके ।
रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६१ ॥
दध्न. प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ।
ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् ॥ ६२ ॥
जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च दापयेद्रसभोजनम् ।
कुष्ठगुल्मोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ६३ ॥
श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हन्त्येतन्नीलिनीघृतम् ।

कुष्ठ रोग में नीलिनी घृत—कमलिनी, त्रिफला, रासन, वच, कुटकी, छोटी कटेरी, विडंग एक २ पल इन द्रव्यों के मोटे चूर्ण को एक आढक जल में क्वाथ करे, परिस्रावित अष्टमांश शेष क्वाथ मे घृत एक प्रस्थ, दही एक प्रस्थ, सेहुंड का दूध एक पल मिलाकर पकावे। इसके बाद इस सिद्ध घृत को एक पल की मात्रा में यवागू-मण्ड मिलाकर प्रयोग करे। परिपाक होने पर दस्त होने के बाद मांसरस के साथ भोजन दें। यह नीलिनी घृत कुष्ठ, गुल्म रोग, उदर रोग, व्यङ्ग, शोथ, पाण्डु रोग, ज्वर, श्वित्र (सफेद कोढ़), प्लीहा वृद्धि तथा उन्माद का नाश करता है ॥ ६१–६३ ॥

सिद्धसाराद् गुल्मे विश्वाद्यं घृतम्—

पलांशैर्विश्वचव्याग्निपिप्पलीक्षारसैन्धवैः ॥ ६४ ॥
क्वाथेन चिरबिल्वस्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
गुल्मोदावर्तपाण्डुत्वग्रहणीश्वासकासजित् ॥ ६५ ॥
[1]दुष्टज्वरप्रतिश्यायप्लीहार्शःशमनं परम् ।

सिद्धसार-वर्णित गुल्म रोग में विश्वाद्य घृत—सोंठ, चव्य, चित्रक, पीपर, यवक्षार, सेन्धा नमक एक २ पल इन द्रव्यों के कल्क के साथ चतुर्थांश शेष करंज के क्वाथ (चार प्रस्थ करंज एक द्रोण जल में पकावे, चार प्रस्थ शेष क्वाथ में) एक प्रस्थ घृत मिलाकर सिद्ध करे। यह घृत गुल्म, उदावर्त, पाण्डु, ग्रहणी दोष, श्वास तथा कास को जीत लेता है और दूषित ज्वर (या कुष्ठ-पाठान्तर) प्रतिश्याय, प्लीहा वृद्धि तथा अर्श को अच्छी तरह शान्त करता है ॥ ६४–६५ ॥

---

१. कुष्ठज्वर०' इति पा० ।

अग्निवेशाद् गुल्मे षट्पलं घृतम्—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ ६६ ॥
पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
क्षीरप्रस्थेन संयुक्तं हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ॥ ६७ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ।

अग्निवेश-वर्णित गुल्म रोग में षट्पल घृत—पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, यवाखार एक २ पल इन द्रव्यों के कल्क के साथ दूध एक प्रस्थ (पानी तीन प्रस्थ) मिलाकर घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। यह घृत, श्लैष्मिक गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास तथा ज्वर का नाश करता है ॥६६–६७॥

हारीताद् गुल्मे महाषट्पलं घृतम्—

सैन्धवं हपुषा पञ्चकोलं सौवर्चलं विडम् ॥ ६८ ॥
अजमोदा यवक्षारो हिङ्गु जीरकमौद्भिदम् ।
कृष्णाजरणपूतीकं कल्कीकृत्य पलार्धतः ॥ ६९ ॥
शृङ्गवेररसं चुक्रं घृतप्रस्थं समीकृतम् ।
विपक्वं पाण्डुरोगघ्नं क्षयपीनसनाशनम्
कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरगुल्मप्रमेहकम् ॥ ७० ॥
वातरोगं तथा शोफं दौर्बल्यं वह्निसंक्षयम् ।
महाषट्पलमातङ्कान् भिनत्त्यशनिवद् गिरिम् ॥ ७१ ॥

हारीत-वर्णित, गुल्मरोग में महाषट्पल घृत—सेन्धा नमक, हाऊवेर, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), सौवर्चल नमक, विड नमक, अजमोदा, यवाखार, हिंगु, जीरा, औद्भिद (पांसु नमक), कृष्णा (मरिच), जरण (काला जीरा, मॅगरैल), पूतिकरंज का बीज, आधा २ पल इन द्रव्यों का कल्क बनाकर, अदरक का स्वरस एक प्रस्थ, चुक्र एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ मिला कर पकावे। यह सिद्ध घृत, पाण्डुरोग, क्षय तथा पीनस का नाश करता है। यह महाषट्पल घृत कृमि, प्लीहोदर, अजीर्ण, ज्वर, गुल्म, प्रमेह, वात रोग, शोथ, दौर्बल्य, अग्निक्षय (मन्दाग्नि) तथा तत्सम्बन्धी उपद्रवों को नष्ट कर देता है। जैसे वज्र पहाड़ को गिरा देता है ॥ ६८–७१ ॥

कुष्ठे भेडान्नीलं घृतम्—

द्वौ प्रस्थौ लोहचूर्णस्य त्रिफलाढ्याढकं तथा ।
वायसीकाकमाचीभ्यां द्वे पले शङ्खिनीतुला ॥ ७२ ॥
त्रिद्रोणेऽपां विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन [1]गर्भं चैषां समावपेत् ॥ ७३ ॥

---

[1]. गर्भमिति कल्कमित्यर्थः ।

वरुणश्च कलिङ्गश्च त्र्यूषणं देवदारु च ।
अवल्गुजफलं दन्तीफलान्यारग्वधस्य च ॥ ७४ ॥
मार्कवः कण्टकारी च पारावतपदी तथा ।
नीलकं नाम विख्यातमित्येतत्कुष्ठनुद् घृतम् ॥ ७५ ॥
श्वित्राणि रञ्जयेच्चैव पानाभ्यङ्गे प्रयोजितम् ।
पामाविचर्चिकासिध्मकिटिभानि च नाशयेत् ॥ ७६ ॥

कुष्ठ रोग में भेड-वर्णित नील घृत—लौह भस्म दो प्रस्थ, त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा) तीन प्रस्थ, वायसी (काकजङ्घा), काकमाची (मकोय) दो २ पल, शंखिनी (यवतिक्ता) एक तुला, तीन द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में घृत एक प्रस्थ, वरुण, इन्द्रजव, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), देवदारु, अवल्गुज फल (वाकुची), दन्तीफल, अमलतास, मार्कव (भृंगराज), कण्टकारी, पारावतपदी (मालकांगनी) इन द्रव्यों का घृत के चतुर्थांश कल्क मिलाकर पकावे। यह प्रसिद्ध नीलक नामक घृत कुष्ठ को दूर करता है, पान तथा अभ्यङ्गार्थ प्रयोग करने पर श्वित्र को दूर कर रञ्जित कर देता है और पामा, विचर्चिका (एक प्रकार का कुष्ठ जिसमें हाथ-पैर में खुजली तथा पीडा युक्त रूखी रेखायें उत्पन्न हो जाती हैं), सिध्म (सिहुला) तथा किटिभ (चन्द्र कुष्ठ का एक भेद जो स्रावयुक्त गोल ठोस, अत्यन्त कण्डु युक्त चिकना काला हो) का नाश करता है ॥ ७२–७६ ॥

भेडात्कुष्ठे महानीलं घृतम्—

शम्पाकः काकमाची च बीजको मदयन्तिका ।
एकैकस्य तुला देया प्रत्येकं त्रिफलाढकम् ॥ ७७ ॥
दन्ती दार्वी हरिद्रा च वरुणः कुटजत्वचा ।
चित्रकश्चार्कमूलं च काकमाची निदग्धिका ॥ ७८ ॥
एषां दशपलान् भागान् त्रिद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं तु पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ७९ ॥
वासारसस्तथा धात्र्या जातीस्वरस एव च ।
दधि सर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं गोशकृद्रसः ॥ ८० ॥
आढकाढकमेतेषां गर्भे चेमं समावपेत् ।
अवल्गुजा तथा व्योष नक्तमालफलानि च ॥ ८१ ॥
पिचुमर्दश्च जाती च पीलुतिल्वकपल्लवाः ।
किराततिक्तकः श्यामा नीलिकानीलपल्लवाः ॥ ८२ ॥
एतैः सिद्धं परिस्राव्य पाययेत्कुष्ठरोगिणम् ।
महानीलमिति प्रोक्तमेतत्कुष्ठापहं घृतम् ॥ ८३ ॥

भगन्दरमथार्शांसि कृमींश्चापि विनाशयेत् ।
अष्टादशैव कुष्ठानि सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ८४ ॥
अथर्वप्रहितो दीप्तो ब्राह्मो दण्ड इवासुरान् ।
श्वित्राणि तु विशेषेण रञ्जयेच्च भिनत्ति च ॥ ८५ ॥
सेव्यमानं प्रसङ्गेन पानेनाभ्यञ्जनेन च ।

भेड-वर्णित कुष्ट रोग में महानील घृत—शम्पाक (अमलतास), मकोय, विजयसार, मेहदी, एक २ तुला, त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा) तीन आढ़क, दन्तीमूल, दारुहल्दी, वरुण, कुटज की छाल, चित्रकमूल, मदार की जड़, मकोय, कण्टकारी दश २ पल—इन द्रव्यों को यवकुट कर तीन द्रोण जल में पकावे। अष्टमांश शेष क्वाथ को आग पर चढ़ाये और उसमें अडूसा का रस, आंवला का रस, चमेली के पत्ते का रस, दही, घृत, दूध, (दही, घृत, तथा दूध गाय का लेना चाहिए), गोमूत्र, गोबर का रस एक २ आढक, और बाकुची, सोंठ, पीपर, मरिच, नक्तमालफल (करंजफल), पिचुमर्द (नीम), चमेली, पीलु वृक्ष तथा पठानी लोध का पल्लव, किराततिक्त (चिरायता), श्यामा (काला निशोथ), नीलिका (नील), नीलपल्लव (रंग पत्ती) इन द्रव्यों का (एक प्रस्थ) कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे तथा छान कर कुष्ठ के रोगियों को पिलाये। यह महानील घृत, कुष्ठ रोग का नाश करने वाला कहा गया है। भगन्दर, कृमि तथा अर्श रोग का नाश करता है। यह घृत अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग को दूर करता है। पान, अभ्यञ्जन, लेपन आदि के लिये सेवन करने पर यह घृत विशेष कर श्वित्र को रञ्जित करता है तथा भेदन कर देता है। जैसे अथर्व-प्रयुक्त ब्रह्मा का दीप्त दण्ड असुरों का भेदन करता है ॥७७–८५॥

कुष्ठे त्रिफलाद्यं घृतम्—

त्रिफला मदनं कुष्ठं शार्ङ्गेष्टा रजनीद्वयम् ॥ ८६ ॥
हपुषा काकमाची च शुकनासा विषा वचा ।
पाठा कोशातकी मूर्वा तिक्ता काकादनी तथा ॥ ८७ ॥
एषां कषायकल्काभ्यां सिद्धं पीतं घृतोत्तमम् ।
विशीर्यमाणविध्वस्तस्नायुकेशनखं नरम् ।
कुष्ठातुरं सदा कुर्यान्मुमूर्षुमपि निर्गदम् ॥ ८८ ॥

कुष्ठ रोग में त्रिफलाद्य घृत—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आवला), मदनफल, कूठ, शार्ङ्गेष्टा (भांगरा), हल्दी, आसा हल्दी, हाऊवेर, मकोय, शुकनासा (अरलु), अतीस, वच, पाठा, कोशातकी (नेनुआ), मूर्वा, कुटकी, काकादनी (गुञ्जा) इन द्रव्यों के क्वाथ तथा कल्क (घृत चौगुना क्वाथ्य द्रव्य तथा चतुर्थांश कल्क द्रव्य) के साथ घृत को पकाये। यह उत्तम घृत पान करने से सड़े-

गले, नष्ट, स्नायु, केश, नख वाले, हमेशा व्याकुल, मरने वाले कुष्ठ रोगी को भी रोग रहित कर देता है ॥ ८६–८८ ॥

हारीतात्कुष्ठे आवर्तकीघृतम्—

आवर्तकीमूलशतं सुशुद्धं क्वाथीकृतं कल्कपलाष्टयुक्तम् ।
प्रस्थं पुराणाद्धविषः सुगव्यात् पक्वं शनैः साधु ततोऽवतार्य ॥ ८९ ॥
मात्रां पिबेद् व्याधिबलानुरूपां भुञ्जीत चान्नं सह काञ्जिकेन ।
द्रवोत्तरं कोद्रवजं सुजीर्णे कामं पुरस्तादपरेऽह्नि शुद्धः ॥ ९० ॥
त्रिसप्तरात्रं विधिनैवमाशु पीत निहन्यादचिरेण कुष्ठम् ।
स्रवद्व्रणं भग्ननखाङ्गदेहं मण्डानुपूर्व्या विधिनाऽथ चैतत् ॥ ९१ ॥

हारीतवर्णित कुष्ठ रोग मे आवर्तकी घृत—शु. आवर्तकी (विषाणिका)= आहुल (लता विशेष) का मूल सौ पल (चौगुने जल में) क्वाथ कर, तथा आठ पल का कल्क बनाकर पुराना गाय का घृत एक प्रस्थ धीरे २ मन्द आंच से पकाये। सिद्ध होने पर उतार कर रख ले। इस घृत को रोग तथा बल के अनुसार मात्रापूर्वक पान करे और कांजी के साथ कोदो का भात खाय और बाद में जल पीवे अच्छी तरह परिपाक हो जाने पर दूसरे दिन शुद्ध हो जाता है। एक्कीस दिन तक इस प्रकार पान करने से अतिशीघ्र कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। यह घृत विधिपूर्वक मण्ड के साथ सेवन करने से स्रावयुक्त व्रण तथा भग्न नख, अङ्ग देह वाला कुष्ठ भी नष्ट हो जाता है ॥ ८९–९१ ॥

अग्निवेशाद् गुदभ्रंशे चव्याद्यं घृतम्—

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि ।
यवानीं पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ ९२ ॥
अभयां चित्रकं बिल्वं पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जले दध्नश्चतुर्गुणे ॥ ९३ ॥
प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।
गुदवंक्षणशूलं च घृतमेतद् व्यपोहति ॥ ९४ ॥

अग्निवेश-वर्णित गुदभ्रंश में चव्याद्य घृत—चव्य, त्रिकटु (सोंठ-पीपर-मरिच), पाठा, यवाखार, कुस्तुम्बुरु (धनिया भेद), अजवायन, पीपरामूल, सेन्धा नमक, विड नमक, हर्रे, चित्रक, बेल, इन द्रव्यों को पीस कल्क बनाकर, (चौगुना जल मिलाकर) घृत को सिद्ध करे। मल तथा वायु को अनुलोमन करने के लिये चौगुने दही के जल में सिद्ध करे। यह घृत प्रवाहिका,

गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परिस्रव (रक्तोस्रवण अर्श) गुदशूल तथा वङ्क्षणशूल को दूर करता है ॥ ९२–९४ ॥

भेडात्प्रमेहे धान्वन्तरं घृतम्—

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।
वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकः सपुनर्नवः ॥ ९५ ॥
कपित्थोऽर्कसुधाक्षीरं बिल्वं भल्लातकानि च ।
शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९६ ॥
पृथग्दशपलान्येषां दत्त्वा तोयार्मणे पचेत् ।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥
तेन पादावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
निचुलं त्रिफला भार्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९८ ॥
शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकस्तथा ।
पिप्पली चविका चैव कुष्ठं च समभागतः ।
गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेद्धि यथाबलम् ॥ ९९ ॥
एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ।
कुष्ठं प्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ १०० ॥
प्लीहानमुदरार्शांसि विद्रधिं पिडकास्तथा ।
अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ १०१ ॥

भेड महर्षि वर्णित धान्वन्तर घृत—दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाढल, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी व छोटी कटेरी, गोखरु), करंज, पूतिकरंज, देवदारु, हर्रे, वर्षाभू (श्वेत पुनर्नवा), वरुण, दन्तीमूल, चित्रक, रक्तपुनर्नवा, कैथ, मदार तथा सेहुड का दूध, बेल, शु० भल्लातक, शटी (कपूरकचरी), पुष्करमूल, पिपरामूल—अलग २ दश २ पल—एक द्रोण जल मे पकावे, और इसमें यव, बेर तथा कुलथी एक २ प्रस्थ मिला दे। इन द्रव्यों के चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ में निचुल (हिज्जल) या (समुद्रफेन), त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा), भांगरा, रोहिष (सुगन्ध-भूतृण), गजपीपर, सोंठ, विडंग, वच, कम्पिल्लक (कबीला), पीपर, चव्य, कूट, समभाग (चार पल)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे और बल के अनुसार, मात्रापूर्वक पान कराये। यह धान्वन्तर नामक प्रसिद्ध उत्तम घृत—कुष्ठरोग, प्रमेह, गुल्म, शोथ, वातरक्त, प्लीहा, उदर रोग, अर्श, विद्रधि, पिढका, अपस्मार तथा उन्माद को दूर करता है ॥ ९५–१०१ ॥

खरनादात्कुमारकल्याणकं घृतम्—

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह ।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीवको बला ॥ १०२ ॥
शटी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसा स्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला पिप्पली जलम् ॥ १०३ ॥
श्वदंष्ट्राऽतिविषा पाठा विडङ्गं दारु मालती ।
मधूकपुष्पखर्जूरं बदरं वंशरोचना ॥ १०४ ॥
कल्कैरेषां समांशानां घृतं क्षीरचतुर्गुणम् ।
कषाये कण्टकार्याश्च साधयेत्सौम्यदैवते ॥ १०५ ॥
एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निरुचिकारकम् ॥ १०६ ॥
योऽयं सर्वग्रहालक्ष्मीदन्तकर्णगदापहम् ।
सर्वबालामयघ्नं च मेध्यमायुष्यमुत्तमम् ॥ १०७ ॥
रसायनमिदं सेव्यं विशेषाद्दन्तजन्मनि ।

खरनाद वर्णित कुमारकल्याणक घृत—शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मुनक्का, शर्करा, सोंठ, जीवन्ती, जीवक, वरियार, शटी (कपूरकचरी), यवासा, बेल, अनार, तुलसी, स्थिरा (शालपर्णी), मोथा, पुष्करमूल, छोटी इलायची, पीपर, सुगन्धवाला, गोखरू, अतीस, पाठा, विडंग, देवदारु, मालती, महुआ का फूल, खजूर, बैर, वंशलोचन,—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ चौगुना दूध तथा कण्टकारी के सौम्यदैवत (शीत जल निर्मित) कषाय मे घृत सिद्ध करे। यह घृतों में उत्तम—आरोग्य देनेवाला, कुमारकल्याणक घृत बल बढ़ाने वाला, वर्ण (शोभा) बढ़ाने वाला, धन देने वाला, पुष्टि तथा अग्नि बढ़ाने वाला है। सभी ग्रहदोष, अलक्ष्मी (दारिद्र्य) तथा दन्त-कर्ण रोगों को दूर करने वाला है। सभी बालरोगों को नाश करता है तथा उत्तम मेधा (धारणा शक्ति) और आयु को बढ़ानेवाला है। इस रसायन को विशेष कर दांत जमने के समय सेवन करना चाहिए। (इस योग में परिमाण नहीं दिया है अतः स्नेहपाकविधि के अनुसार घृत से चौगुना कषाय तथा चतुर्थांश कल्क द्रव्य लेना चाहिए) ॥१०२–१०७½ ॥

वाग्भटाद् ब्राह्मीघृतम्—

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद् ब्राह्मया घृतप्रस्थं च साधयेत् ॥ १०८ ॥
व्योषश्यामात्रिवृद्ब्राह्मीशङ्खपुष्पीनृपद्रुमैः ।
ससप्तलाविडङ्गाद्यैः कल्कितैरक्षसंमितैः ॥ १०९ ॥

पलवृद्ध्या प्रयुञ्जीत यावन्मात्रा चतुष्पलम् ।
हरेत्कुष्ठमपस्मारमुन्माद च सुतप्रदम् ॥ ११० ॥
वाक्स्मृतिस्वरमेधाकृद्धन्य ब्राह्मीघृतं शुभम् ।

वाग्भट वर्णित ब्राह्मी घृत—ब्राह्मी का स्वरस दो प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ, सोंठ, पीपर, मरिच, काला निशोथ, श्वेत निशोथ, भार्ङ्गी, शंखपुष्पी, नृप द्रुम, (अमलतास), सातला, विडंग, एक २ अक्ष इन द्रव्यों के कल्क के साथ मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस घृत का प्रयोग एक २ पल बढ़ाते हुए चार पल की मात्रा तक सेवन करे, यह उत्तम ब्राह्मी घृत—कुष्ठरोग, अपस्मार, तथा उन्माद को नाश करता है, पुत्र को देनेवाला है, बोलने की शक्ति, स्मृति (स्मरण शक्ति), स्वर, मेधा (धारणा शक्ति) तथा धन को देनेवाला है ॥ १०८–११०½ ॥

शूले बीजपूरकाद्यं घृतम्—

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो दधि ॥ १११ ॥
शुष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाद्रसः ।
विडङ्गलवणक्षारयवानीपञ्चकोलकैः ॥ ११२ ॥
पाठामूलककल्कैश्च सिद्धं पूरकसंज्ञितम् ।
हृत्पार्श्वशूलवैस्वर्यहिध्माश्वासभगन्दरान् ॥ ११३ ॥
वर्ध्मगुल्मप्रमेहार्शोवातव्याधीन् विनाशयेत् ।

शूलरोग में बीजपूरकाद्य घृत—घृत से चौगुना बिजौरा निम्बू का रस, दही, सूखी मूली तथा बेर का अम्ल कषाय और दाडिम अनार का रस (सम भाग) इन द्रवों में घृत तथा विडंग, सेन्धा नमक, यवाखार, अजवायन, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), पाठा, मूली—समभाग इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह बीजपूरक नामक घृत—हृदय का शूल, पार्श्वशूल, स्वरविकृति, हिध्मा, श्वास, भगन्दर, वर्ध्म, गुल्म रोग, प्रमेह, अर्श तथा वात रोगों का नाश करता है। (परिमाण का निर्णय स्नेहपाक विधि से कर लेना चाहिए) ॥ १११–११३½ ॥

कृष्णात्रेयाद् व्रणे महागौर्याद्य घृतम्—

गौरी निशा च मञ्जिष्ठा मांसी कटुकरोहिणी ॥ ११४ ॥
प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्व भद्रमुस्त सचन्दनम् ।
जातीनिम्बपटोलं च कारञ्जं बीजमेव च ॥ ११५ ॥
कट्फलं ससधूच्छिष्टं समभागानि कारयेत् ।
पञ्चवल्ककषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११६ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।

एतद् गौरं महावीर्यं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ११७ ॥
आगन्तुसहजाश्चैव शिरःश्लिष्टाश्च[1] ये व्रणाः ।
विषमामपि नाडीं च रोपयेच्छीघ्रमेव च ॥ ११८ ॥

कृष्णात्रेय वर्णित व्रण में महागौर्याद्य घृत—गौरी (दारुहल्दी), आमा हल्दी, मंजीठ, जटामांसी, कुटकी, प्रपौण्डरीक, जेठी मधु, भद्रमुस्ता (नागरमोथा), रक्तचन्दन, चमेली, नीम, परोर का पत्ता, करंज बीज, कायफर, मधूच्छिष्ट (मोम) सम भाग इन द्रव्यों के कल्क तथा पञ्चवल्कल (वट, उदुम्बर, पीपर, पाकड़, जामुन) के चतुर्थांशावशिष्ट कषाय के साथ एक प्रस्थ घृत, दो प्रस्थ दूध मिलाकर, धीरे २ मन्द आंच से पकाये । यह सिद्ध गौर नामक महान् बलवाला घृत—सभी प्रकार के व्रण को शोधन करता है । आगन्तुक, स्वाभाविक तथा शिर में जो व्रण है और विषम नाडी व्रण (नासूर) को भी शीघ्र ही रोपण (पूर्ण) कर देता है ॥ ११४–११८ ॥

रक्तपित्ते दूर्वाद्यं घृतम्—

दूर्वा चोत्पलकिञ्जल्कं माञ्जिष्ठा चैलवालुकम् ।
श्वेतदूर्वा तथोशीरं मुस्ता चन्दनपद्मकम् ॥ ११९ ॥
द्राक्षा मधूकयष्ट्याह्वं काश्मरी सितचन्दनम् ।
पिष्टैस्तैः कार्षिकैर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ १२० ॥
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं पृथग्दद्याच्चतुर्गुणम् ।
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ॥ १२१ ॥
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ।
चक्षुर्गते च रक्ते वै पूरयेत्तेन चक्षुषी ॥ १२२ ॥
मेढ्पायुगते चापि बस्तिकर्म प्रयोजयेत् ।
प्रवृत्ते रोमकूपेभ्यस्त्वभ्यङ्गे योजयेद् घृतम् ॥ १२३ ॥

रक्तपित्त में दूर्वाद्य घृत—दूर्वा, नीलकमल का पराग, मंजीठ, एलवालु, श्वेतदूर्वा, खस, मोथा, रक्तचन्दन, पद्मकाठ, मुनक्का, महुआ का फूल, जेठीमधु, गम्भारी, सफेद चन्दन—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, घृत एक प्रस्थ, चौगुने चावल का पानी (तण्डुलोदक = चौगुने जल में एक घंटा भिंगोकर छाना हुआ जल) तथा बकरी का दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृत को रक्त के वमन होने पर पान, नासिका से रक्त आने पर नावन, कानों से रक्त आने पर कर्णपूरण (कान मे घृत भर देना) तथा नेत्र से रक्त आने पर

1. 'शिरोत्थिताश्च' इति पा० ।

आँखों से भर दे। मूत्रेन्द्रिय तथा गुदा से रक्त आने पर इस घृत को वस्ति-कर्म में प्रयोग करना चाहिए—तथा प्रत्येक रोमकूप (बाल की जड़) से रक्त निकलने पर अभ्यंग में प्रयोग करे ॥ ११९–१२३ ॥

वैदेहान्नेत्ररोगे महात्रैफलं घृतम्—

त्रिफलाया रसप्रस्थ प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
पीडयित्वा वृषं बालं रसप्रस्थ च दापयेत् ॥ १२४ ॥
अजाक्षीरस्य च प्रस्थ, प्रस्थ तैः सर्पिषः पचेत् ।
त्रिफला चन्दनं द्राक्षा पिप्पली मधुकं बला ॥ १२५ ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीमेदामरिचसैन्धवम् ।
शर्करा पुण्डरीकं च हरिद्रोत्पलनागरम् ॥ १२६ ॥
कल्कैः सिद्धं भिषग्दद्यान्नेत्ररोगविनाशनम् ।
काचं च नीलिकां शुक्र वर्त्मरोगांश्च नाशयेत् ॥ १२७ ॥
नक्तान्ध्य नकुलान्ध्य च कण्डुं पिल्लमथापि च ।
अजकां तिमिरांश्चैव नेत्रस्रावांश्च दारुणान् ॥ १२८ ॥
त्रिफलासर्पिरेतद्धि पाननावनतर्पणैः ।
विदेहराजनिर्दिष्टं दृष्टिनैर्मल्यकारकम् ॥ १२९ ॥

वैदेह वर्णित नेत्र रोग में, महात्रैफल घृत—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) का रस एक प्रस्थ, भृंगराज (भंगरइया) का रस एक प्रस्थ, अड़ूसा के नवीन पत्तों को मसल कर निकाला हुआ रस एक प्रस्थ, बकरी का दूध एक प्रस्थ—इन सब द्रव्यों के साथ एक प्रस्थ घृत, त्रिफला, चन्दन, मुनक्का, पीपर, मुलेठी, बरियार, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, मरिच, सेन्धा नमक, शर्करा, कमल का फूल, हरिद्रा, नील कमल का फूल, सोंठ (चार पल)—इन द्रव्यों के कल्क को मिलाकर घृत सिद्ध करे। इस सिद्ध घृत को नेत्र रोग के नाश करने के लिये प्रयोग करे। यह घृत काच (रागयुक्त तिमिर), नीलिका (नेत्रगत नील वर्ण का धब्बा), शुक्र (फूली) तथा वर्त्म (पलक का रोग) रोग को नाश करता है। रतौंधी, नकुलान्ध्य (दृष्टिगत, दिन में अनेक वर्ण दर्शन दोष), कण्डू, पिल्ल, (अपरिक्लिन्न वर्त्म), अजका (नेत्र के कृष्णभाग पर बकरी के मेंगनी के समान उभरा हुआ भाग), तिमिर तथा भयंकर नेत्रस्राव को भी नाश करता है। यह महात्रैफल घृत, विदेहराज का बताया हुआ पान, नावन तथा तर्पण से दृष्टि को निर्मल करता है ॥१२४–१२९॥

वातव्याधौ शतावरीघृतम्—

शतावरीमूलतुलां द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
अष्टभागावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३० ॥

जीवनीयानि सर्वाणि रास्ना गोक्षुरकस्तथा ।
शतपुष्पा वचा कुष्ठं सरलश्च पुनर्नवा ॥ १३१ ॥
चन्दनं तगरं मांसी पद्मकं रक्तचन्दनम् ।
सुरसा नागरं कृष्णा बिडं मुस्ता तथोत्पलम् ॥ १३२ ॥
एषामक्षसमैर्भागैः क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
बृंहणं वातपित्तघ्नं क्षतशोषज्वरापहम् ॥ १३३ ॥
पीठसर्पिप्रपङ्गुनामर्दितेऽपि च शस्यते ।
पुंस्त्वोपघातिनां नृणां वन्ध्यानां चैव योजितम् ॥ १३४ ॥
बलवर्णकरं ह्येतदलक्ष्मीघ्नं प्रजाकरम् ।
इदं शतावरीसर्पिरश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १३५ ॥

वात व्याधि में शतावरीघृत—शतावरी का मूल एक तुला लेकर दो द्रोण जल में पकावे। अष्टमांश शेष क्वाथ में घृत एक प्रस्थ सभी जीवनीय गण की औषधि (ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुलेठी, जीवन्ती, मुद्गपर्णी, माषपर्णी), रासन, गोखरू, सौंफ, वच, कूठ, शाल, गदहपूरना, श्वेत चन्दन, तगर, जटामांसी, पद्मकाठ, रक्त चन्दन, तुलसी, सोंठ, पीपर, विडनमक, मोथा, नीलकमल का फूल—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ चौगुना (चार प्रस्थ) दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत बृंहण, वात-पितनाशक, क्षत, सूखारोग तथा ज्वरनाशक है। पीठ सर्पि, तथा प्रपङ्गु के अर्दित (एक भाग का टेढ़ा होना) रोग में प्रशस्त (लाभप्रद) है। नपुंसक पुरुष तथा वांझ स्त्रियों के लिये प्रयोग करने पर बल तथा वर्ण को देता है, दरिद्रता का नाश करता है तथा सन्तानोत्पादक है। इस शतावरी घृत को अश्विनीकुमारों ने कहा है ॥ १३०–१३५ ॥

शङ्खपुष्प्याद्यं घृतम्—

(शङ्खाब्राह्मीगुडूच्युग्राशतावर्यर्कवल्लिकाः ।
मलपूं ब्रह्मसोमां च कल्कीकृत्य घृतं पचेत् ॥ १ ॥
दुग्धं चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।
मेधाकरं तथाऽऽयुष्यमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ २ ॥)

शंखपुष्प्याद्य घृत—(शंखपुष्पी, ब्राह्मी, गुडूची, वच, शतावरी, अर्कवल्ली (सूर्यवल्ली), मलपू (काष्ठोदुम्बर), ब्रह्मसोमा (सोमलता), सम भाग इन द्रव्यों के कल्क के साथ दूध चौगुना मिलाकर घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। अश्विनीकुमार का कहा हुआ यह घृत वात-कफ को नाशकर, मेधा (धारणा शक्ति) वर्द्धक तथा आयु बढ़ाने वाला है ॥ १–२ ॥

सारस्वतं घृतम्—

ब्राह्मीं समूलपत्रां तु सम्यक् प्रक्षाल्य वारिणा ।
उलूखलेन संक्षुद्य रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ १३६ ॥
चतुर्गुणे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थ विपाचयेत् ।
औषधानि च पेष्याणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥
हरिद्रा मालती चैव त्रिफला च हरीतकी ।
एतेषां पालिका भागाः शेषाणां कार्षिकाः स्मृताः ॥ १३८ ॥
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वृषः ।
एतानि तु समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ १३९ ॥
ततः पक्कं तु विज्ञाय क्षिप्र तदवतारयेत् ।
तस्य प्राशनमात्रेण बधिरत्वं प्रणश्यति ॥ १४० ॥
सप्तरात्रोपयोगेन भवेत्कविरसंशयम् ।
घृत सारस्वतं नाम सरस्वत्या विनिर्मितम् ॥ १४१ ॥

सारस्वत घृत—ब्राह्मी के मूल तथा पत्ते को जल से अच्छी तरह धोकर ओखरी में अच्छी तरह कूट, वस्त्र से छान कर, स्वरस चौगुना (चार प्रस्थ) लेकर, एक प्रस्थ घृत, हल्दी, मालती, त्रिफला (आंवला-हर्रे-बहेडा), हर्रे एक २ पल, पीपर, विडंग, सेन्धानसक, शर्करा, अडूसा—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क को मिलाकर धीरे २ मन्द आँच से पकावे । अच्छी तरह पक जाने पर उतार कर रख ले । इसके खाने मात्र से बाधिर्य रोग (कान से न सुनाई देना) नष्ट हो जाता है । सात रात्रि तक सेवन करने से निस्सन्देह कवि हो जाता है । इस सारस्वत नामक घृत को सरस्वती ने बनाया है ॥१३६–१४१॥

सन्तानार्थं फलघृतम्—

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा ।
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गु तिक्तकरोहिणी ॥ १४२ ॥
काकोली क्षीरकाकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ।
जीवकर्षभकौ मेदे रेणुका बृहतीद्वयम् ॥ १४३ ॥
उत्पलं चन्दनं द्राक्षा पद्मकं देवदारु च ।
एषामक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४४ ॥
चतुर्गुणेन तोयेन विपचेन्मृदुनाऽग्निना ।
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ १४५ ॥
पुत्रं जनयते वीरं मेधाढ्यं पुष्करेक्षणम् ।
वन्ध्या च लभते गर्भं श्यामा शीघ्रं प्रसूयते ॥ १४६ ॥
या चैव स्थितगर्भा स्यान्मृतापत्या तु या भवेत् ।

अल्पायुर्जननी चैव या च सूत्वा पुनः स्थिता ॥ १४७ ॥
एतदेव कुमाराणां सर्वाङ्गग्रहमोक्षणम् ।
धन्य यशस्यमायुष्यं कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥ १४८ ॥
ये च कल्याणके प्रोक्तास्ते चापीह गुणाः स्मृताः ।
एतत्फलघृतं नाम ह्यश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १४९ ॥

संतान के लिये फल घृत—मंजीठ, मुलेठी, कूठ, त्रिफला (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), शकर, वच, अजमोदा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, हिंगु, कुटकी, काकोली, क्षीरकाकोली, असगन्ध का मूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सम्भालू का बीज, छोटी कटेरी, वनभंटा, नीलकमल का फूल, रक्त चन्दन, मुनक्का, पद्मकाठ, देवदारु—समभाग एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क से साथ चौगुने (चार प्रस्थ) जल में एक प्रस्थ घृत मन्द आंच से पकावे। इस घृत को पान कर मनुष्य स्त्री के साथ प्रसंग करने मे वृष (साँढ) के समान शक्ति प्राप्त करता है। तथा बलवान्, मेधावी, पुष्करेक्षण (सर्वतोन्मुखी दृष्टि वाला), पुत्र को उत्पन्न करता है। बांझ स्त्री गर्भ को प्राप्त करती है और गर्भवती शीघ्र ही (कष्ट के विना ही) प्रसव करती है। जो स्त्री स्थितगर्भा (गर्भ धारण शक्ति-हीन), मृत संतान पैदा करनेवाली, कम आयु की सन्तान पैदा करनेवाली तथा एक बार प्रसव के बाद पुनः गर्भ न धारण करने वाली है वह भी (दीर्घ-जीवी) संतान को उत्पन्न करती है।

यही घृत सुकुमारों के सर्वाङ्ग ग्रह को मोक्ष करनेवाला, धन, यश, आयु, कान्ति, सुन्दरता तथा पुष्टि को देने वाला है। जो गुण कल्याणक घृत मे कहे गये हैं वे सभी गुण इस घृत में हैं। इस फल घृत को अश्विनीकुमारों ने बताया है ॥ १४२–१४९ ॥

अग्निवेशात्क्षतक्षीणे श्वदंष्ट्राद्यं घृतम्—

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम् ।
पृश्निपर्णी स्थिरा दर्भमूलं च जीवकर्षभौ ॥ १५० ॥
पालिकान् साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
कल्कैर्जीवकजीवन्तीस्वगुप्तामेदकर्षभात् ॥ १५१ ॥
शतावर्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसात् ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्द्रवशूलनुत् ॥ १५२ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदः ॥ १५३ ॥

अग्निवेश वर्णित क्षतक्षीण में श्वदंष्ट्राद्य घृत—श्वदंष्ट्रा (गोखरु), खस, मंजीठ, वला, गम्भारी, तृण (भूतृण), पिठवन, शालपर्णी, कुशा की जड़,

जीवक, ऋषभक—एक पल—इन द्रव्यों के कषाय, तथा चौगुने दूध में जीवक, जीवन्ती, केवाछ का वीज, मेदा, ऋषभक, शतावरी, ऋद्धि, मुनक्का, शर्करा, श्रावणी (मुण्डी), कमलतन्तु—सम भाग (चार पल)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। यह घृत वात-पित्तजन्य, हृदय शूल को दूर करता है। मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, कास, सूखा रोग तथा क्षय रोग को नाश करता है। और धनुष, स्त्रीप्रसंग, मद्य, बोझ तथा मार्ग चलने से थके हुए व्यक्तियों का वल तथा मांस वढ़ाता है ॥१५०-१५३॥

कामलायां हारीताद् द्राक्षाद्यं घृतम्—

पिष्ट्वा गोस्तनिकायास्तु पलान्यष्टौ समावपेत् ।
पुराणसर्पिषः प्रस्थं पक्वं क्षीरे चतुर्गुणे ।
कामलापाण्डुरोगार्शोज्वरकासार्तिनाशनम् ॥ १५४ ॥

कामला रोग में हारीत वर्णित द्राक्षाद्य घृत—चौगुने दूध में द्राक्षा आठ पल का कल्क बना कर एक प्रस्थ पुराना घृत सिद्ध करे। यह घृत कामला पाण्डुरोग, अर्श, ज्वर तथा कासरोग को नाश करता है ॥ १५४ ॥

वाग्भटात्कुष्ठे महावज्रकं घृतम्—

वासामृतानिम्बपटोलतिक्ताव्याघ्रीकरञ्जोदककल्कसिद्धम् ।
सर्पिर्विसर्पज्वरकामलार्तिकुष्ठापहं वज्रकमामनन्ति ॥ १५५ ॥

वाग्भट कथित कुष्ठ रोग मे वज्रक घृत—अडूसा, गुडूची, नीम, पटोल-पत्र, कुटकी, (व्याघ्री) भटकटैया, करंज—इन द्रव्यों के क्वाथ तथा कल्क से सिद्ध किया हुआ महावज्रक नामक घृत, विसर्प, ज्वर, कामला रोग तथा कुष्ठ रोग को नाश करता है। (इस योग में परिमाण नहीं वताया है अतः एक प्रस्थ घृत, चार प्रस्थ क्वाथ्य द्रव्य का चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ, तथा चार पल कल्क द्रव्य लेना चाहिए) ॥ १५५ ॥

वाग्भटात्कुष्ठे महावज्रकं घृतम्—

त्रिफलात्रिकटुद्विकण्टकारीकटुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।
सवचातिविषाग्निकैः सपाठैः पिचुभागैर्नव वज्रदुग्धसुष्ट्याः ॥ १५६ ॥
पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभिः क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।
कुष्ठश्वित्रप्लीहवर्ध्माश्मगुल्मान्हन्यात्कृच्छ्रांस्तन्महावज्रकाख्यम् ॥१५७॥

वाग्भट वर्णित कुष्ठ रोग मे महावज्रक घृत—त्रिफला (हरें, आँवला, वहेडा), त्रिकटु (सोंठ-पीपर-मरिच), भटकटैया, वनभंटा, कुटकी, कुम्भ (निशोथ), निकुम्भ (दन्तीमूल), असलतास, वच, अतीस, चित्रक, पाठा—एक २ पिचु (कर्ष)—इन द्रव्यों को नव पल सेहुंड के दूध मे पीस कर कल्क वनावे। इस कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत, (चौगुने चार प्रस्थ

जल में मिला कर) सिद्ध करे। यह घृत कडे कोष्ठवालों के लिये, स्नेहन तथा रेचन (दस्तावर) करने वाला है। यह महावज्र नामक घृत, कष्टसाध्य कुष्ठ, श्वित्र, प्लीहा वृद्धि, वर्ध्म (पद्मगत रोग) तथा अश्म गुल्म (पथरी-गुल्म) को नाश करता है ॥ १५६–१५७ ॥

अग्निवेशात् कुष्ठे तिक्तकं घृतम्—

निम्बपटोलं दार्वीं दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम्।
कुर्यादर्धपलांशं पर्पटकं त्रायमाणां च ॥ १५८ ॥
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते।
चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणाश्च ॥ १५९ ॥
मुस्त वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान् भागान्।
नवसर्पिषश्च षट्पलमेतत्सिद्ध घृतं पेयम् ॥ १६० ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथुहारि।
विसर्पपामापिडकाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥ १६१ ॥

अग्निवेश वर्णित, कुष्ठरोग में तिक्तक घृत—नीम, पटोलपत्र, दारुहल्दी, यवासा, कुटकी, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), पित्तपापड़ा, त्रायमाणा—आधा २ पल—इन द्रव्यों को एक आढक जल में क्वाथ कर, अष्टमांशावशिष्ट, परि स्रावित क्वाथ में, चन्दन, चिरायता, पिप्पली, त्रायमाणा, मोथा, इन्द्रजव—आधा २ कर्ष—इन द्रव्यों का कल्क तथा नवीन घृत छः पल मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह तिक्तक, घृत, पान करने से कुष्ठ रोग, ज्वर, गुल्म रोग, अर्श, ग्रहणी दोष, पाण्डु रोग तथा शोथ को हरने वाला और विसर्प, पामा, पिडका, खुजली तथा मद, (मादकता) गण्ड, को नाश करता है ॥ १५८–१६१ ॥

अग्निवेशात् कुष्ठे महातिक्तकं घृतम्—

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ १६२ ॥
धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्यां पद्मक हरिद्रे द्वे।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥ १६३ ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च।
कल्कीकुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च ॥ १६४ ॥
कल्कश्चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिः[1] ॥ १६५ ॥

---

१. 'मतिमान्' इति पा०।

कुष्ठानि रक्तपित्तप्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
वीसर्पमस्लपित्तं पित्तासृक् पाण्डुतां[1] गुल्मम् ॥ १६६ ॥
विस्फोटकान् सपामानुन्मादं कामलां कृमीन् कण्डूम् ।
[2]हृद्रोगज्वरपिडका ह्यसृग्दरं गण्डमालां च ॥ १६७ ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ १६८ ॥

अग्निवेश कृत, कुष्ठ रोग में महा तिक्तक घृत—सप्तच्छद (छतिवन), अतीस, शम्पाक (अमलतास), कुटकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला (हर्रे-बहेड़ा-आंवला), पटोलपत्र, नीम, पित्तपापड़ा, धन्वयवास (धमासा), रक्तचन्दन, पीपर, पद्मकाठ, आमाहल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावरी, कृष्णसारिवा, रक्तसारिवा, इन्द्रयव, अडूसा, मूर्वा (मोरवेल्ल), गुडूची, चिरायता, जेठी मधु, त्रायमाणा—चतुर्थांश—इन द्रव्यों का कल्क बनाकर घृत से अठगुना जल तथा अमृतफल (गुडूची) का स्वरस दुगुना (बारह पल) मिला कर घृत सिद्ध करे और इस घृत को पान कराये। यह घृत कुष्ठ रोग, प्रबल रक्तपित्त, रक्तवाही अर्श रोग, (रक्तस्रावी) विसर्प, अम्लपित्त, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, गुल्म, विस्फोटक (फोटका, छलकई भवानी), पामा, उन्माद, कामला, कृमिरोग, कण्डू, हृद्रोग, ज्वर, पिडका, रक्तप्रदर तथा गण्डमाला (ग्लैन्ड टी. बी.) को नाश करता है। यह महातिक्तक घृत, बल के अनुसार समय से पान करने पर सैकड़ों योगों से असाध्य महान् रोगों को भी नाश करता है ॥ १६२–१६८ ॥

जतुकर्णात् कुष्ठे द्वितीयं महातिक्तकं घृतम्—

करञ्जसप्तच्छदपिप्पलीनां मूलानि कृष्णा मधुकं विशाला ।
यवासकश्चन्दनमुत्पलं च स्यात् त्रायमाणा कटुका वचा च ॥ १६९ ॥
उशीरपाठातिविषारजन्यः किराततिक्तः कुटजस्य बीजम् ।
निम्बासनारग्वधमालतीनां पत्राणि मूलानि च कण्टकार्याः ॥१७०॥
शतावरीपद्मकदेवदारुमुस्तानि कालीयककेसराणि ।
वासागुडूचीनतसारिवाश्च बला पटोल त्रिफला च मूर्वा ॥ १७१ ॥
नीपः कदम्बो धववेतसौ च कर्कोटकः पर्पटकः पयस्या ।
वाराहकन्दं सदयन्तिका च ब्राह्मी समङ्गपर्णको बला च ॥ १७२ ॥
एतैः समांशैरथ कार्षिकैश्च घृतस्य पात्रं विपचेन्नवस्य ।
द्रोणं जलस्याकलुषस्य दद्यात् पात्रद्वयं चामलकीरसस्य ॥ १७३ ॥

---

[1] पाण्डुरोगं च' इति पा० । [2] 'हृद्रोगगुल्मपिडकाः' इति पा० ।

पक्वं प्रशान्तं गतफेनशब्दं प्रयोजयेत् कुष्ठहरं प्रशस्तम् ।
तद्रक्तपित्तानिलसन्निपातविस्फोटपाल्यामयविद्रधीनाम् ॥ १७४ ॥
किलासकासज्वरगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदानि त्वथ वातरक्तम् ।
हृत्पाण्डुरोगान् सभगन्दरांश्च निषेव्यमाणं नियमेन काले ॥ १७५ ॥
घृतं महातिक्तमिदं प्रशस्त निहन्ति सर्वान् श्वयथूपदिष्टान् ।

जातुकर्ण वर्णित कुष्ठ रोग में द्वितीय महातिक्तक घृत—करञ्ज, छतिवन तथा पीपर (अश्वत्थ) का मूल, पिप्पली, मुलेठी, इन्द्रायण, यवासा, रक्तचन्दन, नीलकमल का फूल, त्रायमाणा, कुटकी, वच, खस, पाठा, अतीस, आमाहल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, इन्द्रयव, नीम, विजयसार, अमलतास तथा मालती का पत्र, भटकटैया का मूल, शतावरी, पद्मकाठ, देवदारु, मोथा, कालीयक (पीत चन्दन), केशर, अडूसा, गुडूची, तगर, सारिवा, बरियार, परोरा का पत्ता, त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा), मूर्वा (मोर बेल), कमल, कदम्ब, धव का फूल, अम्लवेत, कर्कोटक (इक्षु), पर्पटक (पित्तपापड़ा), क्षीरकाकोली, वाराहीकन्द, मेहदी, ब्राह्मी, मंजीठ, ऋषभक, बरियार—समभाग एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ ताजा घृत एक पात्र (आढ़क), स्वच्छ जल एक द्रोण तथा आंवला का स्वरस दो पात्र (दो आढ़क) मिला कर घृत सिद्ध करे। फेन तथा शब्द से रहित अच्छी तरह परिपक्व, शीतल उत्तम घृत को कुष्ठनाशार्थ प्रयोग करे। यह घृत रक्तपित्त, वातरक्त, संनिपात, विस्फोटक (फफोला), पाली रोग के लिये उत्तम है, और किलास, कुष्ठभेद, कास, ज्वर, गण्डमाला, ग्रन्थि, अर्बुद, वातरक्त, हृदय रोग, पाण्डु रोग, भगन्दर तथा सभी प्रकार के शोथों को, नियमपूर्वक समय से सेवन करने पर उत्तम महातिक्तक नाम का घृत नाश करता है ॥ १६९-१७५½ ॥

कृष्णात्रेयात् प्लीह्नि रोहीतकं घृतम्—

शतं पलानि रोहीतात् संक्षुद्य बदराढकम् ।
पाचयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १७६ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागं क्षीरं चतुर्गुणम् ।
तस्मिन् दद्यादिमांश्चैव सर्वान् कर्षसमन्वितान् ॥ १७७ ॥
व्योषं फलत्रयं हिङ्गु यवानी तुम्बुरु बिडम् ।
अजाजी सैन्धवं कुष्ठं दाडिमं देवदारु च ॥ १७८ ॥
पुनर्नवा विशाला च यवक्षारश्च पुष्करम् ।
विडङ्गं चित्रकश्चैव हपुषा चविका वचा ॥ १७९ ॥
एभिर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं स्थापयेद्भाजने शुभे ।

पाययेच्च पलं मात्रां व्याधीन् शमयते क्षणात् ॥ १८० ॥
प्लीहं प्लीहोदरं चैव प्लीहशूलं तथैव च ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिशूलमरोचकम् ॥ १८१ ॥
हन्ति विबन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरविनाशनम् ॥ १८२ ॥
रोहीतकघृतं ह्येतत् प्लीहानं शमयेद् द्रुतम् ।

कृष्णात्रेय वर्णित प्लीहा वृद्धि में रोहीतक घृत—रोहितक (रोहेडा), एक सौ पल कूट कर लेले और वैर एक आढक मिलाकर एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ से एक प्रस्थ घृत, चौगुना (चार प्रस्थ) बकरी का दूध, मिला कर व्योष (सोंठ-पीपर-मरिच), फलत्रय (हर्रे-बहेडा-आंवला), हींग, अजवायन, तुम्बुरु, विडनमक, स्याहजीरा, सेन्धा नमक, कूठ, अनार, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायण, यवाखार, पुष्करमूल, विडंग, चित्रक, हाऊवेर, चव्य, वच—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत सिद्ध कर स्वच्छ पात्र में रक्खे और शीघ्र रोगों की शान्ति के लिये एक पल मात्रा में पिलाये। यह रोहितक नामक घृत प्लीहावृद्धि, प्लीहोदर, प्लीहाशूल, पार्श्वशूल, उदरशूल, तथा अरोचक (अरुचि) को नाश करता है, तथा विबन्ध (मलावरोधजन्य) शूल, पाण्डु और कामला को भी नाश करता है। छर्दि (वमन), अतिसार शूल को भी नाश करने वाला है, तन्द्रा ज्वर को दूर करता है और प्लीहावृद्धि को शीघ्र ही शान्त करता है ॥ १७६–१८२½ ॥

चारपाणेः प्लीहनि बिल्वाद्यं घृतम्—

बिल्वं पाठाऽभया धान्यं यवानी सैन्धवं विडम् ।
मरिचं पञ्चकोलं च क्षारश्चैभिर्घृतं पचेत् ॥ १८३ ॥
दध्ना चतुर्गुणेनैव शकृद्वातविबन्धनुत् ।
सर्वामप्लीहवातार्तिगुदभ्रंशरुजापहम् ॥ १८४ ॥

चारपाणि वर्णित प्लीहा वृद्धि में बिल्वाद्य घृत—बेल का गूदा, पाठा, हर्रे, धनिया, अजवायन, सेन्धानमक, विडनमक, मरिच, पञ्चकोल, (पीपर-पिपरामूल-चव्य-चित्रक-सोंठ), यवाखार—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, घृत से चौगुना दही मिलाकर घृत सिद्ध करे (परिमाण स्नेहपाक विधि के अनुसार बना ले)। यह घृत मलावरोध तथा वात विबन्ध को दूर करता है और सभी प्रकार के आम (आव), प्लीहा, वात रोग, गुदभ्रंश को नाश करने वाला है ॥ १८३–१८४ ॥

हारीतात् सर्वोदरे द्विपञ्चमूलाद्यं घृतम्—

द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृतानिकुम्भे सप्तपलं चित्रकशिग्रुमूलम् ।

[1]कुरण्टबीजं त्रिफला गुडूची ह्येरण्डमूलं सदयन्तिका च ॥ १८५ ॥
पाठा सभार्गी सुषवी सनीला सरोहिपा [2]पापकुचेलिका च ।
एषां पृथक् पञ्चपलं जलस्य द्रोणे पचेत्तच्चतुरंशशेषम् ॥ १८६ ॥
घृतं विपक्वं सकषायकल्कं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ।

हारीत वर्णित सभी उदर रोग में द्विपंचमूलाद्य घृत—दोनों पंच मूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाढल, अरलू, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरु), निशोथ, दन्तीमूल, सातला, चित्रक मूल, सहिजन मूल कुरण्ट बीज (करञ्जबीज), त्रिफला, गुडूची, एरण्ड मूल, मेंहदी, पाठा, भांगरा, सुषवी (मंगरैला), नीला (नील), दूर्वा, पापकुचेलिका, (पाठा)—अलग २ पाँच २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में एक प्रस्थ घृत तथा चतुर्थांश (चार पल) समभाग इन्हीं द्रव्यों के कल्क के साथ पकाये। यह घृत पान करने से सभी प्रकार के उदर रोगों को नाश करता है ॥ १८५–१८६½ ॥

उदरे ब्राह्मं घृतम्—

शिलाह्वयं नागरकालशाके काकादनीमूलनिदग्धिके च ॥ १८७ ॥
पञ्चैव दद्याल्लवणानि हिङ्गु कृष्णां च तैरक्षसमैः पृथक् च ।
प्रस्थं घृतस्याथ पचेन्नवस्य चतुर्गुणं मूत्रमथ प्रदाप्य ॥ १८८ ॥
पयश्च दद्याद् द्विगुणं विपक्वं तद् ब्रह्मसृष्टं प्रवदन्ति सर्पिः ।
प्लीहोदरं दूष्यमथोदर च संसेव्यमानं जठराणि हन्यात् ॥ १८९ ॥

उदर रोग में ब्राह्म घृत—शिलाजीत, सोंठ, कालशाक (नाड़ी या ललितापाट), काकादनी (गुञ्जा) की जड़, वनभंटा, भटकटैया, पाँचों नमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड, साभर, सामुद्र), हींग, पीपर—समभाग एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ ताजा घृत एक प्रस्थ, गोमूत्र चौगुना (चार प्रस्थ) मिलाकर पकावे और उसमें दूध दुगुना (दो प्रस्थ) छोड़ दे। इस सिद्ध घृत को ब्रह्मसृष्ट (ब्रह्मा का बनाया हुआ) घृत कहते है। यह घृत सेवन करने से दुष्ट प्लीहोदर, उदर रोग तथा जाठराग्नि रोग को नाश करता है ॥ १८७–१८९ ॥

कासे कण्टकारीघृतम्—

पाठाविडव्योषविडङ्गसिन्धुत्रिकण्टरास्नाहुतभुग्बलाभिः ।
शृङ्गीवचाम्भोधरदेवदारुदुरालभाभार्ग्यभयाशटीभिः ॥ १९० ॥
सम्यग्विपक्वं द्विगुणेन सर्पिर्निदग्धिकायाः स्वरसेन चैतत् ।

---

१. 'करञ्जबीजम्' इति पा०। २. 'पीतकुचेलिका' इति पा०।

श्वासाग्निसादस्वरभेदभिन्नान्निहन्त्युदीर्णानपि पञ्चकासान् ॥ १९१ ॥

कास रोग में कण्टकारी घृत—पाठा, विडंग, त्र्योष (सोंठ-पीपर-मरिच), विडंग, सेन्धानमक, गोखरू, रास्ना, चित्रक, बला, काकड़ासिंगी, वच, अम्भोधर (मोथा), देवदारु, यवासा, भांगरा, हर्रे, कपूरकचरी—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ कण्टकारी (भटकटैया) का स्वरस दुगुना मिलाकर घृत अच्छी तरह पकावे। यह घृत श्वास, मन्दाग्नि, स्वरविकृति, तथा स्वर भिन्न, उद्दण पाचों प्रकार के कास को नाश करता है। (इस योग में कल्क द्रव्यों का तथा घृत का परिमाण नहीं दिया गया है अतः घृत के चौथाई कल्क द्रव्यों को लेना चाहिए तथा घृत के दुगुना स्वरस ग्रहण करें ॥ १९०–१९१ ॥

कासे द्वितीय कण्टकारी घृतम्—

क्षुद्रायाः स्वरसं सम्यग् ग्राहयेद्यन्त्रपीडितम् ।
चतुर्गुणे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १९२ ॥
दद्यात्त्रिकटुकं गर्भे रास्नां गोक्षुरकं बलाम् ।
पञ्चकासानिदं सर्पिः पीतं सद्यो व्यपोहति ॥ १९३ ॥

कास रोग में द्वितीय कण्टकारी घृत—क्षुद्रा (भटकटैया) को कूटकर निकाला हुआ स्वरस चार प्रस्थ में घृत एक प्रस्थ तथा त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), रास्ना, गोखरू, बरियार—समभाग (एक २ पल)—इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत पीने से शीघ्र ही पांचों प्रकार के कास को नाश करता है ॥ १९२–१९३ ॥

अग्निवेशात् कासे त्र्यूषणाद्य घृतम्—

त्र्यूषणं त्रिफला द्राक्षां काश्मर्यं च परूषकम् ।
द्वे पाठे देवदार्वृद्धि स्वगुप्तां चित्रकं शटीम् ॥ १९४ ॥
व्याघ्रीमामलकीं मेदां काकनासां शतावरीम् ।
त्रिकण्टकं गुडूची च पिष्ट्वा कर्षसमं घृतात् ॥ १९५ ॥
प्रस्थं चतुर्गुणे क्षीरे सिद्धं कासहरं पिबेत् ।
ज्वरगुल्मारुचिप्लीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १९६ ॥
कामलार्शोऽनिलाष्ठीलाक्षतशोषक्षयापहम् ।
त्र्यूषणं नाम विख्यातमेतद् घृतमनुत्तमम् ॥ १९७ ॥

अग्निवेश वर्णित कास रोग में त्र्यूषणादि घृत—त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), मुनक्का, गम्भारी, फालसा, लघु पाठा, राजपाठा, देवदारु, ऋद्धि, केवाछ का बीज, चित्रक, कपूरकचरी, भटकटैया, आंवला, मेदा, काकनासा, शतावरी, गोखरू, गुडूची—समभाग एक २ कर्ष—इन द्रव्यों का कल्क बनाकर घृत एक प्रस्थ, चौगुने (चार प्रस्थ) दूध

में मिला सिद्ध करे और कासनाशक घृत को पीवे। यह उत्तम त्र्यूषण नाम से प्रसिद्ध घृत, ज्वर, गुल्म, अरुचि, प्लीहावृद्धि, शिरःशूल, हृदयशूल तथा पार्श्वशूल को दूर करता है और कामला, अर्श, वाताष्ठीला, क्षत, शोप तथा क्षय रोग को नाश करता है॥ १९४–१९७॥

कृष्णात्रेयाद् व्रणे गौर्याद्यं घृतम्—

गौरीनिम्बपटोलरोध्रफलिनीयष्ट्याह्वनीलोत्पलै-
र्मञ्जिष्ठाकटुकेन्द्रवारुणिजपामूर्वानिशाचन्दनैः।
जातीक्षोरकपत्रकेशरदलैः पूतीकघोण्टाफलै-
स्तुल्यैः सिक्थकसारिवाद्वययुतैर्गव्यं घृतं पाचयेत्॥ १९८॥
गृष्टिक्षीरसपञ्चवल्कलदलक्काथैश्च गौर्यादिभिः
सिद्धं सर्पिरिदं हितं त्रिषु भवेत्सद्यःक्षतेषु ध्रुवम्।
ये गूढाश्चिरकालजातगतयः प्रोच्छिन्नमांसा व्रणाः
सस्रावाः सरुजः सदाहपिडिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च॥ १९९॥

कृष्णात्रेय-कथित व्रण रोग में गौर्याद्य घृत—दारुहल्दी, नीम, परोरा का पत्ता, पठानी लोध, प्रियंगु, यष्टी (मधुयष्टी), नीलकमल, मंजीठ, कुटकी, इन्द्रवारुणी, जपा (अढहुल) का फूल, मूर्वा (मोरवेल), आमाहल्दी, चन्दन, चमेली का पत्ता, चोरक (यवासा), तेजपत्र, नागकेशर, दालचीनी, पूतिकरंज, घोण्टाफल (वैर, झड़वेरी), मोम, कृष्णसारिवा, रक्तसारिवा-समभाग (घृत के चतुर्थांश)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ गाय का घृत, गृष्टि-क्षीर (नवप्रसूता गाय का दूध) तथा पञ्चवल्कल (वट, उदुम्बर, पीपर, पाकड, जामुन) की छाल के क्वाथ (घृत से चौगुना क्वाथ्यद्रव्य लेकर क्वाथ कर अवशिष्ट चतुर्थांश क्वाथ लेना चाहिए, यहाँ घृत से दुगना क्वाथ और दुगना दूध लेना अभीष्ट है) में मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत तीनों प्रकार के सद्यः क्षत में निश्चित लाभप्रद है। जो गूढ़, बहुत दिनों से चल रहे, बिखरे-सडे मांस वाले व्रण, पीड़ायुक्त, बहने वाले तथा दाहयुक्त पिड़का हैं वे सूख जाते हैं और उसमें रोहण-क्रिया हो जाती है (वे भर जाते हैं)॥१९८–१९९॥

भेडाद् गुग्गुलुतिक्तक घृतम्—

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्या वृषस्य च।
पृथग्दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्॥ २००॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
त्रिकटुत्रिफलामुस्तारजनीद्वयवत्सकम्॥ २०१॥
शुण्ठी दारुहरिद्रा च पिप्पलीमूलचित्रकम्।

भल्लातको यवक्षारः कटुकाऽतिविषा वचा ॥ २०२ ॥
विडङ्गं स्वर्जिकाक्षारः शतपुष्पाऽजमोदकम् ।
एषामक्षसमैर्भागैर्गुग्गुलोः पञ्चभिः पलैः ॥ २०३ ॥
सुसिद्धं पीयमानं च ह्येतद् गुग्गुलुतिक्तकम् ।
विद्रधिं हन्ति सद्यो हि त्वग्दोषानपि दारुणान् ॥ २०४ ॥
कुष्ठानि स्त्रापसङ्कोचवेगवन्ति स्थिराणि च ।
वातश्लेष्मसमुत्थानि मेदःस्रावयुतानि च ॥ २०५ ॥
गण्डमालार्बुदग्रन्थिनाडीदुष्टभगन्दरान् ।
कासं श्वास प्रतिश्याय पाण्डुरोगं ज्वर क्षयम् ॥ २०६ ॥
विषमज्वरहृद्रोगलिङ्गदोषविषक्रिमीन् ।
प्रमेहासृग्दरोन्मादशुक्रदोषगदान् जयेत् ॥ २०७ ॥

भेड-वर्णित गुग्गुलुतिक्तक घृत—नीम, गुडूची, पटोलपत्र, भटकटैया, अडूसा, दश २ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में घृत एक प्रस्थ मिलाकर, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच,), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आँवला), मोथा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, कोरैया, सोंठ, दारुहल्दी, पिपरामूल, चित्रक, शु० भल्लातक, यवाखार, कुटकी, अतीस, वच, वायविडंग, सज्जीखार, सौंफ, अजमोदा—समभाग (एक २ अक्ष)—इन द्रव्यों के कल्क तथा शु. गुग्गुलु पांच पल के साथ घृत सिद्ध करे। यह गुग्गुलुतिक्तक नामक घृत पान करने से विद्रधि, भयंकर चर्मरोग, सुन्न, संकोच, विस्फार वाला, स्थिर वातश्लेष्मजन्य मेदोस्राव से युक्त कुष्ठ को शीघ्र ही नष्ट करता है, और गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थि, नाडीव्रण (नासूर), बिगड़ा हुआ भगन्दर रोग, कास, श्वास, प्रतिश्याय, पाण्डुरोग, ज्वर, क्षयरोग, विषमज्वर (मलेरिया), हृदयरोग, लिङ्गदोष (नेत्रदृष्टिगत रोग), विषजन्य उपद्रव, कृमिरोग, प्रमेह, रक्तप्रदर, उन्माद तथा शुक्र (वीर्य) दोषसम्बन्धी रोगों को नाश करता है ॥ २००–२०७ ॥

हारीताच्छोषे द्राक्षाद्यं घृतम्—

द्राक्षायाः शोधितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् ।
पचेत्तोयार्मणे शुद्धे पादशेषेण तेन च ॥ २०८ ॥
पालिके मधुकद्राक्षे पिष्ट्वा कृष्णापलद्वयम् ।
प्रदाप्य सर्पिषः प्रस्थं पचेत् क्षीरचतुर्गुणम् ॥ २०९ ॥
सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ।
एतद् द्राक्षाघृतं नाम क्षीणक्षुत्तृट्सुखावहम् ॥ २१० ॥

वातपित्तज्वरश्वासविस्फोटकहलीमकान् ।
प्रदरं रक्तपित्तं च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ २११ ॥

हारीत-वर्णित शोष (सूखा) रोग में द्राक्षाद्य घृत—स्वच्छ द्राक्षा एक प्रस्थ, मुलेठी आठ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावे । परिस्रावित चतुर्थांश शेष क्वाथ के साथ मुलेठी एक पल, मुनक्का एक पल, पीपर दो पल—इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर एक प्रस्थ, घृत तथा चौगुना (चार प्रस्थ) दूध छोड़कर घृत सिद्ध करें । सिद्ध-शीत होने पर शर्करा आठ पल मिला दे । यह द्राक्षाघृत नष्ट भूख तथा नष्ट प्यास वालों को आरोग्य देनेवाला (भूख-प्यास बढ़ाने वाला) है । वातपित्त ज्वर, श्वास, विस्फोटक (फफोला), हलीमक, प्रदर तथा रक्तपित्त को नाश करता है और मांस, बल को बढाने वाला है ॥ २०८–२११ ॥

विदेहात्सर्वनेत्ररोगे त्रिफलाद्यं घृतम्—

त्रिफलाया रसप्रस्थ प्रस्थ भृङ्गरसस्य च ।
पीडयित्वा वृषं बालं रसप्रस्थं प्रदापयेत् ॥ २१२ ॥
अजाक्षीरस्य च प्रस्थं कार्षिकैः श्लक्ष्णपेषितैः ।
पिप्पलीशर्कराद्राक्षात्रिफलानीलपद्मकैः ॥ २१३ ॥
मधुकक्षीरकाकोलीमधुपर्णीनिदिग्धिका— ।
मञ्जिष्ठापद्मकोशीरसारिवादारुचन्दनैः[1] ॥ २१४ ॥
घृतं प्रस्थं पचेत् प्राज्ञः कल्कैरेभिः समन्वितम् ।
ऊर्ध्वपानमधः पानं मध्ये पानं विशिष्यते ॥ २१५ ॥
अतिप्रदुष्टरक्ते च रक्ते चातिस्रुते तथा ।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे सर्वनेत्ररुजासु च ॥ २१६ ॥
अर्कविद्योतिते[2] भ्रान्ते सूर्यतेजोद्विषे तथा ।
गृध्रदृष्टिकरं धन्यं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥
त्रिफलाया घृतं सिद्धं सर्वनेत्ररुजान्तकृत् ॥ २१७ ॥

विदेह-वर्णित सभी नेत्र रोग में त्रिफलाद्य घृत—त्रिफला का रस (या क्वाथ) एक प्रस्थ, भृङ्गराज का स्वरस एक प्रस्थ, मुलायम अडूसे को कूट कर निकाला स्वरस एक प्रस्थ, बकरी का दूध एक प्रस्थ, लेकर, पीपर, शर्करा, मुनक्का, त्रिफला, नीलकमल, मुलेठी, क्षीरकाकोली, मधुपर्णी (गम्भारी), निदिग्धिका (भटकटैया), मंजीठ, पद्मकाठ, खस, सारिवा,

---

१. 'दार्वीचन्दनैः' इति पा० । २. 'चन्द्रविद्योतिते' इति पा० ।

देवदारु, चन्दन—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत मिलाकर सिद्ध करे। यह घृत, भोजन के पहले, बाद तथा मध्य में पान करना चाहिए।

अत्यन्त दूषित रक्त, रक्तातिस्राव, रतौंधी, तिमिर-काच (दृष्टिगत रोग), सभी प्रकार के नेत्र रोगों में बकविद्योतित (चन्द्रविद्योतित पाठान्तर) बगुला या चन्द्रमा के सामने आँख का चमकना, भ्रान्त (साफ न देखना), सूर्यतेज-द्विप (सूर्य के तेज से न दिखाई देना) आदि नेत्र रोगों में लाभ करता है। यह सिद्ध त्रिफला घृत गृध्र के समान दृष्टि बनाने वाला, धन देने वाला, बल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ानेवाला तथा सभी नेत्र रोगों को नाश करने वाला है ॥ २१२–२१७ ॥

पटोलाद्यं घृतम्—

पटोलं मधुकं दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।
दुरालभां च त्रायन्ती पर्पटं च पलोन्मितम् ॥ २१८ ॥
प्रस्थमामलकानां च क्राथयेत्सलिलार्मणे ।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थ विपाचयेत् ॥ २१९ ॥
कल्कैः कुटजभूनिम्बमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
पिप्पलीसहितैः सर्पिश्चक्षुष्यं श्रोत्रयोर्हितम् ॥ २२० ॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वग्दन्तरोगव्रणापहम् ।
रक्तपित्तहरं स्वेदक्लेदपूयोपशोषणम् ॥ २२१ ॥
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ।

पटोलाद्य घृत—परवल का पत्ता, मुलेठी, (पाठान्तर-कटुका), दारुहल्दी, नीम, अडूसा, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), यवासा, त्रायमाणा, पित्त-पापड़ा—एक २ पल, आंवला एक प्रस्थ—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ से एक प्रस्थ घृत तथा कोरैया, चिरायता, मोथा, जेठी मधु, रक्तचन्दन, पीपर (चतुर्थांश चार पल)—इन द्रव्यों को कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत नेत्र तथा कर्ण रोगों के लिये, हितकर है। यह घृत नाक, कान, नेत्र, वर्त्म (पक्ष्म), चर्म तथा दन्तगत रोग, व्रण को नाश करता है, रक्तपित्त को दूर करता है, स्वेद (पसीना), क्लेद (चिपचिपाहट), पूय को सुखाता है तथा कामला, ज्वर, वीसर्प-गण्डमाला को अच्छी तरह दूर करता है ॥

---

१. 'कटुकां' इति पा०।

कृष्णात्रेयाद् बिन्दुघृतम्—

त्रिवृतां त्रिफलां पाठां दन्ती कटुकरोहिणीम् ॥ २२२ ॥
चतुरङ्गुलमज्जानं तथा च कटुकत्रयम् ।
चित्रकं च बृहत्यौ च तथा च गजपिप्पलीम् ॥ २२३ ॥
स्नुहीक्षीरं पलं दद्याद् घृतस्याष्टौ प्रदापयेत् ।
यावतः स पिबेद्विन्दूँस्तावद्वारान् विरिच्यते ॥ २२४ ॥
एतद्विन्दुघृतं सिद्धमृषिभिः परिकीर्तितम् ।

कृष्णात्रेय-वर्णित, बिन्दु घृत—निशोथ, त्रिफला, (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), पाठा, दन्तीमूल, कुटकी, अमलतास का गूदा, सोंठ, पीपर, मरिच, चित्रक, भटकटैया, वनभंटा, गजपीपर, सेंहुड़ का दूध—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, आठ पल घृत (दो प्रस्थ जल मिलाकर) सिद्ध करे। इस घृत को जितना बूँद पान करे उतना ही वार विरेचन (दस्त) होय। इस सिद्ध बिन्दु घृत को महर्षियों ने कहा है ॥

कृष्णात्रेयाद् गुल्मे महाबिन्दुघृतम्—

स्नुहीक्षीरपले द्वे च प्रस्थार्धं चैव सर्पिषः ॥ २२५ ॥
कम्पिल्लकपलं चैव शाणार्धं सैन्धवस्य च ।
त्रिवृतायाः पलं चैव कुडवं धात्रिजाद्रसात् ॥ २२६ ॥
तोयप्रस्थेन संयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
कर्षमानं प्रदातव्यं जठरे प्लीहगुल्मयोः ॥ २२७ ॥
तथा कर्णोत्थरोगेषु युञ्जीत कुशलो भिषक् ।
गुल्मादिनिचयानेतत् समूलान् सपरिग्रहान् ॥ २२८ ॥
निहन्त्येष प्रयोगो हि वायुर्जलधरानिव ।
पञ्चगुल्मवधार्थाय सर्पिरेतत् प्रकीर्तितम् ॥ २२९ ॥
सर्वासुरवधार्थाय यथा वज्रं बिडौजसः ।
महाबिन्दुघृतं सिद्धं सर्वोदरहरं परम् ॥ २३० ॥

कृष्णात्रेय-वर्णित गुल्मरोग में महाबिन्दु घृत—सेंहुड़ का दूध दो पल, घृत आधा प्रस्थ (आठ पल), कबीला एक पल, सेन्धा नमक आधा शाण (दो मासा), निशोथ एक पल, आंवला का रस एक कुडव (चार पल), तथा जल एक प्रस्थ मिलाकर धीरे २ मन्द आंच से घृत को पकावे। इस घृत को एक कर्ष (एक तोला) की मात्रा में उदर रोग, प्लीह तथा गुल्म के रोगियों को देना चाहिए। और बुद्धिमान चिकित्सक, कर्ण के रोगों में प्रयोग करे। यह घृत उपद्रवों के सहित सभी प्रकार के गुल्म रोग समूहों को समूल नाश कर देता है। जैसे वायु मेघ को नाश कर देता है। पाचों गुल्मों को नाश

करने के लिये यह घृत बनाया गया है। जैसे सभी असुरों को मारने के लिये इन्द्र का वज्र है। यह सिद्ध महाबिन्दु घृत, सभी प्रकार के उदर रोगों को अच्छी तरह दूर करता है ॥ २२५–२३० ॥

गुल्मे बिन्दुघृतम्—

श्यामात्रिवृद्वह्निपलत्रयं हि हरीतकीनां तु शतार्धमन्यत् ।
तोयोर्मणोऽर्धेन विपाच्य तेन प्रस्थं पचेद्गव्यघृतस्य वैद्यः ॥ २३१ ॥
कम्पिल्लकस्यापि पलप्रमाणं[1] सनीलिनीबीजपलद्वयं च ।
चतुष्पलं स्नुक्पयसश्च दत्त्वा गुल्मापहं बिन्दुघृतं विरेकात् ॥ २३२ ॥

गुल्म रोग मे बिन्दु घृत—काला निशोथ, सफेद निशोथ, चित्रक तीन पल (अलग २ एक २ पल), हर्रे पचास पल, आधा द्रोण जल में क्वाथ कर (चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ के साथ) गाय का घृत एक प्रस्थ, कबीला एक पल (एक प्रसृति (प्रस्थ-पाठान्तर), नीलिनी (नील) का बीज दो पल तथा सेहुंड़ का दूध चार पल मिलाकर, घृत को सिद्ध करे। यह बिन्दु घृत, विरेचक (दस्तावर) होने से गुल्म रोग को नाश करता है ॥ २३१–२३२ ॥

चिकित्साकलिकाया गुल्मे महाबिन्दुघृतम्—

त्रिवृत्पलं स्नुक्पयसः पलं च कम्पिल्लकस्यापि पलं तृतीयम् ।
चतुष्पलं चामलकीरसस्य पलार्धमन्यल्लवणस्य चैव ॥ २३३ ॥
प्रस्थार्धमेभिर्हविषो विपक्वं जले महाबिन्दुघृत प्रसिद्धम् ।
निहन्ति गुल्मं जठराणि चैव प्लीहामयानाशु विरेकयोगात् ॥२३४॥

चिकित्सा-कलिका नामक ग्रन्थ से गुल्म रोग में महाबिन्दुघृत—निशोथ एक पल, सेहुड़ का दूध एक पल, कबीला तीन पल, आँवला का रस चार पल, सेन्धानमक आधा पल—इन द्रव्यों के साथ घृत आधा प्रस्थ (चौगुना दो प्रस्थ) जल मे पकावे। यह प्रसिद्ध महाबिन्दुघृत, विरेचक (दस्तावर) होने से गुल्म, उदर रोग तथा प्लीहा रोग को शीघ्र ही नाश करता है ॥२३३–२३४॥

कुष्ठे बिन्दुघृतम्—

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि षट् ।
पथ्या कम्पिल्लकः श्यामा श्यामाको गिरिकर्णिका ॥ २३५ ॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकस्तथा ।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २३६ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ।
यावतो ना पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वारान्विरिच्यते ॥ २३७ ॥

---

१. 'कम्पिल्लकस्य प्रसृतिप्रमाणं' इति पा० ।

कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २३८ ॥
एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ।

कुष्ठ रोग में बिन्दुघृत—मदार का दूध दो पल, सेहुंड का दूध छः पल, हर्रे, कबीला, काला निशोथ, श्यामाक (साँवा), गिरिकर्णी (अपराजिता), नीलवृक्ष, सफेद निशोथ, दन्तीमूल, शंखिनी (यवतिक्ता), चित्रक—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत एक प्रस्थ (चार प्रस्थ पानी में) पकावे । मनुष्य इस घृत को जितना बिन्दु पान करेगा उतने ही बार दस्त होगा । यह घृत–कुष्ठ रोग, गुल्म, उदावर्त (आमाशय या अन्त्रस्थ आनाह), शोथ, भगन्दर तथा आठ प्रकार के उदर रोगों को शान्त करता है । जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को गिरा देता है । यह बिन्दु नामक घृत है जिसको लगाने से भी विरेचन होता है ॥

कुष्ठे पञ्चतिक्तकं घृतम्—

निम्बं व्याघ्रीं पटोलं च गुडूची वासकं तथा ॥ २३९ ॥
कुर्यात्तुलां तु संचूर्ण्य क्वाथयेत्तज्जले शुभे ।
ततः पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २४० ॥
त्रिफलागर्भसंयुक्तं पञ्चतिक्तकमुच्यते ।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ २४१ ॥
विंशतिं श्लेष्मजांश्चैव पानादेवापकर्षति ।
(दुष्टव्रणांस्तथा नाडीमर्शांसि च भगन्दरम् ।
पञ्चकासान् सहृद्रोगान् सर्पिरेतन्नियच्छति ॥)

कुष्ठ रोग में पञ्चतिक्तकघृत—नीम, भटकटैया, परोरा का पत्ता, गुडुच तथा अडूसा एक तुला लेकर यवकुट कर स्वच्छ जल (एक द्रोण) में पकावे । चतुर्थांश शेष क्वाथ के साथ घृत एक प्रस्थ और त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) (चार पल) का कल्क मिलाकर पकावे । इसको पञ्चतिक्तक घृत कहते है । यह घृत, अस्सी प्रकार के वात रोग, चालिस प्रकार के पैत्तिक रोग और बीस प्रकार के कफज रोगों को पीने मात्र से ही दूर करता है । (यह घृत दुष्टव्रण (बिगड़ा हुआ व्रण), दुष्ट नाडी व्रण (नासूर), अर्श, भगन्दर, पांच प्रकार के कास तथा हृदय रोगों का दूर करता है) ॥

खरनादाच्छूले लशुनघृतम्—

प्रस्थं लशुनबीजानां कण्टकार्यास्तथैव च ॥ २४२ ॥
प्रस्थं तथा च वासाया जलद्रोणे विपाचयेत् ।
द्राक्षाया गोस्तनायाश्च कुडवं चात्र मिश्रयेत् ॥ २४३ ॥

तत्र दद्याद् घृतप्रस्थं गोक्षीरप्रस्थमेव च ।
लशुनस्य तु पिष्टस्य पलं[1] निष्पीड्य योजयेत् ॥ २४४ ॥
आटरूषकपत्राणां पेषयित्वा पलं[2] तथा ।
एतन्मृद्वग्निना सिद्धं शीतं पूतमथापि च ॥ २४५ ॥
द्विपलं शर्कराचूर्णं क्षीरार्धकुडवं तथा ।
त्वक्क्षीर्याश्च पलार्धं हि तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ॥ २४६ ॥
निदध्याद्भाजने शुद्धे काञ्चने राजतेऽपि वा ।
एतत्प्रायोगिकं[3] सर्पिरिमान् व्याधीन् व्यपोहति ॥ २४७ ॥
कासं श्वासं ज्वरं गुल्मं कार्श्यं छर्दिमरोचकम् ।
हृद्रोगं पार्श्वशूलं च क्षतक्षीणं प्लिहोदरम् ॥ २४८ ॥
जीवनं बृंहणं वृष्यं पाण्डुश्वयथुनाशनम् ।

खरनाद-वर्णित शूल रोग में लशुन घृत—लहशुन की गांठ एक प्रस्थ, भटकटैया एक प्रस्थ, तथा अडूसा एक प्रस्थ लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ करे और उसमे मुनक्का एक कुडव (चार पल), खजूर एक कुड्व मिला दे । चतुर्थांश शेष क्वाथ में घृत एक प्रस्थ, गाय का दूध एक प्रस्थ, लहशुन का रस एक पल तथा अडूसा के पत्ते का रस एक पल मिलाकर मन्द आंच से घृत सिद्ध करे । सिद्ध घृत को छान कर ठंढा होने पर शर्करा दो पल, दूध आधा-कुडव (दो पल), वंशलोचन आधा पल—इन सभी द्रव्यों को खज-मूर्च्छित (कर्छी से मिलाकर) कर स्वच्छ सोना या चांदी के वर्तन में रक्खे । यह घृत बराबर सेवन करने से कास, श्वास, ज्वर, गुल्म, कृशता, छर्दि (वमन), अरोचक, हृद्रोग, पार्श्वशूल, क्षतक्षीण (उरःक्षत), प्लीहोदर—इन व्याधियों को नाश करता है । यह घृत जीवनीय, बलवर्द्धक, वीर्यवर्द्धक, पाण्डु तथा शोथ का नाश करता है ॥

तन्त्रान्तराद्दाडिमाद्यं घृतम्—

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम् ॥ २४९ ॥
चित्रकाच्छृङ्गवेराच्च पिप्पल्यष्टमिका च तैः ।
पलानि विंशति चैव घृतस्य सलिलाढके ॥ २५० ॥
सिद्धं हृत्पाण्डुगुल्मार्शःप्लीहवातार्तिशूलनुत् ।
दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २५१ ॥
दुःखप्रसविनीनां च वन्ध्यानां चैव पुत्रदम् ।

---

१. 'मागधिकापलम्' इति पा० । २. 'पलं द्राक्षापलं तथा' इति पा० ।
३. प्रायोगिकमिति प्रयोगः स्वस्थस्य सततोपयोगः, तत्र साधु प्रायोगिकम् ।

अन्य तन्त्र में वर्णित दाडिमाद्य घृत—अनार एक कुडव (चारपल), धनिया आधा कुड्व (दोपल), चित्रक, सोंठ एक-एक पल, पीपर अष्टमिका (आध पल)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ वीस पल घृत एक आढ़क जल में पकावे। यह सिद्ध घृत हृदय रोग, पाण्डु रोग, गुल्म-रोग, अर्श रोग, प्लीहा-वृद्धि, वात रोग तथा शूल को दूर करता है, उदराग्नि-दीपक, श्वास-कास-नाशक तथा प्रतिलोम (उलटा) वात का अनुलोमन करता है। दुःख से प्रसव करने वाली स्त्रियों को सुख से प्रसव करने वाला बनाता है तथा बाँझ स्त्रियों को भी पुत्र देने वाला है॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २५२॥
द्विगुणं ह्यारनालं च दधिमण्डं चतुर्गुणम्।
पञ्चकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः॥ २५३॥
द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचं तत्र दापयेत्।
गुल्मप्लीहोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान्॥ २५४॥
बस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्तजान् गदान्।
निहन्यात् पीतमर्शोघ्नं पाचनं वह्निदीपनम्।
बलवर्णकरं चापि भस्मक च नियच्छति॥ २५५॥

चित्रकाद्य घृत—चित्रक एक तुला एक द्रोण जल मे क्वाथ करे (चतुर्थांश शेष) क्वाथ में घृत एक प्रस्थ, आरनाल (कच्चे या पक्के निस्तुप गेहूं की दरिया को पानी में तीन दिन तक संधान करने के बाद सिद्ध द्रव)—दुगुना (दो प्रस्थ), मण्ड (दही का तोड़) चौगुना (चार प्रस्थ,) तथा पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), तालीसपत्र, यवक्षार, सेन्धा-नमक, स्याह जीरा, सफेद जीरा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, मरिच—समभाग (चारपल)—इन द्रव्यों के कल्क को मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत, पान करने से गुल्म, प्लीहोदर, आध्मान, पाण्डु रोग, अरुचि, ज्वर, बस्तिशूल, हृदय-शूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, ऊरुशूल तथा उदावर्त (आमाशय या अन्त्रस्थ आनाह) से उत्पन्न रोगों का नाश करता है। और अर्शनाशक, पाचक, अग्निप्रदीपक, बलवर्धक, कान्तिप्रद तथा भस्मक रोग को दूर करता है॥ २५२–२५५॥

शोफे चित्रकाद्यं घृतम्—

सचित्रकं धान्ययवान्यजाजीसौवर्चलत्र्यूषणवेतसाम्लम्।

---

१. 'शोथघ्नं' इति पा०।

बिल्वोत्पलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ २५६ ॥
पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथापि युञ्ज्यात् ।
अर्शांसि गुल्मान्श्वयथु सकृच्छ्रं निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् ॥२५७॥

शोथ रोग में चित्रकाद्य घृत—चित्रक, धनिया, अजवायन, स्याह जीरा, सौवर्चलनमक, त्र्यूपण (सोंठ, पीपर, मरिच), अम्लवेत, बेल का गूदा, नील कमल, अनार, यवक्षार, पिपरामूल, चव्य—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों का कल्क, घृत एक प्रस्थ, एक आढ़क जल में मिलाकर पकावे और सिद्ध होने पर प्रयोग में ले। यह घृत अर्श रोग, गुल्म रोग, शोथ तथा मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है और उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ २५६–२५७ ॥

प्लीह्नि तृतीयं रोहीतकघृतम्—

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठात्पलानां पञ्चविंशतिम् ।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तां कषायमुपकल्पयेत् ॥ २५८ ॥
पालिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वैश्चापि तुल्यया ।
रोहीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २५९ ॥
शमयेत् प्लीहवृद्धिं च सर्पिराशु प्रयोजितम् ।
तथा गुल्मज्वरश्वासकृमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ २६० ॥

प्लीहा वृद्धि में तृतीय रोहीतक घृत—उत्तम रोहीतक (रोहेड़ा) की छाल पच्चीस पल, बेर दो प्रस्थ मिलाकर चौगुने जल मे क्वाथ करे, चतुर्थांश शेष क्वाथ मे पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) सभी एक २ पल, रोहीतक की छाल एक पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत एक प्रस्थ पकावे। यह घृत सेवन करने से प्लीहा वृद्धि को शीघ्र ही शान्त करता है तथा गुल्म रोग, ज्वर, श्वास, कृमिरोग, पाण्डु रोग कामला (पीलिया) रोग को भी शान्त करता है ॥ २५८–२६० ॥

कुष्ठे गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम्—

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान्निमान्दशपलान्विपचेद्घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेषितशृतेन पुनश्च तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत् पिचुभागकल्कैः ॥ २६१ ॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।

१. 'रसेन' इति पा० ।

तेजस्वतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ २६२ ॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया विषया यवान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ।
तत्सेवितं विधुवति प्रबलं समीर
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ २६३ ॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसशोफकास-
हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ २६४ ॥

कुष्ठ रोग में गुग्गुलु पञ्चतिक्त घृत—नीम, गुडूची, अडूसा, परवल का पत्ता, भटकटैया दश २ पल—इन द्रव्यों को यवकुट कर एक द्रोण जल में क्वाथ करे अष्टमांश शेष क्वाथ में फिर घृत एक प्रस्थ, पाठा, विडंग, देवदारु, गजपीपर, पीपर, सज्जीखार, यवक्षार, सोंठ, हल्दी, मिशि (जटामांसी), चव्य, कूठ, तेजबल, मरिच, कोरैया, अजमोदा, चित्रक, मांसरोहिणी, अरुष्क (शु० भल्लातक), वच, पिपरामूल, मंजीठ, अतीस (विषा), अजवायन—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क तथा शुद्ध गुग्गुलु पाँच पल के साथ पकावे । यह घृत सेवन करने से प्रबल वात रोग और सन्धिगत, अस्थिगत तथा मज्जागत भी कुष्ठ रोग का नाश करता है । इसी प्रकार नाडीव्रण (नासूर), अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, जत्रूर्ध्व सर्वगद (गले के ऊपर के सभी रोग, कर्ण, आँख, कान, नासिका, गला के रोग आदि), गुल्म रोग, अर्श रोग, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास, पीनस, शोथ, कास, हृदय रोग, पाण्डु रोग, मद (मदजन्य रोग), विद्रधि तथा वातरक्त को भी नाश करता है ॥ २६१–२६४ ॥

शीतकल्याणकं घृतम्—

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमा रक्तशालयः ।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ २६५ ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् ।
विदारी शतपत्री च शालपर्णी स जीवकः ॥ २६६ ॥
फलं त्रपुसबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम् ।
एषामर्धपलान् भागान् गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २६७ ॥
पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ २६८ ॥
बहुरूपं च यत्पित्तं कामलां च सशोणितम् ।

अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ २६९ ॥
तरुणाश्चानपत्या ये या च गर्भं न विन्दति ।
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम् ॥ २७० ॥
शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ।

शीत कल्याणक घृत—कुमुद, पद्मक (कमल) खश, गेहूँ, लाल चावल, मुद्गपर्णी, पयस्या (क्षीरकोकाली), गम्भारी, जेठी मधु, वरियार तथा कंघी का मूल, नीलकमल, ताडका मज्जा, विदारीकन्द, गुलाब का फूल, सरिवन, जीवक, फल (मदन फल), त्रपुस बीज (खीरा का बीज), केला का फूल—आधा २ पल—इन द्रव्यों का कल्क, गाय का दूध चार भाग (चार प्रस्थ), जल दो भाग (दो प्रस्थ), घृत एक प्रस्थ मिलाकर सिद्ध करे। यह शीत-कल्याणक नामक घृत प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अनेक प्रकार के पित्त रोग, तथा रक्तपित्त, कामला रोग, अरोचक, ज्वर, पुराना पाण्डु रोग, मद (मदजन्य रोग), भ्रम (मूर्च्छा)—इन रोगों में उत्तम रसायन है (अर्थात्) इन रोगों को दूर करने वाला है और जो सन्तानरहित तरुण और गर्भ न धारण करने वाली स्त्री है उनको आपस में प्रतिदिन प्रीति बढ़ाने वाला तथा सन्तानोत्पादक है ॥

हिक्काश्वासे शठ्याद्यं घृतम्—

शटिर्वचाऽभया कुष्ठं पिप्पली बिल्वशुण्ठिका ॥ २७१ ॥
पलांशं सैन्धवं चव्यं तेजस्वत्यथ पुष्करम् ।
सौवर्चलं च भूधात्री भूतीकं चाक्षसंमितम् ॥ २७२ ॥
हिङ्ग्वर्धकर्षकोपेतं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणं जलं चात्र दत्त्वा मृद्वग्निना भिषक् ॥ २७३ ॥
ग्रहण्यर्शोहितं कासहिक्कोरःपार्श्वशूलनुत् ।
श्वासान् सन्धिगतांश्चान्यान् हन्याद्वातकफामयान् ॥ २७४ ॥

हिक्का-श्वास में शठ्याद्य घृत—शटी (कपूरकचरी), वच, हर्रे, कूठ, पीपर, बेल-सोंठ, परास का फूल, सेंधानमक, चव्य, जोतिष्मती, पुष्करमूल, सौवर्चल नमक, भुइं आंवला, भूतीक (गन्धतृण)—एक २ अक्ष (कर्ष)—इन द्रव्यों का कल्क, हिंगु आधा कर्ष, घृत एक प्रस्थ—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर चौगुने (चार प्रस्थ) जल में मन्द आंच से पकावे। यह घृत, ग्रहणी दोष तथा अर्श रोग के लिये हितकारक है और कास, हिक्का, उरःशूल तथा पार्श्वशूल का नाश करता है। श्वास रोग, सन्धिगत तथा अन्य वात-कफ-जन्य रोगों का भी नाश करता है ॥ २७१–२७४ ॥

नारसिंहं घृतम्—

वह्निर्भल्लातकं चैव शिशपा खदिरस्तथा ।
हरीतकी विडङ्गानि जीवकश्च तथाऽक्षकः ॥ २७५ ॥
एषामाहृत्य भागांस्तु सम्यग्दशपलोन्मितान् ।
जलद्रोणयुतान् कृत्वा लोहभाण्डे निधापयेत् ॥ २७६ ॥
लोहभाण्डे पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम् ।
क्वाथं लोहस्थितं कृत्वा स्थापयेद्दिवसत्रयम् ॥ २७७ ॥
त्रिगुणं तु शतावर्या रस धात्र्याश्च निःक्षिपेत् ।
निःक्षिपेत्त्रिगुणं चात्र भृङ्गराजरसं शुभम् ॥ २७८ ॥
छागक्षीरं च तत्रैव त्रिगुणं च सुयोजयेत् ।
पक्त्वा घृताढक तेन मधुना सितयाऽथवा ॥ २७९ ॥
गुडेन वा पिबेत्सार्ध केवलं वा पलोन्मितम् ।
न किंचित्परिहार्यं स्याद्वातातपनिषेविणाम्[1] ॥ २८० ॥
अजीर्णे पिबतश्चापि वनितासेविनस्तथा ।
नान्धता नाग्निहानिश्च न वलीपलितं भवेत् ॥ २८१ ॥
अनेन च भवत्याशु नरः[2] सिंहपराक्रमः ।
भवत्यश्वजवश्चैव हेमवर्णश्च जायते ॥ २८२ ॥
कान्ताऽपि सेविता तेन गुणैरेतैश्च युज्यते ।
नारसिंहमिति ख्यातं घृतं बलविवर्धनम् ॥ २८३ ॥

नारसिंह घृत—चित्रक, शु० भल्लातक, शीशम, खदिर, हरें, विडंग, जीवक, बहेड़ा दश २ पल इन द्रव्यों को लेकर, एक द्रोण जल में मिलाकर लोहे के बर्तन में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को लोहे के पात्र मे भर कर तीन दिन तक रक्खे, और उसमें शतावरी का रस तीन गुना (तीन आढक), आँवला का रस तीन गुना (तीन आढ़क), भृग राज का रस तीन गुना (तीन आढ़क) तथा बकरी का दूध तीन गुना (तीन आढ़क) मिला दे, इसके बाद इस द्रव द्रव्य में एक आढ़क घृत मिलाकर पकावे । इस सिद्ध घृत को मधु, शर्करा या गुड के साथ या केवल एक पल की मात्रा में पान करे । वायु तथा धूप सेवन करने वालों के लिये, इस घृत के प्रयोग काल मे कोई भी चीज अपथ्य नहीं है । अजीर्ण मे (भोजन के अपरिपाक काल में) पान करने वाले तथा स्त्री प्रसंग करने वालों को, अन्धता-उदराग्नि नाश, तथा वली-पलित (मुख में झुर्री पड़ना, असमय में वालपकना) नहीं होता है । इस घृत को सेवन

---

१. 'निषेवणम्' इति पा० । २ नरसिंहवपुर्नरः' इति पा० ।

करने से मनुष्य सिंह के समान पराक्रम वाला हो जाता है और घोड़े के समान वेग तथा स्वर्ण के समान कान्ति हो जाती है। घृत-सेवन काल में स्त्री-प्रसंग करने पर भी इन गुणों से युक्त होता है। यह प्रसिद्ध नारसिंह नामक घृत बल को अच्छी-तरह बढ़ाने वाला है ॥ २७५–२८३ ॥

विषेऽमृतं घृतम्—

शिरीषस्य त्वचा व्योषं त्रिफला चन्दनोत्पलम् ।
द्वे बले सारिवास्फोटासुरभीनिम्बपाटलाः ॥ २८४ ॥
बन्धुजीवातसीमूर्वावासासुरसवत्सकम् ।
पाठाङ्कोलाश्वगन्धार्कमूलं यष्ट्याह्वपद्मके ॥ २८५ ॥
विशाला बृहती द्राक्षा कोविदारः शतावरी ।
कटभीदन्त्यपामार्गपृश्निपर्णीरसाञ्जनम् ॥ २८६ ॥
शणाश्वखुरकौ श्वेतौ कुष्ठ दारु प्रियङ्गुका ।
विदारी मधुकात्सारः करञ्जस्य फलं वचा ॥ २८७ ॥
रजन्यौ लोध्रमक्षांशान्[1] पिष्ट्वा साध्यं घृताढकम् ।
तुल्याम्बुच्छागगोमूत्रे त्र्याढके तद्विपाचितम् ॥ २८८ ॥
अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरोदरान् ।
पाण्डुरोगान् क्रिमीन् मेहान् सप्लीहोदरकामलान् ॥ २८९ ॥
हनुस्तम्भग्रहादींश्च पानाभ्यञ्जननावनैः ।
हन्यात्संजीवयेच्चापि विषोदधिमृतान्नरान् ॥
अभेद्यममृतं सर्वविषाणां स्याद् घृतोत्तमम् ॥ २९० ॥

विष में अमृत घृत—शिरीष की छाल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), रक्त चन्दन, नील कमल, वरियार, कंघी, सारिवा, आस्फोट (अपराजिता), सुरभी (रास्ना), नीम, पाढ़ल, बन्धुजीव (बन्धूक गुलदुपहरिया), अलसी, मूर्वी (मोरवेल), अडूसा, सुरसा (तुलसी), कौरेया, पाठा, अंकोल (ढेरा), अश्वगन्धा, मदार की जड, यष्ट्याह्व (जेठीमधु), पद्मकाठ, इन्द्रायण, भटकटैया, वनभंटा, मुनक्का, कोविदार (कचनार), शतावरी, कटभी (किडही), दन्ती, अपामार्ग, पिठवन, रसाञ्जन, सन, अश्वखुरक श्वेत (नख, गन्ध द्रव्य विशेष), कूठ, देवदारु, मालकाँगनी, विदारीकन्द, मुलेठी का सार, करंज का फल, वच, आमाहल्दी, दारुहल्दी, लोध—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों का कल्क बनाकर एक आढक घृत, जल, बकरी का मूत्र, गाय का मूत्र सम भाग (तीन आढ़क)—इन द्रव द्रव्यों मे मिलाकर पकावे।

---

१. 'एषां' इत्यध्याहारः।

यह सिद्ध घृत अपस्मार, क्षय, उन्माद, भूतग्रह, गर (संयोगजविष), उदर रोग, पाण्डु रोग, कृमि, प्रमेह, प्लीहोदर (पुराना प्लीहा वृद्धि), कामला रोग (पीलिया), हनुस्तम्भ (जवड़ा का जकड़ जाना) तथा ग्रह दोष को पान, अभ्यञ्जन (मालिश), नावन-(नस्य) करने से नाश करता है और विष से तथा उदधि (जल) में डूबकर मरे हुए व्यक्तियों को जीवित कर देता है। यह उत्तम घृत सभी विषजन्य दोषों का नाश करने के लिये, अभेद्य अमृत है। अर्थात् विष दोषों को निस्सन्देह नाश करता है ॥ २८४–२९० ॥

ग्रहण्यामग्निघृतम्—

चतुष्पलं चव्यकचित्रपाठातेजस्विनीपिप्पलीमूलमेदाः ।
दद्याच्च मुस्तात्रिफलं विशुद्धं मुष्टिं समग्रामथ पल्लवानाम् ॥ २९१ ॥
आस्फोटजातीपिचु[1]सप्तपर्णपटोलशाखोटकनक्तमालात् ।
एतानि दद्यादथ कुट्टितानि ह्यधिश्रयेत्ताम्रमये कटाहे ॥ २९२ ॥
सुक्वथितं द्रोणजले तु सम्यक् पादावशिष्टं पुनरुद्धरेत्तत् ।
पलार्धतुल्याऽतिविषा सुभद्रा कल्कीकृतानि द्विपलानि दद्यात् ॥२९३॥
सयावशूकं बिडसैन्धवं च पलानि चत्वारि च पिप्पलीनाम् ।
कल्कैः कषायेण च सिद्धमेतन्मृद्वग्निसिद्धं ह्यवतारयेच्च ॥ २९४ ॥
पिबेच्च जीर्णे तु घृतस्य कर्षं विष्टम्भदोषे द्विगुणं पिबेच्च ।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः शाम्यन्ति गुल्माश्च बहुप्रकाराः ॥ २९५ ॥
सर्वाः कृमीणामथ जातयश्च शाम्यन्ति सम्यग्विविधप्रयोगात् ।
पाण्ड्वामयप्लीहगरोद्भवाश्च रोगा न तं भाविन आपतेयुः ॥ २९६ ॥
सेवेत मद्यं पिशितानि चैव विवर्जकः स्यान्मधुतर्पणस्य ।
नाम्ना तदप्यग्निघृतं प्रसिद्धं वह्निं च संदीपयते प्रसह्य ॥ २९७ ॥

ग्रहणी दोष में अग्नि घृत—चव्य, चित्रक, पाठा, तेजबल, पिपरामूल, मेदा, मोथा, त्रिफला – चार २ पल, अपराजिता, चमेली, नीम, छतिवन, परोरा, शाखोटक (सिहोर), नक्तमाल (करंज) बत्तीस पल—इन द्रव्यों का पत्ता पल—इन द्रव्यों को कूट कर तामा के कड़ाह में रक्खे और एक द्रोण पानी मे पकावे चतुर्थांश शेष क्वाथ में अतीस आधा पल, सुभद्रा (गम्भारी), यवक्षार दो-दो पल, विड नमक दो पल, पीपर चार पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (एक प्रस्थ) घृत मन्द आंच से सिद्ध करे और उतार ले। यह घृत एक कर्ष की मात्रा में भोजन के परिपाक हो जाने पर पान करे तथा विदन्ध में दो कर्ष पान करे। इस घृत के पान करने से सभी प्रकार के ग्रहणी दोष तथा सभी

---

1. नामैकदेशेनापि नामग्रहणात् पिचुशब्देनात्र पिचुमर्दो गृह्यते ।

प्रकार के गुल्म रोग शान्त होते है। अच्छी तरह अनेक पथ्य के साथ प्रयोग करने पर सभी प्रकार के कृमिरोग शान्त होते हैं। इस घृत को सेवन करने से पाण्डुरोग, प्लीहा वृद्धि तथा गरजन्य रोग (संयोगज विषजन्य रोग) नहीं होते हैं। इस घृत के सेवन काल में मद्य तथा मांस का सेवन करना चाहिए। मधुतर्पण—(मीठी चीजों) का सेवन नही करना चाहिए। यह प्रसिद्ध अग्नि घृत नामक घृत अवश्य ही अग्नि को प्राप्त करता है ॥ २९१–२९७ ॥

ग्रहण्यां भल्लातकाद्यं घृतम्—

भल्लातकानां द्विपलं पलांशं विदारिगन्धादिकपञ्चमूलम् ।
जलाढके जर्जरितं विपाच्य विस्राव्य पूतं विपचेद्धि कल्कैः ॥ २९८ ॥
रास्ना बिडं सैन्धवयावशूकं विडङ्गकृष्णामधुकं वचा च ।
सविश्वकर्पूर[1]हुताशहिङ्गुरास्नादिभिः पाणितलप्रमाणैः ॥ २९९ ॥
प्रस्थं विपक्वं पयसा समांश घृतस्य योज्यं कफजे विकारे ।
प्लीहोदरे यक्ष्मणि वातरोगे श्वासे सकासे च हितं वदन्ति ॥ ३०० ॥
व्यापन्नवह्नौ कफगुल्मिनां च कण्डूविकारेषु च शस्तमेतत् ।
भल्लातकाख्यं नियमेन पीतं जयेच्च सर्वान् ग्रहणीविकारान् ॥ ३०१ ॥

ग्रहणीरोग में भल्लातकाद्य घृत—शु० भल्लातक दो पल, विदारिगन्धादि और पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू), एक २ पल इन द्रव्यों को कूट कर एक आढक जल मे क्वाथ करें और चतुर्थांशावशेष क्वाथ को छानकर, उस क्वाथ में, रास्ना, विडनमक, सेन्धा नमक, यवाखार, विडंग, पीपर, मुलेठी, वच, सोंठ, कपूर कचरी, चित्रक, हिंगु एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ समभाग (एक प्रस्थ) दूध मिलाकर एक प्रस्थ घृत पकाये। इस घृत को कफजन्य विकारों मे प्रयोग करे। प्लीहोदर, यक्ष्मा, वातरोग, श्वास तथा कास में हितकर है (ऐसा कहते है)। कफजन्य, गुल्म रोगियों के मन्दाग्नि मे तथा कण्डू विकार में लाभप्रद है। यह भल्लातक घृत नियमपूर्वक पान करने से सभी ग्रहणी विकारों (रोगों) को जीत लेता है ॥ २९८–३०१ ॥

जीर्णज्वरे पिप्पल्याद्यं घृतम्—

पिप्पल्यतिविषाद्राक्षासारिवाबिल्वचन्दनैः ।
कटुकेन्द्रयवोशीरशटीतामलकीघनैः ॥ ३०२ ॥
त्रायमाणास्थिराधात्रीविश्वभेषजचित्रकैः ।
कल्कैरेतैर्घृतं पक्वं विच्छिद्य विषमाग्निताम् ॥ ३०३ ॥

---

1. '० कर्चूर ०' इति पा०।

जीर्णज्वरशिरःशूलगुल्मोदरहलीमकम् ।
क्षयकासान् ससंतापान् पार्श्वशूलमपास्यति ॥ ३०४ ॥

जीर्ण ज्वर में पिप्पल्याद्य घृत—पीपर, अतीस, मुनक्का, सारिवा, बेल, रक्त-चन्दन, कुटकी, इन्द्रयव, खस, कपूरकचरी, तामलकी (भुइ आंवला), घन (मोथा), त्रायमाणा, स्थिरा (शालपर्णी), आंवला, सोंठ, चित्रक—समभाग (घृत के चतुर्थांश)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (घृत से चौगुने जल में) घृत सिद्ध करे । यह विषमाग्नि (मन्दाग्नि) को दूर कर जीर्णज्वर, शिरःशूल, गुल्मरोग, उदर रोग, हलीमक, ज्वरसहित क्षयजन्य कास रोग तथा पार्श्व-शूल को दूर करता है ॥ ३०२-३०४ ॥

मायूरघृतम्—

हेमन्तकाले शिशिरे च सेव्य वसन्तकाले च मयूरसर्पिः ।
औष्ण्याद्धि बर्हीं विषभक्षणाच्च वर्षाशरद्ग्रीष्मदिनान्यपास्य ॥३०५॥
आहारजातं हि विहङ्गमस्य कीटाश्च सर्पाश्च सरीसृपाश्च ।
पिपीलिकामत्कुणमक्षिकाश्च तेनोष्णकालेष्वहितो मयूरः ॥ ३०६ ॥
तथैव काले जलदाभिरामे विसृज्य शुक्रं च मदं च बर्हीं ।
कृशत्वमायाति हि हीनतां च शरन्मुखे तेन विवर्जनीयः ॥ ३०७ ॥
अथाऽऽहरेत्स्वस्थमृत वयस्थं निस्तुण्डपत्रान्त्रनख मयूरम् ।
द्विद्रोणमात्रे पयसो निधाय विपाचयेद्भेषजसंप्रयुक्तम् ॥ ३०८ ॥
सश्रावणी ह्यंशुमती यवासः काकोलि (ली) मेदे ऋषभो वयस्था ।
सविश्वदेवा सहदेवसाह्वा सप्तच्छदान्मूलफले बला च ॥ ३०९ ॥
शतावरीजीवकसोमवल्कमेकैकशः स्युः पलसंमिताश्च ।
ततोऽर्धशिष्टे कथिते सुपूते घृताढकं तत्र पुनर्विपाच्यम् ॥ ३१० ॥
एभिस्तु कल्कैः खलु कर्षमानैर्द्रोणेन दुग्धस्य युतैः सुपिष्टैः ।
मुञ्जातकाक्षोडमथात्मगुप्ता वृद्धिस्तथा तामलकी सवीरा ॥ ३११ ॥
प्रियालमज्जा मधुकं तथैव सिद्धं प्रशान्त गतफेनशब्दम् ।
पानेषु भोज्येषु च देयमेतद्भक्ष्येषु नानाप्रभवेषु चैव ॥ ३१२ ॥
मन्दाग्निरेतोविषपीडिताश्च क्षीणक्षताश्चापि कृशातिवृद्धाः ।
कासार्दिताः शोणितपित्तिनश्च पिबेयुरेते शिखिसर्पिरग्र्यम् ॥ ३१३ ॥
वृष्यं च बल्यं च रसायन च सर्वेन्द्रियाणां बलवर्धनं च ।
ओजःस्वरं प्रीणयते च गात्रं विषघ्नमेतद् गरनाशन च ॥ ३१४ ॥
एतेन वृद्धाः कृशदुर्बलाश्च तथैव वागध्वसमाहताश्च ।
प्रक्षीणवीर्याश्च रतिप्रसक्ताः स्त्रियः समागम्य वृषीभवन्ति ॥ ३१५ ॥

१ 'भाराध्व०' इति पा० ।

हिमव्यपाये हिमदग्धपल्लवाः पुनः प्ररोहन्ति यथा महीरुहाः ।
पुनस्तथा यौवनपुष्टिमन्तो नरा भवन्तीह घृतप्रयोगात् ॥ ३१६ ॥

मायूर घृत—वर्षा, शरद् तथा ग्रीष्म ऋतुओं को छोड़ कर, मयूर के उष्ण होने से तथा विष खाने के कारण मायूर घृत को हेमन्तकाल, शिशिर तथा वसन्त काल मे सेवन करना चाहिए। मयूर पक्षी का आहार—कीडा, मकोडा, सांप, सरीसृप (कुण्डली साप), चींटी, खटमल तथा मक्खियाँ है अतः गर्मी के दिनों मे मयूर पक्षी अहितकर होता है। इसी प्रकार वर्षा ऋतु मे मयूर पक्षी, वीर्य तथा मद को छोडकर दुर्बल हो जाता है और शरद्ऋतु मे वीर्य-रहित हो जाता है अतः वर्षा ऋतु तथा शरद् ऋतु मे मायूर घृत का सेवन नहीं करना चाहिए।

इसके बाद मायूर घृत बनाने के लिये—तुण्ड (ठोर), पांख, अँतडी तथा नखरहित, स्वस्थ, प्रौढ़, मरे हुए मयूर को लेकर दो द्रोण जल मे रख कर, श्रावणी (मुण्डी), ज्योतिष्मती, यवासा, काकोली, मेदा, महामेदा, ऋषभ, (काकडासिंघी), गुडूची, विश्वेदेवा (नागबला), सहदेवसाह्व (सह-देइया), छतिवन का मूल तथा फल, वरियार, शतावरी, जीवक, सोमवल्क (कायफर)—एक २ पल—इन औषधियों को मिलाकर पकावे। आधा शेष क्वाथ को छानकर एक आढ़क घृत, एक द्रोण दूध तथा मुञ्जातक (स्थूल दर्भ), अखरोट, केवाछ का बीज, वृद्धि, मुइ आंवला, वीरा (काकोली), चिरौंजी का मज्जा, मुलेठी—एक २ कर्ष इन—द्रव्यों के कल्क के साथ पकावे। इस प्रकार फेन तथा शब्दरहित सिद्ध घृत को पान, भोज्य तथा अनेक प्रकार के भक्तों (भोज्य पदार्थों) में प्रयोग करे। इस घृत को मन्दाग्नि, वीर्य तथा विष से पीडित, क्षीणक्षत, अति कृश, अतिवृद्ध, कासपीडित, रक्तपित्ती, ये रोगी पान करें। यह घृत वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, रसायन, सभी इन्द्रियों का बल बढ़ाने-वाला, ओज. (शक्ति) तथा स्वर बढानेवाला, शरीर को कान्तिमान बनाने-वाला, विषनाशक तथा गर (संयोगज विष) को नाश करता है। इस घृत के सेवन करने से वृद्ध. दुर्बल तथा बलहीन, बोलना (या भार) तथा मार्ग श्रम से पीडित, और हीन वीर्यवाले, कामपीड़ित स्त्रियों को प्राप्त कर वृष के समान स्त्री-प्रसग मे समर्थ होते हैं। जिस तरह हेमन्तऋतु के समाप्त हो जाने-पर वर्फ से दग्ध पल्लववाले महीरुह (वृक्ष) पुनः बढने लगते है उसी प्रकार, इस घृत के प्रयोग करने से मनुष्य युवावस्था से युक्त हो जाते है ॥२०५–३१६॥

तिमिरे जीवन्त्याद्य घृतम्—

तुलां पचेद्धि जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषिते ।
दत्त्वा चतुर्गुणं क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३१७ ॥

प्रपौण्डरीककाकोलीपिप्पलीरोध्रसैन्धवैः ।
शताह्वामधुकद्राक्षासितादारुफलत्रयैः ॥ ३१८ ॥
कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ।

तिमिर रोग में जीवन्त्याद्य घृत—जीवन्ती एक तुला, जल एक द्रोण में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ में चौगुना (चार प्रस्थ) दूध मिलाकर एक प्रस्थ घृत, प्रपौण्डरीक, काकोली, पीपर, लोध्र, सेंधा नमक, सौंफ, मुलेठी, मुनक्का, शर्करा, देवदारु, फलत्रय (हर्रे, बहेड़ा, आँवला)—एक २ कर्ष इन द्रव्यों के कल्क के साथ सिद्ध करें। यह घृत रात्रि में पान करने से तिमिर रोग को अच्छी तरह नाश करता है।

अपस्मारे पञ्चगव्यं घृतम्—

दशमूलेन्द्रवृक्षत्वङ्मूर्वाभार्गीफलत्रयैः ।
शम्याकश्रेयसीसप्तपर्णापामार्गफल्गुभिः ॥ ३१९ ॥
शृतैः कल्कैश्च भूनिम्बत्रिफलाव्योपचित्रकैः ।
त्रिवृत्पाठानिशायुग्मसारिवाद्वयपौष्करैः ॥ ३२० ॥
कटुकायासदन्त्युग्रानीलिनीक्रिमिशत्रुभिः ।
सर्पिरेभिश्च गोक्षीरदधिमूत्रशकृद्रसैः ॥ ३२१ ॥
साधितं पञ्चगव्याख्यं सर्वापस्मारभूतनुत् ।
चतुर्थकक्षयश्वासानुन्मादांश्च नियच्छति ॥ ३२२ ॥

अपस्मार में पंचगव्य घृत—दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू,), इन्द्रायण की छाल, मूर्वा (मोरवेल), भारंगी, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), शम्पाक (अमलतास), गजपीपर, छतिवन, अपामार्ग, फल्गु (काष्ठोदुम्बरिकाकठ-डूमर)—समभाग—इन द्रव्यों के क्वाथ तथा चिरायता, त्रिफला, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक, निशोथ, पाठा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, कृष्णसारिवा, रक्तसारिवा, पुष्करमूल, कुटकी, यास (धमासा), दन्ती, वच, नीलवृक्ष, विडंग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ गाय का दूध, दही, मूत्र, गोबर का रस मिलाकर गाय का घृत पकावे। यह सिद्ध पञ्चगव्य नामक घृत सभी अपस्मार तथा भूतदोषों को दूर करता है और चातुर्थक, क्षय, श्वास तथा उन्माद को नाश करता है।

विमर्श—इस योग में किसी द्रव्य का परिमाण नहीं दिया है। अतः घृत के चौगुना क्वाथ्य द्रव्य लेकर चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ, चतुर्थांश कल्क द्रव्य तथा दूध, दही, मूत्र, गोबर का रस—समभाग लेना चाहिये ॥ ३१९–३२२ ॥

ज्वरे महापञ्चगव्यं घृतम्—

दशमूलमपामार्गं त्रिफलां कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णं हरिद्रे द्वे नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ ३२३ ॥
मुष्ककारग्वधे चैव फल्गुमूलं दुरालभाम् ।
पलांशकान्यपां द्रोणे साधयेत्पादशेषिते ॥ ३२४ ॥
त्रिवृतानिचुले भार्गी श्रेयसी मदयन्तिका ।
पूतिको रोहिषः पाठा दन्ती वह्निस्तथाऽऽढको ॥ ३२५ ॥
किराततिक्तको मूर्वा व्योपं द्वे चापि सारिवे ।
सकषायं घृतप्रस्थमेभिः पिष्ट्वा विपाचयेत् ॥ ३२६ ॥
गव्यं शकृद्रसं क्षीरं तक्रं मूत्रं तथा दधि ।
तदैकध्यं पचेत्सर्पिः सिद्धं चैवावतारयेत् ॥ ३२७ ॥
पञ्चगव्यं महच्चैतद्विख्यातममृतं यथा ।
चातुर्थिकं ज्वरं हन्ति मन्त्रसिद्धो मुनिर्यथा ॥ ३२८ ॥
श्वयथुं पाण्डुरोगं च प्लीहार्शांसि भगन्दरम् ।
उदराणि तथा गुल्मं कामलां चापकर्षति ॥ ३२९ ॥
तस्माद्भिषक् प्रयुञ्जीत विधियुक्तं प्रयोगवित् ।

ज्वर में महापञ्चगव्य घृत—दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू), अपामार्ग, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आँवला), कोरैया की छाल, छतिवन, आमाहल्दी, दारुहल्दी, नीलवृक्ष, कुटकी, मुष्कक (नागरमोथा या मोक्षक वृक्ष), अमलतास, फल्गुमूल (कठूमर की जड), धमासा—एक २ पल—इन द्रव्यों को लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में, निशोथ, निचुल (समुद्रफल), भांगरा, गजपीपर, मेंहदी, पूतिकरंज, दूर्वा, पाढ़ी, दन्ती, चित्रक, अरहर, चिरायता, मूर्वा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कृष्णसारिवा, रक्तसारिवा—इन द्रव्यों को (घृत के चौथाई) कल्क के साथ गाय का दही, दूध, मट्ठा, मूत्र तथा गोबर का रस (घृत के बराबर अलग-अलग) मिलाकर गाय का घृत एक प्रस्थ पकावे और सिद्ध होने पर उतार ले। यह महापञ्चगव्य नामक प्रसिद्ध घृत, अमृत के समान है। यह घृत, मन्त्रसिद्धमुनि के समान, चातुर्थिक ज्वर को नाश करता है। शोथ, पाण्डुरोग, प्लीहावृद्धि, अर्शरोग, भगन्दर, उदररोग, गुल्मरोग तथा कामला (पीलिया) रोग को दूर करता है अतः प्रयोग को जाननेवाला वैद्य इस घृत का विधिपूर्वक प्रयोग करे ॥ ३२३-३२९ ॥

बिन्दुसारं घृतम्—

शतावरीबलारास्नादशमूलत्रिकण्टकान् ।
अश्वगन्धासमायुक्तान् कुशकाशसमन्वितान् ॥ ३३० ॥
दर्भेक्षुमूलसंयुक्तान् शरमूलविमिश्रितान् ।
मण्डूक्या च समायुक्तान् द्विपञ्चपलिकाम् भिषक् ॥ ३३१ ॥
पुनर्नवायाः श्वेतायाः शिफां पलशतोन्मिताम् ।
जलद्रोणे प्रयत्नेन पचेत्सम्यक् चतुर्गुणे ॥ ३३२ ॥
निःस्राव्य पादशेषे तु क्वाथमग्नावधिश्रयेत् ।
यवानीपिप्पलीद्राक्षाशुण्ठायष्ट्याह्वसैन्धवान् ॥ ३३३ ॥
द्विपालिकान् विनिःक्षिप्य श्लक्ष्ण पिष्ट्वा विधानतः ।
घृतप्रस्थं पचेत्सम्यक् क्षीरप्रस्थद्वयान्वितम् ॥ ३३४ ॥
प्रस्थेनैरण्डतैलेन गुडत्रिंशत्पलैर्युतम् ।
एतदीश्वरपुत्राणां राज्ञां चैव विशेषतः ॥ ३३५ ॥
स्त्रीसंभोगरतानां च प्राग्भोजनमनिन्दितम् ।
ऊरुशूले कटिस्तम्भे योनिशूले च दारुणे ॥ ३३६ ॥
बस्तिवाते प्रवृद्धे च वातरोगे सुदुःसहे ।
घृतमेतत्प्रशंसन्ति सुकुमारे रसायनम् ॥ ३३७ ॥

बिन्दुसार घृत—शतावरी, बारयार, रास्ना, दशमूली (बेल, गम्भारी, पाढल, अरलू, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू), गोखरू, अश्वगन्धा, कुश, कास, दर्भ (कुशा का भेद), गन्ने की जड, शर (काश की जड), मण्डूकपर्णी—दश २ पल, श्वेत पुनर्नवा की जड़ एक सौ पल—इन द्रव्यों को चौगुने द्रोण जल (दो द्रोण पांच प्रस्थ) में अच्छी तरह पकावे । चौथाई शेष क्वाथ को छानकर पुनः आग पर चढ़ावे । और अजवायन, पीपर, मुनक्का, सोंठ, जेठी मधु, सेन्धा नमक-- इन द्रव्यों को दो २ पल लेकर अच्छी तरह पीसकर कल्क बनाकर छोड दे तथा दो प्रस्थ दूध मिलाकर एक प्रस्थ घृत, एरण्ड तैल एक प्रस्थ तथा गुड तीस पल के साथ अच्छी तरह सिद्ध करे । यह घृत धनी वर्ग तथा विशेष कर स्त्रीसंभोग में आसक्त राजाओं के लिये भोजन के पहले प्रशस्त है । वह घृत ऊरुशूल, कटिस्तम्भ, भयंकर योनिशूल, बढ़े हुए बस्तिवात तथा दुःसहवात रोग में लाभकारक है और सुकुमारों के लिये रसायन है ॥ ३३०—३३७ ॥

कासे दशमूलाद्यं घृतम्—

दशमूल्याढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।
पुष्कराह्वशटीबिल्वसुरसाव्योषहिङ्गुभिः ॥ ३३८ ॥

पेयं पयोनुपानं[1] तत्कासे वातकफात्मके ।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ३३९ ॥

कासरोग में दशमूलाद्य घृत—दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलू, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) एक आढक (चार प्रस्थ), चौगुने (चार आढक) जल में क्वाथ कर चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ में घृत एक प्रस्थ, पुष्करमूल, कपूरकचरी, बेल, तुलसी, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), हिंगु—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सिद्ध करे । इस घृत को दूध के साथ वात-कफजन्य कास तथा कफ-वातजन्य सभी श्वास रोग में पान करे । (अर्थात् यह कफवातजन्य कास तथा सभी प्रकार के कफवात-जन्य श्वास रोगों को दूर करता है) ॥ ३३८–३३९ ॥

रक्तपित्ते कटुकाद्यं घृतम्—

कटुरोहिणिका मुस्ता हरिद्रा वत्सको बला ।
पटोलं चन्दनं मूर्वा त्रायमाणा दुरालभा ॥ ३४० ॥
पिप्पली पर्पटश्चैव भूनिम्बो देवदारुकम् ।
एतैरक्षमितैः सर्पिःप्रस्थं क्षीराढके पचेत् ॥ ३४१ ॥
रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
अर्शांस्यसृग्दरं चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा ॥ ३४२ ॥

रक्तपित्त मे कटुकाद्य घृत—कुटकी, मोथा, हरिद्रा, कोरैया की छाल, वरियार, परोरा का पत्ता, रक्तचन्दन, मूर्वा (मोरवेल), त्रायमाणा, धमासा, पीपर, पित्तपापड़ा, चिरायता, देवदारु—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, एक आढक (चार प्रस्थ) घृत में एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे । यह घृत रक्तपित्त, ज्वर, दाह, शोथ, भगन्दर, अर्शरोग, रक्तप्रदर तथा विस्फोटकों (झलकई भवानी) को नाश करता है ॥ ३४०–३४२ ॥

गुल्मे दाधिकं घृतम्—

सुषवी पञ्चमूल्यौ द्वे साश्वगन्धा पुनर्नवा ।
काला छिन्नरुहा चैव रास्ना गोक्षुरको बला ॥ ३४३ ॥
शटी पुष्करमूलं च देवदारुस्तथैव च ।
एषां द्विपलिकान् भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३४४ ॥
कोलकानां कुलत्थानां माषाणां च यवैः सह ।
प्रस्थं प्रस्थं ततः कृत्वा तस्मिन्नेव समावपेत् ॥ ३४५ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दद्यादेभिः समं शुक्तमारनालं तुषोदकम् ॥ ३४६ ॥

---

1. 'पेयानुपानं' इति पा० ।

दाडिमाम्रातकद्रावं मातुलुङ्गरसं तथा ।
दधि देयं चतुर्भागं गर्भमेषां समावपेत् ॥ ३४७ ॥
पुनर्नवोषणं दन्ती त्रीण्येव लवणानि च ।
हिस्रा रास्ना बला चैव यवानी चाम्लवेतसम् ॥ ३४८ ॥
विडङ्गं दाडिमं हिङ्गु ग्रन्थिकं त्रिवृता तथा ।
द्वौ क्षारावजमोदा च पाठा पाषाणभेदकम् ॥ ३४९ ॥
ऊषको वृषको भार्गी श्वदंष्ट्रा हपुषा तथा ।
त्रपुषैर्वारुबीजानि शतावर्युपकुञ्चिका ॥ ३५० ॥
अजाजी चित्रको मूर्वा तुम्बरुर्गजपिप्पली ।
धान्यकं सुरसं चैतान् दद्यादक्षसमान् भिषक् ॥ ३५१ ॥
गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिरुत्तमम् ।
पित्तगुल्मं तथा सर्वान् गुल्मानन्यान्व्यपोहति ॥ ३५२ ॥
एकाङ्गसंश्रये पक्षवधे दुष्टे च रेतसि ।
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे सर्पिरेतद्यथाऽमृतम् ॥ ३५३ ॥
यक्ष्माणं नाशयत्येतदपस्मारं च नाशयेत् ।
दाधिकं नाम विख्यातमात्रेयानुमतं स्मृतम् ॥ ३५४ ॥

गुल्मरोग में दाधिक घृत—सुषवी (मंगरैल), दोनों पञ्चमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू), अश्वगन्धा, पुनर्नवा, काला (मगरैल), गुडूची, रास्ना, गोखरू, वरियार, कपूरकचरी, पुष्करमूल, देवदारु—दो २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे और उसमें वैर, कुल्थी, माष तथा यव एक २ प्रस्थ (मोटा चूर्ण बनाकर) मिला दे । चतुर्थांश शेष क्वाथ से घृत एक प्रस्थ तथा शुक्त, आरनाल (छिलकारहित कच्चे गेहूँ को पकाकर या तीन दिन तक अनुसंधान के द्वारा सिद्ध द्रव), तुषोदक (छिलकासहित कच्चे यव के टुकड़ों को जल में तीन दिन तक अनुसन्धान विधि से सिद्ध किया हुआ द्रव भाग), अनार का रस, आमड़ा का रस, विजौरा नीबू का रस—समभाग तथा दधि घृत के चौगुना मिलाकर, पुनर्नवा, ऊषण (मरिच), दन्ती (वाकुची), सेन्धा, सौवर्चल तथा विडनमक, हिस्रा (हैस), रास्ना, वरियार, अजवायन, अम्लवेंत, विडग, अनार, हींग, पिपरामूल, निशोथ, सज्जीखार, यवाखार, अजमोदा, पाठा, पाषाणभेद, ऊषक (क्षारमृत्तिका—रेह), अडूसा, भांगरा, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), हाऊवेर, त्रपुष बीज (खीरा का बीज), एर्वारु बीज (ककड़ी का बीज), शतावरी, मगरैल, स्याह जीरा, चित्रक, मूर्वा (मोरवेल), तुम्बरु, गजपीपर, धनिया, तुलसी एक २ अक्ष-इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत सिद्ध करे और

इस उत्तम घृत को पान कराये। यह घृत पित्त गुल्म तथा अन्य सभी गुल्मों को नाश करता है और एकांग-आश्रित, पक्षाघात, दुष्ट वीर्य दोष, हृदय रोग-तथा ग्रहणी रोग में अमृत के समान है। यक्ष्मा तथा अपस्मार को नाश करता है। यह प्रसिद्ध दाधिक नामक घृत आत्रेय महर्षि का निर्मित कहा गया है॥ ३४३–३५४॥

गुल्मे लशुनघृतम्—

तुलां लशुनकन्दानां पृथक् पञ्चपलांशकान्।
त्र्यूषणत्रिफलाहिङ्गुयवानीचव्यचित्रकान्॥ ३५५॥
साम्लवेतससिन्धूत्थदेवदारून् पचेज्जले।
तेन पक्वं घृतप्रस्थं गुल्मवातविकारनुत्॥ ३५६॥

गुल्म रोग में लशुन घृत—लहशुन का कन्द एक तुला, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), हिंगु, अजवायन, चव्य, चित्रक, अम्लवेत, सैन्धानमक तथा देवदारु पांच २ पल लेकर (चौगुने) जल में पकावें चतुर्थांश शेष क्वाथ के साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत गुल्म रोग तथा वात विकारों को नाश करता है॥ ३५५–३५६॥

गुल्मे महाषट्पलं घृतम्—

नागरस्य तुलार्धं तु जलद्रोणे विपाचयेत्।
चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ ३५७॥
शुक्तेन मस्तुना चैव दाडिमैर्बदरोदकैः।
चतुर्गुणैर्द्रवैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ ३५८॥
सौवर्चलं विडं चैव पौतिकं चोषकस्तथा।
अजाजी पिप्पली चैव ह्यजगन्धा यवाग्रजः॥ ३५९॥
सैन्धवं पञ्चकोलं च हिङ्गु चौद्भिदमेव च।
एतैः पलार्धकैर्द्रव्यैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ ३६०॥
कृमिप्लीहोदराजीर्णज्वरगुल्मप्रमेहकान्।
वातरोगानशेषांश्च हिक्कां शूलमरोचकम्॥ ३६१॥
पाण्डुरोगं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसंक्षयम्।
महाषट्पलसातङ्कान् भिनत्त्यशनिवद् गिरिम्॥ ३६२॥

गुल्म रोग में महाषट्पल घृत—सोंठ आधा तुला (पचास पल) एक द्रोण जल में पकावे, और चतुर्थांश शेष क्वाथ छान कर इस कषाय में शुक्त, मस्तु (दही का तोड), अनार का रस, बैर का रस इन द्रव्यों के चौगुने रस को मिलाकर एक प्रस्थ घृत, सौवर्चल नमक, विडनमक, पौतिक (पूतिकरंज), ऊषक (क्षार मृत्तिका—रेह,), स्याह जीरा, पीपर, अजगधा (अजमोदा)

यवाखार, सेन्धानमक, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), हिंगु, औद्भिदनमक—आधा २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ मन्द आंच से सिद्ध करे। यह महापट्पल नामक घृत, कृमि रोग, प्लीहोदर, अजीर्ण, ज्वर, गुल्म रोग, प्रमेह, सभी प्रकार के वात रोग, हिक्का (हिचकी), शूल, अरोचक, पाण्डु रोग, प्रतिश्याय, दौर्बल्य, मन्दाग्नि तथा अनेक रोगों के उपद्रवों को नष्ट करता है जैसे इन्द्र का वज्र पर्वतको नष्ट कर देता है ॥ ३५७–३६२ ॥

उन्मादे कल्याणकं घृतम्—

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिराऽनन्ता हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियङ्गवः ॥ ३६३ ॥
नीलोत्पलं च मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमवल्कलम् ।
तालीसपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं त्रुटिः ॥ ३६४ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मके ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षप्रमाणकैः ॥ ३६५ ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्देऽनले क्षये ॥ ३६६ ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ ३६७ ॥
कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषेष्वसृग्दरेषु च ।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ३६८ ॥
शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
अलक्ष्मीपापरोगघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३६९ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्माद में कल्याणक घृत—विशाला (इन्द्रायण), त्रिफला (हरें, बहेडा, आंवला), कौन्ती (रेणुका बीज), देवदारु, एलवालु, शालपर्णी, अनन्तमूल, दोनों हल्दी (आमाहल्दी, दारुहल्दी), कृष्ण सारिवा, रक्त सारिवा, प्रियंगु (मालकांगनी), नीलकमल, मजीठ, दन्ती (वाकुची), अनार का छिलका (अनार के फल का छिलका), तालीसपत्र, बडी कटेरी, मालती का फूल, त्रुटि (छोटी इलायची), विडंग, पिठवन, कूठ, चन्दन, पद्मकाठ—एक २ अक्ष—इन अट्ठाइस द्रव्यों के साथ चौगुना (चार प्रस्थ) जल मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह कल्याणक नामक घृत, अपस्मार (मूर्च्छा), ज्वर, कास, सूखा रोग, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, वमन, अर्शरोग, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प रोग (सारे शरीर में फैलनेवाला क्षुद्र कुष्ठ), कण्डु, पाण्डु रोग, उन्माद, विषजन्य उपद्रव तथा रक्त-प्रदर मे और भूत दोष

से विक्षिप्त चित्तवाले, हकलाकर बोलनेवाले तथा चेतनाहीन व्यक्ति के लिये प्रशस्त है (अर्थात् उक्त इन रोगों को नाश करता है), वाझ स्त्रियों को सन्तान-प्रद, धन, आयु तथा बल देनेवाला है। दरिद्रता तथा पापजन्य रोगों को नाश करता है। सभी ग्रह-दोषों को दूर करता है और पुंसवन (पुत्रोत्पादन-शक्ति देने) में श्रेष्ठ है ॥

उन्मादे द्वितीयं कल्याणकं घृतम्—

सारिवाद्वितयं पर्ण्यौ नतं कुष्ठं निशाद्वयम् ॥ ३७० ॥
दाडिमं चन्दनं व्याघ्री निकुम्भा त्रिफलेन्द्रिका ।
तालीसं पद्मकं चैला मञ्जिष्ठोत्पलदारुकम् ॥ ३७१ ॥
इभोषणा विडङ्गानि प्रियङ्गुश्चाश्मभेदकः ।
यवानी मुकुलं जात्या मुस्तकं कर्षसंमितम् ॥ ३७२ ॥
कल्कैरेषां घृतप्रस्थं सिद्धं कल्याणकं स्मृतम् ।
रक्तपित्तज्वरोन्मादकासकण्डूविनाशनम् ॥ ३७३ ॥

उन्माद में द्वितीय कल्याणक घृत—कृष्ण सारिवा, रक्त सारिवा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, तगर, कूठ, आमाहल्दी, दारुहल्दी, अनार, रक्त चन्दन, भटकटैया, निकुम्भा (दन्ती), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आवला), इन्द्रिका (इन्द्रवारुणी), तालीसपत्र, पद्मकाठ, इलायची, मजीठ, नील कमल, देवदारु, गजपीपर, पीपर, विडग, फूल प्रियंगु, पाषाणभेद, अजवायन, चमेली का फूल, मोथा—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (चौगुने जल में) एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। इस सिद्ध घृत को कल्याणक घृत कहते हैं। यह घृत रक्तपित्त-ज्वर, उन्माद, कास तथा कण्डू को नाश करता है ॥ ३७०–३७३ ॥

उन्मादे तृतीय कल्याणक घृतम्—

विशालैलाधरापद्मदेवदार्वेलवालुकैः ।
द्विसारिवानिशाद्वन्द्वद्विस्थिराफलिनीनतैः ॥ ३७४ ॥
बृहतीकुष्ठमञ्जिष्ठानागकेशरदाडिमैः ।
वेल्लतालीसपत्रैलामालतीकुसुमोत्पलैः ॥ ३७५ ॥
दन्तिपद्मकचन्द्रैश्च कर्षांशैः सर्पिषः पचेत् ।
प्रस्थं भूतग्रहोन्मादकासापस्मारपापनुत् ॥ ३७६ ॥
पाण्डुकण्डूविषे शोषे मेहे मोहे ज्वरे गरे ।
अरेतस्यनपत्ये च देवोपहतचेतसि ॥ ३७७ ॥
अमेधसि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ।
बल्यं मङ्गल्यमायुष्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ॥ ३७८ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

उन्माद रोग में तृतीय कल्याणक घृत—इन्द्रायण, इलायची, अधरा, पद्म (कमल), देवदारु, एलवालु, कृष्णसारिवा, रक्त सारिवा, आमाहल्दी, दारु-हल्दी, द्विस्थिरा (शालपर्णी, पृश्निपर्णी), फलिनी (प्रियंगु) तगर, बड़ी कटेरी, कूठ, मंजीठ, नागकेशर, अनार, विडंग, तालीसपत्र, बडी इलायची, मालती का फूल, नीलकमल का फूल, दन्ती, पद्मकाठ, चन्द्र (गुडूची)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (चौगुने—चार प्रस्थ, जल में) घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। यह घृत भूतदोष, ग्रहदोष, उन्माद, कास, अपस्मार तथा पापजन्य रोग को दूर करता है। यह कल्याणक घृत, पाण्डुरोग, कण्डू, विषजन्य रोग, सूखा रोग, प्रमेह, मोह, ज्वर, गर (संयोगज विष) जन्य रोग, वीर्यहीन, सन्तानहीन, देवाक्रान्तचित्त, धारणाशक्तिहीन—एक-एक कर बोलना, स्मरण शक्ति चाहने वाले तथा मन्दाग्नि वाले रोगियों के लिये श्रेष्ठ है (अर्थात्-उक्त रोगों को नाश कर अभीष्ट लाभ देने वाला है)। और बल, कल्याण (रोगनाशक) आयुवर्द्धक, कान्ति—सौभाग्य तथा पुष्टि को देने वाला है तथा पुंसवन (पुंस्त्वाधान) कर्म में श्रेष्ठ है ॥ ३७४–३७८ ॥

उन्मादे महाकल्याणकं घृतम्—

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ॥ ३७९ ॥
रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् ।
द्विकाकोलीवरीमेदाकपिकच्छुविषाणिभिः ॥ ३८० ॥
शूर्पपर्णीयुतैरेभिर्महाकल्याणकं परम् ।
बृहणं सन्निपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ॥ ३८१ ॥

उन्माद रोग मे महाकल्याणक घृत—ऊपर कहे गये रोगों को दूर करने के लिये—द्विसारिवा आदिक एक्कीस औषधियों को जल में पका कर चतुर्थांश क्वाथ में, चौगुना नवप्रसूता, नयी व्यायी) गाय का दूध मिला कर, काकोली, क्षीर काकोली, शतावरी, मेदा, केवाछबीज, विषाण (मेढ़ासिंघी), शूर्पपर्णी (मुद्गपर्णी)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत सिद्ध करे। यह महाकल्याणक घृत अत्यन्त बृंहण (बल-मांसादिवर्द्धक), सन्निपातनाशक तथा पहले के योग से भी गुणों में अधिक लाभप्रद है। (इस योग में किसी भी वस्तु का परिमाण निर्देश नहीं है अतः स्नेहपाक विधि के अनुसार घृत से चौगुना क्वाथ्य द्रव्य, क्वाथ्य द्रव्य से चौगुना जल, चतुर्थांश शेष क्वाथ तथा घृत के चतुर्थांश कल्क द्रव्य लेना चाहिए। नयी व्यायी गाय का दूध घृत के समभाग लेना चाहिए) ॥ ३७९–३८१ ॥

विसर्पे महागौरं घृतम्—

क्षीरवृक्षप्रवालानि कुमुदान्युत्पलानि च ।

सौगन्धिकानि पद्मानि शालूकानि बिसानि च ॥ ३८२ ॥
मृणालकुशकासेक्षुदर्भगुन्द्रेक्षुवालिकाः ।
नलवेतसकुम्भीकनालीसर्जार्जुनस्वनाः ॥ ३८३ ॥
कदलीपत्रशेवालकसेरुघोटकानि च ।
परूषकमधूकानि श्रीपर्ण्यामलकानि च ॥ ३८४ ॥
लामज्जकं विदारी च चन्दनं च शतावरी ।
समङ्गा धातकी रोध्र जीवनीयानि यानि च ॥ ३८५ ॥
शीतवीर्यास्तु ये केचिज्जलजानूपसंश्रिताः ।
एतत्संभृत्य संभारं क्षीरद्रोणेषु सप्तसु ॥ ३८६ ॥
पचेन्निस्राव्य तच्छीतं मन्थानेन विमन्थयेत् ।
यत्ततो जायते सर्पिस्तत्पचेत्पुनरेव तु ॥ ३८७ ॥
द्रव्यैस्तैरेव पूर्वोक्तैः शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ।
हन्यादेतद्विसर्पास्तु सर्वधातुश्रितान् व्रणान् ॥ ३८८ ॥
तोयमग्नि यथा दीप्तं नाम्ना गौरं घृतं महत् ।

विसर्प रोग में महागौर घृत—क्षीर वृक्ष (गूलर) के मुलायम पत्ता, कुमुद (श्वेत कुइयां), नीलकमल, सौगन्धिक (गन्धपाषाण), पद्म, (ईषत्, श्वेत कमल), शालूक (कमलकन्द), बिस (कमल-नाल-तन्तु), मृणाल, कुश, कास, इक्षु (गन्ना), दर्भ (कुश विशेष), गुन्द्रा (गोंद पटेल की जड़ मृदु दर्भ), इक्षुवालिका (मृदु गन्ना), नल (पोटगल, "नरकट"), वेंत, जलकुम्भी, नाली (नालीशाक), सर्ज (चीड़), अर्जुन, स्वन, केला का पत्ता, सेवार, कसेरू, (मोथा), घोटक (साखू), फालसा, महुआ, श्रीपर्णी (गम्भारी), आंवला, लामज्जक (दीर्घमूल कमलभेद), विदारीकन्द, रक्तचन्दन, शतावरी, मंजीठ, धाय का फूल, लोध, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी), शीतवीर्य द्रव्य (इक्षु, आमला आदि) जल मे उत्पन्न द्रव्य, निम्न प्रदेश मे उत्पन्न द्रव्य, इन सभी द्रव्यों को (अधिक से अधिक उपलब्ध द्रव्यों को), एकत्र कर सात द्रोण दूध से पकावे और उस दूध को छान कर मथनी से मथ कर घृत निकाले। इस घृत को पूर्वोक्त द्रव्यों के कल्क (घृत के चौगुना पानी मिला कर) के साथ पुनः धीरे २ मन्द आंच से सिद्ध करे। यह महागौर नामक घृत सर्व धातुगतविसर्प तथा व्रणों को नाश करता है। जैसे जल प्रदीप्त अग्नि को शान्त कर देता है।

सप्ताङ्ग घृतम्—

शङ्खपुष्पीगुडूच्युग्राशतावर्यर्कवल्लिकाः ॥ ३८९ ॥

मलपूं ब्रह्मसोमां च कल्कीकृत्य घृतं पचेत् ।
दुग्ध चतुर्गुणं दत्त्वा वातश्लेष्महरं च तत् ।
मेधाकरं तथाऽऽयुष्यं सप्ताङ्गमिति कीर्तितम् ॥ ३९० ॥

सप्ताङ्ग घृत—शंखपुष्पी, गिलोय, वच, शतावरी, अर्कवल्लिका (अर्कलता), मलपू (काष्ठोदुम्बर), ब्रह्मसोमा (ब्राह्मी)—इन द्रव्यों को कल्क बनाकर चौगुने दूध में घृत सिद्ध करे। यह सप्ताङ्ग घृत वातश्लेष्मनाशक तथा मेधा (धारणाशक्ति) और आयु को देनेवाला है। (इस योग मे परिमाण का संकेत नही है। अतः घृत के चतुर्थांश कल्क द्रव्य लेना चाहिए। शेष पूर्ववत् स्नेह पाकविधि के अनुसार घृत सिद्ध करे) ॥ ३८९-३९० ॥

अष्टाङ्गं घृतम्—

मण्डूकी सवचां सशङ्खकुसुमां ब्राह्मीं गुडूचीं तथा
श्वेतां वाकुचिकां वरीपरियुतां सब्रह्मसौवर्चलाम् ।
कृत्वांऽशैः पलिकैरिमानि विधिवद् द्रव्याणि तैः कल्कितैः
सर्पिःप्रस्थमथाढकेन पयसा युक्त्या पचेद् बुद्धिमान् ॥३९१॥
नाम्नाऽष्टाङ्गमिदं विदेहविहितं ख्यातं घृत यः पिबेत्
स श्लोकस्य सहस्रमेकदिवसे श्रुत्वाऽखिलं धारयेत् ।
अक्षीणप्रतिभः सुचारुवदनः स्पष्टाभिभाषी भवे-
ल्लोके शुक्रबृहस्पतिप्रतिसमः पूज्यश्च राज्ञो भवेत् ॥ ३९२ ॥

अष्टाङ्ग घृत—मण्डूकी (मण्डूकपर्णी), वच, शखपुष्पी, ब्राह्मी, गिलोय, श्वेतवाकुची, शतावरी, ब्रह्म सौवर्चला (हुलहुल)—एक २ पल—इन द्रव्यों को विधिपूर्वक कल्क बनाकर, इस कल्क के साथ घृत एक प्रस्थ, दूध चार—आढक मिलाकर, बुद्धिमान् वैद्य पकावे। इस अष्टाङ्ग नामक विदेह-कथित प्रसिद्ध घृत को जो व्यक्ति पान करता है वह व्यक्ति एक दिन मे एक हजार श्लोक सुनकर सभी श्लोकों को धारण (याद) कर लेता है। सुन्दर मुख, क्षीण प्रतिभावाला (अस्पष्टभाषी) व्यक्ति साफ २ बोलने लगता है और लोक मे शुक्राचार्य तथा बृहस्पति (गुरु) के समान विद्वान् और राजावों का पूज्य हो जाता है ॥ ३९१-३९२ ॥

बालग्रहे फलघृतम्—

बर्हिष्ठकुष्ठमञ्जिष्ठाकटुकैलानिशाद्वयैः ।
तोयदत्रिफलाकौन्तीवाजिगन्धामरुद्रुमैः ॥ ३९३ ॥
वचामेदाजमोदाह्वाकाकोलीयष्टिपद्मकैः ।
सशर्करैर्हितं सर्पिः पक्वं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३९४ ॥

---

१. 'पलसंमितानि' इति पा० ।

बालानां ग्रहजुष्टानां पुंसां दुष्टाल्परेतसाम् ।
ख्यात फलघृतं स्त्रीणां वन्ध्यानां चापि गर्भदम् ॥ ३९५ ॥

बाल ग्रह से फल घृत—बर्हिष्ट (दर्भ), कूठ, मंजीठ, कुटकी, इलायची, आमाहल्दी, दारुहल्दी, तोयद (मोथा), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), कौन्ती (रेणुकाबीज), अश्वगन्धा, मरुद्रुम (विट्खदिर), वच, अजमोदा, काकोली, यष्टी (मुलेठी), पद्मकाठ, शर्करा—(समभाग)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, चौगुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करें। यह घृत ग्रहपीडित बालकों के तथा दुष्टवीर्य, अल्पवीर्य वाले पुरुषों के लिये हितकर है। यह प्रसिद्ध फल घृत बांझ स्त्रियों को भी गर्भ (पुत्र) देनेवाला है ॥ ३९३-३९५ ॥

चतुर्थकज्वरे महापैशाचकं घृतम्—

त्रायमाणा जया वीरा नाकुली गन्धनाकुली ।
कायस्था च वयस्था च चोरकश्च पलङ्कषा ॥ ३९६ ॥
सूकरी जटिला छत्रा सातिच्छत्रा सुमर्कटी ।
मोरटा पूतना केशी स्थिरा कटुकरोहिणी ॥ ३९७ ॥
महापुरुषदन्ता च वृश्चिकाली कुटन्नटा ।
सिद्धमेभिर्घृत पेय चातुर्थकविनाशनम ॥ ३९८ ॥
महापैशाचक नाम सर्पिरेतज्ज्वरापहम् ।
भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ॥ ३९९ ॥

चातुर्थक ज्वर में महापैशाचक घृत—त्रायमाणा, जयन्ती, वीरा (क्षीर-काकोली), नाकुली (सर्पगन्धा), कायस्था (छोटी इलायची), वयस्था (गुडूची), चोरक (चोरा), गुग्गुलु, सूकरी (वाराहीकन्द), जटिला (जटामांसी), छत्रा (सौंफ), अतिछत्रा (सोवा), सुमर्कटी (अजमोदा), पूतना (हर्रे), केशी (गन्धमासी), शालपर्णी, कुटकी, महापुरुषदन्ता (शतावरी), वृश्चिकाली (मेढासिंघी), कुटन्नटा (केवटीमोथा)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (घृत के चौगुना जल से) सिद्ध घृत पान करने से चातुर्थिक ज्वर को नाश करता है यह पैशाचिक नामक घृत ज्वर को नाश करता है और भूतबाधा, ग्रहबाधा, अपस्मार तथा उन्माद को दूर करता है। इस योग मे परिमाण-निर्देश नहीं है अत स्नेहपाक-विधिवत् परिमाण-कल्पना करनी चाहिए ॥ ३९६-३९९ ॥

शोषे जीवन्त्याद्यं घृतम्—

जीवन्ती मधुक द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ ४०० ॥
त्रायमाणां च भूधात्रीं नीलोत्पलदुरालभे ।

पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतमेभिर्विपाचयेत् ॥ ४०१ ॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगराजस्य चोच्छ्रितम् ।
एकादशविधं रूपं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति ॥ ४०२ ॥

शोथ रोग में जीवन्त्याद्य घृत—जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, इन्द्रयव, कपूरकचरी, पुष्करमूल, भटकटैया, गोखरू, वरियार, त्रायमाणा, शुद्ध आंवला, नीलकमल, धमासा, पीपर—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (घृत के चौगुना जल में) घृत पकावे । यह घृत ग्यारह प्रकार के उग्र रोग-समूह राजयक्ष्मा को शीघ्र ही दूर करता है । (परिमाण-निर्देश न होने के कारण स्नेहपाकविधिवत् परिमाण-कल्पना करनी चाहिए) ॥ ४००-४०२ ॥

महातिक्तक घृतम्—

निम्बः सप्तच्छदः पाठा गुडूची सशतावरी ।
कृतमालः करञ्जौ द्वौ खदिरो वत्सको धवः ॥ ४०३ ॥
पर्पटश्च पटोलश्च विशाला चित्रकस्तथा ।
एतानि समभागानि कषायमुपकल्पयेत् ॥ ४०४ ॥
भेषजानि प्रपेष्याणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ।
भूनिम्बः कटुका मुस्ता दन्ती पर्पटको वचा ॥ ४०५ ॥
विशालातिविषे मूर्वा यष्ट्याह्वं सारिवाद्वयम् ।
अवल्गुजा हरिद्रे द्वे दुःस्पर्शा रक्तचन्दनम् ॥ ४०६ ॥
कृमिघ्नः पिप्पली पाठा चित्रको देवदारु च ।
भल्लातकान्युशीरं च शम्पाकः सकलिङ्गकः ॥ ४०७ ॥
एतैरक्षसमप्रमाणैस्तु घृतस्यार्धाढकं पचेत् ।
द्विगुणस्तु रसो धात्र्या घृतात्क्वाथश्चतुर्गुणः ॥ ४०८ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते ।
वातरक्तं सवीसर्पं रक्तस्रावं च दारुणम् ॥ ४०९ ॥
पित्तासृक्कामलाकण्डूगरान् योगशतैरपि ।
असाधितान् महारोगान् महातिक्तं प्रसाधयेत् ॥ ४१० ॥

महातिक्तक घृत—नीम, छतिवन, पाठा, गिलोय, शतावरी, कृतमाल, (अमलतास), करज, पूतिकरंज, खदिर, विटखदिर, कोरैया, धाय का फूल, पित्तपापड़ा, परोरा, इन्द्रायण, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर (चौगुने जल में) कषाय सिद्ध करे । और (उसमें चतुर्थांश शेष क्वाथ में) चिरायता, कुटकी, मोथा, दन्ती, पित्तपापड़ा वच, इन्द्रायण, अतीस, मूर्वा (मोरवेल), जेठीमधु, कृष्णसारिवा, रक्तसारिवा, वाकुची, आमाहल्दी, यवासा, रक्तचन्दन, विडंग, पीपर, पाठा, चित्रक, देवदारु, शु० भल्लातक, खस, शम्पाक (अमलतास),

इन्द्रयव—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, एक आढक घृत और घृत से दुगुना (दो आढक) आवला का रस (चौगुना क्वाथ चार आढक) मिला कर पकावे । मनुष्य इस घृत को पीकर सभी प्रकार के कुष्ठों से मुक्त हो जाता है । यह महातिक्तक घृत वातरक्त, वीसर्प (छलकई माई), भयंकर रक्तस्राव, रक्तपित्त, कामला, कण्डरोग तथा सैकड़ों ओषधियों से असाध्य महारोगों को भी साधता (दूर करता) है ॥ ४०३–४१० ॥

वातव्याधौ दशमूलाद्यं घृतम्—

द्रोणेऽम्भसः पचेद्भागान् दशमूल्याश्चतुष्पलान् ।
यवकोलकुलत्थानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह ॥ ४११ ॥
पादशेषे रसे पिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः ।
तथा खर्जूरकाश्मर्यद्राक्षाबदरफल्गुभिः ॥ ४१२ ॥
सक्षीरैः सर्पिषः प्रस्थं सिद्धं केवलवातनुत् ।
निरत्ययं प्रयोक्तव्यं पानाभ्यञ्जनबस्तिषु ॥ ४१३ ॥

वात व्याधि मे दशमूलाद्य घृत—दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू)—चार पल, यव, कोल (बैर), कुलत्थ—एक २ प्रस्थ—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल मे पकावे । चतुर्थांश शेष क्वाथ में जीवनीयगण—जीवक, ऋषभक, मेदा, महा- मेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी, शर्करा, खजूर, गम्भारी, मुनक्का, बैर, फल्गु (काष्ठोदुम्बरिका)—इन द्रव्यों के (घृत से चौथाई) कल्क तथा घृत के समभाग दूध के साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे । यह घृत केवल वात रोग को नाश करता है । इस घृत को प्रतिदिन पान, अभ्यञ्जन (मर्दन) तथा वस्तिकर्म से प्रयोग करना चाहिए ॥४११–४१३॥

कासे बृहत्कण्टकारीघृतम्—

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्या रसाढके ।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ ४१४ ॥
सौवर्चलयवक्षारबिल्वामलकपौष्करैः ।
सैन्धवग्रन्थिपर्णोग्रादेवदारुपयोधरैः ॥ ४१५ ॥
वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीदाडिमर्धिभिः ।
द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालम्भाम्लवेतसैः ॥ ४१६ ॥
शृङ्गीतामलकीभार्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ।
कल्कैश्च सर्वकासेषु हिक्काश्वासेषु शस्यते ।
कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४१७ ॥

कासरोग में बृहत्कण्टकारी घृत—कण्टकारी (भटकटैया) के मूल, पत्र, शाखा के एक आढक रस में बला, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), विडंग, कपूरकचरी, चित्रक, सौवर्चलनमक, यवक्षार, बेल, आंवला, पुष्करमूल, सेन्धानमक, ग्रन्थिपर्णी (दूर्वा), वच, देवदारु, मोथा, वृश्चीव (श्वेतपुनर्नवा), वनभंटा, हर्रे, अजवायन, अनार, ऋद्धि, मुनक्का, रक्तपुनर्नवा, चव्य, धमासा, अम्लवेत, काकडा सिंघी, भुइ आंवला, भांगरा, रास्ना, गोखरू—इन द्रव्यों के कल्क (घृत से चतुर्थांश) के साथ एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत सभी प्रकार के कास, हिक्का तथा श्वास रोगों में प्रशस्त (लाभप्रद) है। यह सिद्ध कण्टकारी घृत कफ रोगों को नाश करनेवाला है ॥ ४१४–४१७ ॥

व्रणे जात्याद्यं घृतम्—

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवा-
मञ्जिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ४१८ ॥

व्रण रोग में जात्याद्य घृत—चमेली का पत्ता, नीम का पत्ता, परोरा का पत्ता, कटुकी, दारुहल्दी, आमाहल्दी, सारिवा, मंजीठ, हर्रे, मोम, तूतिया, मुलेठी, नक्ताह्वबीज (करंज का बीज)—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (चौगुने जल में) घृत सिद्ध करे। इस घृत के प्रयोग करने से छोटे मुख, मर्मगत, स्राव युक्त, गहरा, पीडा युक्त तथा एक स्थान से दूसरे शरीर के हिस्से में बढ़ने वाले व्रणों को शुद्ध करता है तथा रोहण (भरने मे) क्रिया में सहायक होता है। (स्नेहपाक विधि के अनुसार अनुक्त मान की कल्पना कर लेनी चाहिए) ॥ ४१८ ॥

प्रवाहिकायां त्र्यूषणाद्यं घृतम्—

त्र्यूषणं त्रिफलां निम्बं चित्रको गजपिप्पली।
बिल्वं कर्कोटिका हिस्रा विडङ्गानि निदिग्धिका ॥ ४१९ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे।
पीतं प्रयोगतः काले हन्यादेतत्प्रवाहिकाम् ॥ ४२० ॥

प्रवाहिका मे त्र्यूषणाद्य घृत—त्र्यूषण, (सोठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), नीम, चित्रक, गजपीपर, बेल, काकडासिंघी, हिस्रा (हैंस), विडंग, भटकटैया—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क (घृत से चौथाई) के साथ घृत से चौगुने गोमूत्र में एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। यह घृत नियमपूर्वक समय पर पान करने से प्रवाहिका को नाश करता है ॥ ४१९–४२० ॥

रक्तपित्ते कसेरुकं घृतम्—

द्राक्षेक्षुकाश्मर्यशतावरीणां तथा विदार्याः स्वरसस्य चैव ।
कसेरुकाणां तु तथा कषायं प्रस्थं पृथक् क्षीरचतुर्गुणं च ॥ ४२१ ॥
घृतं तु वर्या अथ सिन्दुवारात्त्रायन्तिकाया अपि कल्कसिद्धम् ।
प्रायोगिकं सर्पिरुदाहरन्ति कसेरुकं मारुतपित्तघाति ।
विसर्पदाहज्वररक्तपित्ते क्षीणक्षतानां च रसायनं वै ॥ ४२२ ॥

रक्तपित्त में कसेरुक घृत—द्राक्षा, गन्ना, गम्भारी, शतावरी, विदारीकन्द—इन द्रव्यों का स्वरस तथा कसेरुक का कषाय एक २ प्रस्थ (स्वरस न प्राप्त होने पर कषाय बना लेना चाहिए), गायका दूध घृत से चौगुना (चार प्रस्थ), शतावरी, सिन्दुवार, त्रायमाणा का कल्क (घृत मे चतुर्थांश) तथा घृत (दो प्रस्थ) मिलाकर पकावे। यह प्रयोगसिद्ध कसेरुक घृत, वात-पित्तनाशक कहा जाता है और विसर्प, दाह, ज्वर, रक्तपित्त में, तथा उरःक्षत के रोगियों के लिये रसायन है ॥ ४२१–४२२ ॥

नेत्ररोगे द्राक्षाद्यं घृतम्—

द्राक्षा प्रधाना सितशर्करा च राजादनं स्यान्मधुयष्टिका च ।
नीलोत्पलं योजनवल्लिका च काकोलिके पद्मकजीवकौ च ॥ ४२३ ॥
द्व्यक्षप्रमाणैर्विपचेद् घृतस्य प्रस्थं समग्रं पयसा च तुल्यम् ।
नेत्रास्रराजीपटलानि काचमश्रुप्रसेकं तिमिरं च हन्ति ।
दृष्टिप्रसादं च परं करोति शिरोर्धरोगे च हितं नराणाम् ॥ ४२४ ॥

नेत्र रोग में द्राक्षाद्य घृत—बडा मुनक्का, शर्करा, चिरौंजी, मुलहठी, नील-कमल, योजन वल्लिका (मजिष्ठा), काकोली, क्षीरकाकोली, पद्म काठ, जीवक दो २ अक्ष इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत, घृत के बराबर दूध मिला-कर पकावे। यह घृत नेत्रस्राव, राजी पटल (पलक के अन्दर मोती के तरह दाना होना), काच (नेत्र दृष्टिभागगत रोग), अश्रु प्रसेक (अश्रु स्राव) तथा तिमिर (दृष्टिमान्द्य) को नाश करता है दृष्टि साफ करता है और मनुष्यों के शिरोर्ध रोग (आधा शीशी) में हितकर होता है। (दूध घृत के बराबर है अतः घृत से तीन गुना पानी मिला लेना चाहिए) ॥ ४२३–४२४ ॥

रक्तपित्ते दाडिमाद्यं घृतम्—

दाडिमं तिन्तिडीकं च नागपुष्पं शतावरी ।
काकोली क्षीरकाकोली विदारी यक्षहस्तकः ॥ ४२५ ॥
बीजपूरकमूलं च राजवृक्षात्मगुप्तयोः ।
कुष्ठं चेति समैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२६ ॥

चतुर्गुणे दुग्धेन जलेनाष्टगुणेन च ।
तत्सर्पिः पिबतः सिद्धं कासश्वासापतानकाः ॥ ४२७ ॥
हृद्रोगो रक्तपित्तं च ह्यचिराद्यान्ति संक्षयम् ।

रक्तपित्त मे दाडिमाद्य घृत—अनार, तिन्तिडीक, नागकेशर, शतावरी, काकोली, चीरकाकोली, विदारीकन्द, एरण्ड मूल, बिजौरा नीबू की जड़, अमलतास, केवाछ बीज, कूठ—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ चौगुना दूध तथा आठ गुना जल मिलाकर, एक प्रस्थ घृत सिद्ध करे। इस घृत का पान करने से कास, श्वास, अपतानक, हृदय रोग तथा रक्तपित्त शीघ्र ही नाश हो जाते है। (इस योग मे कल्क द्रव्य घृत के चतुर्थांश लेना चाहिए) ॥

योनिरोगे बृहत्पञ्चमूलाद्यं घृतम्—

पञ्चमूलं बृहद्व्याघ्री त्रिवृदेरण्डकः पलम् ।
प्रत्येकं, तिल्वकस्याथ प्रस्थार्धं प्रस्थमुत्तमा ॥ ४२८ ॥
जलद्रोणे विपाच्यैतद्ग्राह्यं पादावशेषितम् ।
पादशेषे घृतप्रस्थं दध्याढकयुतं न्यसेत् ॥ ४२९ ॥
पलत्रयं यवक्षारकल्कं युक्त्या विपाचयेत् ।
योनिरोगेऽथ गुल्मेषु वर्ध्मेष्वप्युदरेषु च ॥ ४३० ॥

योनिरोग में बृहत्पञ्चमूलाद्य घृत—बृहत्पञ्च मूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी), भटकटैया, निशोथ, एरण्ड—एक २ पल, तिल्वक आधा प्रस्थ, उत्तमा (दुग्धिका) एक प्रस्थ—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में एक आढ़क (चार प्रस्थ) दही, तीन पल यवक्षार मिलाकर घृत एक प्रस्थ सिद्ध करे। यह घृत योनिरोग, गुल्मरोग, वर्ध्म तथा उदर रोगों में हितकर है ॥ ४२८–४३० ॥

अर्शसि पिप्पल्याद्यं घृतम्—

पिप्पलीमरिचहिङ्गुनागर मातुलुङ्गमथ बिल्वशुण्ठिका ।
कुष्ठधान्यकमथाम्लवेतसं क्षारवन्ति लवणानि पञ्च च ॥ ४३१ ॥
तिन्तिडीकमथ कारवी वचा दाडिमं च चविका तथैव च ।
चित्रकं च सपुनर्नवं भवेद्धस्तिपिप्पलियुता ह्यजाजिका ॥ ४३२ ॥
शुक्तिका बदरमूलपौष्कर पत्रकेण सह तुम्बरुः स्मृतः ।
कर्षभागसहितं तथा हरेच्छ्लक्ष्णपिष्टमथ संनयेत्ततः ॥ ४३३ ॥
प्रस्थमत्र तु घृतस्य दापयेद्दध्न एव च भवेत्तथाढकम् ।
सर्वमेतदभिमृश्य शास्त्रतः पाचयेत मृदुनाऽग्निना सुखम ॥ ४३४ ॥
मारुतोपहतगात्रचेतसां पार्श्वपृष्ठहनुजत्रुरोगिणाम् ।

क्षयगरविषदूषितान् मनुष्यान् गतवयसो बलवर्णविप्रयुक्तान् ।
घृतमिदमगदान् करोति सद्यः पवनकृतान् शमयेच्च सर्वरोगान् ॥४३५॥

अर्शरोग में पिप्पल्याद्य घृत—पीपर, मरिच, हिंगु, सोंठ, बिजौरा नीबू, बेल का सोंठ (बेल का सूखा फल), कूठ, धनिया, अम्लवेत, सज्जीखार, यवाखार, टंकण क्षार, सेन्धा-सौवर्चल-विड-साभर-सामुद्र नमक, तिन्तिडीक, मंगरैल, वच, अनार, चव्य, चित्रक, पुनर्नवा, गजपीपर, स्याह जीरा, शुक्तिका (अम्लिका), बेर, पुष्करमूल, तेजपत्र, तुम्बरु—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को लेकर महीन कल्क बनावे और घृत एक प्रस्थ, दही एक आढक (चार प्रस्थ)—इन सभी द्रव्यों को एक जगह मिलाकर शास्त्रविधिपूर्वक मन्द-आंच से पकावे । यह घृत वात से उपहत शरीर तथा चित्तवाले, पार्श्व-पृष्ठ-हनु-जत्रु के रोगियों के रोग को, क्षयरोग, गर (संयोगज विष) विष से दूषित, वृद्धावस्था वाले, बल तथा वर्ण (कान्ति) से रहित मनुष्यों को निरोग करता है और शीघ्र ही वातजन्य सभी रोगों को शान्त करता है ॥४३१–४३५॥

शिरोरोगे मायूरं घृतम्—

दशमूलीबलारास्नात्रिफलामधुकैः सह ।
मायूर पक्षपादान्त्रशकृत्पित्तास्यवर्जितम् ॥ ४३६ ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।
मधुरैः कार्षिकैर्द्रव्यैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ ४३७ ॥
कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।
मायूरमिति विख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ४३८ ॥

शिरोरोग में मायूर घृत—दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू), बरियार, रास्ना, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), मुलेठी—इन द्रव्यों के साथ पक्ष-पाद-आंत-विड्-पित्त तथा ठोररहित मयूर (मोर) के मांस को (चौगुने) जल में पकाकर (चतुर्थांश अवशिष्ट रस में) घृत के बराबर दूध मिलाकर एक कर्ष मधुर द्रव्यों के साथ घृत सिद्ध करे। यह शिरोरोग तथा अर्दित (आधे अंग का टेढ़ा होना) रोग को नाश करता है । कान नाक आँख-जिह्वा-मुख तथा गले के रोगों को नाश करने वाला है । यह प्रसिद्ध मायूर घृत जत्रु के ऊपर (गले के ऊपर) के रोगों का नाश करता है ॥ ४३६–४३८ ॥

महामायूर घृतम्—

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ॥ ४३९ ॥

जीवन्तीत्रिफलामेदामृद्वीकर्धिपरूषकैः ।
समङ्गाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ ४४० ॥
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।
मधुरापिण्डखर्जूरशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥ ४४१ ॥
शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुतैः ।
पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ॥ ४४२ ॥
मधूकाक्षोटवातामसुञ्जाताभिषुकैरपि ।
द्रव्यैरेभिर्यथालाभं घृतं सम्यग्विपाचयेत् ॥ ४४३ ॥
तत्पक्वं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् ।
शिरोरोगेषु सर्वेषु कासे श्वासे च दारुणे ॥ ४४४ ॥
मन्यापृष्ठग्रहे शोषे स्वरभेदे तथाऽर्दिते ।
योनिशुक्रप्रदोषेषु शस्तं बन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ४४५ ॥
ऋतुस्नाता तथा नारी पीत्वा पुत्रं प्रसूयते ।
महामायूरमित्येतद् घृतमात्रेयपूजितम् ॥ ४४६ ॥

महामायूर घृत—इन्हीं पूर्वोक्त (दशमूल, बरियार, रास्ना, त्रिफला, मुलेठी, पक्षादि रहित मयूर-मांस इन द्रव्यों के कषाय से) द्रव्यों के चौगुनावशिष्ट कषाय तथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, मुनक्का, ऋद्धि, फालसा, मंजीठ, चव्य, भांगरा, गम्भारी, देवदारु, केवाछ बीज, महामेदा, तालमज्जा, खजूरमज्जा, बेर, पिण्ड खजूर (छुहाडा), काकडासिंगी, जीवक, पद्मकाठ, शतावरी, विदारीकन्द, गन्ना, बडी कटेरी, सारिवा, पुनर्नवा, वंशलोचन, काकोली, धमासा, महुआ, अखरोट, बादाम, सुञ्जात (कन्द विशेष), अभिषुक (पिस्ताफल)—एक २ कर्ष—यथाप्राप्त इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ घृत अच्छी तरह सिद्ध करे। इस घृत को नावन (नस्य), आंजन, पान तथा वस्ति कर्म में प्रयोग करे। यह घृत सभी प्रकार के शिरोरोग, उग्र श्वास, कास, मन्याग्रह, पृष्ठग्रह, सूखा रोग, स्वर-विकृति, अर्दित (आधे अंग का टेढ़ होना), योनिदोष, शुक्रदोष तथा स्वरभेद में प्रशस्त (इन रोगों को दूर करने वाला) है और वांझ स्त्री को पुत्र देने वाला है तथा ऋतुमती स्त्री इस घृत को पीकर पुत्र पैदा करती है। यह महामायूर घृत आत्रेय महर्षि द्वारा पूजित है ॥ ४३९–४४६ ॥

अर्शोरोगेऽवाक्पुष्प्याद्यं घृतम्—

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृश्निपर्णी त्रिकण्टकः ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ४४७ ॥
चतुष्प्रस्थे शृतं प्रस्थ कषायमवतारयेत् ।

कल्कार्थं तत्र देया तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ४४८ ॥
कलिङ्गाः शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम् ।
कट्फलं चित्रको मुस्ता प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥ ४४९ ॥
कमलोत्पलकिञ्जल्कः समङ्गा सनिदिग्धिका ।
बिल्वं मोचरसः पाठा ग्राह्यं कर्षसमं पृथक् ॥ ४५० ॥
सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।
सर्वैरेभिर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५१ ॥
एतदर्शःस्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ४५२ ॥
उन्मादे बहुशश्चापि शोफे शूले गुदाश्रये ।
मूत्रग्रहे च मन्देऽग्नौ मूढवातेऽरुचौ तथा ॥ ४५३ ॥
प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ४५४ ॥

अर्शरोग में अवाक्पुष्प्याद्य घृत—सौंफ, बरियार, दारुहल्दी, पृष्ठिपर्णी, (पिठवन), गोखरू, वट, गूलर तथा पीपर का टूसा—दो २ पल, चार प्रस्थ जल में क्वाथ कर अवशिष्ट एक प्रस्थ क्वाथ में, जीवन्ती, भटकटैया, पीपर, पिपरामूल, मरिच, देवदारु, इन्द्रयव, सेमर का फूल, वीरा (भुइ आंवला), रक्तचन्दन, अञ्जन, कायफर, चित्रक, मोथा, प्रियंगु, अतीस, शालपर्णी, कमल, नीलकमल का पराग, मंजीठ, भटकटैया, बेल, सेमर का गोंद, पाठा—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, सुनिषण्णक (गिरआरी "चौपतिया") तथा चांगेरी (अम्लिका "अम्ललोनी–नोना" इति भाषा) का स्वरस दो प्रस्थ मिला कर घृत एक प्रस्थ पकावे । इस घृत को अर्शरोग, अतिसार, त्रिदोष, रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अनेक प्रकार के पिच्छारोग, अनेक प्रकार के उन्माद, शोथ, गुदशूल, मूत्राघात, मन्दाग्नि, मूढवात (प्रतिलोमवात) तथा अरुचि में विधिवत् प्रयोग करना चाहिए । यह घृत बल (मांसादि), वर्ण (कान्ति) तथा उदराग्नि को बढ़ानेवाला है । इसको अनेक प्रकार भोजन तथा पान में प्रयोग करना चाहिए या केवल निर्विघ्न सेवन करना चाहिए ॥ ४४७–४५४ ॥

अपतन्त्रके शुकनासाद्यं घृतम्—

बृहत्यौ शुकनासा च नागवल्ली महौषधम् ।
निचुलश्चैव भार्गी च काकादन्युपचेलिका ॥ ४५५ ॥
वर्षाभूश्चेति तैस्तुल्यैरक्षमात्रैः पचेद्भिषक् ।

तोयाढके घृतप्रस्थं सिद्धं तच्चापि पाययेत् ॥ ४५६ ॥
कासं श्वासं महाहिक्कां हृद्रोगं सापतन्त्रकम् ।
नातिक्रामेदिदं सर्पिर्वेलामिव महोदधिः ॥ ४५७ ॥

अपतन्त्रक रोग में शुकनासाद्य घृत—बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, शुकनासा (अरलु), नागवल्ली (पान का पत्ता), सोंठ, समुद्रफेन, भांगरा, काकादनी (कोआठोठी), उपचेलिका (या 'पापचेलिका' पाठ), पुनर्नवा—सम भाग—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक आढ़क जल में एक प्रस्थ घृत पकावे। तथा इस सिद्ध घृत को पान कराये। इस घृत को कास, श्वास, महाहिक्का (हिचकी), हृद्रोग तथा अपतन्त्रक रोग अनिक्रमण नहीं कर सकते (अर्थात् इस घृत का सेवन करने से ऊपर के रोग रह नहीं सकते) जैसे समुद्र किनारा को अतिक्रमण नहीं करता है ॥ ४५५–४५७ ॥

उन्मादे चैतसं घृतम्—

श्यामा मधुरसा रास्ना दशमूलं शतावरी ।
श्वदंष्ट्रा शणमूलं च तैर्युक्त्या क्वाथकल्कितैः ॥ ४५८ ॥
साधितं चैतसं नाम घृतं चेतोविकारनुत् ।
उन्मादमदमूर्च्छायज्वरापस्मारभेषजम् ॥ ४५९ ॥

उन्माद रोग में चैतस घृत—काला निशोथ, मुलेठी, रास्ना, दशमूल (बेल, गम्भारी, पाढल, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू), शतावरी, गोखरू, शणमूल (सन का जड)—समभाग—इन द्रव्यों के क्वाथ (घृत से चौगुना क्वाथ्य द्रव्य को चौगुने जल मे पकाकर चतुर्थांश शेष क्वाथ) तथा (घृत के चतुर्थांश) के साथ युक्तिपूर्वक घृत सिद्ध करे। यह घृत चित्तविकार को दूर करता है और उन्माद, मदजन्य उपद्रव, मूर्च्छा, ज्वर तथा अपस्मार का औषध है। (इस योग में परिमाण का निर्देश नहीं है अतः स्नेहपाक-विधि के अनुसार परिमाण की कल्पना करनी चाहिए) ॥ ४५८–४५९ ॥

क्षीणक्षते समदुग्धकं घृतम्—

षोडशभिर्जलपात्रैर्मृद्वीकायाः पलानि दश षट् च ।
अष्टौ मधुकपलानि छागान्मांसात्तुलार्धं च ॥ ४६० ॥
अवशिष्टपादतोयं पूतं शीतं कषायमवतार्य ।
दत्त्वा कषायतुल्यं पयोऽथ नवसर्पिषः प्रस्थम् ॥ ४६१ ॥
ऋषभकजीवकमेदाविदारिवीरात्मगुप्तानाम् ।
भव्याक्षोटनिकोचकशृङ्गाटकपद्मबीजानाम् ॥ ४६२ ॥

भागानक्षसमानथ संसाधयेत्तु मृद्वग्नौ ।
सम्यक् सिद्धे तस्मिन् सितशर्करापलान्यष्टौ ॥ ४६३ ॥
मधुनश्च पलान्यष्टौ चत्वारि पलानि पिप्पलीचूर्णात् ।
समदुग्धकघृतमेतज्जनकेश्वरपूजितं समुद्दिष्टम् ॥ ४६४ ॥
क्षीणक्षतेऽल्पशुक्रे तद्रक्तपैत्तिकेषु रोगेषु ।
स्त्रीकामेषु च देयं बल्यं वृष्यं च घृतमेतत् ॥ ४६५ ॥

क्षीणक्षत (उरःक्षत) रोग मे समदुग्धक घृत—मुनक्का सोलह पल, मुलेठी आठ पल, बकरी का मांस आधा तुला (पचास पल), सोलह पात्र (सोलह सेर) जल के साथ पकावे और चतुर्थांश शेष क्वाथ को उतार-छान कर ठंढा होने पर कषाय के बराबर दूध तथा एक प्रस्थ नवीन (ताजा) घृत, ऋषभक, जीवक, मेदा, विदारीकन्द, भुइ आंवला, केवाछ का बीज, भव्य (कर्मरंग वृक्ष "चालता" इति गो० भा०), अखरोट, निकोचक (अंकोट "ढेरा"), सिंघाडा, कमलगट्टा—समभाग—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ मन्द आंच से पकावे, अच्छी तरह सिद्ध हो जाने पर सितशर्करा आठ पल, मधु आठ पल, पीपर का चूर्ण चार पल मिला दे। यह समदुग्धक घृत जनक जी के द्वारा पूजित है। यह घृत उरःक्षत, अल्पवीर्य, रक्तपित्त रोग तथा स्त्री को चाहने वाले पुरुषों को देना चाहिए। यह बल्य (मांसादिवर्द्धक) तथा वृष्य (वीर्यादिवर्द्धक) है ॥ ४६०–४६५ ॥

वातगुल्मे हिङ्ग्वाद्यं घृतम्—

हिङ्गुसौवर्चलव्योषबिडदाडिमदीप्यकैः ।
पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ ४६६ ॥
शटीवचाजगन्धैलासुरसैर्दधिसयुतैः ।
शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद्वातगुल्मिनाम् ॥ ४६७ ॥

इति श्रीशोढलग्रथिते गदनिग्रहे प्रयोगखण्डे प्रथमो घृताधिकारः समाप्तः ।

वात गुल्म में हिङ्ग्वादि घृत—हिंगु, सौवर्चल नमक, व्योष (सोंठ. पीपर, मरिच), विड नमक, अनार, अजवायन, पुष्करमूल, स्याह जीरा, धनिया, अम्लवेंत, यवाखार, चित्रक, कपूरकचरी वच, अजगंधा (अजमोदा), इलायची, तुलसी—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ (चौगुना) दही मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्म के रोगियों के शूल तथा आनाह को नाश करता है। (परिमाण कल्पना स्नेहपाक-विधि के अनुसार करनी चहिए) ॥ ४६६–४६७ ॥

इति शोढल का बनाया हुआ गदनिग्रह नामक ग्रन्थ के
प्रयोग खण्ड में प्रथम घृताधिकार समाप्त ॥

अथातो द्वितीयस्तैलाधिकारः प्रारभ्यते ।

कुष्ठे कटुकालावुतैलम्—

कटुकालावूबीजं द्वे तुत्थे रोचना हरिद्रे द्वे ।
बृहतीफलमेरण्डः सविशालश्छिन्नको मूर्वा ॥ १ ॥
कासीसहिङ्गुव्योपसुरदारुतुम्बरुविडङ्गं च ।
लाङ्गलकी कुटजत्वक् कटुकाख्या रोहिणी चैव ॥ २ ॥
सर्पपतैलं कल्कैर्मूत्रे च चतुर्गुणे गवां साध्यम् ।
कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गाद्वातकफहन्तृ ॥ ३ ॥

तैल निर्माणप्रकार—तैल के सिद्ध करने के पहले दुर्गन्ध और अन्य दोषों को दूर करने के लिये उसे मूर्च्छित करे । इसके बाद तैल का पाक भी घृत के पाक के समान ही करे । तैल की मूर्च्छा विधि में अन्तर है । तैल सिद्ध करने के लिये, तिल तैल, सरसो तैल तथा अरंडी का तैल लेते हैं । तीनों की मूर्च्छनविधि अलग २ है । तिल के तैल के लिये, मंजीठ, हल्दी, लोध, नागरमोथा, दालचीनी, आंवला, बहेडा, हर्रे, केवडे का फूल तथा वट की जटा का कल्क लेते हैं । मजीठ तथा हल्दी का अलग कल्क बना लेना चाहिए । सरसों के तैल में मंजीठ, हल्दी, आंवला, नागरमोथा, वेल की छाल, अनार की छाल, नागकेशर, काला जीरा, सुगन्धवाला, दालचीनी तथा बहेडा का कल्क मिलावे । एवं एरण्ड तैल की मूर्च्छा के लिये मंजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, चमेली के पत्ते, सुगन्धवाला, खजूर, वट की जटा, हल्दी, दारुहल्दी, दालचीनी, केवडे का फूल, दही, और कांजी ले ।

मूर्च्छा के लिये तैल चार सेर हो तो मंजीठ चार छटांक ले तथा अन्य द्रव्य एक २ छटांक लेना चाहिए । मंजीठ तथा हल्दी का कल्क अलग बनाना चाहिए और अन्य द्रव्य का कल्क एक साथ बनावे । तैल मूर्च्छित करने के लिये पीतल की कलई की हुई कडाही लेनी चाहिए । मूत्र एवं क्षारीय द्रव्यों से तैल सिद्ध करना हो तो कडाही बड़ी (अठगुनी) लेनी चाहिए क्योंकि मूत्र के साथ पाक करने पर उफान अधिक आता है। शेष मूर्च्छन विधि घृत के समान समझना चाहिए ।

तिल तैल, सरसों तैल तथा एरण्ड का तैल ताजा, रोगी की प्रकृति, देश, ऋतु और रोग का विचार कर लेना चाहिए । तैल सिद्ध होने पर, चिकनापन, मूल की वास, और तैल का मूलदोष तीनों दूर हो जाते है और गुण की वृद्धि होती है । तैल स्निग्ध तथा उष्णवीर्य है । सिद्ध तैलों में भी वही गुण रहता है । तैल का प्रयोग वातजन्य रोगों पर ही मुख्यरूप से होता है । सिद्ध तैल, शरीर के वाह्य भाग में मर्दन करने तथा पीने के लिये उपयोग में आता है ।

तैल सिद्ध करने के लिये कल्क, क्वाथ, दूध आदि द्रव्यों को ग्रहण करने का नियम स्नेह परिभाषा में स्पष्ट निरूपण किया जा चुका है। सिद्ध तैल की परीक्षा स्नेह-परिभाषा-प्रकरण निर्दिष्ट नियम के अनुसार करे।

घृत प्रकरण के बाद द्वितीय तैलाधिकार प्रारम्भ करते हैं।

कुष्ठरोग मे कटुकालाबू तैल—कडवी लौकी (कद्दू) का बीज, दोनों तूतिया, गोरोचन, आमाहल्दी, दारुहल्दी, बनभंटा का फल, एरण्ड, इन्द्रायण, चित्रक, मूर्वा (मोरवेल), कासीस, हिंगु, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), देवदारु, तुम्बरु, विडंग, कलिहारी, कोरैया की छाल, कुटकी—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सरसों का तैल चौगुने गाय के मूत्र मे पकावे। यह तैल अभ्यङ्ग (मर्दन) करने से कण्डू तथा कुष्ठ को नाश करता है और वातकफ-जन्य कुष्ठ विकारों को दूर करता है। इस तैल में मात्रा का निर्देश नहीं किया गया है अतः तैल के चौथाई कल्क द्रव्य लेना चाहिए॥ १–३॥

कुष्ठे मरीचाद्यं तैलम्—

मरीचदारुभद्रश्रीद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः।
पलिकैर्मूत्रपिष्टैस्तु विषस्यार्धपलेन च॥ ४॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम्।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति॥ ५॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापचीः।

कुष्ठरोग में मरीचाद्य तैल—मरीच, देवदारु, भद्रश्री (रक्तचन्दन), आमाहल्दी दारुहल्दी, निशोथ, मोथा—एक २ पल, विष आधा पल—इन द्रव्यों को गाय के मूत्र में पीसकर कल्क बनावे। उसके साथ सरसों का तैल एक प्रस्थ, ब्राह्मी का रस, मदार का दूध, गोबर का रस (तैल के चौगुना) मिलाकर पकावे। यह तैल पान, अभ्यङ्ग आदि में प्रयोग करने से कुष्ठ, दुष्टनाडी व्रण (नासूर) तथा अपची को नाश करता है॥

वातव्याधौ बलातैलम्—

बलाया जातसारायास्तुलां कुर्यात्सुकुट्टिताम्॥ ६॥
पचेत्तोयचतुर्द्रोणे चतुर्भागावशेषिते।
पलानि दश पिष्टानि बलायास्तत्र दापयेत्॥ ७॥
लुञ्चितानां तिलानां च दद्यात्तैलाढकद्वयम्।
चतुर्गुणेन तोयेन पाचयेन्मृदुनाऽग्निना॥ ८॥
वातव्याधिषु सर्वेषु रक्तपित्ताश्रयेषु च।
व्यापन्नासु च योनिषु शस्तं नष्टे च रेतसि॥ ९॥
तालुशोषं तृषां दाहं पार्श्वशूलमसृग्दरम्।

हन्ति शोपमपस्मारं विसर्पं सशिरोग्रहम् ॥ १० ॥
आयुर्वर्णकरं चैव बलातैलं प्रजाकरम् ।

वातव्याधि में बला तैल—परिपक्व बला (बरियार) एक तुला यवकूट कर चार द्रोण जल से क्वाथ करे, चौथाई भाग शेष क्वाथ में दश पल बला का कल्क बनाकर छोड दे, और लुञ्चित (धोई) तिल का तैल दो आढक मिलाकर चौगुने जल के साथ मन्द आँच से पकावे । यह बलातैल सभी प्रकार के वात व्याधि, रक्तपित्त, विकृत योनिरोग तथा नामर्दी में प्रशस्त है और तालु का सूखना, ध्यान, दाह, पार्श्वशूल, रक्तप्रदर, सूखारोग, अपस्मार, विसर्प (झलकई भाई) तथा शिरोग्रह (शिर का जकडन) को नाश करता है । आयु तथा कान्ति को देनेवाला तथा सन्तानोत्पादक है ॥

वातव्याधौ बृहद्बलातैलम्—

तुलां बृहद्बलायास्तु चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ११ ॥
समुत्तार्य ततः सम्यग्दशभागस्थिते रसे ।
दधिमण्डेक्षुनिर्यासयुक्तैस्तैलाढकं समैः ॥ १२ ॥
पचेत्साजपयोर्धांशैः कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
शटीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः ॥ १३ ॥
पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णीहरेणुभिः ।
यष्ट्याह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः ॥ १४ ॥
पलाशरसकस्तूरीनलिकाजातिकोशकैः ।
स्पृक्काकुङ्कुमशैलेयमालतीकट्फलाम्बुभिः ॥ १५ ॥
त्वचाकुन्दुरुकर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः ।
लवङ्गनखकङ्कोलकुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः ॥ १६ ॥
स्थौणेयतगरध्यामवचादमनचोरकैः ।
सनागकेशरैः, सिद्धं विधिना च प्रयोजयेत् ॥ १७ ॥
कासं श्वासं ज्वरं छर्दिं शूलं हिक्कां क्षतक्षयम् ॥ १८ ॥
प्लीहं शोपमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।
बलातैलमिदं श्रेष्ठं वातव्याधिहरं परम् ॥ १९ ॥

वातव्याधि में बृहद् बला तैल—बृहद् बला (महाबला "सहदेइया") एक तुला, जल चार द्रोण में पकावे । दशमांश शेष क्वाथ में दही, मण्ड, गन्ने का रस, समभाग अलग २ (तैल के बराबर), तैल एक आढक, बकरी का दूध आधा आढक (दो प्रस्थ) मिलाकर, कल्कार्थ—कपूरकचरी, चीड़, देवदारु, इलायची, मंजीठ, अगर, रक्तचन्दन, पद्मकाठ, अतिबला (कंघी), मोथा, सूर्यपर्णी (मुद्गपर्णी), रेणुका (सम्भालू का बीज), यष्टयाह्व, (मुलेठी),

तुलसी, व्याघ्रनख, ऋषभक, जीवक, पलाश-रस, कस्तूरी, नलिका (प्रवाली), जातिकोश (जावित्री), स्पृक्का (असवरग), केशर, शैलेय. (छड़ीला), मालती, कायफर, सुगन्धवाला, दालचीनी, कुन्दरु, कपूर, तुरुष्क (शिलारस), श्रीवेष्टक (गन्धाविरोजा), लवग, नख, कबावचीनी, कूठ, जटामांसी, प्रियंगु, स्थौणेयक (थुनेर), तगर, ध्याम (कत्तृण), वच, दमन (दोना), चोरक (चोरा), नागकेशर—एक २ पल—इन द्रव्यों को लेकर इसके कल्क के साथ तैल विधिपूर्वक (धीरे २ मन्द आंच से) सिद्ध कर प्रयोग में ले। यह उत्तम बृहद् बला तैल—कास, श्वास, ज्वर, छर्दि (वमन), शूल, हिक्का (हिचकी), उरःक्षत, प्लीहावृद्धि, सूखारोग, अपस्मार तथा अलक्ष्मी (दरिद्रता) को नाश करता है और वातव्याधि को अच्छी तरह शान्त करता है ॥ ११–१९ ॥

वातव्याधौ तृतीयं बलातैलम्—

बलाशतकषाये तु तैलस्यार्धाढकं पचेत् ।
कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥ २० ॥
सूक्ष्मैलापिप्पलीकुष्ठत्वगेलागरुकेशरैः ।
गन्धैश्च जीवनीयैश्च क्षीराढकसमायुतम् ॥ २१ ॥
एतन्मृद्वग्निना पक्वं स्थापयेद्भाजने शुभे ।
सर्ववातविकारांस्तु सर्वधात्वन्तराश्रयान् ॥ २२ ॥
शमयेत्तैलमेतत्तु छिन्नाभ्रमिव मारुतः ।
बलातैलं नरेन्द्रार्हमेतद्वातविकारनुत् ॥ २३ ॥

वातव्याधि में तृतीय बला तैल—बला (बरियार) एक सौ पल के कषाय (सौ पल बला, एक द्रोण जल में क्वाथ करे चतुर्थांश शेष कषाय को ग्रहण करे) में आधा आढक तैल, कल्कार्थ—मुलेठी, मंजीठ, रक्तचन्दन, नील-कमल, पद्मकाठ, छोटी इलायची, पीपर, कूट, दालचीनी, बडी इलायची, अगर, नागकेशर, गन्धद्रव्य, जीवनीय वर्ग (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी)—इन द्रव्यों (तैल के चतुर्थांश) को लेकर, इसके कल्क के साथ एक आढ़क (चार प्रस्थ), दूध मिलाकर मंद आंच से पकावे और छानकर स्वच्छ वर्तन (शीशी) में रख ले। यह बला तैल सभी धातुओं के अन्तर्गत (सभी धातुओं रक्तादि में प्रविष्ट) सभी प्रकार के वातविकारों को शान्त करता है। जैसे वायु मेघ को शान्त कर देता है। यह तैल राजाओं के योग्य है और वातविकारों को नाश करता है ॥ २०–२३ ॥

मूढगर्भे चतुर्थं बलातैलम्—

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ।

यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ २४ ॥
अष्टावष्टौ शुभान् भागाँस्तैलादेक तदेकतः ।
मधुरं गणमावाप्य पचेत् सैन्धवसंयुतम् ॥ २५ ॥
अगुरुं सर्जनिर्यासं सरलं देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुसारिवाम् ॥ २६ ॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम्
शतावरीं चाश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ।
सौवर्णे साधु सिद्धं तद्राजते मृन्मयेऽपि वा ॥ २७ ॥
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् स्वनुगुप्तं निधापयेत् ।
बलातैलमिदं ख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ २८ ॥
यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ।
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ॥ २९ ॥
मथितेऽभिहते धातुक्षीणे मर्महते तथा ।
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रयुज्यते ॥ ३० ॥
एतदाक्षेपकादींश्च वातव्याधीनपोहति ।
नरः प्रत्यग्रधातुस्तु भवेत्सुस्थिरयौवनः ॥ ३१ ॥
हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मश्वासं च दुस्तरम् ।
षण्मासान् सम्प्रयुज्यैतदन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥
राज्ञामेतत्प्रकर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ।
सुखिनः सुकुमाराश्च धनिनश्चापि ये नराः ॥ ३२ ॥

मृढगर्भ में चतुर्थ बला तैल—खरियार की जड का क्वाथ, दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू) का क्वाथ, यव, कोल तथा कुलथी का क्वाथ, दूध—आठ २ भाग (क्वाथविधि के अनुसार चौगुने जल में क्वथित करने के बाद चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ), तैल एक भाग (छः भाग), मधुरगण के द्रव्य, सेन्धा नमक, अगर, राल, चीड, देवदारु, मजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, कालानुसारिवा (तगरमूल), जटामांसी, शैलेय (छडीला), तेजपत्र, तगर, सारिवा, वच, शतावरी, अश्वगन्धा, सौंफ, पुनर्नवा—इन द्रव्यों को मिलाकर तैल सिद्ध करें। और इस तैल को सोने-चाँदी या मिट्टी के घडे में अच्छी तरह भरकर गुप्त (छिपाकर) रक्खे। यह प्रसिद्ध बला तैल सभी प्रकार के वातरोगों को नाश करता है। इस तैल को बल के अनुसार मात्रा बनाकर प्रसूता को देना चाहिए। गर्भ को चाहनेवाली स्त्री तथा क्षीणवीर्य पुरुष को भी यह तैल देना चाहिए। मथित, अभिहत, क्षीणवीर्य, मर्महत भग्न (टूटना) तथा श्रमाभि-

पन्न (थकावट से) को सर्वथा सेवन करना चाहिए, यह तैल आक्षेपक (शरीर के अधिकांश पेशियों का अकस्मात् तथा प्रबल सिकुड़न) आदि वात-रोगों को दूर करता है। और मनुष्य रस-रक्तादि अनुलोम धातुओं को प्राप्त कर स्थिर कर यौवन वाला होता है। यह तैल हिक्का (हिचकी), कास, अधीमन्थ (अभिष्यन्दजन्य नेत्र रोग), गुल्म रोग, असाध्य श्वास रोग तथा छः मास तक प्रयोग करने से अन्त्रवृद्धि को भी दूर करता है। इस तैल का प्रयोग राजा, राजा के समान व्यक्ति, सुखी, सुकुमार तथा धनी व्यक्तियों के लिये करना चाहिए ॥ २४-३२ ॥

वातव्याधौ प्रसारणीतैलम्—

उत्पाट्य मूलपत्राभ्यां जातसारां प्रसारणीम् ।
शतं पलानि संकुट्य कटाहे समधिश्रयेत् ॥ ३३ ॥
वारिद्रोणसमायुक्तं चतुर्भागावशेषितम् ।
कषायसममात्रं तु तैलमत्र प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥
शुण्ठीपलानि पञ्चैव रास्नायाश्च पलद्वयम् ।
दध्नस्तथाऽऽढकं दत्त्वा द्विगुणं चाम्लकाञ्जिकम् ।
यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम् ॥ ३५ ॥
द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकस्य पलद्वयम् ।
प्रसारणीपले द्वे च द्वे पले मधुकस्य च ॥
एतत्सर्वं समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३६ ॥
एतदभ्यञ्जनं श्रेष्ठं नस्यकर्मणि शस्यते ।
पाने बस्तौ च दातव्यं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ३७ ॥
अशीतिं वातरोगाणां तैलमेतद् व्यपोहति ।
गृध्रसीं सास्थिभङ्गां च मन्दाग्नित्वं च नाशयेत् ॥ ३८ ॥
अपस्मारमथोन्मादं विद्रधिं मन्दगामिताम् ।
त्वग्गताश्चापि ये वाताः सिरासन्धिगताश्च ये ॥ ३९ ॥
जानुगुल्फगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च तान् ।
अश्वं वा वातसभग्नं नरं वा जर्जरीकृतम् ॥ ४० ॥
सर्वान् प्रशमयत्येतत्तैलमात्रेयपूजितम् ।
प्रजाकरं च वन्ध्यानामिन्द्रियैश्वर्यकारकम् ॥ ४१ ॥
एतेनान्धकवृष्णीनां बहुपुत्रं कुलं कृतम् ।
तैलं चेदं प्रसारण्या बलमांसविवर्धनम् ॥ ४२ ॥
धन्यं प्रजाकरं श्रेष्ठं वार्धक्ये चापि सेवितम् ।
पङ्गुर्यः पीठसर्पी वा पीत्वैतत्संप्रधावति ॥ ४३ ॥

वात व्याधि में प्रसारणी तैल—परिपक्व प्रसारणी (गन्धप्रसारणी) को जड़ तथा पत्र सहित निकाल कर एक सौ पल लेकर कडाही मे रक्खे और दो द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांश शेष कषाय के बराबर तैल (आठ प्रस्थ) तथा सोंठ पांच पल, रास्ना दो पल, दही एक आढ़क, अम्ल काञ्जिक दुगुना (दो आढक), यवक्षार, सेन्धा नमक, पीपरामूल, चित्रक, प्रसारिणी, मुलेठी प्रत्येक इन द्रव्यों का कल्क बना कर सभी द्रव्यों को एकत्र कर धीरे २ मन्द आंच से पकावे। यह अभ्यञ्जन करने के लिये श्रेष्ठ है तथा नस्यकर्म के लिये उत्तम है। पान करने तथा वस्तिकर्म मे प्रयोग करना चाहिये। इसके प्रयोग करने से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। यह तैल अस्सी प्रकार के वात रोग को दूर करता है और गृध्रसी (लगड़ी का दर्द "स्याटिका"), अस्थिभग्न तथा मन्दाग्नि को भी नाश करता है। अपस्मार, उन्माद, विद्रधि, मन्दगामिता (धीरे २ चलना), चर्मगत वात, सिरा, सन्धिगत वात, जानु तथा गुल्फगत और पाद (पैर), पृष्ठ (पीठ) गत वात, वात के द्वारा संभग्न अश्व हो या वात से जर्जरीभूत मनुष्य हो, यह तैल सभी प्रकार के वात को शान्त करता है और आत्रेय महर्षि द्वारा पूजित है। वांझ स्त्रियों को संतान देनेवाला है और इन्द्रियों को पुष्ट करनेवाला है। इसी तैल के प्रयोग से, अन्धक तथा वृष्णियों का कुल बहुत पुत्र वाला हुआ था। यह प्रसारणी तैल बल तथा मांस को बढ़ाने वाला है। वृद्धावस्था में भी सेवन करने पर पुत्र और धन को देनेवाला तथा श्रेष्ठ है। जो लंगड़ा है है या पीठ से चलने वाला है वह भी इस तैल को पान कर, दौड कर चलने लगता है। अर्थात् चलने में समर्थ हो जाता है ॥ ३३-४३ ॥

द्वितीय प्रसारणीतैलम्—

प्रसारण्यास्तुलामेका बलामूल तदर्धकम्।
शतावर्यश्वगन्धा च शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ४४ ॥
गुडूची दशमूलं च चित्रको मदनं शटी।
पलांशकं समापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत्।
शताह्वां मधुकं रास्नां पिप्पलीं नागरं वचाम् ॥ ४६ ॥
कुष्ठं हरेणुकां मांसीप्रियङ्ग्विन्द्रयवान् बिडम्।
सैन्धवं शृङ्गवेरं च यवक्षार सचित्रकम् ॥ ४७ ॥
मधूलिकां नखं चैव पालिकं श्लक्ष्णपेषितम्।
पचेत्तैलाढकं पूतमारनालपयोयुतम् ॥ ४८ ॥
एतदभ्यञ्जनं श्रेष्ठं नस्यकर्मानुवासने।

तोड़), अम्लशुक्त तथा मांस का रस एक २ आढक मिलाकर धीरे २ मन्द आँच से पकावे। इस घृत को अभ्यञ्जन, पान, नस्य कर्म तथा अनुवासन कर्म के लिये पृष्ठग्रह (पीठ का जकड़ना), पार्श्वग्रह, शूल, सक्थि तथा वक्ष प्रदेश का शूल, एकांग, पक्षाघात (एक अंग का सुन्न हो जाना), हनुग्रह, मन्याग्रह, शिरोग्रह (हनु-मन्या नाड़ी तथा शिर का जकड़ जाना), बाधिर्य रोग, कर्णशूल, कर्णनाद (कान मे शब्द होना) आदि रोगों में प्रयोग करे। अभ्यङ्ग (मर्दन) करने से चर्मगत रोग का नाश करता है, पान करने से मांसगत रोग को नाश करता है। पक्वाशयगत रोग में, वस्ति कर्म तथा सभी रोगों मे निरूह वस्ति लाभकारक है। अस्सी प्रकार के वात रोग, चालिस प्रकार के पित्त रोग, बीस प्रकार के कफ रोग तथा सभी रोगों को दूर करता है और गृध्रसी, वातभग्न तथा-ऋतुदोष (मासिक रजोदोषसम्बन्धी विकार) को भी दूर करता है। जो पुरुष पुंस्त्वहीन है वे पुरुत्व प्राप्त करते है और जिन स्त्रियों का मासिक धर्म नष्ट हो गया है वह ऋतुमती हो जाती है। वन्ध्या स्त्री भी ऋतुमती होकर गर्भ प्राप्त करती है इसमें संदेह नहीं है। (यह प्रसारणी तैल) मेधा (धारणा शक्ति), अग्नि तथा अङ्गबल को बढाती है और आयु को बढ़ाती है, अतः जनक जी ने इसका नाम प्रसारणी रक्खा है।) ॥

वातव्याधौ चतुर्थं प्रसारणीतैलम्—

प्रसारणीशत क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे ॥ ६७ ॥
पादशेषे पचेत्तैलं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः।
द्विगुणैः श्लक्ष्णपिष्टानि द्रव्याणीमानि योजयेत् ॥ ६८ ॥
द्विपलान्यग्नियष्ट्याह्व कणामूलं पटु वचाम्।
मूलं तथा प्रसारण्याः क्षारं च यवशूकजम् ॥ ६९ ॥
त्रिशङ्क्षल्लातकास्थीनि नागरात्पलपञ्चकम्।
सिद्ध मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥ ७० ॥
अशीति नरनारीणा वातरोगान्निषूदति।
कुब्जवामनपङ्गुत्वं खञ्जत्वं गृध्रसी खुडम् ॥ ७१ ॥
हन्यात्पृष्ठकटिग्रीवास्तम्भं चाशु व्यपोहति।
पीठसर्पी विभग्नश्च पीत्वा तैलं सुखी भवेत् ॥ ७२ ॥
तैलं चेद प्रसारण्या बलवर्णाग्निवर्धनम्।

वातव्याधि में चतुर्थ प्रसारणी तैल—प्रसारणी (गन्ध प्रसारणी) एक सौ पल कूटकर स्वच्छ एक द्रोण जल मे क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष क्वाथ में दधि-मस्तु (दही का तोड), अम्ल काञ्जिक (अम्ल तथा धान्यमण्ड आदि किसी पात्र में रख, पानी मिलाकर तीन दिन तक बन्द कर रखने के

याद सिद्ध द्रव भाग) दुगुना (दो प्रस्थ), तैल (एक प्रस्थ), कल्कार्थ—चित्रक, मुलेठी, पिपरामूल, सेन्धानमक, वच, प्रसारणी का मूल, यवक्षार—दो २ पल, शु० भल्लातक की गुठली तीस पल, सोंठ पांच पल—इन द्रव्यों को लेकर कल्क बनावे और सभी द्रव्यों को मिलाकर मन्द आँच से तैल सिद्ध करे। यह तैल वात-कफजन्य रोगों को जीत लेता है पुरुष तथा स्त्रियों के अस्सी प्रकार के वात रोगों को नाश करता है और कुब्ज (कुबड़ापन), वामन (बौना), पङ्गुत्व (दोनों पैर से लँगड़ापन), खञ्जत्व (लँगड़ापन), गृध्रसी (लगडी का दर्द), खुड्ड (वातरक्त) तथा पीठ कटि (कमर)-ग्रीवा (गर्दन) की जकडन को शीघ्र ही दूर करता है। पीठ से चलने वाला तथा भग्न अंग वाला इस तैल को पान कर रोगरहित हो जाता है। यह प्रसारणी का तैल बल (मांसादि), वर्ण (कान्ति) तथा अग्नि (उदराग्नि) को बढाने वाला है।

वातरक्ते शतावरीतैलम्—

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थं तथैव च ॥ ७३ ॥
देवदारु शताह्वा च मांसी शैलेयकं बला।
चन्दनं तगरं कुष्टमेला साशुमती तथा ॥ ७४ ॥
एतैः कर्पसमैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
कुब्जवामनपंगूनां बधिरव्यङ्गकुष्ठिनाम् ॥ ७५ ॥
वायुना भग्नदेहानां येऽवसीदन्ति मैथुने।
जराजर्जरदेहानां वध्मार्तमुखशोषिणाम् ॥ ७६ ॥
त्वग्गताश्चापि ये वाताः सिरास्नायुगताश्च ये।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु तैल नास्त्यत्र संशयः ॥ ७७ ॥
नारायणमिदं नाम्ना विष्णुना समुदाहृतम्।
दशाङ्गमिति विख्यातं न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ७८ ॥

वातरक्त में शतावरी तैल—शतावरी का रस एक प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ, में देवदारु, शतावरी, जटामांसी, छडीला, वरियार, चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, ज्योतिष्मती—एक २ कर्ष— इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ तैल मिलाकर पकावे। यह तैल कुवड़ा, बौना, दोनों पैर से लगडा, वधिर, व्यङ्ग (अस्वाभाविक अङ्ग वृद्धि) तथा कुष्ठ के रोगी, वायु से भग्न अगवाले, मैथुन के समय कष्ट पाने वाले, वृद्धावस्था से जीर्ण शरीर वाले, वध्म रोग तथा मुखशोषवाले रोगियों के रोग को और चर्मगत, शिरागत तथा स्नायुगत, वात आदि उन सभी रोगों को शीघ्र ही नाश करता है। इसमें संदेह नहीं

है। विष्णु का कहा हुआ नारायण नाम से प्रसिद्ध यह दशांग तैल किसी रोग में भी असफल नहीं होता है ॥ ७३–७८ ॥

वातव्याधौ द्वितीयं शतावरीतैलम्—

शतावर्यास्तु मूलानां रसप्रस्थं समाहरेत्।
क्षीरद्विगुणसंयुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७९ ॥
शतपुष्पा नतं दारु मांसी शैलेयकं वचा।
मञ्जिष्ठा चन्दनं कुष्ठमेला चांशुमती बला ॥ ८० ॥
काकोली चाश्वगन्धा च मेदा रास्ना पुनर्नवा।
एतैरर्धपलैर्द्रव्यैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८१ ॥
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम्।
कुब्जानां वामनानां च पङ्गूनां पीठसर्पिणाम् ॥ ८२ ॥
आक्षेपके च भग्नानां तथा भग्नास्थिसन्धिषु।
एकाङ्गं तुद्यते यस्य गतिर्यस्य विहन्यते ॥ ८३ ॥
रक्तपित्तहरं शस्तं वातघ्नं परमं स्मृतम्।

वात व्याधि में द्वितीय शतावरी तैल—शतावरी के मूल का रस एक प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ मिलाकर उसमें तैल एक प्रस्थ, सौंफ, तगर, देवदारु, जटामासी, छड़ीला, वच, मंजीठ, चन्दन, कूठ, इलायची, ज्योतिष्मती, बरियार, काकोली, अश्वगन्धा, मेदा, रास्ना, गदह पूरना—आधा २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ धीरे २ मृदु आँच से सिद्ध करे। इस सिद्ध तैल का गुण इसके बाद कहते है। यह तैल कुबडा, बौना, लंगड़ा तथा पीठ से चलने वाले रोगियों के रोग को दूर करता है। आक्षेपक रोग, ('अक्षिपक्ष्म तथा अर्धपक्ष' इति पाठान्तर) भग्न, अस्थिभग्न तथा सन्धिभग्न, जिसके एक अंग में दर्द होता है जिसका चलना बन्द हो गया है उन सभी रोगों को नाश करता है और रक्तपित्त तथा वात रोग को अच्छी तरह नाश करने वाला है।

वातव्याधौ रास्नातैलम्—

रास्नामूलस्य कुर्वीत द्वे शते च बलाशतम् ॥ ८४ ॥
शतावरीगुडूचीभ्यां वरुणाच्च शतं शतम्।
निर्गुण्डीशिग्रुकैरण्डशिरीषारग्वधादपि ॥ ८५ ॥
श्वदंष्ट्राभूतिकाभ्यां च पृथक् पञ्चपलं क्षिपेत्।
दशद्रोणजले तत्तु साधयेत्सूक्ष्मकुट्टितम् ॥ ८६ ॥
द्रोणावशेषे तस्मिंस्तु तैलस्यार्धार्मणं पचेत्।
द्रोणा दश च दुग्धस्य घृतस्यार्धाढकं तथा ॥ ८७ ॥
तदैकध्यं विपक्तव्यं गर्भं चात्र समावपेत्।

मधुकं मालतीपुष्पं मञ्जिष्ठा मदयन्तिका ॥ ८८ ॥
काश्मर्याण्यजमोदा च लवली तालमस्तकम् ।
आत्मगुप्ताफलं मूर्वा वार्ताकानि मधूलिका ॥ ८९ ॥
सहदेवामयैरण्डं रोहिषो नवमालिका ।
(फणिज्झकं मधूकानि वीरा नीरकदम्बकम् ।
फलं च पीलुपालाशं कठोराश्वत्थतिन्दुकम् ।)
कायस्था च वयस्था च मधुपर्णी च चित्रकः ॥ ९० ॥
महापुरुषदन्ता च बला सकदलीफला ।
देवदार्वगरुश्रेष्ठं चन्दनं परिपेलवम् ॥ ९१ ॥
नीलोत्पलमुशीराणि मृद्वीका साम्लवेतसा ।
एभिः पलशतैः पिष्टैः सम्यक् तैलं विपाचयेत् ॥ ९२ ॥
भोजनेऽभ्यञ्जने पाने वस्तौ नस्ये च शस्यते ।
वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ९३ ॥
अपस्मारे रक्तगुल्मे पुंसां नष्टे च रेतसि ।
रास्नातैलमिदं श्रेष्ठं बलमांसविवर्धनम् ॥ ९४ ॥

वात व्याधि में रास्ना तैल—रास्ना का मूल दो सौ पल, बरियार एक सौ पल, शतावरी एक सौ पल, गुडूची एक सौ पल, वरुण एक सौ पल, सम्भालू, सहिजन, एरण्ड, शिरीष, अमलतास—एक २ सौ पल, गोखरू पाँच पल, भूतिक (कत्तृण) पाँच पल—इन द्रव्यों को महीन कूटकर दश द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष क्वाथ में आधा द्रोण तैल, दश द्रोण दूध, आधा आढक (दो प्रस्थ) घृत, कल्कार्थ—महुआ, मालती का फूल, मंजीठ, मेहदी, गम्भारी, अजमोदा, हर्फा रेवड़ी, ताल का मज्जा, केवाछ का बीज, मूर्वा (मोरवेल), वनभण्टा, मधूलिका(मुलेठी), सहदेइया, आमय (कुष्ठ), एरण्ड, दूर्वा, नवमालिका (सातला), [फणिज्जक (मरुआ), महुआ, वीरा (क्षीर काकोली), जलकदम्ब, मदनफल, पीलुवृक्ष, परास, कठीर (कारवेल), अश्वत्थ, तिन्दुक] कायस्था (हरे), वयस्था (गुडूची), गम्भारी, चित्रक, महापुरुषदन्ता (शतावरी), बरियार, केला का फल, देवदारु, अगर, पलासगन्धा, चन्दन, परिपेलव (केवटी मोथा), नील कमल, खस, मुनक्का, अम्लवेत—सब मिलाकर एक सौ पल—इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर अच्छी तरह तैल सिद्ध करे। यह तैल भोजन, अभ्यञ्जन, पान, वस्तिकर्म तथा नस्य कर्म में प्रशस्त है। सभी प्रकार के वात व्याधि, उरःक्षत, शिरोग्रह (शिर का जकड़ना), अपस्मार, रक्तगुल्म, पुरुष के नष्ट वीर्य (नपुंसकता)—इन रोगों में यह

रास्ना तैल श्रेष्ठ है यानी इन रोगों को दूर करता है और बल तथा मांस को बढ़ाने वाला है ॥ ८४–९४ ॥

वातव्याधौ शताह्वातैलम्—

जलद्रोणे शताह्वायाः पादशेषं तुलां पचेत् ।
क्वाथं तैलाढकोन्मिश्रं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ९५ ॥
हरेणुकुष्ठसूक्ष्मैलातगरागरुसैन्धवैः ।
पक्वं कल्कैः पलसमैः प्रयोज्यं वातरोगनुत् ॥ ९६ ॥
योनिशुक्ररजोदोषनाशनं स्त्रीषु पुत्रदम् ।
शताह्वातैलमित्येतद् बृंहणं बलवर्धनम् ॥ ९७ ॥

वात व्याधि में शताह्वा तैल—सौंफ एक तुला एक द्रोण जल में क्वाथ करे । चतुर्थांश शेष क्वाथ, तैल एक आढक चौगुने दूध में मिला कर सम्भालू, कूठ, छोटी इलायची, तगर, अगर, सेन्धानमक—समभाग—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे, और प्रयोग करे । यह वात रोग को नाश करता है । यह शताह्वा तैल योनिदोष, शुक्रदोष तथा रजोदोष को नाश करता है, स्त्रियों को पुत्र देने वाला है, तथा वीर्यवर्द्धक एवं बलवर्द्धक है ॥ ९५–९७ ॥

वातव्याधौ मूलकतैलम्—

बालमूलकनिर्यूहतैलदध्यम्लकाञ्जिकम् ।
क्षीरं चैवाढकं स्यात्तु पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ९८ ॥
रास्ना भल्लातकश्चैव सैन्धव गजपिप्पली ।
बला सातिविषा शुण्ठी पिप्पल्यश्चित्रको वचा ॥ ९९ ॥
श्वदंष्ट्रा चेति तत्पक्वं श्लेष्मवातामयापहम् ।
गृध्रसीवर्ध्मपङ्गुत्वं कुण्डलं सापतन्त्रकम् ॥ १०० ॥
कट्यूरुस्तम्भशोषं च पर्वस्तम्भं सकम्पनम् ।
हन्याद् गुल्मं च वातोत्थं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १०१ ॥
वन्ध्यानां पुत्रदं चैव तैलं मूलकसाह्वयम् ।

वातव्याधि में मूलक तैल—मुलायम (छोटी २) मूली का रस, तैल, दही, अम्लकाञ्जिक तथा दूध—एक २ आढ़क, रास्ना, शु० भल्लातक, सेन्धानमक, गजपीपर, वरियार, अतीस, सोंठ, पीपर, चित्रक, वच, गोखरू—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे । यह सिद्ध तैल, कफवातजन्य रोगों को नाश करता है । यह मूलक तैल, कटि (कमर) का जकड़ना, ऊरु का जकड़ना, सन्धियों का जकड़ना, कम्परोग तथा वातिक गुल्मरोग को नाश करता है बल, वर्ण अथवा अग्नि को बढ़ाने वाला है और वांझ स्त्रियों को पुत्र देने वाला है ।

वातव्याधौ सहचरतैलम्—

समूलपत्रशाखस्य शत सहचरस्य च ॥ १०२ ॥
चतुर्गुणे जलद्रोणे साधयेत्सूक्ष्मचूर्णितम् ।
द्रोणावशेषे पूते च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ १०३ ॥
सहचरस्य मूलानां कल्को दशपलो भवेत् ।
परिस्राव्य सुखोष्णे तु शर्करायाः प्रदापयेत् ॥ १०४ ॥
पलानि दश चाष्टौ च निर्मथ्य च निधापयेत् ।
वस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रशस्यते ॥ १०५ ॥
एकाङ्गपक्षघात च हनुग्रहशिरोग्रहम् ।
अर्दितं वेपथून्मादौ सर्वगात्रग्रहं ज्वरम् ॥ १०६ ॥
गृध्रसीं वातगुल्मं च भूतोपहतचित्तताम् ।
अपस्मारं हनुस्तम्भमूरुस्तम्भं च नाशयेत् ॥ १०७ ॥
गण्डकुण्डलवर्ष्मानि हनुजानुविकुञ्चनम् ।
संधानं सर्वगात्राणां स्तम्भन शोधनं तथा ॥ १०८ ॥
शमयेत्तैलमेतत्तु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।

वातव्याधि में सहचर तैल—मूल-पत्र-शाखा सहित सहचर (पीली झिण्टी) एक सौ पल महीन कूट कर चार द्रोण जल में क्वाथ करे। एक द्रोण शेष रहने पर छान कर तैल एक आढक (चार प्रस्थ), सहचर के मूल का कल्क दश पल मिलाकर तैल पकावे। सिद्ध होने पर छान कर, थोड़े गरम इस तैल में अठारह पल शर्करा मिला कर रख दे, और वस्तिकर्म, पान, अभ्यङ्ग तथा नस्य कर्म में प्रयोग करे। यह तैल एकाग पक्षवात (एक अङ्ग का शुन्न हो जाना), हनु (जबड़ा) का जकड़ना, शिरोग्रह (शिर का जकड़ना), अर्दित (आधा चेहरा का टेढ़ा होना), कम्परोग, (कपनीवाई), उन्माद, सभी अंग का जकडना, ज्वर, गृध्रसी (लंगड़ीदर्द-स्याटिका), वातगुल्म, भूतग्रह (जिसका चित्त भूतदोष से उपहत हो गया है), अपस्मार, हनुस्तम्भ तथा ऊरुस्तम्भ को नाश करता है। यह तैल गण्ड (मुखमण्डल-गतरोग), कुण्डल (वर्ध्मरोग), हनु (जबडा)-जानु (घुटना) का सिकुडना, सभी अंगों का संधान, स्तम्भन तथा शोधन को शान्त करता है जैसे वायु मेघ को शान्त कर देता है।

वातव्याधौ सहचरतैलम्—

समूलपत्रशाखस्य शतं सहचरस्य च ॥ १०९ ॥
क्षोदयित्वा जलद्रोणे क्वाथं पादावशेषितम् ।
शतपुष्पा तथा दारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ११० ॥

चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती तथा ।
एतैः कर्पसमैर्भागैस्तैलप्रस्थ विपाचयेत् ॥ १११ ॥
पयस्तद्द्विगुणं दत्त्वा शर्करायाः पलाष्टकम् ।
अथ तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ११२ ॥
ये च कोष्ठगता वाता ये च वाताः शिरोगताः ।
अस्थिमज्जगताश्चैव कर्णमध्यगताश्च ये ॥ ११३ ॥
मूकानां मिन्मिनानां च पीठकटयूरुसर्पिणाम् ।
स्वभावेन च ये भग्ना अस्थिभग्नाश्च ये नराः ॥ ११४ ॥
तेपां च सम्प्रयोक्तव्यं हितावहमनुत्तमम् ।

वातव्याधि मे सहचर तैल—मूल-पत्र-शाखा सहित सहचर (पीतझिण्टी) एक सौ पल कूट कर एक द्रोण जल मे क्वाथ करे। चतुर्थांश शेप क्वाथ में सौफ, देवदारु, जटामांसी, छड़ीला, वच, रक्तचन्दन, तगर, कूठ, इलायची, अंशुमती (शालपर्णी)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल एक प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, शर्करा आठ पल मिलाकर तैल पकावे। इसके वाद इस सिद्ध तैल का वल (गुण) वताता हूँ सुनो। जो कोष्ठगत, शिरोगत, अस्थि-मज्जागत, कर्णगत वात वाले हैं। मूक (गूंगा), मिन्मिन, धीरे २ वोलने वाले, पीठ-कमर तथा जंघा से चलने वाले है जो स्वभाव से भग्न तथा अस्थिभग्न मनुष्य हैं उनके लिये इस तैल का प्रयोग हितावह (आरोग्य करने वाला) है और उत्तम है।

वातव्याधौ श्योनाकतैलम्—

शत श्योनाकमूलस्य दशमूलीशतं तथा ॥ ११५ ॥
रोहिपं शिग्रुकं रास्नां पृथक् पञ्चाशतं क्षिपेत् ।
छागलादथ गव्याच्च माहिपात्कौक्कुटादपि ॥ ११६ ॥
पञ्चाशत्पलिकान् भागान् मांसादथ प्रदापयेत् ।
तोयद्रोणेपु वेदेषु साधयेच्छ्लक्ष्णकुट्टितम् ॥ ११७ ॥
द्रोणावशेपपूते च पचेत्तैलाढकं शनैः ।
जीवां महासहां क्षुद्रसहां च जीवकं वचाम् ॥ ११८ ॥
कुष्ठ च शतपुष्पां च सूक्ष्मैलां चैलवालुकम् ।
जीवकर्पभकौ द्राक्षां शृङ्गीं कर्कटकस्य च ॥ ११९ ॥
मोचां च निचुल मुस्तां सारिवे द्वे महौपधम् ।
वलामतिवला वारां पारावतपदीं स्थिराम् ॥ १२० ॥
पिप्पलीं शर्करां दन्तीं त्वक्पत्र च शतावरीम् ।
द्रवन्तीं माधवी शिग्रुं सुवहां कदलीं तथा ॥ १२१ ॥

अशोकरोहिणी पाठां कदलीकुसुमानि च ।
सैन्धवं सुरसां कालां सर्पाक्षीं गन्धनाकुलीम् ॥ १२२ ॥
चोरकं गुग्गुलं चैव बिम्बीं हंसपदीमपि ।
पिष्ट्वा कल्केन तत्तैलं पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ १२३ ॥
पाने चाभ्यञ्जने चैव नस्ये बस्तौ च शस्यते ।
वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे ज्वरे भ्रमे ॥ १२४ ॥
हृद्ग्रहे वातगुल्मे च पङ्गुत्वे वातशोणिते ।
मारुते पित्तसंसृष्टे सोन्मादेषु गदेषु च ॥ १२५ ॥
कुण्डले मूत्रकृच्छ्रे च वर्ध्मसूत्रभगन्दरे ।
गात्रे गात्रैकदेशेषु वायुना स्तम्भितेषु च ॥ १२६ ॥
हनुग्रहेऽर्दिते चैव वेपने गात्रसंग्रहे ।
श्योनाकतैलमित्येतत्ख्यातं वातनिबर्हणम् ॥ १२७ ॥
पृथग्वातात्मके रोगे संसृष्टे च तथाऽमृतम् ।

वातव्याधि में श्योनाक तैल—श्योनाक (अरलू) का मूल एक सौ पल, दशमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू)—एक सौ पल, रोहिष (कत्तृण), सहिजन तथा रास्ना अलग २ पचास २ पल, बकरी, गाय, भैंस तथा मुर्गा का मांस पचास २ पल मिला कर अच्छी तरह कूट कर चार द्रोण जल मे क्वाथ करे । एक द्रोण परिस्रावित क्वाथ मे तैल एक आढक, कल्कार्थ—जीवन्ती, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवक, वच, कूठ, सौंफ, छोटी इलायची, एलवालु, जीवक, ऋषभक, मुनक्का, काकड़ा-सिंघी, मोचरस, समुद्रफेन, मोथा, कालासारिवा, रक्तसारिवा, सोंठ, बरियार, कंघी, वारा, मालकांगनी, शालपर्णी, पीपर, शर्करा, दन्ती, दालचीनी, तेजपत्र, शतावरी, द्रवन्ती, माधवीलता, सहिजन, रास्ना, केला, कुटकी, पाठा, केला का फूल, सेन्धानमक, तुलसी, अगर, शंखपुष्पी, गन्धनाकुली, (चव्य), चोरा, गुग्गुलु, बिम्बीफल, हंसपदी (गोधापदी)—इन द्रव्यों को (तैल के चतुर्थांश) लेकर कल्क बनावे और इस कल्क के साथ तैल पकावे । यह तैल, पान, अभ्यञ्जन, नस्य तथा वस्ति कर्म मे प्रशस्त है । यह प्रसिद्ध श्योनाक तैल सभी वातव्याधि, उरःक्षत, ज्वर, भ्रम, हृदय का अकड़न, वातगुल्म, लंगड़ापन, वातरक्त, पित्तसंसृष्ट वात (वातपित्त), उन्मादरोग, कुण्डल (वातकुण्डलिका), मूत्रकृच्छ्र, वर्ध्म, सूत्र, भगन्दर, एक अंग तथा सभी अंगों में वायु द्वारा स्तम्भन (अकड़न), हनुग्रह, अर्दित (आधा चेहरा का टेढ़ा होना), कम्परोग, शरीर का अकड़न—इन रोगों में प्रशस्त है और वात को नाश करता है तथा स्वतन्त्र वात रोग एवं सान्निपातिक वातरोग में अमृत के समान है ।

सर्वाङ्गवातव्याधौ श्वदंष्ट्राद्यं तैलम्—

आदाय मूलपत्राभ्यां श्वदंष्ट्रां मतिमान् भिषक् ॥ १२८ ॥
शृतं पलशतं क्षुण्णं तं तु निष्पीडयेद् बुधः ।
रसे चतुर्गुणे तस्मिन् पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ १२९ ॥
द्विगुणं च दधिक्षीरमारनालं तथैव च ।
औषधानि च पिष्टानि देयान्यत्र प्रमाणतः ॥ १३० ॥
देवदारु शताह्वा च हिंगु त्रिकटुकं वचा ।
मुस्ता सतगरं कुष्ठं श्लक्ष्णपिष्टानि भागशः ॥ १३१ ॥
यदा सिद्धं विजानीयात्तथैतदवतारयेत् ।
पानानुलेपनेऽभ्यङ्गे बाह्ये चाभ्यन्तरेऽनिले ॥ १३२ ॥
सर्वगात्रगते वाते श्वदंष्ट्रातैलमुत्तमम् ।

सर्वांग वातव्याध में श्वद्रंष्ट्राद्य तैल—बुद्धिमान वैद्य मूल-पत्र सहित गोखरू एक सौ पल लेकर चार द्रोण जल में पकावे एक द्रोण शेष रहने पर उतार कर अच्छी तरह मसल कर छान ले। उस चौगुने रस मे तैल एक आढक (चार प्रस्थ), दही-दूध तथा आरनाल तैल से दुगुना (आठ प्रस्थ) मिलाकर देवदारु, सौंफ, हिंगु, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, मोथा, तगर, कूठ—इन द्रव्यों को (तैल के चतुर्थांश—एक प्रस्थ) लेकर सूक्ष्म-पिष्ट बनावे और उसको पूर्वोक्त तैल आदि द्रव द्रव्यों में छोड़ कर पकावे। सिद्ध हो जाने पर इस तैल को उतार लें। यह श्वदंष्ट्रा तैल पान-अनुलेपन-अभ्यङ्ग के लिये प्रशस्त है, तथा बाह्य वात, आभ्यन्तर वात एवं सर्व शरीरगत वात रोग में उत्तम लाभदायक है।

खुड्डाकपद्मकं तैलम्—

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् ॥ १३३ ॥
सुपिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ।
खुड्डाकपद्मकं तैलं वातासृग्दरदाहजित् ॥ १३४ ॥

खुड्डाक पद्मक तैल—पद्मकाठ, खस, मुलेठी तथा हल्दी का क्वाथ तथा शाल, मंजीठ, क्षीरकाकोली, काकोली, रक्तचन्दन—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सिद्ध खुड्डाक पद्मक नामक तैल वातरोग, रक्तप्रदर तथा दाह को जीत लेता है अर्थात् नाश करता है। (इस योग मे किसी द्रव्य का परिमाण नहीं दिया गया है अतः तैल से चौगुना क्वाथ्य द्रव्य को चौगुने जल मे क्वाथ कर चतुर्थांश शेष क्वाथ मे तैल के चतुर्थांश कल्क द्रव्य को मिला कर मृदु आंच से तैल को सिद्ध करना चाहिए)॥ १३३–१३४ ॥

वातरक्ते महापद्मकं तैलम्—

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफलिनीपद्मकोत्पलैः ।
पृथक् पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥ १३५ ॥
जले शृतैः पचेत्तैलं प्रस्थ सौवीरसंयुतम ।
लोध्रकालीयकोशीरजीवकर्षभकेशरैः ॥ १३६ ॥
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेशरपत्रकैः ।
प्रपौण्डरीककाकोलीमांसीदारुप्रियङ्गुभिः ॥ १३७ ॥
कुङ्कुमस्य पलार्धेन मञ्जिष्ठाद्विपलेन च ।
महापद्ममिदं तैलं वातासृग्रोगनाशनम् ॥ १३८ ॥

वातरक्त में महापद्मक तैल—पद्म (क्षुद्रकमल), बेत, मुलेठी, प्रियंगु, पद्मकाठ, नीलकमल, कुशा, वरियार, रक्तचन्दन, कमलका पराग—पांच २ पल लेकर चौगुने जल में पका कर चौथाई शेष क्वाथ मे सौवीर एक प्रस्थ मिला कर तैल एक प्रस्थ, लोध, तगर, खस, जीवक, ऋषभक, नागकेशर, मेहदी, लता, (ज्योतिष्मती), पत्र (तालीसपत्र), कमल का पराग, पतंग, प्रपौण्डरीक, काकोली, जटामांसी, देवदारु, प्रियंगु ये (तैल के चतुर्थांश), केशर आधा पल, मंजीठ दो पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे। यह सिद्ध महापद्मक तैल वातरोग तथा रक्तप्रदर को नाश करता है ॥ १३५–१३८ ॥

ज्वरे तृतीयं महापद्मकं तैलम्—

दर्भवेतसमूलानि चन्दनं मधुकं बला ।
फेनिलापद्मकोशीरमञ्जिष्ठाकमलोत्पलम् ॥ १३९ ॥
कैंशुकं चात्र भागाः स्युः पृथक् पञ्चपलोन्मिताः ।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १४० ॥
जीवकर्षभकौ मेदां रोध्रं भल्लातकं तथा ।
कालीयकं प्रियंगुं च दद्यात्केशरमेव च ॥ १४१ ॥
यष्टी प्रपौण्डरीकं च पद्मकं पद्मकेशरम् ।
सुरभि कुङ्कुमं चैव मञ्जिष्ठां मदयन्तिकाम् ॥ १४२ ॥
मांसीं पत्र च तुल्यांशं द्विगुण कुङ्कुमं भवेत् ।
चतुर्गुणा तु मञ्जिष्ठा सौवीर तैलसमितम् ॥ १४३ ॥
तैलप्रस्थ पचेदेभिः कषायेणाथ पेषितैः ।
एतदभ्यञ्जनं तैल विषमज्वरनाशनम् ॥ १४४ ॥
महापद्ममिति ख्यातमेतत्तैलं महागुणम् ।
वर्णप्रसादनं श्रेष्ठ सौकुमार्यविवर्धनम् ॥ १४५ ॥
पानाभ्यञ्जनबस्तौ च नस्यकर्मणि पूजितम् ।

वातपित्तभवं क्षिप्रं ज्वरमेतन्नियच्छति ॥ १४६ ॥

ज्वर में तृतीय महापद्मक तैल—दर्भ (कुशा), बेंत का मूल, चन्दन, मुलेठी, वरियार, फेनिल (रीठा करंज), पद्मकाठ, खस, मंजीठ, श्वेतकमल, नीलकमल, कैंशुक (परास का फूल)—इन द्रव्यों को पांच २ पल लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ करे अष्टमांश शेष क्वाथ में, जीवक, ऋषभक, मेदा, लोध, शु० भल्लातक, कालीयक (तगर), प्रियंगु, नागकेशर, मुलेठी, प्रपौण्डरीक, पद्मकाठ, कमल का पराग, रास्ना, केशर, मंजीठ, मेंहदी, जटामांसी, तेजपत्र—समभाग, केशर दो भाग, मंजीठ चार भाग—(तैल के चौथाई) इन द्रव्यों के कल्क के साथ, तैल के बराबर सौवीर तथा तैल एक प्रस्थ मिलाकर पकावे। यह तैल अभ्यञ्जन करने से विषम ज्वर को नाश करता है। यह प्रसिद्ध महापद्मक नामक तैल महान गुण वाला है। कान्ति तथा सुकुमारता को बढाता है, यह तैल पान, अभ्यंजन, वस्ति कर्म तथा नस्य कर्म के लिये प्रशस्त है वात-पित्त-जन्य ज्वर को शीघ्र ही दूर करता है ॥ १२९–१४६ ॥

वातव्याधौ बृहन्माषतैलम्—

प्रस्थे द्वे खण्डमाषाणां क्वाथयेत्सलिलार्मणे ।
चतुर्भागावशिष्टेन तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४७ ॥
मस्तुनस्त्वाढकं दत्त्वा तत्समं चाम्लकाञ्जिकम् ।
औषधानि च गर्भार्थं तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ १४८ ॥
सैन्धवं मदन रास्ना शताह्वा त्र्यूपणं वचा ।
तगरं चोरुबूकञ्ज मञ्जिष्ठा पद्मकेशरम् ॥ १४९ ॥
बला गोक्षुरकः पाठा सरलो देवदारु च ।
अजगन्धाऽश्वगन्धा च पुष्करं सपुनर्नवम् ॥ १५० ॥
एतानि चाक्षमात्राणि कल्कीकृत्य प्रयोजयेत् ।
नस्ये पाने तथाऽभ्यङ्गे बस्तिकर्मणि योजयेत् ॥ १५१ ॥
अर्दितं कर्णशूलं च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ।
बाधिर्यं पक्षघातं च गृध्रसी खञ्जपंगुताम् ॥ १५२ ॥
सर्वानेताञ्जयेच्छीघ्र वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
माषतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ १५३ ॥

वातव्याधि में बृहत् महामाप तैल—माप का टुकडा (कूटा हुआ माप) दो प्रस्थ, एक द्रोण जल में पकावे। चौथाई शेष क्वाथ के साथ तैल एक प्रस्थ, मस्तु (दही का तोड) एक आढ़क, अम्ल कांजिक एक आढ़क, कल्कार्थ—सेन्धानमक, मदनफल, रास्ना, सौंफ, त्र्यूपण (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, तगर, उरूबूक (एरण्ड), मंजीठ, पद्मकेशर,वरियार, गोखरू, पाठा, चीढ़,

देवदारु, अजमोदा, अश्वगन्धा, पुष्करमूल, पुनर्नवा—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों को लेकर कल्क बनाकर मिला दे—और पकावे। इस तैल को नस्यकर्म, पान, अभ्यंग तथा वस्तिकर्म में प्रयोग करे। यह महामाष नामक तैल, अर्दित (आधा चेहरा का टेढ़ा होना), कान का शूल, मन्यानाडी का जकड़ना, हनु का जकड़ना, बधिरता, पक्षघात, गृध्रसी (लगडी दर्द), खञ्ज (लंगड़ापन), पङ्गुना (दोनों पैर से लंगडापन)—इन सभी रोगों को जीत लेता है, जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को गिरा देता है। और सभी वात विकारों को नाश करने वाला है ॥ १४७–१५३ ॥

वाहुरोगे लघुमाषतैलम्—

कपिकच्छुकवाट्यालकशतावरीसितपुनर्नवामूलैः ।
सैन्धवजिङ्गिणिकानरुनिर्यासाभ्यां च कटुतैलम् ॥ १५४ ॥
माषक्वाथेन पचेद् द्विगुणेन पूर्वकल्कसंयुक्तम् ।
सकृदुपयुक्तमिदं वै नस्येन निहन्ति बाहुरुजम् ॥ १५५ ॥

बाहुरोग में लघु माष तैल—कपिकच्छुक (केवाछ बीज), वाटी (बरियार), आलक (शालपर्णी विशेष), शतावरी, सफेद पुनर्नवा की जड़, सैन्धानमक, जिङ्गणिका निर्यास (मदन मञ्जरी का गोंद)—इन द्रव्यों का कल्क, सरसों का तैल, माष का क्वाथ दुगुना—इन सब को एकत्र कर तैल पकावें। यह तैल एक बार नस्य के लिये प्रयोग करने पर बाहुरोग को नाश करता है। (परिमाण-कल्पना स्नेहपाक विधि के अनुसार कर लेना चाहिए) ॥१५४–१५५॥

वातव्याधौ तृतीय महामाषतैलम्—

मापातसीयवकुरण्टककण्टकारी-
गोकण्टटिण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः ।
कार्पासिकास्थिशणबीजकुलत्थकोल-
क्वाथेन बस्तपिशितस्य रसेन तैलम् ॥ १५६ ॥
शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च
सैरण्डमूलसपुनर्नवया सपर्ण्या ।
रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्व
माषाख्यमेतदपबाहुकहारि तैलम् ॥ १५७ ॥
अर्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवात-
माक्षेपकांसभुजकम्पशिरःप्रकम्पम् ।
नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन
हन्यात्कटीजघनजानुरुजः समीरान् ॥ १५८ ॥

वातव्याधि में तृतीय महामाष तैल—माष, अलसी, यव, कुरण्ट (पीत-

झिण्टी "कटसरैया"), भटकटैया, गोखरू, टिण्टुक (अरलु), जटामांसी, केवाछ का बीज, कपास की अस्थि, सन का बीज, कुलथी, बैर—इन द्रव्यों के क्वाथ, बकरी के मांसरस तथा सोंठ, पीपर, सौंफ, रेंडी की जड, पुनर्नवा, शालपर्णी, रास्ना, वरियार, गुडूची लता (ज्योतिष्मती), कुटकी—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे। यह तैल अपबाहुक को दूर करता है और अर्द्धाङ्ग शोष, अपतानक (चांदनी), आढ्यवात (दोनों ऊरुवों का घात), आक्षेपक (शरीर के पेशियों का सिकुडना), कधा तथा बाहु का कांपना, तथा शिराकम्प, कटि-जंघा-जानु (घुटना) के वातजनित पीड़ा को नस्यकर्म, वस्तिकर्म तथा परिसेचन (मर्दन) करने से नाश करता है ॥ १५६-१५८ ॥

वातव्याधौ दशाङ्गतैलम्—

शैरेयकोऽमृता चैव वाजिगन्धा शतावरी ।
नागबलाप्रसारण्यौ श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा ॥ १५९ ॥
बला चैषां समान् भागान् रास्नाभागसमन्वितान् ।
ज्ञात्वा च प्रकृति दोषं कषायमुपकल्पयेत् ॥ १६० ॥
तेन पादावशेषेण तिलतैलाढक पचेत् ।
दधिमस्त्विक्षुनिर्यासशुक्तलाक्षोदकैः समैः ॥ १६१ ॥
चतुर्गुणेन तोयेन कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
मांसीमधुकमञ्जिष्ठाशताह्वारक्तचन्दनैः ॥ १६२ ॥
देवदारुवरीकौन्तीत्वचापत्रकवारिजैः ।
कुष्ठागरुत्वचायुक्तैस्तैलं सिद्ध प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥
बस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये च परिषेचने ।
सर्वरोगान् जयत्येतत्संसृष्टान् मातरिश्वना ॥ १६४ ॥
विशेषतो ह्यपस्मारमुन्माद वातशोणितम् ।
अपत्यजननं स्त्रीणां पुसां चातिबलप्रदम् ॥ १६५ ॥
नराणां गद्गदाना च मूकाना वाक्प्रवर्तनम् ।
मेधाजननमायुष्य बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १६६ ॥
सन्निपातहरं सर्वग्रहघ्नं विषजित् परम् ।
दशाङ्गमिति विख्यातमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ १६७ ॥

वात व्याधि में दशांग तैल—सैरेयक (कटसरैया-पीलीझिण्टी), गुडूची, अश्वगन्धा, शतावरी, नागबला (गंगेरन), गन्धप्रसारणी, गोखरू, पुनर्नवा, वरियार—समभाग, रास्ना एक भाग लेकर प्रकृति तथा दोष को जानकर (वात-पित्तादि को प्राकृतिक तथा वैकृतिक जान कर उसके अनुसार, योग में कल्पना करे) क्वाथ करे। चौथाई शेष क्वाथ के साथ तिल का तैल एक आढ़क,

समान भाग-दधि, मस्तु (दही का तोड़), गन्ने का रस, शुक्त तथा लाक्षा का जल (लाक्षा को जल में भिगोकर थोड़े देर रखने के बाद छाना हुआ जल) एक आढ़क (चार प्रस्थ) मिलाकर जटामांसी, मुलेठी, मंजीठ, सौंफ, रक्तचन्दन, देवदारु, शतावरी, कौन्ती (रेणुका का बीज), दालचीनी, तेज पत्र, कमल, कूट, अगर, वच—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल सिद्ध करें और वस्तिकर्म, पान, अभ्यङ्ग, नस्य कर्म तथा परिसेचन में प्रयोग करे। यह तैल वातसंसृष्ट, (वातजन्य) सभी रोगों को विशेष कर अपस्मार (मिर्गी), उन्माद (पागलपन) तथा वातरक्त को जीत लेता है। स्त्रियों को सन्तान देने वाला तथा पुरुषों को बल देने वाला है। मनुष्यों के शब्दोच्चारण में रुकावट (हकलापन) तथा गूंगापन को दूर कर बोलने की शक्ति देने वाला है। धारणा शक्ति, आयु, बल, कान्ति तथा उदराग्नि को बढ़ाने वाला है, यह प्रसिद्ध, अश्विनीकुमार का कहा हुआ दशांग तैल सन्निपातनाशक, सभी ग्रह दोषों को दूर करने वाला तथा अच्छी तरह विषजन्य उपद्रवों को जीतने वाला है। (इस योग में क्वाथ्य द्रव्य का परिमाण नहीं दिया है अतः क्वाथ्य द्रव्य तैल के चौगुना (चार आढक) लेना चाहिए और चौगुने जल में पकाकर चौथाई शेष क्वाथ को ग्रहण करना चाहिए) ॥ १५९–१६७ ॥

ऊरुस्तम्भे सैन्धवाद्यं तैलम्—

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्।
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि द्वाविंशतिमथाढकम् ॥ १६८ ॥
आरनाल पचेत्प्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ १६९ ॥

ऊरुस्तम्भ में सैन्धवाद्य तैल—सेन्धानमक दो पल, सोंठ पाँच पल, पिपरामूल दो पल, चित्रक दो पल, शु० भल्लातक की गुठली बाईस पल—इन द्रव्यों का कल्क, आरनाल एक आढक (चार प्रस्थ), रेंडीका तैल एक प्रस्थ मिलाकर पकावे। यह तैल गृध्रसी (लङ्गड़ीदर्द), ऊरु का जकड़ना, अर्श रोग तथा सभी प्रकार के वात रोग को दूर करता है ॥ १६८–१६९ ॥

कुसुम्भाद्यं तैलम्—

कुसुम्भकुङ्कुमोशीरमञ्जिष्ठारक्तचन्दनैः।
सिक्थसर्जरसातङ्कगुडूचीसैन्धवाम्बुदैः ॥ १७० ॥
मूर्वाशतावरीलाक्षामधुकैश्च पलांशकैः।
चतुर्गुणेन तोयेन पचेत्तैलाढकं भिषक् ॥ १७१ ॥
अर्दितं कर्णशूलं च शिरःशूलं च दारुणम्।
गृध्रसीं वातरक्तं च पक्षाघातं व्यपोहति ॥ १७२ ॥

तद्वस्तिपु च पानेषु नस्ये च कर्णपूरणे ।
अभ्यङ्गे च शिरोरोगे तैलं विद्याद्यथाऽमृतम् ॥ १७३ ॥
पाणिपादांसदाहेषु गुदयोनिरुजासु च ।
सुप्तिवातेऽस्थिभङ्गे च देवदेवेन पूजितम् ॥ १७४ ॥

कुसुम्भाद्य तैल—कुसुम्भ (बर्रे का फूल), केशर, खस, मंजीठ, रक्त चन्दन, मोम, सर्जरस (राल), आतङ्क (कुष्ठ), गुडूची, सेन्धानमक, मोथा, मूर्वा (मोरबेल), शतावरी, लाख, मुलेठी—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल के चौगुना (चार आढ़क) जल मिलाकर तैल एक आढ़क (चार प्रस्थ) सिद्ध करे । यह तैल अर्दित (मुह का टेढ़ा होना), कान का दर्द, शिर का उग्र दर्द, गृध्रसी (लंगडी का दर्द), वातरक्त तथा पक्षाघात को दूर करता है । वस्ति कर्म, पान, नस्यकर्म, कान मे भरना, अभ्यङ्ग (मर्दन) तथा शिरो रोग मे यह तैल अमृत के समान जाने । इन्द्र से पूजित यह तैल हाथ—पैर के जलन, गुदा तथा योनि रोग, सुप्त वात तथा अस्थिभग्न मे भी अमृत के समान है अर्थात् इन रोगों को नाश करता है ॥ १७०–१७४ ॥

भगन्दरे मागध्याद्यं तैलम्—

मागधी मधुक रोध्र कुष्ठमेला हरेणवः ।
समङ्गा धातकी चैव सारिवा रजनीद्वयम् ॥ १७५ ॥
सर्जरसः प्रियङ्गुश्च पद्मकं पद्मकेशरम् ।
मातुलुङ्गस्य पत्राणि मधूच्छिष्टं ससैन्धवम् ॥ १७६ ॥
एतत्संभृत्य संभारं तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद्धि गण्डमालासु मण्डलेष्वथ मेहिषु ॥ १७७ ॥
रोपणाय हित तैल भगन्दरविनाशनम् ।

भगन्दर रोग मे मागध्याद्य तैल—पीपर, मुलेठी, लोध, कूठ, इलायची, सम्भालू के बीज, मंजीठ, धाय का फूल, सारिवा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सर्जरस (राल), प्रियंगु, पद्मकाठ, कमल का पराग, बिजोरा नीबू का पत्ता, मोम, सेन्धानमक—इन द्रव्यों को एकत्र कर इसके कल्क के साथ तैल पकावे । यह तैल गण्डमाला, मण्डलकुष्ठ, प्रमेह—इन रोगों में रोपण करने के लिये हितकर है तथा भगन्दर को नाश करता है । (इस योग मे किसी भी द्रव्य का परिमाण नहीं दिया गया है । अतः चौथाई कल्क द्रव्य तथा चौगुना जल लेकर तैल—पाकविधि से तैल सिद्ध करना चाहिए ।

भगन्दरे चित्रकाद्यं तैलम्—

चित्रकार्कत्रिवृत्पाठामलयूहयमारकान् ॥ १७८ ॥
लाङ्गली सप्तपर्णं च सुधां वचां सुवर्चिकाम् ।

ज्योतिष्मती च संभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ १७९ ॥
एतदभ्यञ्जने तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे ।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १८० ॥

भगन्दर रोग में चित्रकाद्य तैल—चित्रक, मदार, निशोथ, पाठा, मलयू (कठूमर), कनेर, कलिहारी, छतिवन, सेहुंड, वच, सुवर्चिका (हुलहुल), मालकांगनी—इन द्रव्यों को एकत्र कर कल्क बनाकर (तैल के चौगुना जल मिलाकर) तैल पकावे । यह तैल—अभ्यञ्जन (लगाने) से भगन्दर रोग में शोधन, रोपण तथा समान वर्ण वाला बनाता है । (यहाँ द्रव तथा कल्क का परिमाण नहीं दिया है अतः तैल से चौगुना पानी तथा तैल के चौथाई कल्क द्रव्य लेना चाहिए) ॥ १७८-१८० ॥

गण्डमालायामजमोदाद्यं तैलम्—

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्वयम् ।
क्षारौ समुद्रफेनश्च सान्द्रकः सरलोद्भवः ॥ १८१ ॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकं समम् ।
एभिः सार्षपकं तैलमजामूत्राष्टभागकम् ॥ १८२ ॥
मृद्वग्नौ पाचयेदेतत्स्नुह्यर्कक्षीरसंयुतम् ।
अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ १८३ ॥
आमां, पचेद्विदग्धां च, पक्वां चैव विशोधयेत् ।
रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥ १८४ ॥

गण्डमाला में अजमोदाद्य तैल—अजमोदा, सिन्दूर, शु० हरिताल, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सज्जीखार, यवखार, समुद्रफेन, सान्द्रक (मथित दही), राल, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला का कन्द—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सरसों का तैल, बकरी का मूत्र तैल का अठगुना, तैल के समभाग सेहुंड तथा मदार का दूध मिलाकर मन्द आच से पकावे । यह अजमोदादिक तैल गण्डमाला को दूर करता है । कच्चे विद्रधि को पकाता है और विदग्ध विद्रधि को पकाकर शोधन करता है । इस तैल से व्रण को रोपण तथा मुलायम कराना चाहिए । (इस योग में कल्क द्रव्य तैल के चौथाई तथा सेहुंड तथा मदार का दूध समभाग लेना चाहिए) ॥ १८१-१८४ ॥

वातव्याधावश्वगन्धाद्यं तैलम्—

मूलानामश्वगन्धायाः शतं स्यात्खण्डशः कृतम् ।
द्विद्रोणेऽपां पचेत्क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥ १८५ ॥
तैलाढकं समावाप्य क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
समालोड्य पचेदेतत् कल्कांश्चैषां समावपेत् ॥ १८६ ॥

तगरं शतपुष्पां च मुस्तं व्याघ्रनखं त्वचम् ।
मधुकं शृङ्गवेरं च पृश्निपर्णी बला स्थिराम् ॥ १८७ ॥
रास्नां पुष्करमूलं च भूतीक सपुनर्नवम् ।
मञ्जिष्ठा नलदं पत्र द्रवन्ती सुरसां वचाम् ॥ १८८ ॥
श्वदंष्ट्रां च मृणाल च वयस्था बहुपुत्रिकाम् ।
पलार्धान्श्लक्ष्णपिष्टांस्तु दत्त्वा गर्भं विपाचयेत ॥ १८९ ॥
तत्सिद्धमविदग्धं च ततः समवतारयेत् ।
बस्तौ पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्यकर्मणि भोजने ॥ १९० ॥
यत्र यत्र विधातव्यं तन्मे निगदतः शृणु ।
खञ्जमूकजडत्वे च तिमिरे च तथाऽर्बुदे ॥ १९१ ॥
पक्षाघाते तथाऽऽयामे च्युतभग्नास्थिसन्धिषु ।
विधेयं पृष्ठभग्नेषु हनुमन्याग्रहे तथा ॥ १९२ ॥
स्तम्भकम्पेषु शोफेषु रुजासु विविधासु च ।
ज्वरे च विषमे गुल्मे तथा मारुतशोणिते ॥ १९३ ॥
प्लीह्नि प्लीहोदरे चैव विद्रधौ गृध्रसीषु च ।
नष्टशुक्रास्तथा पण्ढा ये च क्षीणेन्द्रिया नराः ॥ १९४ ॥
भूतोपहतचित्ताश्च शस्यते तेषु नित्यशः ।
व्यापन्नयोनिवन्ध्यासु पाययेत सदा भिषक् ॥ १९५ ॥
पुत्रद परम प्रोक्त धन्वन्तरिवचो यथा ।

वातव्याधि में अश्वगन्धाद्य तैल—अश्वगन्धा का मूल एक सौ पल लेकर छोटा २ टुकडा काटकर दो द्रोण जल में पकावे । अष्टमांश शेष क्वाथ, तैल एक आढ़क, दूध चौगुना (चार आढ़क) एकत्र कर कल्कार्थ—तगर, सौंफ, मोथा, व्याघ्रनख, दालचीनी, मुलेठी, सोंठ, पिठवन, बरियार, सरिवन, रास्ना, पुष्करमूल, भूतीक (कत्तृण), पुनर्नवा, मजीठ, नलद (जटामांसी), तालीसपत्र, द्रवन्ती, तुलसी, वच, गोखरू, कमल का नाल, गुडूची, बहुपुत्रिका (शतावरी)—आधा २ पल लेकर, इसका कल्क मिलाकर तैल पकावे । अच्छी तरह अविदग्ध सिद्ध हो जाने पर उतार ले । वस्तिकर्म, पान, अभ्यङ्ग (मर्दन), नस्यकर्म तथा भोजन में जहां २ प्रयोग करना चाहिए उसको मैं बताता हूँ सुनो । खञ्ज (एकसक्थिघात "लंगडापन"), गूंगापन, जड़ता, तिमिर (दृष्टिगत रोग), अर्बुद (गांठ), पक्षाघात (शरीर के आधा अङ्ग का घात होना), आयाम (हृत्कोष्ठ की विस्तृति), अस्थि तथा सन्धिभग्न होने पर स्थानच्युति, पृष्ठभग्न, हनुग्रह, मन्याग्रह, स्तम्भ (जकडन), कम्प, शोथ, अनेक प्रकार के रोग, ज्वर, विषम-ज्वर, गुल्मरोग, वातरक्त, प्लीहवृद्धि, प्लीहोदर, विद्रधि,

गृध्रसीवात, जो नष्टवीर्यवाला नपुंसक, क्षीण इन्द्रिय-शक्तिवाला मनुष्य तथा भूतदोष से अभिभूत, मनुष्यों के रोगों में निश्चयशः प्रशस्त हैं और पूर्वोक्त रोगों में तथा व्यापन्नयोनि, वांझ स्त्रियों के रोग में वैद्य हमेशा पान कराये। यह निश्चय ही पुत्र को देनेवाला है। जैसा कि धन्वन्तरि का वाक्य है। व्यर्थ नहीं होता॥

वातव्याधावश्वगन्धाद्यं तैलम्—

अश्वगन्धाशतं क्षुण्ण क्वाथ्यं द्रोणे जलस्य च॥ १९६॥
निःस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीर दत्त्वा चतुर्गुणम्।
कल्कैर्मृणालशालूकबिशकिञ्जल्कमालती-॥ १९७॥
पुष्पैर्मधुकह्रीबेरसारिवावक्रकेशरैः।
मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः॥ १९८॥
त्रिफलैलावचापत्रमुस्तचन्दनपद्मकैः।
पित्तरक्ताश्रयान्वातान् रक्तपित्तमसृग्दरम्॥ १९९॥
हन्यात्पुष्टिकर चैव कृशानां मांसवर्धनम्।
रेतोयोनिविकारघ्न व्रणदोपापकर्षणम्॥ २००॥
षण्ढानपि वृपान् कुर्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः।

वातव्याधि में अश्वगन्धाद्यतैल—अश्वगन्धा एक सौ पल कूटकर एक द्रोण जल में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को छानकर तैल—एक प्रस्थ, दूध तैल के चौगुना (चार प्रस्थ) डालकर, मृणाल, कमल का नाल, शालूक (कमल की जड़) विस, (कमल का तन्तु), कमल का पराग, मालती का फूल, मुलेठी, हाऊबेर, सारिवा, वक्र (अगस्त्य), नागकेशर, मेदा, पुनर्नवा, मुनक्का, मंजीठ, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, त्रिफला (हर्रे, आंवला, बहेडा), इलायची, वच, तालीस पत्र, मोथा, चन्दन, पद्मकाठ, (तैल के चतुर्थांश चार पल) इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे। यह तैल, पित्त तथा रक्तगत वातरोग, रक्तपित्त, रक्तप्रदर को नाश करता है, पुष्ट करनेवाला है, दुर्बलों के मांस को बढ़ानेवाला है। वीर्यदोष, योनिविकार को नाश करनेवाला है। व्रणदोष को दूर करनेवाला है तथा पान, अभ्यङ्ग एवं अनुवासन कर्म से नपुंसकों को भी वृष (वीर्यवाला) बना देता है॥

कुङ्कुमाद्यं मुखकान्तिदं तैलम्—

कुङ्कुमं चन्दनं पत्रमुशीर कमलोत्पले॥ २०१॥
गोरोचना हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका।
सारिवारोध्रपत्राङ्गपत्रगैरिककेशरम्॥ २०२॥
स्वर्णक्षीरी प्रियङ्गुश्च कालेय रक्तचन्दनम्।
एपामक्षसमैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ २०३॥

अभ्यङ्गाद्राजपत्नीनां ये चान्ये धनिनो नराः ।
तिलकान् पिडकान् व्यङ्गान् नीलिकां मुखदूषिकाम् ॥ २०४ ॥
कार्श्यं चापि शरीरस्य दुश्छायां च विवर्णताम् ।
नाशयेज्जनयेच्चाशु रूपं चाथ मनोहरम् ॥ २०५ ॥
पद्मकेशरवर्णाभ मुख भवति कान्तिमत् ।

मुख को कान्ति देनेवाला कुंकुमाद्य तैल—केशर, चन्दन, तालीसपत्र, खस, श्वेतकमल, नीलकमल, गोरोचन, आमाहल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, मुलेठी, सारिवा, लोध, पत्राङ्ग (पतग), तेजपत्र, गेरु, नागकेशर, सत्यानासी, प्रियंगु, कालेय (अगरभेद पीतअगर) रक्तचन्दन—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल एक प्रस्थ (जल, तैल के चौगुना चार प्रस्थ) मिलाकर सिद्ध करे। यह तैल राजपत्नियों के तथा धनी पुरुषों के तिलक, पिडका, व्यङ्ग, नीलिका, मुखदूषिका, शरीर की कृशता, दुश्छाया तथा वर्णहीनता को नाश करता है और शीघ्र ही सुन्दररूप को बना देता है। कमलपराग के कान्ति की तरह सुन्दर मुख हो जाता है ॥

वातरक्ते यष्टीमधुकाद्य तैलम्—

शतं पलानि यष्ट्यास्तु क्वाथयेत् पादशेषिते ॥ २०६ ॥
तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।
शतपुष्पावरीकुष्ठपयस्यागुरुचन्दनैः ॥ २०७ ॥
स्थिराहसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिका- ।
काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यर्धिपद्मकैः ॥ २०८ ॥
वचाजीवकजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवैन्द्रीवितुन्नकैः ॥ २०९ ॥
चतुर्धा तत्प्रयोगेण हन्ति मारुतशोणितम् ।
सर्वगात्रानुगं साङ्गशूल सोपद्रव तथा ॥ २१० ॥
वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वरघ्न बलवर्णकृत् ।

वातरक्त में यष्टीमधुकाद्य तैल—मुलेठी एक सौ पल (तीन द्रोण जल में) क्वाथकर चतुर्थांश शेष क्वाथ में तैल एक आढ़क (चारप्रस्थ), दूध समभाग (चारप्रस्थ) मिलाकर, सौंफ, शतावरी, कूठ, पयस्या (अर्कपुष्पी), अगर, रक्तचन्दन, शालपर्णी, हसपदी (गोधापदी), जटामांसी, मेदा, महामेदा, मधुपर्णिका (गुडूची), काकोली, क्षीरकाकोली, तामलकी (भुई आंवला), ऋद्धि, पद्मकाठ, वच, जीवक, जीवन्ती, दालचीनी, तेजपत्र, व्याघ्रनख, सुगन्धवाला, प्रपौण्डरीक, मंजीठ, सारिवा, ऐन्द्री (इन्द्रायण), वितुन्नक (धनिया)—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल पकावे। इस तैल को चार

प्रकार (वस्तिकर्म, पान, अभ्यञ्जन, नस्यकर्म), प्रयोग करने से सर्वशरीरगत वातरक्त, अंगशूल तथा उपद्रव सहित वातरक्त को नाश करता है। वातरोग, रक्तपित्त, दाह, पीडा तथा ज्वर को नाश करता है और बल तथा कान्ति बढ़ाता है ॥

कर्णरोगे लघुक्षारतैलम्—

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २११ ॥
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रु रसाञ्जनम् ।
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१२ ॥
तैलमेभिर्विपक्तव्य कर्णशूलहरं परम् ।
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्रावश्च दारुणः ॥ २१३ ॥
क्रिमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात् ।

कर्णरोग में लघु क्षार तैल—शुष्कमूली के सोंठ का क्षार, हिंगु, लहसुन, सौंफ, वच, कूठ, देवदारु, सहिजन, रसाञ्जन—इन द्रव्यों का कल्क, विजौरानीबू का रस, केला का रस, तैल—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल अच्छी तरह कर्णशूल को नाश करनेवाला है। इस तैल को कान में भरने (डालने) से वहरापन, कान में शब्द होना उग्र पूय स्राव तथा क्रिमियाँ नष्ट हो जाती हैं। (इस तैल में द्रव द्रव्य तैल के चौगुना तथा कल्क चौथाई लेना चाहिए तिलतैल के स्थान पर सरसों का तैल लेना उत्तम है ॥)

कर्णरोगे बृहत्क्षारतैलम्—

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २१४ ॥
शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिग्रु रसाञ्जनम् ।
(सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।
भूर्जग्रन्थिर्विडं शुक्तं मधुशुक्तं तथैव च ॥)
मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च ॥ २१५ ॥
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ।
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्रावश्च दारुणः ॥ २१६ ॥
पूरणादस्य तैलस्य क्रिमयः कर्णसंश्रिताः ।
विनाशमाशु गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ॥ २१७ ॥
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ।

कर्णरोग में बृहत्क्षार तैल—शुष्क मूली के सोंठ का क्षार, हिंगु, लहसुन, सौंफ, वच, कूठ, देवदारु, सहिजन, रसाञ्जन, (सौवर्चल नमक, यवक्षार, सज्जीखार, औद्भिद नमक, सेन्धानमक, भोजपत्र की गांठ, विडनमक, शुक्त (कन्दमूलादि को जल में तीन दिन अनुसन्धान के बाद सिद्ध मद्यविशेष),

मधुशुक्त (मधुर कन्दमूलादि को जल में तीन दिन अनुसन्धान के बाद सिद्ध मद्यविशेप), विजौरा नीबू का रस, केला का रस—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल कर्णशूल को अच्छी तरह नाश करनेवाला है। इस तैल को कान में डालने से वाधिर्य (बहरापन), कर्णनाद (कान का शब्द), भयंकर पूयस्राव, कान की कीड़ियाँ, कृष्णात्रेय के कथनानुसार शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। यह उत्तम चारतैल मुखरोग तथा दन्तरोग को नाश करता है। (इस योग में नीबू का रस, केला का रस, शुक्त, मधुशुक्त, सभी द्रव द्रव्य मिलाकर तैल के चौगुना होना चाहिए। तथा कल्क द्रव्य चौथाई, तैल सरसों का लेना उत्तम है ॥

नेत्ररोगे भृङ्गराजतैलम्—

भृङ्गरसस्य प्रस्थं तैलात्कुडव पलं च मधुकस्य ॥ २१८ ॥
क्षीरप्रस्थविपक्व गतमपि चक्षुर्निवर्तयति ।

नेत्र रोग में भृङ्गराज तैल—भृङ्गराज का रस एक प्रस्थ, तैल एक कुडव, मुलेठी एक पल, दूध एक प्रस्थ मिला कर पकावे। यह तैल प्रयोग करने से नष्ट दृष्टि को भी पुनः देखने योग्य दृष्टि बना देता है।

केशवृद्धौ द्वितीयं भृङ्गराजाद्य तैलम्—

भृङ्गरसत्रिफलोत्पलसारि लोहपुरीषसमन्वितकारि ॥ २१९ ॥
तैलमिदं पच दारुणहारि लुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ।

केशवृद्धि में द्वितीय भृङ्गराजाद्य तैल—भृङ्गराज का स्वरस, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) का रस, नीलकमल का रस, मण्डूर, सब को मिला कर तैल पकावे। यह तैल दारुण शिरोरोग, (शिर में रूसी (भूसी) होना) को दूर करता है। लुञ्चित (गिरते हुए) केश को घन तथा स्थिर करता है। (द्रव द्रव्य तैल के चौगुना तथा मण्डूर चौथाई लेकर पकाना चाहिए)।

केशवृद्धौ तृतीयं भृङ्गराजतैलम्—

मार्कवस्वरसभावितगुञ्जाबीजचूर्णपरिपाचिततैलम् ॥ २२० ॥
मिश्रितं त्रुटिजटासुरकाष्ठैः केशवर्धनमिदं वनितायाः ।

केशवृद्धि मे तृतीय भृङ्गराज तैल—भृङ्गराज के स्वरस से भावित गुञ्जा बीज का चूर्ण, इलायची, जटामांसी, देवदारु—इन द्रव्यों के कल्क के साथ भृङ्गराज के रस में पकाया तैल स्त्री के केश को बढ़ाता है। (भृङ्गराज का रस तैल के चौगुना तथा कल्क चौथाई लेना चाहिए)।

बृहद्भृङ्गराजाद्यं तैलम्—

अनूपदेशजं पुष्टं गृहीत्वा मार्कवं शुभम् ॥ २२१ ॥

प्रक्षाल्य जर्जरीकृत्य रस तस्य प्रपीडयेत् ।
चतुर्गुणेन तेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२२ ॥
द्रव्यैरभिः पय'पिष्टैः संयोज्य मतिमान् भिषक् ।
मञ्जिष्ठां पद्मकं रोध्रं चन्दन गैरिकं बलाम् ॥ २२३ ॥
रजन्यौ केसरं दारु प्रियङ्गुमधुयष्टिके ।
प्रपौण्डरीक सौम्यं च पत्रिकं तत्र दापयेत् ॥ २२४ ॥
कुष्ठ तगरमाषांश्च सिद्धार्थांश्चागुरुं तथा ।
मुस्तक चाथ शैलेयं कर्चूरं परिकल्कितम् ॥ २२५ ॥
सम्यकपक्व ततो ज्ञात्वा शुभे भाण्ड निधापयेत् ।
केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे ॥ २२६ ॥
अकालपलिते चैव दारुणे चैव दारुणे ।
दन्तकर्णाक्षिरोगेषु नस्यमेतत्प्रदापयेत् ॥ २२७ ॥
मासं नस्यप्रयोगेण क्षीरान्नप्रतिभोजिनः ।
कुञ्चिताग्रान् हि केशांश्च स्निग्धान्कुर्याद्बहूस्तथा ।
खालित्ये सेन्द्रलुप्ते च तैलमेतद्यथाऽमृतम् ॥ २२८ ॥

बृहद् भृंगराजाद्य तैल—निम्न प्रदेश में उत्पन्न परिपुष्ट, स्वच्छ भृङ्गराज को धोकर कूट कर अच्छी तरह रस निकाल ले। और उस चौगुना रस के साथ तैल एक प्रस्थ, मंजीठ, पद्मकाठ, लोध, रक्तचन्दन, गेरू, बरियार, आमाहल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, देवदारु, प्रियगु, मुलेठी, प्रपौण्डरीक, सौम्य (गूलर), कूठ, तगर, माष, सफेद सरसों, अगर, मोथा, छडीला, कचूर—एक २ पल—इन द्रव्यों को दूध के साथ पीस कर कल्क बना कर मिला दे और पकावे। अच्छी तरह पक जाने पर स्वच्छ भाण्ड मे रख ले। इस तैल का, केश का गिरना, शिरःशूल, मन्यास्तम्भ (मन्यानाडी का जकडना), हनुग्रह, असमय में बाल का पकना, भयंकर दारुणक (शिर में रूसी का होना) रोग, दन्तरोग, कर्ण रोग तथा नेत्र रोग में, नस्य देना चाहिए। इस तैल का एक मास तक नस्य कर्म में प्रयोग करने से दूध-भात खाने वाले व्यक्ति के गिरे हुए बालों को स्निग्ध करता है तथा घन कर देता है। खालित्य (बाल का झड़ना), इन्द्रलुप्त (असमय में बाल का गिरना) में यह तैल अमृत के समान है। अर्थात् बाल को झरने से रोकता है ॥ २२१–२२८ ॥

केशरोगे असनाद्यं तैलम्—

असनसारकषायविपाचित त्रिफलया मधुकेन च सयुतम् ।
भवति नावनतैलमनुत्तमं पलितनेत्रविकाररुजापहम् ॥ २२९ ॥

केशरोग में असनाद्य तैल—असनसार (विजयसार) कषाय में त्रिफला

(हर्रे, वहेड़ा, आंवला), मुलेठी—इन द्रव्यों के कल्क के साथ पकाया हुआ तैल उत्तम नावन होता है। यह तैल पलित (असमय में बाल का पकना) तथा नेत्र रोग को नाश करता है। (तैल एक भाग, कषाय चार भाग, कल्क द्रव्य चौथाई भाग लेना चाहिए) ॥ २२९ ॥

शिरोरोगे षड्बिन्दुतैलम्—

तगरैरण्डमूले च रास्ना यष्टी च सैन्धवम्।
जीवन्ती शतपुष्पा च विडङ्गं नागरं तथा ॥ २३० ॥
मधूकसारमित्येभिः कल्कपिष्टैस्तिलोद्भवम्।
भृङ्गरसे पचेत्तैलं द्विगुणे गोपयस्यथ ॥ २३१ ॥
षड्बिन्दुनस्यदानेन हन्याच्छीर्षामयान् बहून्।
चलना द्विजकेशानां पततां दार्ढ्यमानयेत् ॥ २३२ ॥
दृग्बलं परमं तेषां बाह्वोः स्यादुत्तमं बलम्।
वलीपलितहृत्तैलमिदं षड्बिन्दुसञ्ज्ञितम् ॥ २३३ ॥

शिरोरोग में षड्बिन्दु तैल—तगर, एरण्डमूल, रास्ना, मुलेठी, सेन्धानमक, जीवन्ती, सौंफ, विडंग, सोंठ, महुआ की लकडी—इन द्रव्यों के कल्क (तैल के चतुर्थांश) के साथ तिल का तैल, दुगुना भृङ्गराज का रस तथा दुगुना गाय के दूध में मिला कर पकावे। यह तैल छः बूंद नाक में डालने से बहुत से शिरोरोगों को नाश करता है। हिलते दांत तथा गिरते हुए केशों को दृढ़ कर देता है। दृष्टि बल को उत्तम करता है तथा बल को अच्छी तरह बढ़ाता है। यह षड्बिन्दु संज्ञक तैल वली (मुख में झुरी पडना), पलित (असमय में बाल का पकना), को दूर करता है ॥ २३०–२३३ ॥

शिरोरोगे द्वितीयं षड्बिन्दुतैलम्।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्ति रास्ना लवणोत्तमं च।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ २३४ ॥
आजं पयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम्।
षड्बिन्दवो नासिकया प्रयुक्ता निघ्नन्ति सर्वाञ्छिरसो विकारान् ॥
च्युतांश्च केशान्पतितांश्च दन्तानाबद्धमूलांश्च दृढीकरोति।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुर्बाह्वोर्बलं चाभ्यधिकं करोति ॥ २३६ ॥

शिरोरोग मे द्वितीय षड्बिन्दु तैल—रेंड की जड़, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेन्धानमक, भृङ्गराज, विडंग, मुलेठी, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों का (तैल के चौथाई भाग) कल्क, काले तिल का तैल, बकरी का दूध (तैल के बराबर)—इन सबों को मिला कर भृङ्गराज के चौगुने स्वरस में पकावे। इस तैल की छः बूंदों को नाक में छोडने से सभी प्रकार के शिर के

रोगों का नाश हो जाता है। यह तैल गिरते हुए तथा असमय में पकते हुए बाल तथा हिलते हुए दांतों को जड से मजबूत करता है। और गीध की दृष्टि के समान आंख तथा बाहु के बल को अधिक बढ़ा देता है। (इस योग में कल्क द्रव्य तैल के चौथाई तथा दूध तैल के बराबर लेना चाहिए) ॥ २३४–२३६ ॥

दन्तरोगे बकुलाद्यं तैलम्—

बकुलस्य फलं लोध्रं बला वल्ली कुरण्टकः ।
चतुरङ्गुलबब्बूलवाजिकर्णारिमेदकम् ॥ २३७ ॥
एषां कल्ककषायाभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ।
स्थैर्यं करोति दन्तानां चलतां नावनेन च ॥ २३८ ॥

दन्तरोग में बकुलाद्य तैल—मौलसरी का फल, लोध, वरियार, वल्ली (गुडूची), कुरण्टक (कटसरैया = पीतझिण्टी), अमलतास, बब्बूल, वाजिकर्ण,—(अश्वकर्ण, बडासाल) अरिमेद (दुर्गन्धखैर)—इन द्रव्यों के (तैल के चौगुना) कषाय तथा (तैल के चतुर्थांश) कल्क के साथ तैल सिद्ध करे, और इस तैल को दांत के नीचे धारण करे। यह तैल नावन करने से हिलते दातों को स्थिर करता है। (स्नेहपाक-विधि के अनुसार क्वाथ्य द्रव्य तैल के चौगुना, तथा कल्क द्रव्य तैल के चौथाई लेना चाहिए क्योंकि यहां परिमाण नहीं बताया गया है। क्वाथ्य द्रव्य को चौगुने जल में पकाकर चौथाई शेष क्वाथ को ग्रहण करना चाहिए) ॥ २३७–२३८ ॥

दन्तरोगे नीलसहचराद्यं तैलम्—

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य सक्षुद्य द्रोणे श्रपयेज्जलस्य ।
दत्त्वां चतुर्भागरसं तु तेन तैलं पचेदर्धपलप्रयुक्तैः ॥ २३९ ॥
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां चलतां विदध्यात् ॥ २४० ॥

दन्त रोग में नील सहचराद्य तैल—नीलसहाचर (नीली झिण्टी-कटसरैया) एक तुला लेकर कूट कर एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष क्वाथ मे तैल (एक प्रस्थ), अनन्तमूल, खैर, दुर्गन्ध खैर, जामुन की गुठली, आम की गुठली, मुलेठी, नीलकमल, आधा पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ पकावे। यह तैल मुख में धारण करने से शीघ्र ही हिलते दाँतों को स्थिर कर देता है ॥ २३९–२४० ॥

मुखरोगे इरिमेदाद्यं तैलम्—

इरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा ।
तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्क्वाथ्य चतुर्थशेषेण ॥ २४१ ॥
क्वाथेन भिषङ्मतिमान् तैलस्यार्धाढकं शनैर्विपचेत् ।

कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठारोध्रमधुकानाम् ॥ २४२ ॥
इरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला– ।
कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकङ्कोलजातीफलानाम् ॥ २४३ ॥
फल्गुपत्तङ्गगैरिकवराङ्गगजकुसुमधातकीनां च ।
सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थितेषु रोगेषु ॥ २४४ ॥
परिशीर्णदन्तविद्रधिशौषिरशीतादन्तहर्षेषु ।
कृमिदन्तदरणचलितप्रहृष्टमांसावदीर्णेषु च ॥ २४५ ॥
मुखदौर्गन्ध्ये च तथा प्रागुक्तेष्वामयेषु नृणाम् ।
धार्यं मुखेन मुखजेष्वरुःषु सरोपणार्थाय ॥ २४६ ॥

मुखरोग में इरिमेदाद्य तैल—इरिमेद (दुर्गन्ध खैर) की छाल नवीन एक सौ पल लेकर टुकडा २ काट कर चार आढ़क जल में क्वाथ करे, चौथाई शेष क्वाथ के साथ, बुद्धिमान् वैद्य तैल आधा आढ़क (दो प्रस्थ), कल्कार्थ— मंजीठ, लोध, मुलेठी, दुर्गन्धखैर, खैर, कायफर, लाख, वटांकुर, मोथा, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्मकाठ, लंवग, कबावचीनी, जायफर, फल्गु (कठ-डूमर), पतग, गेरू, गजपीपर, धाय का फूल—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों को लेकर कल्क बनावे और कल्क तथा कषाय के साथ तैल सिद्ध करे। इस तैल को बुद्धिमान वैद्य मुख के उत्पन्न रोगों मे प्रयोग करे। परिशीर्ण दन्तविद्रधि (सडा हुआ दात का व्रण), शौषिर (दन्तमूलगत शोथ), शीताद (मसूड़े से खून आना), दन्तहर्ष (दांत का खट्टा होना), कृमिदन्त (दांत में कीड़ा लगना) दरण (दन्तशूल), चलित (हिलना), प्रहृष्ट, मांसावदीर्ण (मसूड़े का रोग), मुख की दुर्गन्धि तथा पहले के बताये हुए मनुष्यों के मुख रोगों मे प्रयोग करना चाहिए और मुख के व्रण के रोपण के लिये मुख में धारण करना चाहिए ॥ २४१–२४६ ॥

दन्तरोगे द्वितीयमिरिमेदाद्य तैलम्—

न वृद्धान्नातिबालाच्च त्वक्तुलामिरिमेदकात् ।
अपां द्रोणे समावाप्य पचेत्पादावशेषितम ॥ २४७ ॥
ततस्तेन कषायेण क्षीरप्रस्थसमन्वितम् ।
लाक्षारससमायुक्तं तैलप्रस्थं पचेन्नरः ॥ २४८ ॥
लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः ।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैः पालिकैर्धातकीसमैः ॥ २४९ ॥
एतद्रुजापहं नाम तैलं गण्डूषधारणात् ।
दारणं दन्तचालं च हनुमोक्षं कपालिकाम् ॥ २५० ॥
शीतादं पूतिवक्त्रत्व शौषिरं विरसास्यताम् ।

हन्यादाशु गदानेतान् कुर्याद्दन्तान् स्थिरानपि ॥ २५१ ॥

दन्तरोग में द्वितीय इरिमेदादि तैल—नवीन तथा पुराना न हो ऐसा परिपक्व इरिमेद (विट्खदिर) की छाल एक तुला, एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष कषाय के साथ, दूध एक प्रस्थ, लाक्षारस एक प्रस्थ मिलाकर तैल एक प्रस्थ, लोध, कायफर, मंजीठ, कमल का पराग, पद्मकाठ, चन्दन, नीलकमल, मुलेठी, धाय का फूल एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ पकावे। यह तैल गण्डूष (कुल्ला) धारण करने से दांत के रोगों को नाश करता है और दांत का शूल, दांत का हिलना, हनुमोच (हनुसन्धि बंध का ढीला होना), कपालिका (दन्तशर्करा के साथ दांतों का छिलका उतरना), शीताद (मसूडे से खून आना), पूतिवक्त्र (मुख से दुर्गन्ध आना), शौषिर (दन्तमूलगत शोथ) विरसास्यता (मुख का फीका होना) इत्यादि रोगों को नाश करता है और दांतों को स्थिर भी करता है ॥ २४७–२५१ ॥

दन्तरोगे खदिराद्यं तैलम्—

शतं खदिरसारस्य जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेषे रसे लोध्रमञ्जिष्ठारक्तचन्दनैः ॥ २५२ ॥
कट्वङ्गोशीरलाक्षैलात्वक्पत्रामरदारुभिः।
नखकुङ्कुममञ्जिष्ठापरिपेलववालुकैः ॥ २५३ ॥
वालुकागुरुमुस्तैलास्पृक्कातगरपद्मकैः।
कल्कीकृतैः पचेदेभिस्तैलप्रस्थं भिषग्वरः ॥ २५४ ॥
धार्यं स्यात्कृमिदन्तेषु दन्तेषु चलितेषु च।
शौषिरे दन्तनाडीषु विद्रधौ मुखजेषु च ॥ २५५ ॥
हन्यादाशु तदभ्यङ्गात्कुष्ठं च कफपित्तजम्।
वातजानि तु कुष्ठानि व्यङ्गप्लीहातिसुप्तिताः ॥ २५६ ॥
त्वग्दोषपिटकाकण्डूरजस्त्र वातशोणितम्।
व्रणं मासं च नस्येन वलीपलितनाशनम् ॥ २५७ ॥

दन्तरोग में खदिराद्य तैल—खैरसार एक सौ पल, एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष क्वाथ में—लोध, मजीठ, रक्तचन्दन, अरलु, खस, लाक्षा, बड़ी इलायची, दालचीनी, तेजपत्ता, देवदारु, नखवृत्त, केशर, मंजीठ, परिपेलव (केवटीमोथा), वालुक (एलवालु), वालुका, (अश्मन्तक–पाषाणभेद), अगर, मोथा, छोटी इलायची, स्पृक्का (सुगन्ध द्रव्य), तगर, पद्मकाठ—इन द्रव्यों के (तैल के चतुर्थांश) कल्क के साथ तैल एक प्रस्थ पकावे। इस तैल को दन्तकृमि, दांत का हिलना, शौषिर (दन्तमूलगत शोथ), दन्तनाडी

(मसूढ़ों का नासूर), विद्रधि (मसूढ़ों की फोड़िया) तथा मुख के रोगों में धारण करना चाहिए। धारण करने से ये दांत के रोग नष्ट हो जाते हैं। यह तैल मर्दन करने से कफपित्तजन्य कुष्ठ रोग, वातजन्य कुष्ठरोग, व्यंग, प्लीहा-वृद्धि, अत्यन्त अंग का सुन्न होना, चर्मरोग, पिडिका, निरन्तर मूर्च्छा तथा वातरक्त को शीघ्र ही नाश करता है। एक मास तक नस्यकर्म करने से भग तथा वली (मुख के मण्डल में झुर्री पड़ना) तथा पलित (असामयिक बाल का पकना) को नाश करनेवाला है ॥ २५२–२५७ ॥

ज्वरे बृहल्लाक्षादितैलम्—

लाक्षा निशा च मञ्जिष्ठा फलिनी मधुकं बला।
गैरिकं चन्दनं नीलमुत्पलं ध्यामकं तथा ॥ २५८ ॥
एषां भागान् समान् कृत्वा पक्त्वा तोये चतुर्गुणे।
तुर्यभागावशेषं तु गर्भं चेमं समावपेत् ॥ २५९ ॥
पद्मकं हयगन्धा च रेणुका च तथैव च।
वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखत्वचम् ॥ २६० ॥
पुण्डरीकं शताह्वा च मांसी मधुकमेव च।
एषामक्षसमैः कल्कैः कषायेणाथ पेषितैः ॥ २६१ ॥
दधिशुक्तारनालानामाढकाढकमावपेत्।
क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६२ ॥
तदभ्यङ्गे प्रशंसन्ति तैलं दाहनिवारणम्।
वातपित्तोद्भवं क्षिप्रं ज्वरमेतन्नियच्छति ॥ २६३ ॥
सप्रलापं सतृष्णं च तालुशोषमथ भ्रमम्।
बालानां ग्रहपीडां च रक्तसंदूषिताश्च ये ॥ २६४ ॥
तैलं प्रशमयत्येतल्लाक्षादिकमिति स्मृतम्।

ज्वर में बृहल्लाक्षादि तैल—लाख, निशा (हल्दी), मंजीठ, प्रियंगु, मुलेठी, वरियार, गेरू, रक्तचन्दन, नीलकमल, ध्यामक (कत्तृण)—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर एक द्रोण जल में पकाकर चौथाई शेष क्वाथ में पद्मकाठ, अश्वगन्धा, सम्भालू का बीज, वेंत, चोरा, कूठ, देवदारु, नख (नखी सुगन्ध द्रव्यविशेष), दालचीनी, श्वेत कमल का फूल, सौंफ, जटामांसी, मुलेठी—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ दही, शुक्त, आरनाल—एक-एक आढ़क, दूध एक आढ़क मिलाकर एक प्रस्थ तैल पकावे। यह तैल अभ्यंग (मर्दन करने में) में प्रशस्त है। और दाह को शान्त करता है। यह वातपित्तजन्य प्रलाप तथा तृष्णायुक्त ज्वर को दूर करता है। यह लाक्षादिक तैल तालुशोष, भ्रम, बालकों की

ग्रहपीडा तथा दूषित रक्त से उत्पन्न रोगों को शान्त करता है, (यहां क्वाथ्य द्रव्य का परिमाण नहीं दिया है अतः तैल के चौगुना या एक तुला क्वाथ्य द्रव्य लेना चाहिए) ॥

ज्वरे लघुलाक्षादितैलम्—

लाक्षारसं समादाय तैलप्रस्थाच्चतुर्गुणम् ॥ २६५ ॥
मस्तुनश्चाढकं दद्याद् द्रव्यैरेभिश्च कार्षिकैः ।
मधुकेन हरिद्राभ्यां मुस्तेन सह मूर्वया ॥२६६ ॥
रास्नया कटुरोहिण्या चन्दनेनाश्वगन्धया ।
शताह्वया च कुष्ठेन हरेण्वा देवदारुणा ॥ २६७ ॥
मञ्जिष्ठापद्मकोशीरबलामासीभिरेव च ।
तत्सिद्धमथ पूतं च स्थापयेद् भाजने शुभे ॥ २६८ ॥
जीर्णज्वरपरीतानां श्वासकासार्तिनां तथा ।
गर्भिणीनां च नारीणां बालानां शुष्यतामपि ॥ २६९ ॥
क्षीणानां शोषिणां चाथ तैलं लाक्षादिकं हितम् ।
विषमज्वरमोक्षार्थं सर्वज्वरग्रहापहम् ॥ २७० ॥

ज्वर में लघु लाक्षादि तैल—तैल एक प्रस्थ, तैल के चौगुना लाक्षारस (चारप्रस्थ), मस्तु (दही का तोड) एक आढ़क (चार प्रस्थ), मिलाकर मुलेठी, आमाहल्दी, दारुहल्दी, मोथा, मूर्वा (मोरवेल), रास्ना, कुटकी, रक्तचन्दन, अश्वगन्धा, सौंफ, कूठ, सम्भालू का बीज, देवदारु, मंजीठ, पद्मकाठ, खस, खरियार, जटामांसी—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल सिद्ध करे और छानकर स्वच्छ शीशी में भर दे। यह लाक्षादिक तैल, जीर्ण ज्वर के रोगी, श्वास-कास से पीडित, गर्भिणी स्त्री, सूखारोग से पीड़ित बालक, क्षीणवीर्य तथा राजयक्ष्मा के रोगियों के लिये हितकर है और विषम-ज्वर को नाश करने वाला तथा सभी प्रकार के ज्वर को दूर करनेवाला है ॥ २६५–२७० ॥

सन्निपातज्वरे जात्यादितैलम्—

नवपत्राङ्कुरा जाती द्वे हरिद्रे शतावरी ।
जीवकर्षभकौ रास्ना सरलो देवदारु च ॥ २७१ ॥
मुस्तातालीशमञ्जिष्ठापाठावरुणचित्रकाः ।
कुब्जं सर्पसुगन्धा च मधुकं द्वे च सारिवे ॥ २७२ ॥
अनन्ताऽऽमलकं मूर्वा मधूकं करवीरकः ।
देवपुष्पं शिरीषस्य मूलं स्योनाक एव च ॥ २७३ ॥
चव्यं लाक्षा पयस्या च कल्कीकृत्याक्षसंमितान् ।

पक्त्वा चाथ कषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २७४ ॥
एतदभ्यञ्जनाद्धन्यात्सन्निपातात्मकं ज्वरम् ।
तैलं जात्यादिकं नाम वातपित्तकफापहम् ॥ २७५ ॥

सन्निपातज्वर में जात्यादि तैल—चमेली का नवीन पत्रांकुर, आमाहल्दी, दारुहल्दी, शतावरी, जीवक, ऋषभक, रास्ना, चीड, देवदारु, मोथा, तालीस-पत्र, मंजीठ, पाठा, वरुण की छाल, चित्रकमूल, कुब्ज (मदा गुलाब), सर्प-गन्धा, मुलेठी, कालासारिवा, रक्तसारिवा, अनन्तमूल, आवला, मूर्वा (मोर-वेल), महुआ का फूल, कनेर, देवपुष्प (लवंग), शिरिस की जड, अरलु, चव्य, लाख, पयस्या (चीर काकोली)—एक २ अन—इन द्रव्यों का कल्क बनाकर तथा इन्हीं औषधों को चार प्रस्थ लेकर चौगुने जल में क्वाथकर चतुर्थांश शेष कषाय तथा कल्क के साथ, एक प्रस्थ तैल पकावे। यह तैल अभ्यञ्जन (मर्दन) करने से सान्निपातिक ज्वर को नाश करता है। यह जात्यादि नामक तैल वात, पित्त तथा कफजन्य रोगों को नाश करता है ॥ २७१-२७५ ॥

ज्वरे षट्चरणं तैलम्—

लाक्षाविश्वानिशामूर्वामञ्जिष्ठास्वर्जिकामयैः ।
षड्गुणेन च तक्रेण सिद्धं तैलं ज्वरान्तकृत् ॥ २७६ ॥

ज्वर मे षट्चरण तैल—लाख, सोंठ, आमाहल्दी, मूर्वा (मोरवेल), मंजीठ, सज्जीखार—इन द्रव्यों (तैल के चतुर्थांश भाग) के कल्क तथा तैल के छः गुना मट्ठा के साथ तैल सिद्ध करे। यह तैल ज्वर को नाश करता है ॥२७६॥

शोषे शिरीषाद्यं तैलम्—

मूलं त्वचं च पत्रं च प्रवालं स्कन्धमेव च ।
शिरीषाद् द्वे तुले दद्याद् गर्भस्त्वेष प्रकीर्तितः ॥ २७७ ॥
वरुणः पारिभद्रश्च ककुभश्चतुरङ्गुलः ।
बिल्वोऽग्निमन्थकुटजङ्करघाटकवञ्जुलाः ॥ २७८ ॥
गन्धर्वहस्तकाकोल्यौ काश्मरी पाटली तथा ।
निदिग्धिकाऽथ वार्ताकी शालिपर्णी मयूरकः ॥ २७९ ॥
तुरगो श्रेयसी चैव शतावर्युदकं तथा ।
सुषव्यतिबला चैव दन्ती सिंहमुखी तथा ॥ २८० ॥
पञ्चाशत्पलिकान् भागान्मूलं पुष्पं च रोहिषात् ।
निष्क्वाथस्त्रिफलायाश्च प्रस्थत्रयमिता भवेत् ॥ २८१ ॥
कोलकानां कुलत्थानां यवानां तत्समस्तथा ।
द्राक्षायाः शतपुष्पायाः कुर्याच्चाढकमेव च ॥ २८२ ॥

छागलस्य तु मांसस्य द्वे तुले तत्र दापयेत्।
एतत्सर्वं समालोड्य तोयद्रोणेषु पञ्चसु ॥ २८३ ॥
द्विद्रोणशेषपूतं च तैलद्रोणेषु संसृजेत्।
पाठा मगधजा, रास्ना सुपवी गोक्षुरं बला ॥ २८४ ॥
प्रियङ्गुर्द्वे हरिद्रे च मांसी चैला कुटन्नटम्।
देवदारु वचा लोध्रं कुष्ठ व्याघ्रनखं शटी ॥ २८५ ॥
मञ्जिष्ठा मधुकं मुस्तं रोध्र द्वे चापि सारिवे।
चन्दनं श्रीप्रियं चैव रक्तक तैलपर्णिकम् ॥ २८६ ॥
समृणालत्वच पत्रं पतङ्गं नीलमुत्पलम्।
एषा द्विपालिकान भागान् कृत्वा कल्कं समावपेत् ॥ २८७ ॥
त्रीन्द्रोणान् दधितो दद्यात्ततः सिद्ध निधापयेत्।
शैरीषमिति विख्यातमेतत्तैल क्षयापहम् ॥ २८८ ॥
प्रशस्तं तु सुधातुल्यं पानाभ्यंजनबस्तिषु।
अपस्मारं तथान्मादं शोषान् सोपद्रवानपि ॥ २८९ ॥
अङ्गमर्दमथो दाह पाण्डुत्व स्वरवैकृतम्।
अर्दितं गृध्रसीं गुल्मान् कम्पं पक्षवध तथा ॥ २९० ॥
हनुग्रहं खुडावातमाढ्यवातापतानकौ।
मूकत्व गद्गदत्व च बाधिर्य कर्णवेदनाम् ॥ २९१ ॥
ऊरौ जानुनि कुक्षौ च विसर्प वातशोणितम्।
हन्याद्वर्णबलोपेतो जीवेच्च शरदां शतम् ॥ २९२ ॥
प्रयोगादस्य तैलस्य न चाक्रामन्ति त गदाः।
विषपीताश्च दुष्टाश्च भूतोपहतचेतसः ॥ २९३ ॥
ये पिबन्ति शिरीषाद्य नीरुजस्ते भवन्ति हि।
मूलकर्मविकाराणा भूतानां दंष्ट्रिणामपि ॥ २९४ ॥
अधृष्यं तद्गृहं यत्र तैलमेतद्विधीयते।

शोष (सूखा) रोग में शिरीषाद्य तैल—शिरीष (शिरिस) का मूल-छाल-पत्र-प्रवाल तथा शाखा दो तुला, वरुण की छाल, फरहद की छाल, अर्जुन की छाल, अमलतास, बेल की छाल, अरणी, कायफर, करघाटक (मैनफल—खरहार), वञ्जुल (बेंत), गन्धर्वहस्त (एरण्डमूल), काकोली, क्षीर-काकोली, गम्भारी, पाटला, भटकटैया, वनभंटा, सरिवन, मयूरक (अपामार्ग), तुरगी (अश्वगन्धा), गजपीपर, शतावरी, उदक (सुगन्धवाला), सुपवी (मंगरैल), कंघी, दन्तीमूल, सिंहमुखी (अडूसा), रोहिष, (दूर्वा) का पुष्प तथा जड ये द्रव्य पचास पल, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आँवला) का

क्वाथ तीन प्रस्थ, वैर, कुलथी तथा यव तीन प्रस्थ, मुनक्का तथा सौफ एक आढक, बकरी का मांस दो तुला—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर पांच द्रोण जल से पकावे, दो द्रोण शेष क्वाथ को छान कर एक द्रोण तैल के साथ मिला दे, और पाठा, पीपर, रास्ना, संगरैल, गोखरू, बरियार, प्रियंगु. आमाहल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, इलायची, कुटन्नट (केवटी मोथा), देवदारु. वच, लोध, कूठ, व्याघ्रनख, कपूरकचरी, मंजीठ, मुलेठी, मोथा, रोध्र, कालासारिवा, रक्तसारिवा, हरिचन्दन, श्रीप्रिय (रक्तचन्दन), रक्तक (बन्धूक, दुपहरिया नामक पुष्प) तैलपर्णिक (सफेद चन्दन), कमल की नाल, दालचीनी, तेजपत्र, पतंग, नीलकमल का फूल—दो २ पल—इन द्रव्यों का कल्क, दही तीन द्रोण छोड कर तेल पकावे और छान कर वर्तन मे रख ले। यह प्रसिद्ध शिरीष तैल क्षय रोग को नाश करने वाला है और पान, अभ्यंजन तथा वस्तिकर्म में अमृत के समान उत्तम है। यह तैल, अपस्मार, उन्माद, उपद्रव युक्त राजयक्ष्मा रोग, अगमर्द (शरीर का दर्द), दाह, पाण्डुरोग, स्वरविकृति, अर्दित (मुह का टेढा होना), गृध्रसी (लगड़ी का दर्द), गुल्म रोग, कम्पवात, पक्षाघात, हनुग्रह, खुडावात (वातरक्त), आढयवात (कमर के नीचे के धड का वात), अपतानक (चांदनी "टेटनस"), मूकत्व, हकलाना, वहरापन, कान का दर्द, जघा-घुटना तथा पेट मे विसर्प रोग, तथा वातरक्त को नाश करता है। और बल तथा कान्ति से युक्त होकर सौ वर्ष तक जीता भी है। इस तैल के प्रयोग करने से प्रयोग करनेवाले व्यक्ति को उपर्युक्त रोग आक्रमण नहीं करते है। विष पान करनेवाले, दुष्ट रोगों से आक्रान्त, भूत दोष से उपहतचित्तवाले जो भी इस घृत को पान करते है वे रोगों से छुटकारा पा जाते है। व्यभिचार कर्म से उत्पन्न रोग भूतदोष तथा सर्पः उस घर में नहीं प्रवेश करते जिस घर मे इस तैल का प्रयोग होता है।

शोषे सुकुमारतैलम्—

मधुकस्य शत दद्यात्काश्मर्याश्च तथाऽऽढकम् ॥ २९५ ॥
द्राक्षापरूपकाणा च बलाखर्जूरयोस्तथा।
तथा मधूकपुष्पाणां तथा मौञ्जातमाढकम् ॥ २९६ ॥
द्विद्रोणेऽपा विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम्।
पूते तस्मिन् कषाये च पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ २९७ ॥
आर्द्रामलककाश्मर्यविदारीक्षुरसाढकम्।
तैलाढक च संयोज्य पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ २९८ ॥
पच्यमाने तथा तस्मिन् कल्कांश्चैषां समावपेत्।
पिप्पली शृङ्गवेरं च कदली च शतावरी ॥ २९९ ॥

बला तालं कदम्बश्च सूक्ष्मैला पद्मबीजकम् ।
शृङ्गाटकं कसेरुश्च जीवनीयानि यानि च ॥ ३०० ॥
द्वे द्वे पलं पृथग् दत्त्वा विपचेन्मृदुनाग्निना ।
तत्सिद्धं स्रावयित्वाशु शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥ ३०१ ॥
नस्ये चाभ्यञ्जने पाने प्रशस्तं बस्तिकर्मणि ।
वातव्याधिषु सर्वेषु क्षतक्षीणे शिरोग्रहे ॥ ३०२ ॥
पार्श्वशूले प्रमेहे च गुल्मे चार्शोभगन्दरे ।
वातभग्नाङ्गहीनानां कासे श्वासे च हृद्ग्रहे ॥ ३०३ ॥
ज्वरेऽरुचावतीसारे कर्णनादे स्वरक्षये ।
सुकुमारमिदं तैल बालवृद्धसुखावहम् ॥ ३०४ ॥
एतद्धि वृष्यं बल्यं च रक्तमांसविवर्द्धनम् ।
स्वरवर्णकरं चैव शोषिणाममृतोपमम् ॥ ३०५ ॥
प्रपक्वस्यास्य तैलस्य सम्यक् सिद्धस्य यो भवेत् ।
उदश्विति विमथ्यार्थे सोऽपि कृत्यकरो भवेत् ॥ ३०६ ॥
एकादश च षट् चैव शोषिणां य उपद्रवाः ।
शमयेत् सुकुमारं तान् मेघोऽग्निमिव वृष्टिमान् ॥ ३०७ ॥

शोष रोग में सुकुमार तैल—मुलेठी एक सौ पल, गम्भारी की छाल एक आढक, मुनक्का, फालसा, बरियार, खजूर, महुआ का फूल तथा मुञ्जातक (मुञ्जात कन्द विशेष) एक आढक, दो द्रोण जल मे पकावे, चौथाई शेष क्वाथ को छान कर पुनः आग पर चढायें और उसमे, अद्रक, आंवला, गम्भारी-फल, विदारीकन्द तथा गन्ना का रस एक आढक, तैल एक आढक (चार प्रस्थ), दूध तैल के चौगुना चार आढ़क मिला कर, पीपर, सोंठ, केला का कन्द, शतावरी, बरियार, ताल का मज्जा, कदम्ब, छोटी इलायची, कमल-गट्टा, सिंघाड़ा, कसेरू, जीवनीय द्रव्य (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी)—दो २ पल—इन द्रव्यों का कल्क डाल दे और धीरे २ मन्द आंच से पकावे। सिद्ध होने पर छान, ठंढा कर मधु मिला दे। यह तैल नस्य कर्म, अभ्यजन, पान तथा वस्तिकर्म मे उत्तम है और सभी वातव्याधि, उरःक्षत, शिरोग्रह, पार्श्वशूल, प्रमेह, गुल्म, अर्श, भगन्दर, वायु से भग्न तथा हीन अग वालों के कास, श्वास, हृदय का अकड़न, ज्वर, अरुचि, अति-सार, कान का शब्द तथा स्वरनाश—इन रोगों मे प्रशस्त है अर्थात् इन रोगों को नाश करता है। यह सुकुमार तैल बालक तथा वृद्धों को (बाल रोग तथा वृद्धों का वातादि रोग में) सुख देनेवाला यानी नाश करने वाला है। यह

तैल वीर्यवर्द्धक, वलवर्द्धक, रक्तवर्द्धक, मांसवर्द्धक, स्वरशोधक, कान्तिप्रद तथा राजयक्ष्मा के रोगियों के लिये अमृत के समान है। इस परिपक्व तैल को उदश्वित् (दुगुना पानी मिले हुए दही के तोड़) में मिलाकर पकाने के वाद अच्छी तरह सिद्ध तैल लाभप्रद होता है। राजयक्ष्मा रोगियों के सत्तरह प्रकार के उपद्रवों को यह सुकुमार तैल शान्त करता है जैसे पानीवाला मेघ अग्नि को शान्त कर देता है ॥ २९५–३०७ ॥

अर्शसि लघुकाशीसाद्यं तैलम्—

काशीसलाङ्गलीदन्तीकरवीरामलैः पचेत् ।
तैलमर्कपयोसिश्रमभ्यङ्गात् पायुकीलजित् ॥ ३०८ ॥

अर्शरोग में लघुकासीसाद्य तैल—शु० कासीस, कलिहारी, दन्तीमूल, कनेर, आंवला—इन द्रव्यों के (तैल के चतुर्थांश) कल्क के साथ मदार के दूध (तैल के चौगुना) में मिलाकर पकाया तैल, अभ्यंग करने से अर्श के गुदकीलों को नाश करता है ॥ ३०८ ॥

अर्शसि पृथुकाशीसाद्यं तैलम्—

काशीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठा कुष्ठं च लाङ्गली ।
शिला द्रेक्काऽश्वमारश्च जन्तुहृद् दन्तिचित्रकौ ॥ ३०९ ॥
हरितालं तथा स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेत् समैः ।
तैलं सुधार्कदुग्धेन गवां मूत्रे चतुर्गुणे ॥ ३१० ॥
एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारवत् पातयेद् भुवि ।
क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च दूषयते वलिम् ॥ ३११ ॥

अर्शरोग में पृथु काशीसाद्य तैल—शु० कासीस, सेन्धानमक, पीपर, सोंठ, कूठ, कलिहारी, शिला (शु० मनःशिला), द्रेक्का (वकायन), कनेर, विडंग, दन्तीमूल, चित्रकमूल, शु० हरिताल, सत्यानासी—समभाग—इन द्रव्यों (तैल के चतुर्थांश) के कल्क के साथ सेहुंड़ तथा मदार का दूध (तैल के वरावर) और गाय का मूत्र चौगुना मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल अभ्यंग करने (लगाने) से, अर्शांकुरों को क्षार के तरह निश्चय ही गिरा देता है। यह तैल क्षार के तरह काम करता है किन्तु वलियों को दूषित नहीं करता है ॥ ३०९–३११ ॥

अर्शसि चित्रकाद्यं तैलम्—

चित्रकं मदनं पीलुं शृङ्गवेरं शुकाननाम् ।
स्रोतोजं सैन्धव दन्तीं हरितालं मनःशिलाम् ॥ ३१२ ॥
तालीस करवीरस्य मूल लागलिका वचाम् ।
भद्रकं क्षीरिकां चैव स्वर्णक्षीरी च पेषयेत् ॥ ३१३ ॥

कुडवौ पच्यमाने तु स्नुगर्कपयसोः क्षिपेत् ।
मूत्रे चतुर्गुणं तैलं पक्वमर्शोहरं भवेत् ।
क्षारकर्मकरं ह्येतदभ्यङ्गात्तैलमुत्तमम् ॥ ३१४ ॥

अर्शरोग में चित्रकाद्य तैल—चित्रक, मदनफल, पीलु वृक्ष, सोंठ, शुकानना (शुकतुण्डी-तूतिया), स्रोतोंजन, सेन्धानमक, दन्तीमूल, शु० हरिताल, शु० मैनशिल, तालीसपत्र, कनेर की जड, कलिहारी, वच, भद्रक (नागरमोथा), क्षीरिका (क्षीरीवृक्ष), सत्यानाशी—समभाग—इन द्रव्यों को कल्क बनावे, सेहुंड का दूध तथा मदार का दूध दो कुडव, गाय का मूत्र चौगुना मिला कर तैल पकावे। यह तैल अर्शरोग को दूर करता है। यह उत्तम तैल लेप करने से क्षार कर्म के तरह अर्शांकुरों को नाश करता है। (यहाँ द्रव्यों का मान नहीं दिया गया है अतः पाकविधि के अनुसार द्रव्यों का परिमाण ग्रहण करे) ॥ ३१२-३१४ ॥

कुष्ठे शिशपासारतैलम्—

देवद्रुदार्वीप्रपुनाटवाकुची-
तुम्बीफलोन्मत्तहयारिदारुभिः ।
तुङ्गाफलत्वग्घरिमन्थवह्निजैः
प्रस्थोन्मितैः सामलसारषड्गुणैः ॥ ३१५ ॥
तैलाढकार्धेन परिप्लुतैस्तै-
स्तैलं विदध्याद् बलिबन्धयन्त्रे ।
तत्तैलमभ्यङ्गविधौ प्रदिष्टं
पथ्याशिनां कुष्ठविघातकृत् स्यात् ॥ ३१६ ॥

कुष्ठरोग में शिशपासार तैल—देवद्रु (मदार), दारुहल्दी, प्रपुनाट (चकवड़), बाकुची, तुम्बीफल (कड़वी लौकी), धत्तूर, कनेर, देवदारु, तुङ्गाफल (पुन्नाग का फल), दालचीनी, हरिमन्थ (अरणी), चित्रक—समभाग एक प्रस्थ—इन द्रव्यों के कल्क के साथ आँवला का रस (तैल के) छः गुना (तीन आढ़क), तैल आधा आढक (दो प्रस्थ) मिलाकर, बलिबन्धयन्त्र में सिद्ध करे। यह तैल अभ्यंग करने से पथ्यपूर्वक रहनेवाले तथा खानेवाले व्यक्तियों के कुष्ठ को नाश करता है ॥ ३१५-३१६ ॥

कुष्ठे वज्रकं तैलम्—

मूलं शाताह्वा त्वक् शिरीषाश्वमारा-
दर्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोतनिम्बात् ।
बीजं कारञ्जं सार्षपं प्रापुनाटं
श्रेष्ठा जन्तुघ्नं त्र्यूषणं द्वे हरिद्रे ॥ ३१७ ॥

तैलं तैलं साधितं तैः समूत्रैस्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम् ।
अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्भवानां नाशायालं वज्रकं वज्रतुल्यम् ॥ २१८ ॥

कुष्ठरोग में वज्रक तैल—पिपरामूल, शतावरी, शिरीष, कनेर, मदार, मालती, चित्रक, सारिवा तथा नीम की छाल, करंज, सरसों तथा चकवड़ का बीज, त्रिफला (हर्रे, आँवला, बहेडा), विडंग, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), आमाहल्दी, दारुहल्दी—समभाग—इन द्रव्यों का कल्क, तैल, गाय का मूत्र मिला कर तैल पकावे। यह वज्रतैल लगाने से कफ-वात-जन्य, चर्मरोग तथा नासूर को नाश करता है और वज्र के समान है। (इस योग में कल्क तैल के चतुर्थांश तथा गोमूत्र चौगुना लेना चाहिए) ॥ २१७–२१८ ॥

कुष्ठे महावज्रकं तैलम्—

एरण्डतार्क्ष्यघननीपकदम्बभार्गी-
कम्पिल्लवेल्लफलिनीसुरवारुणीभिः ।
निर्गुण्ड्यरुष्करसुराह्वसुवर्णदुग्धा-
श्रीवेष्टगुग्गुलुशिलापटुतालविश्वैः ॥ २१९ ॥
तुल्यं स्नुगर्कदुग्ध सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम् ।
अतिशयति वज्रकगुणाञ्छ्वित्रार्शोग्रन्थिमालाघ्नम् ॥ २२० ॥

कुष्ठरोग में महावज्रक तैल—रेंड का मूल, रसाञ्जन, मोथा, महाकदम्ब, भांगरा, कबीला, विडंग, प्रियंगु, इन्द्रवारुणी, सम्भालू के बीज, शु० भल्लातक, देवदारु, सत्यानासी, श्रीवेष्ट (वृक्षधूप), गुग्गुलु, मनःशिला, सेन्धानमक, तालमस्तक, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सेहुंड़ तथा मदार के दूध में तैल सिद्ध करें। इस तैल को महावज्रक तैल कहते हैं। वज्रक तैल से इसका गुण अधिक है अर्थात् चर्मरोग तथा नासूर को नाश करता है और श्वित्र, अर्श तथा गण्डमाला को नाश करने वाला है। (यहाँ परिमाण का निर्देश नहीं है अतः कल्क द्रव्य तैल के चतुर्थांश तथा द्रवद्रव्य तैल के चौगुना लेना चाहिए) ॥ २१९–२२० ॥

कुष्ठे श्वेतकरवीराद्यं तैलम्—

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वक्पुष्पचित्रकविडङ्गानि ।
कुष्ठार्कमूलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणीकटुकाः ॥ २२१ ॥
एतैस्तैलं सिद्धं कल्कैः पादांशकैर्गवां मूत्रम् ।
दत्त्वा तैलचतुर्गुणमभ्यङ्गात्कुष्ठकण्डूघ्नम् ॥ २२२ ॥

कुष्ठरोग में श्वेत करवीराद्य तैल—सफेद कनेर का पल्लव-मूल-छाल तथा पुष्प, चित्रक, विडंग, कूठ, मदार की जड़, सरसों, सहिजन की छाल,

मांसरोहिणी, कुटकी—समभाग—इन द्रव्यों के तैल के चतुर्थांश कल्क के के साथ, तैल के चौगुना गोमूत्र मिला कर तैल सिद्ध करे। यह तैल अभ्यंग करने (लेप करने) से कुष्ठ तथा कण्डू को नाश करता है ॥ ३२१-३२२ ॥

कुष्ठे सिन्दूराद्यं सूर्यपाकं तैलम्—

सिन्दूरशङ्खचूर्णकहरितालमनःशिलायवक्षारैः ।
कासीसकच्छसंभवगन्धाह्वयसंयुतैस्तैलम् ॥ ३२३ ॥
दिनकरतप्तं पामाविचर्चिकादद्रुकुष्ठकिटभादीन् ।
नाशयति लेपमात्राद्भूयो भूयः कपालकुष्ठमपि ॥ ३२४ ॥

कुष्ठरोग मे सिन्दूराद्य सूर्यपाक तैल—सिन्दूर, शंखभस्म, चूर्णक (अम्ल विशेप), हरिताल, मनःशिला, यवचार, कासीस, कच्छसम्भव (फिटकरी या वितुन्नक-वेलिया पीपर), गन्धाह्व (श्वेत चन्दन)—समभाग—इन द्रव्यों के (तैल के चतुर्थांश) चूर्ण के साथ तैल को सूर्य के धूप में सात दिन तक पकाये। यह तैल खुजली, विचर्चिका (पीड़ायुक्त खुजली), दाद, कुष्ठ, किटभकुष्ठ आदि चर्मरोग को नाश करता है और बार २ लेप करने से कपालकुष्ठ को भी नाश करता है ॥ ३२३-३२४ ॥

कुष्ठे कुष्ठकालानलं तैलम्—

क्षारत्रय कटुत्रीणि पञ्चैव लवणानि च ।
वचा कुष्ठं हरिद्रे द्वे विडङ्गं चित्रको विषम् ॥ ३२५ ॥
हरितालं शिला गन्धः सिन्दूरं तुत्थखर्परम् ।
रामठं च रसोनश्च मदनं च रसाञ्जनम् ॥ ३२६ ॥
एतत्सर्वं समांशं च स्नुह्यर्कपयसा प्लुतम् ।
षड्गुणं सार्षपं तैलं तैलान्मूत्र चतुर्गुणम् ॥ ३२७ ॥
सर्वं मन्दानले पक्वं ग्राह्यं तैलावशेषकम् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि मांसमेदोगतानि च ॥ ३२८ ॥
दुष्टव्रणानि शातानि जीर्णनाडीव्रणानि च ।
हन्ति श्वित्रमसाध्यं च दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ ३२९ ॥
एतत्तैलं सदाऽभ्यङ्गात्कुष्ठव्याधिहर नृणाम् ।

कुष्ठरोग में कुष्ठ कालानल तैल—सज्जीखार, यवचार, टंकणचार, कटुत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच), पञ्चलवण (सेन्धानमक, सौवर्चल, विड़, सांभर, सामुद्र नमक), वच, कूठ, आमाहल्दी, दारुहल्दी, विडंग, चित्रक, विष (शु० वत्सनाभ), हरिताल, मनःशिला, श्वेतचन्दन, सिन्दूर, खपरिया, तूतिया, हींग, लहसुन, मदनफल, रसाञ्जन—समभाग—इन द्रव्यों का (तैल के चतुर्थांश) कल्क, तथा कल्क से छःगुना सेहुंड तथा मदार का दूध, तैल के

चौगुना गाय का मूत्र, सरसो का तैल—सबको मिला कर मन्द आंच से पकावे और छान कर रख ले। यह तैल मांस तथा मेदोगत अट्टारह प्रकार के कुष्ट रोग को नाश करता है। दुष्टव्रण (ल्यूपिया), शातव्रण, जीर्ण नाडीव्रण (पुराना-नासूर), असाध्य श्वित्र (सफेद कुष्ठ), दाद, खुजली तथा विचर्चिका (पीडायुक्त खुजली) को भी नाश करता है। यह तैल निरंतर लेप करने से मनुष्यों के कुष्ठ रोग को नाश करने वाला है ॥

कुष्ठे कनकक्षीर्याद्यं तैलम्—

कनकक्षीरी शैलं भार्गी दन्तीफलानि मूलं च ॥ ३३० ॥
जातीप्रवालसर्षपलशुनविडङ्गं करञ्जत्वक्।
सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बचित्रकास्फोताः ॥ ३३१ ॥
गुञ्जैरण्डो बृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि।
कुष्ठं तुम्बरु पाठा मूर्वा मुस्तं निशा च षड्ग्रन्था ॥ ३३२ ॥
एडगजबीजशिग्रुत्र्यूषणभल्लातकक्षवकाः।
हरितालमवाक्पुष्पी तुत्थ कम्पिल्लकोऽमृतासङ्गः ॥ ३३३ ॥
सौराष्ट्री कासीस दार्वी त्वक् स्वर्जिका लवणम्।
कल्कैरेतैस्तैलं करवीरकमूलपल्लवकषाये ॥ ३३४ ॥
सार्षपमथवा तैलं गोमूत्रचतुर्गुणं साध्यम्।
कटुकालाब्वां स्थाप्यं तत्सिद्धं तेन मण्डलान्याशु ॥ ३३५ ॥
छिन्द्याद्भिषगभ्यङ्गात्कण्डूकोठांश्च विनिहन्यात्।

कुष्ठ रोग में कनकक्षीराद्य तैल—कनकक्षीरी (भड़भांड), शिलाजीत, भांगरा, बाकुची, दन्तीका जड, चमेली का पत्ता, सरसो, लहसुन, विडंग, करंज की छाल, छतिवन, मदार का-पल्लव-मूल तथा छाल, निम्ब, चित्रक, आस्फोता (आफरमाली), गुञ्जा, रेंड, बृहती (वनभंटा), मूली, सुरसा (तुलसी), अर्जक (निर्गन्ध तुलसी), मदनफल, कूठ, तुम्बरु, पाठा, मूर्वा (मोरवेल), मोथा, आमाहल्दी, पिपरामूल, एडगडबीज (चकवड का बीज), सहिजन, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), भल्लातक, क्षवक (अपामार्ग), हरिताल, अवाक्पुष्पी (सौंफ), तूतिया, कवीला, अमृतासंग (खपरिया तुत्थ) सौराष्ट्री (गोपीचन्दन), कासीस, दारुहल्दी, दालचीनी, सज्जीखार, सेन्धा-नमक—इन द्रव्यों के कल्क के साथ कनेर के मूल तथा पल्लव के कषाय में तिल्ली का तैल या सरसो का तैल, तैल के चौगुना गोमूत्र मिलाकर पकावे और कडुवी लौकी के तुम्बी मे रक्खे। यह सिद्ध तैल है, वैद्य इस तैल से शीघ्र ही मण्डल कुष्ठ को छेदन करे और इसके लेप से कण्डू, कोठ (कुष्ठ) को नाश करे। (यहां परिमाण का निर्देश नहीं है अतः तैल के चौथाई कल्क तथा चौगुना कषाय लेना चाहिए) ॥

पामायां आर्द्रकाद्यं तैलम्—

आर्द्रकस्यार्कदुग्धस्य स्नुक्क्षीरस्य पृथक् पृथक् ॥ ३३६ ॥
द्वे द्वे पले तु सिन्दूरं द्विपलं च समाहरेत् ।
भूर्जकर्षविमिश्राणि कटुतैलस्य पाचयेत् ॥ ३३७ ॥
पलानि दश चाभ्यङ्गात्कच्छूरोगविनाशनम् ।

पामा (खुजली) रोग में आर्द्रकाद्य तैल—अद्रक का रस, मदार का दूध, सेहुंड का दूध—दो २ पल, सिन्दूर दो पल, भोजपत्र एक कर्ष, सरसो का तैल दशपल—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर तैल सिद्ध करे। यह तैल लेप करने से कच्छू रोग को नाश करता है ॥

दद्रूरोगे दार्व्याद्यं सूर्यपाकतैलम्—

दार्वीगण्डीरसंयुक्तैः कासमर्दकसम्भवैः ॥ ३३८ ॥
मूलैर्महोटिकायास्तु स्वरसेन समन्वितैः ।
स्नुहीक्षीरनिशामूर्वागृहधूमफणिज्जकैः ॥ ३३९ ॥
विडङ्गपिप्पलीरालागौरसर्षपनागरैः ।
चक्रमर्दकनाडीकाबाकुचीनक्तमालकैः ॥ ३४० ॥
मूलकस्य च बीजैस्तु सुरसारग्वधच्छदैः ।
सक्षारलवणोपेतैर्गोमूत्रपरिपेषितैः ॥ ३४१ ॥
कटुतैलयुतैः पक्वैः सम्यग्रविगभस्तिभिः ।
कृतमाशु नराणां तु हन्यादस्य प्रलेपनम् ॥ ३४२ ॥
दद्रूं विचर्चिकां कण्डूं पामां दुर्भक्तक (?) तथा ।

दाद में दार्व्याद्य सूर्यपाक तैल—दारुहल्दी, गण्डीर (गण्डीर दूर्वा "समष्ठीला"), कसौंदी का मूल, महोटिका (बड़ी कटेरी) का स्वरस, सेहुंड का दूध, आमाहल्दी, मूर्वा (मोरवेल), गृहधूम (घर का धूआ), फणिज्जक (मरुआ), विडंग, पीपर, राल, सफेद सरसों, सोंठ, चकवड़, नाडिका (पट्टशाक), बाकुची, करंज, मूली का बीज, तुलसी, अमलतास का पत्ता, यवक्षार, सेन्धानमक—समभाग—इन द्रव्यों को गाय के मूत्र मे पीसकर, पूर्वोक्त स्वरस तथा दूध मिलाकर सरसो का तैल सूर्य के धूप में पकावे (धूप मे पकाने का समय शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु होता है) यह तैल लेप करने से मनुष्यों के दाद, विचर्चिका (पीडायुक्त खुजली), कण्डू, पामा तथा दुर्भक्तक को नाश करता है। (इसमे कल्क तैल का चौथाई स्वरस तथा दूध तैल के बराबर लेना चाहिए) ॥

कुष्ठे गुग्गुल्वाद्यं सूर्यपाकतैलम्—

गुग्गुलुमरिचविडङ्गैः सर्षपकासीसमुस्तसर्जरसैः ॥ ३४३ ॥
श्रीवेष्टतालगन्धैर्मनःशिलाकुष्ठकम्पिल्लैः ।

उभयहरिद्रासहितैः कटुतैलं विमिश्रितैरेभिः ॥ ३४४ ॥
आदित्यरश्मिपक्वं कुष्ठं विनिहन्ति संस्पर्शात् ।

कुष्ठ रोग में गुग्गुलवाद्य तैल—गुग्गुलु, मरिच, विडंग, सरसों, कासीस, मोथा, राल, श्रीवेष्ट (वृक्ष धूप), तालमज्जा, चन्दन, मनःशिला, कूठ, कबीला, आमाहल्दी, दारुहल्दी,—इन द्रव्यों के कल्क (तैल के चौथाई) के साथ सरसों का तैल मिलाकर सूर्य के धूप में पकावे। यह आदित्यपाक तैल स्पर्श, (लेप मात्र) से कुष्ठ रोगों को नाश करता है ॥

कुष्ठे विद्रावणं तैलम्—

मनःशिलालसिन्दूरं सौराष्ट्री गन्धकस्तथा ॥ ३४५ ॥
सिक्थकं सर्जनिर्यासं कासीसं पुरकुन्दरू ।
अथाह्वः शल्लकिकम्पिल्ल कङ्कुष्ठं चाप्यरुष्करम् ॥ ३४६ ॥
गवां मूत्रेण संसिद्धं कटुतैलं प्रयोजयेत् ।
पामाविचर्चिकादद्रूकण्डूकुष्ठक्रिमीन् व्रणान् ॥ ३४७ ॥
अभ्यङ्गाच्छमयत्येतन्नाम्ना विद्रावणं मतम् ।

कुष्ठ रोग में विद्रावण तैल—मनःशिला, आल (हरिताल), सिन्दूर, गोपीचन्दन मृत्तिका, गन्धक, मोम, राल, कासीस, पुर (गुग्गुलु), कुन्दरु (शल्लकी का गोंद), देवदारु, शल्लकी वृक्ष, कबीला, कंकुष्ठ (मुर्दाशंख), भल्लातक—इन द्रव्यों को गोमूत्र मे पीसकर कल्क बनाकर गाय के मूत्र में सरसों का तैल सिद्ध करे। (तैल एक प्रस्थ, कल्क द्रव्य चार पल तथा गोमूत्र चार प्रस्थ लेना चाहिए)। यह विद्रावण नामक तैल लेप करने से पामा (खुजली), पीडायुक्त खुजली, दाद, कुष्ठ रोग, कृमि रोग तथा व्रण को शान्त करता है ॥

कुष्ठे महासुगन्धं तैलम्—

चन्दनं कुङ्कुमोशीर प्रियङ्गुत्रुटिरोचनाः ॥ ३४८ ॥
तुरुष्कागुरुकस्तूर्यः कपूर जातिपत्रिका ।
जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ॥ ३४९ ॥
नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुस्तगरः प्लवम् ।
नख व्याघ्रनखं स्पृक्का बालो दमनको मुरा ॥ ३५० ॥
चोरकं चैव शैलेयं स्थौणेयं सैलवालुकम् ।
सरलः सप्तपर्णश्च लाक्षा तामलकी तथा ॥ ३५१ ॥
कुसुमानि च धातक्या लामज्जकं च पद्मकम् ।
प्रपौण्डरीककर्चूरौ समांशैः शाणमात्रकैः ॥ ३५२ ॥
महासुगन्धमित्येतत्प्रस्थं तैलस्य साधयेत् ।

प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ३५३ ॥
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः साप्ततिकोऽपि वा ।
युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणां चात्यन्तवल्लभः ॥ ३५४ ॥
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ।
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं पण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ ३५५ ॥
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ।

कुष्ठ रोग में महासुगन्ध तैल—चन्दन, केशर, खस, प्रियंगु, इलायची, गोरोचन, शिलारस, अगर, कस्तूरी, कर्पूर, जावित्री, जायफर, कंकोल (कबाब चीनी), सुपारी, लवंग का फल, नलिका (प्रवाली), नलद (जटामांसी), कूठ, सम्भालू का बीज, तगर, प्लव (केवटीमोथा), नखवृक्ष, व्याघ्रनख, स्पृक्का (सुगन्धित तृण), बोल (गन्धरस "खूनखरवा"), दवना, सुरामांसी, चोरक, छड़ीला, स्थौणेय (सुगन्धित द्रव्य विशेष "थुनेर"), एलवालु, चीढ, छतिवन, लाक्षा, शुद्ध आँवला, धाय का फूल, लामज्जक, पद्मकाठ, प्रपौण्डरीक, कर्चूर, समभाग—एक २ शाण—इन द्रव्यों के कल्क के साथ एक प्रस्थ तैल (चौगुने जल मिलाकर) सिद्ध करे। यह महासुगन्ध तैल पसीना, मल की दुर्गन्धि, कण्डू तथा कुष्ठ को अच्छी तरह नाश करता है। इस तैल को लेपकर वृद्ध, साप्तति (सत्तर वर्ष का बूढ़ा) भी युवा के तरह वीर्यवान होकर स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है और सुन्दर शरीरवाला देखने योग्य होकर सैकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करने में समर्थ हो जाता है। बांझ स्त्री भी गर्भ धारण करती है और नपुंसक भी पुंस्त्व प्राप्त करता है तथा पुत्रहीन व्यक्ति 'पुत्र' प्राप्त करता है और सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहता है ॥

कुष्ठे मरीचाद्यं तैलम्—

मरीचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला ॥ ३५६ ॥
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।
विशाला करवीरश्च भानुक्षीरं शकृद्रसः ॥ ३५७ ॥
एतेषां कार्षिकान् भागान् विषस्यार्धपलं भवेत् ।
प्रस्थं च कटुतैलस्य गोमूत्रे द्विगुणे पचेत् ॥ ३५८ ॥
मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ।
तैलेनानेन नश्यन्ति रोगा देहे शरीरिणाम् ॥ ३५९ ॥
पामा विचर्चिका चैव दद्रूविस्फोटकानि च ।
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति कौमलत्वं प्रजायते ॥ ३६० ॥
प्रच्छानितानि तैलेन श्वित्राण्येतेन मर्दयेत् ।
चिरोत्थमपि यच्छ्वित्रं सवर्णं म्रक्षणाद्भवेत् ॥ ३६१ ॥

कुष्ठ रोग मे मरीचाद्य तैल—मरिच, निशोथ, मोथा, हरिताल, मनःशिला, देवदारु, आमाहल्दी, निशा (हल्दी), जटामांसी, कूठ, रक्तचन्दन, इन्द्रायण, कनेर तथा मदार का दूध, गोवर का रस—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों का कल्क, विष (वत्सनाभ) आधा पल, सरसो का तैल एक प्रस्थ, गोमूत्र दो प्रस्थ (या अठगुना-पाठान्तर) मिलाकर, मिट्टी के वर्तन मे या लोहे के वर्तन में धीरे २ मन्द आँच से पकावे। इस तैल से मनुष्यों के शरीर के चर्म रोग नष्ट हो जाते हैं। इस तैल के अभ्यंग (लेप) करने से पामा, विचर्चिका, दाद, विस्फोटक (झलक्ई माई), ये चर्म रोग नष्ट हो जाते है और शरीर कोमल हो जाता है। इस तैल से प्रच्छन्न (छिपे हुए) श्वित्र को मर्दन करे। इसके लेप करने से पुराना भी श्वित्र (सफेद कोढ़) नष्ट होकर समान वर्णवाला हो जाता है ॥ ३५६-३६१ ॥

कुष्ठे भ्रामरिकं तैलम्—

गुञ्जामूलं फलं कुष्ठं विषं सिन्दूरसिक्थकम्।
द्वे हरिद्रे सलाङ्गल्यौ गुग्गुलुश्च तथैव च ॥ ३६२ ॥
कृकलाससमायुक्तं कटुतैलं विपाचयेत्।
क्षिपेत्स्वरूपवस्तूनि सुदग्धान्यवतारयेत् ॥ ३६३ ॥
उद्धृत्य तैलमध्यात्तु सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
चूर्णं तैले पुनः कृत्वा त्रिशूलीं दापयेत्ततः ॥ ३६४ ॥
जीवन्ती जीवनीमूलं तथा च व्रणरोहिणीम्।
एतच्चूर्णं समालोड्य त्वेकरात्रं तु धारयेत् ॥ ३६५ ॥
शिरोरोगं व्रणं कुष्ठं पामां चैव विचर्चिकाम्।
ये व्रणा न प्ररोहन्ति गम्भीरा भैरवाश्च ये ॥ ३६६ ॥
तांस्तु नाशयते सर्वान् सप्ताहेन न संशयः।
भिषजां नात्र सन्देहस्तैलं भ्रामरिकं खलु ॥ ३६७ ॥

कुष्ठ रोग में भ्रामरिक तैल—गुञ्जा (रत्ती) की जड, मदनफल, कूठ, वत्सनाभ, सिन्दूर, मोम, आमाहल्दी, दारुहल्दी, कलिहारी, गुग्गुलु, वच, कृकलास (सरट—गिरगिट) स्वरूप द्रव्य (भौंरा के समान जन्तुवों) को छोड़ कर सरसों के तैल मे पकावे। अच्छी तरह खर हो जाने पर उतार कर तैल से उन औषधों को निकाल कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। पुनः इस चूर्ण को तैल मे छोड कर त्रिशूली (भौंरा-भ्रमर) डाल दे और जीवन्ती, जीवनी-मूल (फञ्जिका "वभनेटी), व्रणरोहिणी (मांसरोहिणी 'मासूपीडी')—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर एक रात तक वन्द कर रक्खे। इसके बाद छान कर प्रयोग करे। यह भ्रामरिक तैल शिरोरोग, व्रण, कुष्ठ रोग, खुजली, विचर्चिका,

गम्भीर भयंकर व्रण और जो व्रण नहीं भरते हैं ऐसे सभी प्रकार के व्रणों को एक सप्ताह में नाश करता है इसमें संशय नहीं है। और वैद्यों को भी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६२-३६७ ॥

व्रणे महाकषायं तैलम्—

उदुम्बरो वटश्चैव प्लक्षः पिप्पल एव च।
मधूक आम्रसर्जौ च जम्बूद्वयमथार्जुनः ॥ ३६८ ॥
कम्पिल्लकः प्रियालश्च कदम्बस्तिन्दुकस्तथा।
पलाशा रोध्रसंमिश्रं बदरं पद्मकेसरम् ॥ ३६९ ॥
शिरीषो बीजकश्चैव तथा रक्तं च चन्दनम्।
अमीषां क्वाथकल्काभ्यां तैलमन्दाग्निसाधितम् ॥ ३७० ॥
नाम्ना महाकषायं तु क्षिप्रमभ्यञ्जनाद्धरेत्।
व्रणास्तु देहिनामेतच्चिरकालभवानपि ॥ ३७१ ॥

व्रण में महाकषाय तैल—गूलर, वट, पाकड़, पीपल, महुआ, आम, शाल, जामुन, कठजामुन, अर्जुन, कवीला, पियाल (खिरिनी), कदम्ब, तिन्दुक, परास, लोध्र, बेर, पद्मकेशर (कमल का पराग), सिरिस, विजयसार, रक्त-चन्दन, श्वेत चन्दन—इन द्रव्यों के क्वाथ तथा कल्क के साथ मन्द आँच से तैल सिद्ध करे। यह महाकषाय नामक तैल, अभ्यञ्जन (लेप) करने से मनुष्यों के पुराने व्रणों को भी शीघ्र ही शान्त कर देता है। अर्थात् व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं। (यहाँ उपर्युक्त द्रव्यों की छाल लेकर कूटकर तैल से अठगुने जल में क्वाथ करे और चतुर्थांश शेष क्वाथ में (तैल के चौगुना द्रव्यों को लेकर अठगुना जल में क्वाथ करे) इन्हीं द्रव्यों का तैल के चौथाई द्रव्य, लेकर कल्क बनावे और उसके साथ तैल सिद्ध करे) ॥

वल्मीके मनःशिलाद्यं तैलम्—

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मलागुरुचन्दनैः।
जातीपल्लवपत्रैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ३७२ ॥
वल्मीकं नाशयत्येतद्बहुच्छिद्रं बहुस्रवम्।

वल्मीक व्रण में मनःशिलाद्य तैल—मनःशिला, आल (हरिताल), भल्ला-तक, छोटी इलायची, अगर, रक्तचन्दन, चमेली का पल्लव तथा पत्र—इन द्रव्यों के (तैल के चतुर्थांश) कल्क के साथ (तैल के चौगुना जल मिलाकर) नीम का तैल पकावे। यह तैल अधिक स्रावयुक्त, बहुत छिद्रवाले, वल्मीक व्रण को नाश करता है ॥

गण्डमालायां फणिज्जकाद्यं तैलम्—

फणिज्जकश्च नादेयं क्षवको नवमालिका ॥ ३७३ ॥

अश्मन्तको विडङ्गानि मयूरकफलानि च ।
कट्फलं सहदेवा च देवदारु वितुन्नकम् ॥ ३७४ ॥
बीजं कारञ्जपालाशं मूलकस्याजकस्य च ।
महापर्पटको मुस्तं त्रिकटु त्रिफला वचा ॥ ३७५ ॥
सुवर्चला च हिङ्गुश्च समभागानि कारयेत् ।
अक्षमात्रैः पचेदेभिस्तैलप्रस्थं सुखाग्निना ॥ ३७६ ॥
अजामूत्रेण संयुक्तमजाक्षीरे चतुर्गुणे ।
नस्यं तदस्य दद्याच्च गण्डमालाविनाशनम् ॥ ३७७ ॥
विदारिकां गलग्रन्थिं गलगण्डं च नाशयेत् ।

गण्डमाला (ग्लैण्ड टी० बी०) में फणिज्जकाद्य तैल—(फणिज्जक (प्रस्थ-पुष्प-मरुआ), नादेय (मोथा), च्चवक (नकछिकनी), नवमालिका (सातला), अश्मन्तक (पाषाणभेद), विडंग, मयूरकफल (अपामार्ग का फल), कायफर, सहदेइया, देवदारु, धनिया, करजबीज, पलासवीज, मूलकवीज, निर्गन्ध तुलसी का बीज, महासहा (मापपर्णी), पित्तपापड़ा, मोथा, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), वच, हुलहुल, हिंगु—समभाग—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल एक प्रस्थ, समभाग बकरी का मूत्र तथा चौगुना बकरी का दूध मिलाकर मंद आँच से पकावे। इसके बाद गण्डमाला को नाश करने के लिये इस तैल का नस्य दे। यह तैल विदारिका (कांख, वंक्षण आदि का शोथ), गलग्रन्थि तथा गलगण्ड (घेघा) को नाश करता है ॥

गण्डमालायां काकादनीतैलम्—

काकादनीविशल्याह्वानदीजतुण्डिकाफलैः ॥ ३७८ ॥
जीमूतबीजकर्कोटैर्विशालाकृतवेधनैः ।
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ॥ ३७९ ॥
प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ।
अनेन गण्डमाला हि चिरजा पूयवाहिनी ॥ ३८० ॥
सिद्ध्यत्यसाध्यकल्पाऽपि पानाभ्यञ्जननावनैः ।

गण्डमाला में काकादनीतैल—काकादनी (गुञ्जा), कलिहारी, नदीज (हिज्जल), तुण्डिकाफल (बिम्बीफल), जीमूत (देवदाली—'बन्दाल') बीज (विजयसार), कर्कोट (ककोडा 'चठइल) का पत्ता, इन्द्रायण, कृत-वेधन (नेनुआ) का पत्ता, पाठा—आधा २ पल, विष (वत्सनाभ) एक कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ करञ्ज का तैल एक प्रस्थ, निर्गुण्डी-स्वरस एक आढक में मिलाकर पकावे। यह तैल पान, अभ्यंजन (लेप) तथा नावन करने

से पूय देने वाली चिरकालीन असाध्य भी गण्डमाला सिद्ध हो जाती है अर्थात्—गण्डमाला का व्रण शुद्ध एवं भर जाता है ॥

रक्तपित्ते मूर्वाद्यं तैलम्—

द्राक्षामधूकमूर्वेक्षुरसचन्दनपद्मकैः ॥ ३८१ ॥
सारिवाद्वयनक्ताह्वैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
क्षीरे चतुर्गुणे पक्वं कल्कैरक्षसमैर्भिषक् ॥ ३८२ ॥
रक्तपित्तहरं त्वेतद्वर्ण्यं वातघ्नमुत्तमम् ।
मूर्वातैलमिदं नाम्ना सवर्णकरणं परम् ॥ ३८३ ॥

रक्तपित्त में मूर्वाद्य तैल—मुनक्का, महुआ, मूर्वा (मोरवेल या मड़ोरफली), गन्ने की जड़ का रस (रसाञ्जन), चन्दन, पद्मकाठ, काला सारिवा, रक्तसारिवा, निशा (हल्दी)—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, तैल एक प्रस्थ, दूध चौगुना (चार प्रस्थ) में वैद्य, पकावे। यह तैल रक्तपित्त को दूर करनेवाला, कान्ति बढ़ानेवाला तथा उत्तम वातनाशक है। यह मूर्वाद्य नामक तैल, अच्छी तरह समान वर्ण बनाने वाला है ॥ ३८१–३८३ ॥

कुष्ठे विपादनं तैलम्—

कम्पिल्लकनिशायुग्मैः शालनिर्यासचित्रकैः ।
पुरकीटारिसंयुक्तैः पालिकैः सुविचूर्णितैः ॥ ३८४ ॥
एकीकृत्य समैरेभिर्विषस्य च पलद्वयम् ।
आतपे स्थापयेद्द्वौमासान् कटुतैलपरिप्लुतम् ॥ ३८५ ॥
विपादनमिदं तैलं लेपात्सिध्मविचर्चिके ।
हन्ति पामापचीव्यङ्गदुष्टव्रणभगन्दरान् ॥ ३८६ ॥

कुष्ठ रोग में विपादन तैल—कम्पिल्लक (कबीला), आमाहल्दी, दारुहल्दी, शाल का गोंद, चित्रक, गुग्गुलु, विडंग—एक २ पल, विष (वत्सनाभ) दो पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर सरसों तैल एक प्रस्थ में मिलाकर सूर्य के धूप में पकावे। यह विपादन तैल लेप करने से सिध्म (सेहुआं)। विचर्चिका (कुष्ठ भेद, हाथ-पैर में खाज, पीड़ायुक्त रूखी रेखायें उत्पन्न होना), पामा (स्राव, खाज, जलनयुक्त फुन्सियां "उकवत"), अपची (कण्ठमाला), व्यङ्ग, दुष्ट व्रण तथा भगन्दर को नाश करता है ॥ ३८४–३८६ ॥

कुष्ठे जीवन्त्याद्यं तैलम्—

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वी कम्पिल्लकः पयस्तुत्थम् ।
एष घृततैलपाकः सिद्धः सर्जरससंयुक्तः ॥ ३८७ ॥
देयः समधूच्छिष्टो विपादिकाशामकोऽभ्यङ्गात् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभ सिध्मं शाम्यत्यलसकं च ॥ ३८८ ॥

कुष्ठरोग में जीवन्त्याद्य तैल—जीवन्ती, मंजीठ, दारुहल्दी, कबीला, दूध, तूतिया, सर्जरस (श्रीवेष्टक), मोम तैल, घृत—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर पकावे, (तैल तथा घृत समभाग दूध, तैल के चौगुना, कल्क द्रव्य तैल के चौथाई तथा श्रीवेष्टक और मोम—एक २ भाग मिलाना चाहिए)। यह तैल विपादिका (बेवाई) को शान्त करने वाला है और चर्मकुष्ठ ("परिसर्प" त्वचापर से छिलका या भूसी निकलना), किटिभ (कुष्ठ का एक भेद "कालादाग"), सेहुआं तथा अलसक (सिर की भूसी) को शान्त करता है ॥ ३८७–३८८ ॥

पामायां जीरकाद्यं तैलम्—

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्धपलं तथा।
कटुतैलं पचेदेभिः सद्यः पामाहरं परम् ॥ ३८९ ॥

पामा (उकवत) में जीरकाद्य तैल—जीरा का चूर्ण एक पल, सिन्दूर आधा पल—इन द्रव्यों के साथ सरसों तैल (छः पल) पकावे। यह तैल शीघ्र ही पामा (उकवत) को अच्छी तरह दूर करता है। (यहां द्रवद्रव्य मिलाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जहां कल्क द्रव्य दो या तीन से अधिक न हो वहां द्रव द्रव्य नहीं मिलाया जाता) ॥ ३८९ ॥

कृमिरोगे विडङ्गाद्यं तैलम्—

विडङ्गानि स्नुहीक्षीरमर्कक्षीरं तथैव च।
गुञ्जाफलानि गण्डीरं श्यामा निर्दहनी तथा ॥ ३९० ॥
एतैर्गोमूत्रसंपिष्टैस्तैलं मूर्ध्नि निधापयेत्।
कृमयः पूरणादेव नश्यन्त्यपि विमार्गगाः ॥ ३९१ ॥

कृमिरोग में विडंगाद्य तैल—विडंग, सेहुंड का दूध, मदार का दूध, गुञ्जाफल (रत्ती), गण्डीरदूर्वा, काला निशोथ, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों को गोमूत्र में पीस कर (तैल के चौथाई), सेहुंड तथा मदार का दूध तैल के बराबर मिलाकर तैल सिद्ध करे। इस तैल को सिर पर रक्खे। यह तैल सिर पर पूरण करने मात्र से विपरीत मार्ग से जाने वाले भी कृमि नष्ट हो जाते हैं ॥ ३९०–३९१ ॥

वातरोगे गुडूचीतैलम्—

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम्।
क्षीरद्रोणयुतं कल्कैः पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ ३९२ ॥
पिष्टैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैर्युतं तथा।
कुष्ठैलागुरुमृद्वीकामांसीव्याघ्रीनखैर्नवैः ॥ ३९३ ॥
सारिवाश्रावणीव्योषमिशीशृङ्गीहरेणुभिः।

त्वक्पत्रागुरुविक्रान्तास्थिरातामलकीघनैः ॥ ३९४ ॥
नतकेसरकोशीरपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
सिद्धं तच्छ्नकैस्तैलं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ३९५ ॥
धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ।
तोदकम्परुजायामशिरःकम्पामयार्दितान् ॥ ३९६ ॥
हन्याद् व्रणकृतान्दोषान् गुडूचीतैलमुत्तमम् ।

वातरोग में गुडूची तैल—गुडूची एक तुला, एक द्रोण जल में क्वाथ करे। चौथाई शेष क्वाथ, दूध एक द्रोण, तैल एक आढक मिलाकर कल्कार्थ—मुलेठी, मंजीठ, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी), कूठ, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामांसी, व्याघ्री (कण्टकारी), नवीन नख (नखी), सारिवा, श्रावणी (मुण्डी), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), मिशी (सौंफ), काकड़ासिंघी, सम्भालू का बीज, दालचीनी, तेजपत्र, अगर, विक्रान्ता (हुलहुल "सुवर्चला"), शालपर्णी, भुइं आवला, मोथा, तगर, नागकेशर, खस, पद्मकाठ, नील कमल, रक्तचन्दन—इन द्रव्यों के (तैल के चौथाई एक प्रस्थ) कल्क के साथ धीरे २ मन्द आंच से पकावे और सिद्ध होने पर इस तैल को पान, लेप तथा वस्तिकर्म में प्रयोग करे। यह उत्तम गुडूची तैल धन देने वाला, पुंस्त्व-शक्ति देनेवाला, स्त्रियों को गर्भ देने वाला तथा वात-पित्त को नष्ट करने वाला है और तोद (छेदने की तरह व्यथा), कम्प रोग, आयाम, सिर का कांपना, अर्दित (आधा चेहरा का बांका होना), तथा व्रणकृत दोषों को नाश करता है ॥

वातरोगे द्वितीयं गुडूचीतैलम्—

अमृतायास्तुलाः पञ्च द्रोणेष्वष्टास्वपां पचेत् ॥ ३९७ ॥
पादशेषं तु सक्षीरं तैलस्यार्धाढकं पचेत् ।
एलामांसीनतोशीरसारिवाकुष्ठचन्दनैः ॥ ३९८ ॥
शतपुष्पावलामेदामहामेदर्धिजीवकैः ।
काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्यतिबलानखैः ॥ ३९९ ॥
महाश्रावणिकाजीवाविदारीकपिकच्छुभिः ।
शतावर्योऽथ भूधात्रीकर्कटाख्याहरेणुभिः ॥ ४०० ॥
वचागोक्षुरकैरण्डरास्नाकालासहाचरैः ।
द्विजीरकसहादारुवृषभैश्चापि कार्षिकैः ॥ ४०१ ॥
मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेण मधुकाष्टपलेन तु ।

कल्कैस्तत्क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ ४०२ ॥
युक्तानुन्मादकम्पापस्मारैश्च प्रकृतिं नयेत् ।
वातव्याधिहरं श्रेष्ठं तैलाग्र्यममृताह्वयम ॥ ४०३ ॥

वातरोग में गुडूची तैल—गुडूची पांच तुला, आठ द्रोण जल में क्वाथ करे चतुर्थांश शेष क्वाथ, दूध (तैल के बराबर), तैल आधा आढ़क (दो प्रस्थ), कल्कार्थ—इलायची, जटामांसी, तगर, खस, सारिवा, कूठ, रक्तचन्दन, सौंफ, बरियार, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुण्डी, कंघी, नख (नखी), महाश्रावणिका (बड़ी मुण्डी), जीवन्ती, विदारीकन्द, केंवाछ का बीज, शतावरी, मुद्ग आंवला, काकड़ासिंघी, सम्भालू का बीज, वच, गोखरू, रेंड की जड़, रास्ना, कालीझिण्टी, स्याहजीरा, सफेदजीरा, सहा (मुद्गपर्णी), देवदारु, अडूसा—एक २ कर्ष, मंजीठ तीन कर्ष, मुलेठी आठ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल सिद्ध करे। यह तैल क्षीणवीर्य, मन्दाग्नि, निर्बल, संमूढ चित्तवाले, उन्माद, कम्प तथा अपस्मार से युक्त व्यक्तियों को प्रकृति (साम्यावस्था) मे अर्थात् इन रोगों से रहित करता है। तैलों में श्रेष्ठ यह अमृता नामक तैल उत्तम वातव्याधिनाशक है ॥ ३९७–४०३ ॥

वातरोगे सहचरं तैलम्—

समूलशाखस्य सहाचरस्य तुला समेतां दशमूलतश्च ।
पलानि पञ्चाशदभीरुतश्च पादावशेष विपचेद्वहेऽपाम् ॥ ४०४ ॥
तत्र सेव्यनखकुष्ठहिमैलास्पृक्प्रियङ्गुनलिकाम्बुशिलाजैः ।
लोहितानलदलोहसुराह्वैः कोपनामिशितुरुष्कनतैश्च ॥ ४०५ ॥
तुल्यक्षीरे पालिकैस्तैलपात्रं
सिद्धं कृच्छ्रान्छीलित हन्ति वातान् ।
कम्पाक्षेपस्तम्भशोपादियुक्तान्
गुल्मोन्मादान् पीनसं योनिरोगान् ॥ ४०६ ॥

वातरोग में सहचर तैल—मूल-शाखा सहित सहाचर (कटसरैया) एक तुला, दशमूल (बिल्व, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेगनी, गोखरू) एक तुला, अभीरु (शतावरी) पचास पल—इन द्रव्यों को चार द्रोण जल मे क्वाथ करे, चौथाई शेष क्वाथ मे तैल एक आढ़क, दूध—समभाग (एक आढ़क)—मिला कर कल्कार्थ—खस, नख (नखी), कूठ, हिम (चन्दन), इलायची, स्पृक् (सुगन्धद्रव्य), प्रियंगु, नलिका (प्रवाली), सुगन्धवाला, छडीला, मजीठा, नलद (जटामांसी), लोह (अगर), देवदारु, कोपना (हल्दी), सौंफ, तुरुष्क (शिलारस), नत-तगर—एक २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल सिद्ध करे। यह तैल प्रयोग करने से कष्टप्रद

वातरोग, कम्पवात, आक्षेप, स्तम्भवात, सूखा रोग आदि से युक्त वातरोग, गुल्म, उन्माद, पीनस तथा योनिरोगों को नाश करता है ॥ ४०४–४०६ ॥

वातरोगे नीलसहचरतैलम्—

सहचरहस्ती नीलोत्पलशतगात्रस्तृषातुरः पतितः ।
सलिलद्रोणतडागे सुतप्तघर्मांशुतप्त इव ॥ ४०७ ॥
तैलप्रस्थमतोऽस्मै दद्यात्तैलाच्चतुर्गुणं च पयः ।
मदगन्धसुरभिसैन्धवकल्कैश्चाक्षोन्मितैर्लिप्तः ॥ ४०८ ॥
एलामृणालकुष्ठप्रियङ्गुकाश्मीरपुरलोहैः ।
श्रीवेष्टकसजरसैश्चन्दनशैलेयरजनीभिः ॥ ४०९ ॥
दारुशताह्वापथ्याकेसररसपेलवघनैश्च ।
तीर्णो मालतीसुमैः सहचरनीलाशवनपतितः ॥ ४१० ॥
मेदोस्थिमज्जमांसासृग्रुधिरशुक्रसंश्रयांश्चिरोत्पन्नान् ।
हन्याद्वातविकारानशीतिमेतन्महानीलम् ॥ ४११ ॥

वातरोग में नीलसहचर तैल—अनेक नील पुष्प से युक्त मूल-पत्र-शाखा सहित, नील सहचर (नील कटसरैया) उखाड़ कर टुकड़ा २ काट तथा कूट कर, दो द्रोण जल में मिलाकर, तीव्र धूप में सुखाये। चौथाई शेष रहने पर छान कर तैल दो प्रस्थ, दूध आठ प्रस्थ और कल्कार्थ—मदगन्ध (सप्तपर्ण), रास्ना, सेन्धानमक, इलायची, कमल का नाल, कूठ, प्रियंगु, केशर, गुग्गुल, तगर, श्रीवेष्ट (धूपवृक्ष), राल, छड़ीला, हलदी, देवदारु, सोया, हर्रे, नागकेशर, रस (रसांजन), पेलव (केवटीमोथा), मोथा, मालतीपुष्प—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों का कल्क मिलाकर मन्द आंच से धीरे २ पकावे। यह महानील तैल, पुराना मेद-अस्थि-मज्जा-मास-असृक् (रुधिर) तथा शुक्रगत अस्सी प्रकार के वात रोगों को नाश करता है। अपने सहचर सहित जिस प्रकार धूप से संतप्त तथा प्यास से व्याकुल हाथी सैकड़ों नीलकमल के पत्तों से आच्छादित, जलपूर्ण तड़ाग में डूबकर अपने सताप को दूर करता है, वैसे ही मेदा, अस्थि, मज्जा आदिगत वात से पीड़ित रोगी नीलसहचर तेल में अवगाहन कर ८० प्रकार के वातरोगों से शान्ति प्राप्त करता है ॥४०७–४११॥

वातरोगे दशमूलाद्यं तैलम्—

दशाङ्घ्रिकेशरारिष्टब्राह्मीपाठाकटुत्रिकैः ।
शटीपुनर्नवाभार्गीसुरसाम्बुफलत्रिकैः ॥ ४१२ ॥
शङ्खपुष्पीत्वगेलार्कमुनिपादपपल्लवैः ।
अङ्कोटवरुणास्फोतशिरीषकटभीफलैः ॥ ४१३ ॥
कृमिघ्नमूलशम्पाकसर्षपामरदारुभिः ।

प्रियंगुहिंगुमञ्जिष्ठासुमुखातन्दुलीयकैः ॥ ४१४ ॥
गिरिकर्णीवचाकुष्ठकङ्कुष्ठरजनीद्वयैः ।
मधूकसारसिन्धूत्थसितनीलोत्पलाम्बुदैः ॥ ४१५ ॥
कटुतैलं समैरेभिः पक्वं क्षीरे चतुर्गुणे ।
सोन्मादं हन्त्यपस्मारं पानाभ्यञ्जननावनैः ॥ ४१६ ॥
डाकिनीभूतवेतालनैगमेषादिकान् ग्रहान् ।
कृत्याभिचाररक्षांसि नाशयत्यखिलान्यपि ॥ ४१७ ॥
तैलमेतत्सुरेन्द्रेण नन्दस्य कथितं पुरा ।
बालस्य किल रक्षार्थं विष्णोरमिततेजसः ॥ ४१८ ॥
अभ्यज्य सर्वगात्राणि भोक्तव्यं रिपुवेश्मनि ।
तैलमभ्यञ्जनं श्रेष्ठं वसतोऽरातिसङ्कटे ॥ ४१९ ॥
अथ विलिप्तभगा भगशालिनी यदि रमेत नरं दिवसे शुभे ।
मदनसायकजर्जरितोरसो भवति तस्य तयाऽपहृतं मनः ॥ ४२० ॥
ताम्बूलमुखवासेषु व्यञ्जनाहारयोगतः ।
अनामिकाग्रसंयुक्तं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ४२१ ।'

वातरोग में दशमूलाद्य तैल—दशाङ्ग (दशमूल–बेल, गम्भारी, पाटला, अरलू, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, रेगनी, गोखरू), नागकेशर, अरिष्ट, (निम्ब), ब्राह्मी, पाढ़ी, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), कपूरकचरी, पुनर्नवा, भांगरा, तुलसी, सुगन्धवाला, फलत्रिक (हर्रे, बहेडा, आंवला), शंखपुष्पी, दालचीनी, इलायची, मदार, अगस्त्य का पल्लव, अकोट (ढेरा), वरुण, आस्फोत (कृष्ण सारिवा), सिरिस, कटभीफल (मालकांगनी), विडंग की जड़, शम्पाक (अमलतास), सरसो, देवदारु, प्रियंगु, हिंगु, मंजीठ, सुमुखा (तुलसीभेद), तण्डुलीयक (चौराई), अपराजिता, वच, कूठ, कंकुष्ठ (मुर्दाशंख), आमाहल्दी, दारुहल्दी, महुआ की लकडी, सेन्धानमक, सफेद कमल, नीलकमल, मोथा—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सरसों का तैल, तैल के चौगुना दूध मिला कर सिद्ध करे। यह तैल—पान, लेप तथा नावन करने से—उन्माद, अपस्मार को नाश करता है। और डाकिनी, भूत, वेताल, नैगमेष आदिक ग्रह, अभिचार कृत्य तथा सभी राक्षस-दोष आदि को नाश करता है। इस तैल के अमित पराक्रमी बालक कृष्ण की रक्षा के लिये इन्द्र ने पहले नन्द जी से कहा था। शत्रु के घर में इस तैल को सम्पूर्ण शरीर में लगा कर भोजन करना चाहिए। शत्रु से संकट आ जाने पर इस तैल का लेप श्रेष्ठ है। यदि नवयौवना स्त्री इस तैल को अपने भग मे लेप कर पुरुष के साथ रमण करे तो वह स्त्री कामदेव के बाण से जर्जरित हृदय

वाले पुरुष के मन को अपहरण कर लेती है। पान आदि मुख को सुगन्धित करने वाली चीजों में, तथा खाद्य पदार्थों में प्रयोग करने से एवं अनामिका अंगुली के अग्रभाग में लगाने से यह तैल उत्तम वशीकरण (मन को वश मे करने वाला) हो जाता है ॥ ४१२–४२१ ॥

भग्ने गन्धतैलम्—

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले ।
दिवा दिवा विशोष्यापि गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ४२२ ॥
तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान् सुशुष्कांश्चूर्णयेद् बुधः ॥ ४२३ ॥
काकोल्यादिं सयष्ट्याह्वं मञ्जिष्ठां सारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ ४२४ ॥
शतपुष्पां च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।
पीडनार्थे प्रकर्तव्यं सर्वगन्धशृतं पयः ॥ ४२५ ॥
चतुर्गुणेन तोयेन तत्तैलं विपचेद्भिषक् ।
एलामंशुमतीं पत्रं जीरकं तगरं तथा ॥ ४२६ ॥
रोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् ।
क्षीरशुक्लां च सैरेयमनन्तां समधूलिकाम् ॥ ४२७ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव पूर्वोक्तान्यौषधानि च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाऽग्निना ॥ ४२८ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
पक्षघाते तालुशोषे ह्याक्षेपे च तथाऽर्दिते ॥ ४२९ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ ४३० ॥
पथ्यं पाने तथाऽभ्यङ्गे नस्ये बस्तिषु भोजने ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरमुनैवोपजायते ॥ ४३१ ॥
मुखं च पद्मसंकाशं ससुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
कार्यं राजार्हमेतत्तु राज्ञामेव विचक्षणैः ॥ ४३२ ॥

भग्न होने पर गन्ध तैल—परिपुष्ट काले तिल को प्रतिरात्रि में अस्थिर जल में भिगोये और प्रतिदिन दिन में सुखा कर गाय के दूध से भावित करे। और पुनः रात्रि में जल में भिगो दे। इस प्रकार चौदह दिन तक करे। तृतीय सप्ताह में, दूध के स्थान पर मुलेठी के क्वाथ की भावना दे। इसके बाद पुनः दूध की भावना देकर और सुखा कर चूर्ण बना ले। इसके बाद काकोल्यादि

गण औषधि, मुलेठी, मंजीठ, सारिवा, कूठ, राल, जटामांसी, देवदारु, रक्तचन्दन, सौफ—इन द्रव्यों को चूर्ण कर तिल के चूर्ण में मिला दे और सभी गन्ध-द्रव्यों को दूध में पका कर उस दूध से मिश्रित कर तिलचूर्ण का तैल निकाले। इसके बाद इस प्रकार निकाले हुए तैल को चौगुना जल में पकावे और उसमें इलायची, जोतिष्मती, पतंग, स्याहजीरा, तगर, लोध, प्रपौण्डरीक, कालासारिवा, चीरशुक्ला (चीरकाकोली), कटसरैया, अनन्तमूल, सौफ, सिंहाड़ा तथा पूर्वकथित काकोल्यादि—शतपुष्पान्त द्रव्यों को पीस कर उसमें मिला दे और अनुभवी वैद्य मन्द आंच से पकावे। यह सिद्ध तैल भग्न व्यक्तियों के सभी कर्म, पान-मर्दन आदि मे पथ्य है। पक्षाघात, तालुशोष, आक्षेपक, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णरोग, हनुग्रह, बहरापन, तिमिर रोग तथा स्त्री-प्रसंग से क्षय के रोगियों के रोग में पथ्य अर्थात् इन रोगों को नाश करने वाला है। यह तैल, पान-लेप-नस्यकर्म-वस्तिकर्म तथा भोजन में प्रशस्त है और इसी तैल से ग्रीवा, कन्धा तथा छाती की वृद्धि होती है और मुख कमल के समान तथा सुगन्ध देने वाला हो जाता है। यह गन्धनामक तैल सभी प्रकार के वातविकारों को नाश करने वाला है। विद्वान् वैद्य राजाओं के योग्य इस तैल को राजाओं के कार्य मे ही प्रयोग करे। (इस योग में परिमाण का निर्देश नहीं किया गया है अतः कल्क-द्रव्य तैल के चतुर्थांश लेना चाहिए)॥ ४२२–४३२ ॥

बृहत्सहचरतैलम्—

काथे साहचरे वरीपरियुते क्षुद्रामृतैरण्डजे
श्योनाकार्णिबिल्वगोक्षुरयुते सिंहाग्निमन्थोद्भवे।
रास्नोशीरविशालदारुतगरैस्त्वक्पत्रमेदानखैः
स्पृक्काशैलघनैलवालुसरलैः कङ्कोलकुष्ठोत्पलैः॥ ४३३॥
कौन्तीकेशिबलाद्विसारिवनिशाश्यामाशताह्वानतै-
मञ्जिष्ठापुरसिह्लचन्दनवरैश्चण्डाह्वस्थौणेयकैः।
श्रीवेष्टागरुरोध्रकुङ्कुमवरैः कल्कैः समांशैः खलु-
तैलं क्षीरसमं विपाच्य विधिना वस्तौ च नस्ये ध्रुवम्॥४३४॥
पानाभ्यङ्गविधौ नियोजितमिदं वातादिसर्वामयान्
गुल्माष्ठीलशिरोर्तिशूलमुदरं श्वासामकासज्वरम्।
शोफं प्लीहगुदामयं च जठरं धातुक्षयाध्मानकं
अर्शः कुष्ठभगन्दरं च शमयेत्सर्वान् व्रणान् हन्ति च॥ ४३५॥
जयति पवनरोगान् कामलां विड्विबन्धं
दिननिशि तिमिरान्ध्यं गृध्रसीं मूर्ध्नि वातम्।

सहचरमिति नाम्ना तैलमेतत्प्रसिद्धं
धनपतिनृपयोग्यं भाषितं शम्भुनैव ॥ ४३६ ॥

बृहत्सहचर तैल—सहचर (कटसरैया), शतावरी, भटकटैया, गुडूची, रेंड़ की जड़, अरलू, अरणी, बेल की छाल, गोखरू, छो० अरणी—इन द्रव्यों को चौगुने जल में क्वाथ करने पर चतुर्थांश क्वाथ में रास्ना, खस, इन्द्रायण, देवदारु, तगर, दालचीनी, तेजपत्र, मेदा, नख (नखी), स्पृक्का (सुगन्धित द्रव्य विशेष), छड़ीला, मोथा, एलवालु, चोढ़, कंकोल (ढेरा), कूठ, नीलकमल, कौन्ती, (सम्भालू का बीज), जटामांसी, बरियार, कृष्ण सारिवा, रक्तसारिवा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, काला निशोथ, सोया, तगर, मंजीठ, गुग्गुलु, सिह्ल (शिलारस-तुरुष्क), चन्दन, त्रिफला, चण्डाह्व (चोरक), स्थौणेयक (सुगन्धि द्रव्य विशेष), श्रीवेष्टक (धूपवृक्ष), अगर, लोध, केशर—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क (तैल के चौथाई) के साथ तैल के बराबर दूध मिलाकर तैल को सिद्ध करे। यह तैल विधिपूर्वक वस्तिकर्म, नस्यकर्म, पान तथा अभ्यङ्ग (लेप) में प्रयोग करने से वातादिक सभी रोगों को गुल्म, अष्ठीला, शिरोरोग, शूल, उदरशूल, श्वास, कास, ज्वर, शोथ, प्लीहावृद्धि, गुदारोग, जठररोग, धातुक्षय, आध्मान, अर्श, कुष्ठ रोग तथा भगन्दर को शान्त करता है। और सभी व्रणों को नाश करता है। यह प्रसिद्ध सहचरनामक तैल वात रोग, कामला, विड्विबन्ध (मलावरोध), दिनान्ध्य, राज्यान्ध्य, तिमिर रोग, गृध्रसी तथा मूर्धवात को जीत लेता है। यह तैल शम्भु का कहा हुआ धनी तथा राजाओं के योग्य है ॥ ४३३–४३६ ॥

तरक्ष्वाद्यं तैलम्—

तरक्षोश्च शृगालस्य पादावन्त्राणि संत्यजेत् ।
कोष्ठसारादिकं सर्वमुत्क्वाथ्य बहुलेऽम्भसि ॥ ४३७ ॥
पादशेषं परिगृह्य छागगव्यपयोन्वितम् ।
तैलं रससमं दत्त्वा मदिरामस्तुकाञ्जिकम् ॥ ४३८ ॥
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ।
करञ्जस्त्रिवृता मुस्ता पत्राङ्गं रेणुक त्वचम् ॥ ४३९ ॥
क्षारद्वयं तथा व्योष पञ्चैव लवणानि च ।
वचा तुरगगन्धा च मञ्जिष्ठा सर्जगुग्गुलू ॥ ४४० ॥
मेदा रास्ना च वर्षाभूरेला शैलेयकं बला ।
एतैरर्धपलैर्द्रव्यैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४४१ ॥
तैलं तेनैव नश्यन्ति रोगा देहे शरीरिणाम् ।
अशीतिं वातजान् रोगान् शोफं शूलं कटिग्रहम् ॥ ४४२ ॥

मांसमेदःश्रितं वायुं हर्ष चैव भगन्दरम् ।
लूतां सद्योव्रणं चैव नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ४४३ ॥
भूतग्रहमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ।
हन्ति वातमसाध्यं च पामादद्रुविचर्चिकाः ॥ ४४४ ॥
एतत्तैलं सदाभ्यङ्गात्सर्वरोगहरं नृणाम् ।

तरक्ष्वाद्य तैल—तरक्षु (तेंदुआ "बाघ") तथा शृगाल के पैर तथा अतड़ी के मांस को निकाल दे और कलेजी आदि उत्तम मांस को लेकर बहुत जल (अठगुने जल) में क्वाथ करे और चौथाई शेष मांसरस को लेकर बकरी तथा गाय का दूध (तैल के बराबर), तैल मांसरस के बराबर मिलाकर मद्य का तोड, कांजी (तैल के समभाग) छोड़ कर कल्कार्थ—देवदारु, आमाहल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, चन्दन, करञ्ज, निशोथ, 'मोथा, पतङ्ग, सम्भालू का बीज, दालचीनी, सर्ज्जीखार, यवक्षार, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), सेन्धानमक, सौवर्चल, विड, सांभर, सामुद्रनमक, वच, अश्वगन्धा, मंजीठ, राल, मेदा, रास्ना, पुनर्नवा, इलायची, छरीला, बरियार-आधा २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ धीरे २ मन्द आंच से तैल सिद्ध करे । इसी तैल से मनुष्यों के शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं । यह तैल अस्सी प्रकार के वात रोग, शोथ, शूल, कटिग्रह (कमर का जकड़न), मांस तथा मेद गत वायु, हर्ष (रोमांच), भगन्दर, लूताविष, सद्योव्रण, दुष्टनाडीव्रण (नासूर), भूतदोष, अपस्मार तथा उन्माद को दूर करता है और असाध्य वातरोग, उकवत, दाद तथा पीडायुक्त खुजली को नाश करता है । यह तैल निरन्तर प्रयोग करने से मनुष्यों के सभी रोगों को दूर करने वाला है । (इस योग में मांस का परिमाण नहीं दिया गया है अतः मांस एक तुला, जल दो द्रोण, तैल आठ प्रस्थ, दूध आठ प्रस्थ, मद्यादि आठ प्रस्थ लेना उपयुक्त है) ॥ ४३७-४४४ ॥

व्याघ्रतैलम्—

व्याघ्रशिरः समादाय क्वाथयित्वा जले बहु ॥ ४४५ ॥
उलूखले तु संकुट्य रस नीत्वा सुगालितम् ।
कटाहे सुदृढे दत्त्वा पचेत्साधु विधानतः ॥ ४४६ ॥
द्रव्याण्येतानि वै वैद्यः पादमानेन दापयेत् ।
देवदारु वचा कुष्ठं तगरं चन्दनं घनः ॥ ४४७ ॥
मञ्जिष्ठा पुष्करं रास्ना चातुर्जातकसैन्धवम् ।
पिप्पली मरिचं शुण्ठी मांसी सहचरो जलम् ॥ ४४८ ॥
अश्वगन्धात्मगुप्ते च क्रमुकश्च शतावरी ।

श्वदंष्ट्रा केतकी मूर्वा मधुकं चागुरुस्तथा ॥ ४४९ ॥
जात्याः फलं तथा पत्री तथा कटुकरोहिणी ।
ग्रन्थिकं शुक्लकन्दा च शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ४५० ॥
जीवनीयो गणश्चैव रालकेसरबोलकम् ।
नखं च कृष्णसारश्च वत्सनाभस्तथैव च ॥ ४५१ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
अशीति वातजान् रोगान् हन्यादाशु प्रयोजितम् ॥ ४५२ ॥
अश्वानां वातभग्नानां शिशूनां करिणामपि ।
अंशशोपे खुडे वाते क्रोष्टुशीर्षे कटिग्रहे ॥ ४५३ ॥
मन्यास्तम्भे हनुश्रोत्रवाते मन्दे तथाऽनले ।
पुत्रोत्पादि तु वन्ध्यानां षण्ढानां कामवर्धनम् ॥ ४५४ ॥
अश्विभ्यां निर्मित चैव प्रजानां हितकारकम् ।
अनेनैव विधानेन तैल तारक्षवं पचेत् ॥ ४५५ ॥

व्याघ्र तैल—व्याघ्र का शिर कूटकर दो द्रोण जल में क्वाथ करे और अच्छी तरह छान ले। इस रस को मजबूत कड़ाही में डालकर, तैल के चौथाई निम्न लिखित कल्क द्रव्यों को तथा तैल (एक आढक) छोड़कर विधिपूर्वक तैल पकावे। कल्कार्थ—देवदारु, वच, कूठ, तगर, चन्दन, मोथा, मंजीठ, पुष्कर-मूल, रास्ना, चातुर्जातक (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर,) सेन्धा-नमक, पीपर, मरिच, सोंठ, जटामांसी, सहचर (कटसरैया), जल (सुगन्ध-वाला), अश्वगन्धा, केवांछ का बीज, सुपारी, शतावरी, गोखरू, केतकी का फूल, मूर्वा (मोरवेल), मुलेठी, अगर, जायफर, जावित्री, कुटकी, पिपरामूल, शुक्लकन्दा (मुसली), सौंफ, पुनर्नवा, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर-काकोली, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी), राल, केशर, बोल (गन्धरस), नख (नखी), कृष्णसार (कस्तूरी), वत्सनाभ—इन द्रव्यों (तैल के चौथाई भाग—एक प्रस्थ) का कल्क मिला दे। इसके बाद इस सिद्ध तैल के वीर्य को सुनो। इस तैल का प्रयोग करने से अस्सी प्रकार के वातरोगों को, वातपीड़ित, अश्व, बालक तथा हाथियों के भी वातरोग को, अंशशोष, खुड (वातरक्त), वातरोग, क्रोष्टुशीर्ष, कटिग्रह, मन्यास्तम्भ, हनुवात, श्रोत्रवात तथा मन्दाग्नि मे प्रयोग करने से इन सभी रोगों को शीघ्र ही नाश करता है। बांझ स्त्रियों को भी पुत्र देनेवाला तथा नपुंसकों को काम बढाने वाला है। यह तैल अश्विनीकुमार का बनाया हुआ प्रजाओं का हित करने वाला है। इसी प्रकार, तारक्षव तैल को भी पकावे ॥ ४४५–४५५ ॥

वातारितैलम्—

शतावर्यास्तुलामेकां तुलां गोक्षुरकस्य च ।
तुलार्धं तिलतैलस्य चैरण्डस्य पलानि षट् ॥ ४५६ ॥
एरण्डच्छदनद्रावपलानि नव कारयेत् ।
बुकशिग्रुकतर्कारीसिन्दुवारसुवर्णकात् ॥ ४५७ ॥
नीलिकाग्रन्थिपर्णाभ्यां करञ्जात्केशरञ्जकात् ।
षट्पलं गुग्गुलोर्दत्त्वा तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४५८ ॥
कौब्जाक्षेपकपाङ्गुल्यसुप्तत्वङ्मन्दगामिताः ।
पक्षाघातहनुस्तम्भसन्धिरोगादिकानपि ॥ ४५९ ॥
नाशयेत्तत्क्षणादेव तमः सूर्योदयो यथा ।
तैलं वातारिनामेदं सर्ववातहरं परम् ॥ ४६० ॥

वातारि तैल—शतावरी का रस एक तुला, गोखरू का रस एक तुला, तिल का तैल आधा तुला, एरण्डमूल-क्वाथ छ पल, रेड़ के पत्ता का रस नव पल, कल्कार्थ—उरुबूक (एरण्ड), सहिजन, जयन्ती, सिन्दुवार, सुवर्णक (नागकेशर), नीलिका (नील), ग्रन्थिपर्ण (गठिवन), करंज, केशरंजक (भृङ्गराज)—इन द्रव्यों का कल्क (तैल के चतुर्थांश), गुग्गुलु छः पल मिलाकर तैल मन्द आँच से पकावे, । यह तैल कुब्जवात, आक्षेपक, पङ्गुत्व, सुप्तचर्म, धीरे २ चलना, पक्षाघात, हनुस्तम्भ, सन्धिरोग, गठिया आदि को शीघ्र ही नाश करता है । जैसे सूर्योदय अन्धकार को नाश करता है । यह वातारि नामक तैल सभी प्रकार के वात रोगों को अच्छी तरह दूर करने वाला है ॥४५६–४६०॥

दारुणके सारिवाद्यं तैलम्—

सारिवोग्रामृतायष्टीत्रिफलानीलमुत्पलम् ।
नीलीभृङ्गारकासीस-महानिम्बफलानि च ॥ ४६१ ॥
कटुतैलं पचेदेभिः सार्धं यवरसेन तु ।
कण्डूं दारुणकं हन्ति शिरोरोगे च शस्यते ॥ ४६२ ॥

दारुणक रोग में सारिवाद्य तैल—सारिवा, वच, गुडूची, मुलेठी, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), नीलकमल, नील, भृङ्गराज, कासीस, बकायन, मदनफल—समभाग, तैल के चतुर्थांश इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल के चौगुना यवरस (यवको चौगुने जल मे क्वाथ कर अवशिष्ट चौथाई रस) में सरसों का तैल सिद्ध करे । यह तैल कण्डु, दारुणक (सिर से भूसी उतरना) को नाश करता है और शिरोरोग में प्रशस्त है ॥ ४६१–४६२ ॥

वातरोगे दशाङ्गं तैलम्—

तर्कारीभृङ्गशिग्रूणां निर्गुण्डीशणयोस्तथा ।

वातघ्नवृपजातीनां निम्बभास्करयोरपि ॥ ४६३ ॥
स्वरसं तु समादाय प्रत्येकं प्रस्थमानतः।
प्रस्थं तु तिलतैलस्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४६४ ॥
एरण्डमूलवर्षाभूहयगन्धाशतावरी-
रास्नागोक्षुरकाश्चैव शतपुष्पा च सैन्धवम् ॥ ४६५ ॥
प्रत्येकं कर्षमादाय कर्षार्धं त्रिकटोस्तथा ।
एलात्वक्पत्रमांसीनां कर्षार्धं च विनिक्षिपेत् ॥ ४६६ ॥
तैलेनानेन नश्यन्ति वातरोगाः सुदारुणाः ।
आक्षेपकं हनुस्तम्भमपतन्त्रकमर्दितम् ॥ ४६७ ॥
अपबाहुकविश्वाचीपक्षाघातापतानकम् ।
स्नायुसन्धिगतं वातं सप्तधातुगतं तथा ॥ ४६८ ॥
ऊरुस्तम्भामवातौ च वातरक्तं सुदारुणम् ।
दशाङ्गसञ्ज्ञकं तैलं हन्यादन्यांश्च वातजान् ॥ ४६९ ।

वात रोग में दशांग तैल—जयन्ती, भृंगराज, सहिजन, निर्गुण्डी, सन, रेड़, अडूसा, चमेली का पत्ता, निम्ब, मदार—इन द्रव्यों का स्वरस एक २ प्रस्थ लेकर, तिलका तैल एक प्रस्थ, कल्कार्थ—रेड की जड़, पुनर्नवा, अश्वगन्धा, शतावरी, रास्ना, गोखरू, सौंफ, सेन्धानमक,—प्रत्येक एक २ कर्ष, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, जटामांसी आधा २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क को मिलाकर, धीरे २ मन्द आँच से तैल सिद्ध करे। इस तैल के प्रयोग से भयंकर वातरोग नष्ट होते हैं। यह दशांग नामक तैल आक्षेपक, हनुस्तम्भ, अपतन्त्रक, अर्दित, अपबाहुक, विश्वाची, पक्षाघात, अपतानक, स्नायु तथा सन्धिगत वात, रसादि सप्त धातुगत वात, ऊरुस्तम्भ, आम वात तथा अन्य वातरोगों को नाश करता है ॥४६३–४६९॥

कर्पूराद्यं तैलम्—

कर्पूरचन्दनवचासुरदारुमूर्वा-
गन्धर्वमूलरजनीद्वयसिन्धुजातैः ।
मेदाद्वयत्रिकटुपुष्करमूलकुष्ठ-
रास्नाह्वयासुहरितालककुङ्कुमैश्च ॥ ४७० ॥
पथ्याक्षकास्थितगरागुरुसारमेप-
शृङ्गीजटाह्वययुतैः खलु कल्कितैश्च ।
गोदुग्धयुक् कटुकतैलमिदं विपक्वं
ख्यातं निहन्ति सहसा विविधा रुजश्च ॥ ४७१ ॥

कर्पूराद्य तैल—कपूर, चन्दन, वच, देवदारु, मूर्वा (मोरवेल), गन्धर्व-

मूल (एरण्ड की जड); आमाहल्दी, दारुहल्दी, सेन्धानमक, मेदा, महामेदा, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), पुष्करमूल, कूठ, रास्ना, यास (यवासा), हरिताल, केशर, हर्रे बहेडा का बीज, तगर, अगर का मज्जा, मेढ़ासिंघी, जटामांसी—समभाग, तैल के चौथाई—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल के चौगुना दूध मिलाकर सरसों का तैल सिद्ध करे। यह प्रसिद्ध तैल एकाएक अनेक प्रकार के रोगों को नाश करता है ॥ ४७०-४७१ ॥

ज्वरे लाक्षादिकं तैलम्—

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् ।
अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्जचन्दनैः ॥ ४७२ ॥
मूर्वारोहिणिकारास्नाशताह्वामधुकैः सह ।
सिद्ध लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यञ्जनादिभिः ॥ ४७३ ॥
सर्वज्वरविषोन्मादश्वासापस्मारकासनुत् ।
यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ॥ ४७४ ॥
पित्तज्वरेण तीव्रेण दह्यमानस्य देहिनः ।
प्रवातमन्दिरस्थस्य कुर्याच्छीतामिमां क्रियाम् ॥ ४७५ ॥

ज्वर मे लाक्षादिक तैल—लाख का रस तैल के बराबर, मस्तु (दही का तोड़) तैल—के चौगुना इन मे तैल, मिलाकर, कल्कार्थ—अश्वगन्धा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, कौन्ती (रेणुका बीज), कूठ, कमल, चन्दन, मूर्वा (मोरवेल या मडोरफली), मांसरोहिणी, रास्ना, सोया (तैल के चौथाई)—इन द्रव्यों के कल्क के साथ तैल को सिद्ध करे। यह लाक्षादि-नामक तैल अंजन, लेप आदि में प्रयोग करने से सभी प्रकार के ज्वर, विषजन्य उपद्रव, उन्माद, श्वास, अपस्मार तथा कास को दूर करता है। यक्ष, राक्षस तथा भूतदोषों को नाश करने वाला है और गर्भिणी स्त्रियों के लिये उत्तम है। तीव्र पित्त ज्वर से जलते हुए शरीरवाले व्यक्ति को—हवादार मकान मे रखकर इस शीत क्रिया को करनी चाहिए ॥ ४७२-४७५ ॥

अन्वासनं तैलम्—

पिप्पली पौष्करं मूलं शतपुष्पा वचा शटी ।
यष्ट्याह्व देवदारुश्च चित्रको मदनात्फलम् ॥ ४७६ ॥
बिल्वं कुष्ठं च कल्केन तैलात्पादांशकेन हि ।
तैलतो द्विगुण क्षीरं दत्त्वा मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४७७ ॥
एतदन्वासनं नाम गुदस्रावं प्रवाहिकाम् ।
गुदव्यथां पुरीषस्य प्रवृत्ति च पुनः पुनः ॥ ४७८ ॥
वङ्क्षणस्यावरोधं च गलरोधं कटिग्रहम् ।

निहन्ति वातजान् रोगान् दीपयत्यपि चानलम् ॥ ४७६ ॥

अन्वासन तैल—पीपर, पुष्करमूल, सौंफ, वच, कपूरकचरी, मुलेठी, देवदारु, चित्रक, मदनफल, बेल की छाल, कूठ, तैल के चौथाई—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, तैल के दुगुना दूध मिलाकर तैल को मन्द आँच से पकावे, यह अन्वासन नामक तैल गुदस्राव (रक्तार्श), प्रवाहिका, गुद की पीड़ा, बार २ टट्टी का आना, वङ्क्षणका अवरोध, गलेका-रुँधना, कटिग्रह (कमर का अकड़न) तथा वातजन्य रोगों को नाश करता है और उदराग्नि को भी प्रदीप्त करता है ॥ ४७६–४७९ ॥

महानीलं तैलम् —

ककुभस्य श्रीपर्ण्याः पुष्पं जम्बूफलं प्रियङ्गुश्च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफलाऽगुरुमदनफलं चित्रकश्चैव ॥ ४८० ॥
नीलोत्पलमृणालकबीजककर्दमकनील्यश्च ।
भल्लातः स्रोतोञ्जनमाम्रास्थिकासीसपौण्डरीकं च ॥ ४८१ ॥
मदयन्ती बाकुचिका रोध्र चैतैस्तु समभागैः ।
तुलसीपत्र बीजं सणस्य सूर्यभक्ता च ॥ ४८२ ॥
काकमाचीदारुकयष्टीमधुमार्कव च सैरेयः ।
एतैर्द्विगुणैः कल्कीकृतैर्बिभीतमज्जतैलं च ॥ ४८३ ॥
कल्काच्चतुर्गुणितं, तच्चतुर्गुणोऽथ धात्रीस्वरसः ।
सूर्यातपे विपाच्यं नाम्ना तैलं महानीलम् ॥
पलितादिषु प्रयोज्यं जत्रूर्ध्वगेषु च निपुणतरैः ॥ ४८४ ॥

महानील तैल—ककुभ (अर्जुन) का पुष्प, गम्भारी का पुष्प, जामुन का फल, प्रियंगु, मंजीठ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), अगर, मदनफल, चित्रक, नीलकमल का पुष्प, कमल की नाल, विजयसार, कर्दमक (कांदो), नीलीवृक्ष, शु० भल्लातक, स्रोतोञ्जन, आम की गुठली, कासीस, पौण्डरीक (कमल), मेंहदी, बाकुची, लोध्र—समभाग—(एक २ भाग), तुलसीपत्र, सन का बीज, सूर्यभक्ता (सुवर्चला "हुलहुल"), मकोय, देवदारु, मुलेठी, भृङ्गराज, कटसरैया (झिंटी)—दो २ भाग—इन द्रव्यों (तैल के चतुर्थांश) के कल्क के साथ, बहेड़े के गुद्दी का तैल, कल्क के चौगुना, आंवला का रस तैल के चौगुना मिलाकर, सूर्य के प्रखर धूप (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु) मे पकावे। यह महानील नामक तैल है। इस तैल को पलितादि (असमय में बाल का पकना-गिरना-मुख में झुर्री पड़ना) रोगों मे तथा जत्रु के ऊर्ध्वाङ्ग के रोगों में योग्य वैद्य प्रयोग करे ॥ ४८०–४८४ ॥

पलिते नील्याद्यं तैलम्—

नीलीदलं भृङ्गरजोऽर्जुनत्वक् पिण्डीतकं कृष्णमयोरजश्च ।
बीजोद्भवं साहचरं च पुष्पं पथ्याक्षधात्रीसहितं विपाच्य ॥ ४८५ ॥
एकीकृतं सर्वमदः प्रमाय पङ्केन तुल्यं नलिनीभवेन ।
संयोज्य पक्षं कलशे निधाय लोहे दृढे पद्मनि सापिधाने ॥ ४८६ ॥
एतेन तैलं विपचेद्विमृश्य रसेन भृङ्गत्रिफलाभवेन ।
आसन्नपाके च परीक्षणार्थं पक्षं बलाकाभवमाक्षिपेच्च ॥ ४८७ ॥
भवेद्यदा तद्भ्रमराङ्गनीलं तदा विपक्वं विनिधाय पात्रे ।
कृष्णायसे माससवस्थित तदभ्यङ्गयोगात्पलितानि हन्यात् ॥ ४८८ ॥

पलित रोग में नीलाद्य तैल—नीलीवृक्ष का पत्र, भृङ्गराज, अर्जुन की छाल, पिण्डीतक (मदनफल), मरिच, लौहभस्म, विजयसार, सहचर (कटसरैया) का फूल, हर्रे, बहेड़ा, आंवला—इन द्रव्यों को चौगुने जल में पका कर, चतुर्थांश शेष रस, नीलिनी (नीलवृक्ष) का कल्क सभी द्रव्यों को एकत्र कर लोहे के मजबूत पात्र में भरकर कमल के पत्ते से ढक कर एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक रक्खे। इसके बाद पूर्वोक्त कल्क-मिश्रित रस तथा (तैल के बराबर) भृङ्गराज-स्वरस एवं त्रिफला के क्वाथ के साथ विचार कर (धीरे २ मंद आंच से) तैल सिद्ध करे। पाक नजदीक होने पर परीक्षा के लिये बकुला का पांख छोड़ दे। जब पांख भ्रमर के अंग के समान हो जाय तब परिपक्व तैल जाने और उसको छान कर काले लोहे के पात्र में एक मास तक रक्खे। यह तैल लेप करने से पलित (असमय मे बाल का पकना) रोग को नाश करता है। (इस योग में तैल के चौगुना क्वाथ, चौथाई कल्क द्रव्य तथा—समभाग—स्वरस लेना चाहिए) ॥ ४८५–४८८ ॥

ऊरुस्तम्भे द्विपञ्चमूल्याद्यं तैलम्—

त्रिफला पञ्चमूल्यौ द्वे चित्रको देवदारु च ।
एकाष्ठीला त्वपामार्गः श्रेयसी वायसी सुधा ॥ ४८९ ॥
काला भार्गी पृथक्पर्णी सुवहा मदयन्तिका ।
विशल्योशीरकाश्मर्यहिंस्रादार्व्यस्तथाऽम्लिका ॥ ४९० ॥
चिरबिल्वो विशोकश्च बला चांशुमती तथा ।
पयस्या पीलुपर्णी च सगुडूची शतावरी ॥ ४९१ ॥
एषां पञ्चपलान् भागान् जलद्रोणेषु सप्तसु ।
अष्टभागावशेषेण पचेत्तैलं शनैः शनैः ॥ ४९२ ॥
कुष्ठं च शतपुष्पा च चित्रकस्त्र्यूषणं वचा ।
देवदार्वगुरु श्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४९३ ॥

अश्वगन्धा स्थिरा पाठा मूर्वा श्योनाकमेव च।
पिप्पली शृङ्गवेरं च दन्ती हिङ्ग्वम्लवेतसौ ॥ ४९४ ॥
भिषग्गेषां तु गर्भेण कषायेण च साधयेत्।
सिद्धं शीतं च पूतं च क्षौद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४९५ ॥
दद्यात्तदस्य पानार्थं तदेवाभ्यञ्जने भवेत्।
ऊरुस्तम्भश्चिरोत्पन्नस्तैलेनानेन शाम्यति ॥ ४९६ ॥
श्लीपदं चाढ्यवातं च खुडवातांश्च नाशयेत्।

ऊरुस्तम्भ में द्विपञ्चमूलाद्य तैल—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), दोनों पंचमूल (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलू, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, रेगनी, गोखरू), चित्रक, देवदारु, एकाष्ठीला (पाठा), अपामार्ग, गजपीपर, वायसी (मकोय), सेहुंड, काला (काला निशोथ), भांगरा, पृथक्पर्णी (पृश्निपर्णी), सुवहा (निर्गुण्डी), मेंहदी, विशल्या (कलिहारी), खस, गम्भारी, हिंस्रा ('अगर' या हैंस), दारुहल्दी, इमली, चिरविल्व (चिलविल "पूतिकरंज"), अशोक, वरियार, शालपर्णी क्षीरकाकोली, मूर्वा, गुडूची, शतावरी—इन द्रव्यों को पांच २ पल लेकर जल सात द्रोण में पकावे। अष्टमांश शेष क्वाथ के साथ तैल (एक आढ़क) तथा कल्कार्थ—कूठ, सौंफ, चित्रक, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, देवदारु, अगर, त्रिफला, विडंग, मोथा, अश्वगन्धा, शालपर्णी, पाठा, मूर्वा, अरलू, पीपर, सोंठ, दन्तीमूल, हिंगु, अम्लवेत—इन द्रव्यों को (तैल के चतुर्थांश) कल्क मिलाकर धीरे २ मन्द आंच से पकावे, और सिद्ध होने पर छान कर तथा ठण्डा कर मधु (तैल के चतुर्थांश) मिला दे और स्वच्छ वर्तन में रख दे। इस तैल को पान के लिये तथा इसी को लेप के लिये भी प्रयोग करे। इस तैल से पुराना ऊरुस्तम्भ (दोनों ऊरुवों का घात "आढयवात") शान्त होता है और यह तैल श्लीपद (पीलपांव), आढ्यवात (अधःशाखाघात) तथा खुडवात (वातरक्त) को नाश करता है। (इस योग में क्वाथ का परिमाण दिया है किन्तु तैल, कल्क तथा मधु का मान नहीं दिया है। अतः क्वाथ के आधार पर बुद्धिमान वैद्य परिमाण की कल्पना कर ले) ॥४८९–४९६॥

अर्शांसि दन्त्याद्यं तैलम्—

दन्तीकाशीससिन्धूत्थकरवीरानलैः पचेत् ॥ ४९७ ॥
तैलमर्कपयोन्मिश्रमभ्यङ्गात्पायुकीलजित्।

अर्शरोग में दन्त्याद्य तैल—दन्तीमूल, कासीस, सेन्धानमक, कनेर, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों का कल्क के साथ तैल, मदार का दूध मिलाकर पकावे। यह तैल लेप करने से अर्श के कीलों (अर्शांकुरों) को

नाश करता है। (इस योग में तैल के चौथाई कल्क तथा चौगुना दूध लेना चाहिए)॥

क्रिमिरोगे महावीर्यतैलम्—

शशमार्जारयोर्बभ्रोः कपेर्वृषवराहयोः ॥ ४९८ ॥
मांसानां द्वे तुले सम्यक् पचेद् द्रोणेषु सप्तसु।
अष्टभागावशेषेण तेन तैलाढकं पचेत् ॥ ४९९ ॥
भासवायसकाकानां गृध्रस्याखोः शुकस्य च।
कलविङ्ककुलिङ्गानां कुक्कुटस्य च वै वसाम् ॥ ५०० ॥
मज्जानं दापयेदेषां पित्तान्यपि च लाभतः।
अपामार्गफल भार्गी बीजं शैरीषमेव च ॥ ५०१ ॥
फणिज्झकं विडङ्गानि शिग्रुकस्य त्वचस्तथा।
त्र्यूषणं हिङ्गुनिर्यासो वचा कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ५०२ ॥
हस्तिपर्ण्योः शिरीषस्य ककुभस्यासनस्य च।
पलाशस्यारिमेदस्य मूलं बीज च संहरेत् ॥ ५०३ ॥
पिचुमन्दस्य निर्यासः शल्लक्या गुग्गुलोस्तथा।
हिङ्ग्वम्लवेतसौ चापि तथा ग्राह्या निदिग्धिका ॥ ५०४ ॥
तुल्यान्येतानि गर्भाणि तैलं कर्णप्रपूरणम्।
नावनं चावगाहश्च शीर्षक्रिमिविनाशनम् ॥ ५०५ ॥
तैलस्यास्य प्रणीतस्य गन्धेन क्रमयः स्थिराः।
नश्यन्ति न विवर्धन्ते बलात्सुबहवोऽपि वा ॥ ५०६ ॥
युक्त्याऽस्मिन् क्रमयस्तैले नस्ये तु प्रतिपादिते।
तालु भित्वाऽऽशु मूर्ध्नस्तु प्रद्रवन्त्युपपीडिताः ॥ ५०७ ॥
सर्वक्रिमिहरं ह्येतत्तैल शिरसि देहिनाम्।
बलाबलं विचार्यैव नस्ये तदवचारयेत् ॥ ५०८ ॥
क्रिमिभिर्भक्ष्यमाणानां नराणामेतदुत्तमम्।
तैलमेतन्महावीर्य सर्वक्रिमिविनाशनम् ॥ ५०९ ॥

क्रमिरोग में महावीर्य तैल—शश (खरगोश), मार्जार (बिलार), बभ्रु (नकुल), कपि, (बन्दर), वृष (बैल), वराह (सुअर)—इन जन्तुओं का स्वच्छ एवं परिपुष्ट मांस दो तुला, सात द्रोण जल में पकावे और अष्टमांश क्वाथ के साथ तैल एक आढक पकावे और उसमें भास (शकुन्त गृध्र), वायस (काकभेद), काक (कौआ), गीध, मूस, शुक, कल (शकुन्तल-मत्स्य), विङ्क (भुजैटा पक्षिविशेष), कुलिंग (चटक, गौरैया) तथा कुक्कुट (मुर्गा) के वसा तथा मज्जा एवं प्राप्त होने पर पित्त भी मिला दे। कल्कार्थ—

अपामार्ग का फल, भांगरा, सिरिष का बीज, फणिज्झक (मरुआ), विडंग, सहिजन की छाल, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), हिंगुनिर्यास (चिरायता), वच, कूठ, चन्दन, हस्तिपर्णी (कर्कटीभेद), सिरीष, अर्जुन, विजयसार, पलास तथा इरिमेद का मूल एवं बीज, नीम का गोंद, निर्गुण्डी का गोंद, गुग्गुल का गोंद, हिंगु, अम्लवेत, भटकटैया—समभाग—इन द्रव्यों का (तैल के चौथाई) कल्क छोड कर तैल सिद्ध करे। यह तैल कान मे डालने से, नावन करने से तथा अवगाहन करने से शिर के कृमियों का नाश करने वाला है। इस सिद्ध तैल के गन्ध से स्थायी कृमि नष्ट हो जाते है और अधिक होने पर भी एकाएक नहीं बढ़ते है। युक्तिपूर्वक इस तैल के नस्य देने पर मूर्द्धा के कृमि व्याकुल "उत्पीड़ित" होकर तालु को छेद कर गिर जाते हैं। मनुष्यों के शिर पर यह तैल लगाने से सभी प्रकार के कृमियों को दूर करता है। इस तैल को बलाबल देख कर ही नस्य कर्म मे प्रयोग करना चाहिए। यह तैल कृमियों से काटे जाते हुए मनुष्यों के लिये उत्तम है। यह महावीर्य नामक तैल सभी प्रकार के कृमियों को नाश करने वाला है॥ ४९८-५०९॥

अन्त्रवृद्धौ गन्धर्वतैलम्—

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठीयवाढकम्।
जलद्रोणेऽथ दुग्धेन पचेदष्टगुणेन तु॥ ५१०॥
प्रस्थमेरण्डतैलस्य सप्तला द्विपला तथा।
द्विपलं शृङ्गवेरस्य गर्भं दत्त्वा शनैः पचेत्॥ ५११॥
पिबेत्तन्नियतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् भवेत्।
अन्त्रवृद्धिं निहन्त्याशु तैलं गन्धर्वसंज्ञितम्॥ ५१२॥

अन्त्रवृद्धि में गन्धर्व तैल—एरण्ड का मूल एक सौ पल, सोंठ तथा यव एक आढ़क एक द्रोण जल में पकावे, अष्टमांश शेष क्वाथ तथा तैल के अठगुना दूध के साथ रेडी का तैल एक प्रस्थ और सातला दो पल, सोंठ दो पल—इन दोनों के कल्क को मिलाकर धीरे २ पकावे। इस तैल को वमन-विरेचनादि से शुद्ध मनुष्य नियमपूर्वक पान करे और दूध-भात खाय। यह गन्धर्व नामक तैल अन्त्रवृद्धि को शीघ्र ही नाश करता है॥

कर्णरोगे कुष्ठाद्यं तैलम्—

कुष्ठं मरिचलाङ्गल्यौ शुण्ठी मागधिका घनम्।
सरसाञ्जनकासीसं जातीसैन्धवगुग्गुलु॥ ५१३॥
तालं शिला च निर्गुण्डी बिल्वं भल्लातकं तथा।
कार्षिकैर्देवदारुत्थतैलस्य द्विपलेन च॥ ५१४॥

कुडवं तिलतैलस्य पचेन्मूत्रे चतुर्गुणे।
तत्कर्णपूरणात्क्षिप्रं पूयस्रावनिवारणम् ॥ ५१५ ॥
कृमिघ्नं दुष्टनाडीघ्नं व्रणानां चैव रोपणम्।

कर्ण रोग में कुष्ठाद्य तैल—कूठ, मरिच, कलिहारी, सोंठ, पीपर, मोथा, रसाञ्जन, कासीस, लाक्षा, सेन्धालमक, गुग्गुलु, हरताल, मनःशिला, निर्गुण्डी, वेल, भल्लातक—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ देवदारु का तैल दो पल, तिल का तैल एक कुडव (चार पल), तैल के चौगुना गोमूत्र में पकावे, इस सिद्ध तैल को कान मे छोड़ने से शीघ्र ही कर्ण स्राव को निवारण करता है, और कृमियों को तथा दुष्ट नाड़ी (नासूर) को नाश करने वाला है एवं व्रणों को रोपण करने वाला है ॥

शिरोरोगे महानीलं तैलम्—

आदित्यवल्लिमूलानि कृष्णसैरेयकस्य च ॥ ५१६ ॥
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णसणस्य च।
मार्कवः काकमाची च मधुकं देवदारु च ॥ ५१७ ॥
पृथग् दशपलांशानि पिप्पली त्रिफलाऽञ्जनम्।
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा रोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ॥ ५१८ ॥
आम्रास्थि कर्दमः कृष्णो मृणालं रक्तचन्दनम्।
नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ॥ ५१९ ॥
सोमराज्यसनात्पुष्पं कृष्णपिण्डितचित्रकौ।
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योः श्यामा जम्बूफलानि च ॥ ५२० ॥
पृथक् पञ्चपलांशानि तैः पिष्टैराढकं पचेत्।
विभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ॥ ५२१ ॥
कुर्यादादित्यपाकं च यावच्छुष्को भवेद्रसः।
लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमथ योजयेत् ॥ ५२२ ॥

शिरोरोग में महानील तैल—मदार की जड, काले कटसरैया की जड, तुलसी का पत्र, काले सन का बीज, भृङ्गराज, मकोय, मुलेठी, देवदारु, अलग २ दशपल, पीपर, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), रसाञ्जन, प्रपौण्डरीक, मंजीठ, लोध, अगर, नीलकमल, आम की गुठली, कांदो, मरिच, कमल का नाल, रक्त चन्दन, नील, शु० भल्लात की गुठली, कसीस, मेंहदी, सोमराजी (वाकुची), विजयसार का फूल, कृष्ण पिण्डित (काला मदनफल), चित्रक, अर्जुन का पुष्प, काला निशोथ, जामुन का फल—अलग २ पांच पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ बहेड़े का तैल एक आढक, आंवला का रस चौगुना में मिलाकर तीव्र सूर्य के धूप से (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु में) तब तक पकावे, जब तक रस

सूख न जाय। रस सूख जाने पर सिद्ध तैल को छानकर स्वच्छ बर्तन में रख ले और शिरोरोग में प्रयोग करे ॥ ५१६–५२२ ॥

कुष्ठे गुञ्जामूलाद्यं तैलम्—

त्रिफलागुञ्जिकामूलत्रिशूलीपुरतालकैः।
पुत्रञ्जीवास्थिसिन्दूरमधूच्छिष्टनिशायुगैः ॥ ५२३ ॥
पर्शुच्छिन्नविषज्वालामुखीकन्दवचायुतैः।
पृथक्पलार्धकैः पिष्टैस्तैलमर्धाढकं कटु ॥ ५२४ ॥
समालोड्य पचेत्सम्यग्गवां मूत्रे चतुर्गुणे।
विपाच्य मतिमान् वैद्यः सर्वकुष्ठव्रणापहम् ॥ ५२५ ॥
तैलं कुष्ठहरं वर्ण्यं फणिकीटविषापहम्।
कण्डूविचर्चिकासिध्मवातासृक्शासनं परम् ॥ ५२६ ॥

कुष्ठ रोग में गुञ्जामूलाद्य तैल—त्रिफला, गुञ्जा का मूल, त्रिशूली (त्रिधारा—सेहुंड), गुग्गुलु, हरताल, पुत्रञ्जीव (पुत्रजीव वृक्ष) "कोलापुर में प्रसिद्ध" की गुठली, सिन्दूर, मोम, आमाहल्दी, दारुहल्दी, पर्शुच्छिन्न (गुडूची), विष (वत्सनाभ), ज्वालामुखीकन्द (मिरिचियाकन्द), वच—अलग २ आधा २ पल—इन द्रव्यों के कल्क के साथ, सरसों का तैल आधा आढक (दो प्रस्थ), चौगुना (आठ प्रस्थ) गाय के मूत्र मे मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य पकावे। यह सिद्ध तैल, सभी प्रकार के कुष्ठ व्रण को दूर करने वाला है। यह तैल कुष्ठनाशक, कान्तिप्रद, साँप तथा कीट के विष को दूर करने वाला है और कण्डू, पीड़ायुक्त खुजली (कुष्ठभेद), सिध्म (सिहुआ) तथा वातरक्त को अच्छी तरह नाश करता है ॥ ५२३–५२६ ॥

मञ्जिष्ठाद्यं तैलम्—

मञ्जिष्ठा पद्मकं कुष्ठं चन्दनं गैरिकं बला।
हरिद्रे द्वे प्रियङ्गुश्च नागं यष्टी सवाकुची ॥ ५२७ ॥
दारु प्रपौण्डरीकं च पिष्ट्वाऽर्धपलिकानि तु।
तैलप्रस्थं गवा क्षीरं दत्त्वा क्वाथं तथाऽसनात् ॥ ५२८ ॥
भृङ्गद्रवं चतुष्प्रस्थं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ ५२९ ॥
केशशाते शिरोदुःखे मन्यास्तम्भे हनुग्रहे।
दन्तकर्णाक्षिशूले च नस्येऽभ्यङ्गे च योजयेत् ॥ ५३० ॥
आकुञ्चिताग्रान् सुस्निग्धान् केशान् संजनयेद् बहून्।
पलिते चेन्द्रलुप्ते च तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ ५३१ ॥
मञ्जिष्ठाद्यमिदं नाम्ना शिरोरोगनिवारणम्।

मंजिष्ठाद्य तैल—मंजीठ, पद्मकाठ, कूठ, चन्दन, गेरू, बरियार, आमाहल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, नागकेशर, मुलेठी, बाकुची, देवदारु, प्रपौण्डरीक—आधा २ पल—इन द्रव्यों का कल्क बनाकर, तैल एक प्रस्थ, तैल के बराबर गाय का दूध, विजयसार का क्वाथ तथा भृङ्गराज का स्वरस चार प्रस्थ—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर धीरे २ मन्द आँच से पकावे। सिद्ध इस तैल का वीर्य (बल) इसके बाद कहते है। इस तैल को बाल के कमजोर होने पर, सिर का दर्द, मन्या नाडी का अकडन, जबड़ों का अकडन, दन्तशूल, अक्षिशूल तथा कान के दर्द मे नस्य कर्म एवं अभ्यंग का प्रयोग करना चाहिए। यह तैल अग्रभाग टूटे हुए बालों को स्निग्ध करता है तथा अधिक बाल उत्पन्न करता है। बालों के गिरने तथा बालों के पकने में लाभदायक है अर्थात् बालों को पकने से बचाता है और झरने से रोकता है। मञ्जिष्ठाद्य नामक यह तैल सिर के रोगों को दूर करता है ॥

कुष्ठे सिद्धार्थकतैलम्—

करवीरवचातुम्बरुरसाञ्जनकरञ्जभृङ्गलाक्षाभिः ॥ ५३२ ॥
सारुष्करसिद्धार्थकमूलबीजाग्निगण्डीरैः।
रजनीद्वयमञ्जिष्ठारग्वधविडङ्गमाक्षीकैः ॥ ५३३ ॥
सैन्धवकटुकालाबुपिचुमर्दास्फोटमालतीभिश्च।
सर्षपतैलं कारञ्जं वा गवां मूत्रेण वै सिद्धम् ॥ ५३४ ॥
द्विगुणेन साधितमचिरादभ्यङ्गाद्धन्ति कुष्ठानि।
अष्टादशापि सिद्धं तैलं सिद्धार्थकं नाम ॥ ५३५ ॥

इति श्रीवैद्यवरसोढलग्रथिते गदनिग्रहे द्वितीयस्तैलाधिकारः।

कुष्ठ रोग में सिद्धार्थक तैल—कनेर, वच, तुम्बरु, रसाञ्जन, करञ्ज, भृङ्गराज, शु० भल्लातक, सरसो, मूली का बीज, चित्रक, गण्डीरी दूर्वा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, अमलतास, विडंग, स्वर्णमाक्षिक, सेन्धानमक, कडवी लौकी (तुम्बी), नीम, मदार, मालती—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क के साथ सरसों का तैल या करज का तेल दुगुने गाय के मूत्र मे सिद्ध करे। यह सिद्ध तैल लेप करने से शीघ्र ही कुष्ठ रोगों को नाश करता है। यह अट्ठारह द्रव्यों से सिद्ध सिद्धार्थक नामक तैल है। (इस योग मे कल्क तथा तैल का परिमाण नहीं दिया गया है अतः कल्क द्रव्य तैल के चौथाई लेना चाहिए)॥५३२-५३५॥

इति श्री वैद्यवर शोढल के बनाये हुए गदनिग्रह नामक
ग्रन्थ में द्वितीय तैलाधिकार समाप्त ॥

अथातस्तृतीयश्चूर्णाधिकारः ।

गुल्मे हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्—

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हपुषामभयां शटीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ १ ॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्नपानेष्वनत्ययम् ।
प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ३ ॥
पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च गुदयोनिरुजासु च ॥ ४ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ ।
उरोविबन्धहिक्कासु श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ५ ॥
भावित मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
बहुशो गुटिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ ६ ॥

अब तैलाधिकार के बाद तृतीय चूर्णाधिकार है ।

गुल्मरोग में हिंग्वाद्य चूर्ण—हिंगु, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), पाढ़ी, हाऊबेर, हर्रे, कपूरकचरी, अजमोदा, अजवायन, तिन्तिडीक (वृक्षाम्ल), अम्लवेंत, अनार, पुष्करमूल, धनिया, स्याहजीरा, चित्रक, बालवच, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धानमक, सोवर्चल नमक, तथा चव्य—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और कपडा से छान कर शीशी में भर दे तथा कार्क बन्द कर रख दे । हिंगु घृत मे भून कर महीन बना अलग से मिलावे । इस चूर्ण को निरन्तर, अन्नपान में प्रयोग करना चाहिए । भोजन के पहले या बाद मे मद्य या गरम जल से पार्श्वशूल, हृदयशूल, वस्तिशूल, वातकफात्मक गुल्म रोग, आनाह (पेट का फूलना), मूत्रकृच्छ्र, गुदपीडा, योनिपीडा, ग्रहणी-विकार, अर्शविकार, प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोग, अरुचि, उरोरोग, मलावरोध, हिक्का, श्वास, कास तथा गलग्रह में पान करना चाहिए । इस चूर्ण को बिजौरा नींबू के रस से भावित कर बहुत गुटिका बनाये । यह गुटिका चूर्ण से भी अधिक कार्मुक (लाभप्रद) है ॥ १-६ ॥

विमर्श:—अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।
तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥

अत्यन्त शुष्क द्रव्य को पीसकर वस्त्र से छान कर जो तैयार किया जाता है उसको 'चूर्ण' कहते हैं, उसको 'क्षोद' तथा 'रज' भी कहते हैं । इसकी

सामान्य मात्रा एक कर्ष (एक तोला) की होती है। अग्नि तथा बल के अनुसार मात्रा की कल्पना बुद्धिमान चिकित्सक करे॥

चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्।
चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद् भवेत्॥

चूर्ण में गुड़ समभाग तथा शक्कर दुगुना मिलाना चाहिए। हिंगु घृत में भून कर मिलाने से उत्क्लेदकारक नहीं होता है।

लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः।
पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥

चूर्ण को सभी द्रव द्रव्यों के साथ सेवन करना चाहिए। घृत के साथ सेवन करना हो तो चूर्ण से दुगुना घृत लेना चाहिए। और द्रव के साथ पान करना हो तो चौगुने द्रव में मिलाकर पान करे।

चूर्ण बनाने की परम्परा दो प्रकार की प्रचलित है। एक अथवा अनेक वनौषधियों को मिला कूटकर तैयार किया जाता है, और छान कर रख लिया जाता है।

दूसरी विधि में प्रत्येक वनौषधि को अलग २ कूट छान कर शास्त्रोक्त मात्रा के अनुसार तौल कर मिलाते हैं। इस विधि से सभी द्रव्यों का परिमाण उचित मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। मुनक्का, अनार, इमली आदि औषधियों को मिलाना हो तो पृथक् कूट कर मिलाना चाहिए। चूर्ण सौम्य होने से अधिक मात्रा में विशेष कर प्रयोग होता है अतः चूर्ण महीन होना आवश्यक है।

चूर्ण बनाने के लिये औषधियां शुद्ध नयी एवं अच्छी तरह देख कर लेनी चाहिए। पुरानी और दूषित औषधियां त्याग दे। अपक्व, मकड़ी का जाल जिस पर लगा हो, जिसे कीटाणुओं ने दूषित की हो, अशुद्ध स्थान में उत्पन्न हुई हो और असमय में उत्पन्न हुई हो ऐसी औषधियों को नहीं लेना चाहिए। चिकित्सकों को चाहिए कि औषधियों को अच्छी तरह पहचान कर स्वयं निर्णय कर ग्रहण करे अन्यथा औषधियों के शुद्ध उपलब्ध न होने पर गुण में न्यूनता की आशंका रहती है।

बहुत प्रयोगों में—जमीरीनीबू, अद्रक आदि द्रव्यों के रस से भावना देने को कहा गया है वहां स्वरस उपलब्ध होने पर स्वरस से भावना दे अन्यथा क्वाथ बनाकर भावना दे।

भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्।
अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना॥

जिस द्रव्य को भावित करना हो उसके समभाग क्वाथ्य द्रव्य लेकर अठगुना जल में क्वाथ करे और अष्टमांश शेष क्वाथ से भावना दे।

भावनाविधिः—

द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्।
भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥
दिवा दिवाऽऽतपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत्।
शुष्के चूर्णीकृतं द्रव्यं यथोक्तं भावनाविधि.॥

जितने द्रव द्रव्य से चूर्ण अच्छी तरह गीला हो जाय उतना द्रवद्रव्य ग्रहण करे। प्रतिदिन दिन में भावना देकर धूप में सुखाना चाहिए और रात्रि में भावना देकर रख देना चाहिए पुनः सुखाकर चूर्ण कर लेना चाहिए यही चूर्णो की भावना-विधि है॥

भावना का विधान एक बार, दो बार या तीन बार जहां कहा गया हो वहां निर्देशानुसार भावना देनी चाहिए जहाँ निर्देश न किया गया हो वहां सात बार भावना दे।

चूर्ण को आवश्यक परिमाण में तैयार कर कांच की अच्छी डाटवाली शीशियों में भर कर रखना चाहिए। खुले रहने पर चूर्ण खराब एवं गुणहीन हो जाता है। क्षार-मिश्रित चूर्णों को लोहपात्र में नही रखना चाहिये क्योंकि दूषित हो जाते हैं।

क्षार अस्थियों के पोषणार्थ हितावह माना गया है किन्तु धमनियों के दीवालों को हानि पहुँचाता है। क्षार में साधारणतः पाचक, तीक्ष्ण, पित्तवर्द्धक, शुक्रनाशक गुण है। अतः पचनक्रिया मे हितावह होने पर क्षारयुक्त औषधि क्षय, प्रमेह, नेत्र रोग और पित्ताधिक रोग में, सगर्भा स्त्रियों, बालक और वृद्धों को तथा उष्ण ऋतु में सभी रोगियों के लिये विचार करके प्रयोग करना चाहिए। दुरुपयोग होने पर दन्तशूल, आमाशयिक दाह, धातुक्षीणता, मस्तिष्क में उष्णता, सधिस्थानों में पीडा आदि उत्पन्न होकर शरीर निस्तेज बन जाता है।

जिन चूर्णो मे विष, अफीम आदि मिलाये जाते हैं वे चूर्ण उग्र होते हैं। चूर्ण मे मिलाने के पहले इन द्रव्यों को शुद्ध कर लेना चाहिए। यह शीघ्र ही लाभप्रद होता है किन्तु जीवनीय शक्ति को क्षीणकर दुर्बल बनाता है अथवा उत्तेजना के पश्चात् अवसादक असर पहुँचाता है। चूर्ण बनाने का सामान्य नियम प्रत्येक योग में समझना चाहिए क्योंकि सामान्य विधि का प्रत्येक योग में निरूपण नहीं किया जा सकता है।

शूले द्वितीयं हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्—

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यदीप्यकवचाचव्याग्निपाठाः शटी
वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ।
पथ्यापुष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं
चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरस्य च ॥ ७ ॥
आध्मानग्रहणीविकारगुदजान् गुल्मानुदावर्तकान्
प्रत्याध्मानगरोदराश्मरिरुजस्तूनीद्वयारोचकान् ।
ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां
प्रत्यष्ठीलिकया सहापहरति प्राक्पीतमुष्णाम्बुना ॥ ८ ॥
रुक्कुक्षिवङ्क्षणकटीजठरान्तरेषु
बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ।
शूलानि नाशयति वातबलासजानि
हिङ्ग्वाद्यमुक्तमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥ ९ ॥

शूल रोग में द्वितीय हिंग्वाद्य चूर्ण—हिंगु, पिपरामूल, धनिया, अजमोदा, वच, चव्य, चित्रकमूल, पाढी, कपूरकचरी, वृक्षाम्ल, सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विड़नमक, सोंठ, पीपर, मरिच, सज्जीखार, यवक्षार, अनार, हर्रे, पुष्करमूल, अम्लवेत, हाऊबेर, स्याहजीरा—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर अद्रक का रस तथा विजौरा नीबू के रस में भावित कर शुष्क होने पर पुनः चूर्ण बना ले। यह चूर्ण भोजन के पहले गरम जल से पान करने पर, आध्मान, (आंत में वात का संचय होने पर पक्वाशय का फूल जाना), ग्रहणी दोष, अर्शरोग, गुल्मरोग, उदावर्तक (आमाशय या अन्त्रस्थ आनाह), प्रत्याध्मान (कफावृत वातजन्य आध्मान" पक्वाशय का फूलना), गरोदर (संयोगज विषजन्य उदररोग), पथरी रोग, तूनीद्वय (पक्वाशय या मूत्राशय या दोनों के नीचे गुदा या उपस्थ में शूल का होना "वृक्क शूल के तरह"), अरोचक, ऊरुस्तम्भ (दोनों ऊरुवों का वात), मतिभ्रम, मनोभ्रम, बहरापन, अष्ठीलिका (शूक दोष) तथा प्रत्यष्ठीलिका (अधोवायु, मलमूत्र को रोकने वाली पेट में तिरछीवायु, का उठना "वाताष्ठीला") को दूर करता है। आश्विन-संहिता में कहा हुआ यह हिङ्ग्वाद्य चूर्ण—पेट, वंक्षण, कमर, पेट के अन्दर, वस्ति, स्तन, अंसफलक (कन्धा) तथा दोनों पार्श्वों के वात-कफजन्य शूल को नाश करता है॥ ७–९ ॥

गुल्मे शार्दूलं चूर्णम्—

हिगूग्राबिडशुण्ठ्यजाजिविजयावाटयाभिधानामयै-
श्चूर्णं कुम्भनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः ।

पीतं कोष्णजलेन कोष्ठकरुजागुल्मोदरादीनयं
शार्दूलं प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन्मृगौघानिव ॥ १० ॥

गुल्म रोग में शार्दूल चूर्ण—हिंगु, वच, विडनमक, सोंठ, स्याहजीरा, शु० भाग, बला, कूठ, कुम्भ (निशोथ), निकुम्भ (दन्तीमूल) उत्तरोत्तर भाग वर्द्धित (हिंगु एक भाग, वच दो भाग, विडनमक तीन भाग—इस प्रकार एक २ भाग वृद्धिक्रम-परिमाण मे ग्रहण करे) परिमाण में इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण करे। यह शार्दूल नामक चूर्ण गरम जल से पीने पर कोष्ठक-रुजा (पेट के रोग), गुल्म रोग तथा उदर रोग आदि रोगसमूह को हठ-पूर्वक मथन कर दूर करता है। जैसे शार्दूल (बाघ) मृग के समूह को नाश करता है ॥ १० ॥

गुल्मे नाराचकं चूर्णम्—

सिन्धूत्थपथ्याकणदीप्यकानां चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः।
प्रयाति नाशं कफवातजन्मा नाराचनिर्भिन्न इवामयौघः ॥ ११ ॥

गुल्म रोग में नाराचक चूर्ण—सेन्धानमक, हर्रे, पीपर, अजवायन—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को गरम जल से पान करने वाले पुरुषों के कफ-वातजन्य रोगसमूह नष्ट हो जाते हैं। जैसे नाराच-भिन्न ओघ नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

गुल्मे पूतीकाद्यं चूर्णम्—

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि-
व्योषं च सस्तरचितं लवणोपधानम्।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ १२ ॥

गुल्म रोग में पूतीकाद्य चूर्ण—पूतीकरञ्ज, तालीसपत्र, गजपीपर, चिर्भट (बड़ी ककड़ी का बीज), चव्य, चित्रकमूल, सोंठ, पीपर, मरिच—समभाग—इन द्रव्यों को तहकर, सेन्धानमक को बीच में रक्खे, और जलाकर चूर्ण कर ले। इस चूर्ण को गुल्मरोग, उदररोग, शोथ, पाण्डुरोग तथा गुदा के अर्श रोगों में प्रयोग करे ॥ १२ ॥

गुल्मे हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्—

हिङ्गुत्रिगुणं सैन्धवमस्मात्त्रिगुणं च तैलमैरण्डम्।
तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥ १३ ॥

गुल्म रोग में हिग्वाद्य चूर्ण—हिंगु एक भाग, सेन्धानमक तीन भाग, रेंडी का तैल नवभाग, और तैल के तीन गुना लहसुन का रस मिलाकर एकत्र कर प्रयोग करे। यह गुल्म, उदावर्त तथा शूल को नाश करने वाला है ॥१३॥

श्वासे विजयं चूर्णम्—

त्रिकत्रयं वचा हिंगुः पाठा क्षारो निशाद्वयम् ।
चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ १४ ॥
ग्रन्थिबिल्वाजमोदं च गणोऽष्टाविंशको मतः ।
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १५ ॥
एरण्डतैलसंयुक्तं सद्यो लिह्यात्ततो नरः ।
बिडालपदकं चापि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १६ ॥
श्वासं हन्यात्तथा शोफमर्शांसि च भगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च बस्तिशूलमरोचकम् ॥ १७ ॥
प्लीहकासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगिताम् ।
आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥ १८ ॥
हन्याच्च ग्रहणीरोगान् ये मया परिकीर्तिताः ।
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ १९ ॥
अप्रजाना च नारीणां प्रजावर्धनमेव च ।
विजयो नाम चूर्णोऽयं सर्वव्याधिहरः परः ॥ २० ॥

श्वास रोग में विजय चूर्ण—त्रिकत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच), हर्रे, आँवला, बहेड़ा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र), वच, हिंगु, पाढ़ी, यवक्षार, आमाहल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रयव, चित्रकमूल, सोया, सेन्धा-सौवर्चल-विड-सांभर-सामुद्रनमक, पिपरामूल, बेल का गूदा, अजमोदा और विजया, यह अष्टाविंशतिक गण है। समभाग इन द्रव्यों को महीन चूर्ण करे। इस चूर्ण को रेंडी के तैल के साथ चाटे या एक कर्ष की मात्रा में गरम जल से पान करे। यह विजय नामक चूर्ण—श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदय-शूल, पार्श्वशूल, वस्तिशूल, अरोचक, प्लीहावृद्धि, कास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमवात, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि तथा गुदक्रिमि को नाश करता है। महाज्वरजन्य उपद्रवों को तथा भूतों से उपहत चित्तवालों के जो रोग कहे गये हैं उनको तथा ग्रहणी रोगों को भी नाश करता है और बाझ स्त्रियों को भी सन्तान बढ़ाने वाला तथा सभी रोगों को अच्छी तरह नाश करने वाला है ॥ १४–२० ॥

वातरोगे अजमोदाद्यं चूर्णम्—

अजमोदमरिचपिप्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः ।
सैन्धवपिप्पलिमूलं भागा नवानां पलिकाः स्युः ॥ २१ ॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारुकस्यापि ।
अभया पलानि पञ्च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ २२ ॥
समगुडवटकानदतस्तच्चूर्णं कोष्णवारिणा पिबतः ।

नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुदारुणाः शीघ्रम् ॥ २३ ॥
विश्वाचीप्रतितूनीतूनीरोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ।
कटिपृष्ठगुदस्फुटन स्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥ २४ ॥
श्वयथुः स्तम्भोऽधिसन्धि ये चान्ये चामवातसंभूताः ।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ २५ ॥
क्षुद्बोधमरोगित्वं स्थिरयौवनतां च वलीपलितनाशम् ।
कुरुते च तदभ्यासाद् बहूनन्यानपि गुणांश्चैव ॥ २६ ॥

वात रोग में अजमोदाद्य चूर्ण—अजमोदा, मरिच, पीपर, विडंग, देवदारु, चित्रक, सोया का बीज, सेन्धानमक, पिपरामूल—एक २ पल, सोंठ दशपल, विधारा दशपल, हर्रे पाँच पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को समभाग गुड मिलाकर (वटक बनाने की विधि से गुड़ की चाश्नी बनाकर चूर्ण मिलाकर एक २ कर्ष का-वटक बनावे), वटक बनाकर खाने से या चूर्ण को गरम जल से पान करने से सभी उग्र वातविकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। और विश्वाची (बाहुपृष्ठ से लेकर अंगुलियों के तल के कण्डरावों का अकड़ जाना), प्रतितूनी (ऊपर के तरफ संचरण करने वाला शूल), तूनी (पक्वाशय, आमाशय या उसके नीचे गुदा या उपस्थ में जाने वाला रोग), तीव्र गृध्रसी (लंगड़ी का दर्द), कटि, पीठ तथा गुदा का फटने जैसे पीडा होना तथा हड्डी एवं जंघा में तीव्र फटने जैसी पीडा, शोथ, अधिसंन्धियों का अकडन और अन्य आमवातजन्य रोग ये—सभी रोग नष्ट हो जाते है। जैसे सूर्य के किरण से अन्धकार नष्ट हो जाता है। क्षुद्बोध (भूख लगता है)। तथा रोगरहित करता है, जवानी को स्थिरता प्रदान करता है और वलि (मुख में झरी पडना), पलित (असामयिक बाल का पकना) को नाश करता है तथा निरन्तर सेवन करने से बहुत अन्य गुणों को करता है ॥ २१–२६ ॥

वातरोगे आभाद्यं चूर्णम्—

आभां रास्नां गुडूचीं च शतमूलीं महौषधम् ।
शतपुष्पाऽश्वगन्धे च हपुषां वृद्धदारकम् ॥ २७ ॥
यवानीं चाजमोदां च समभागं तु कारयेत् ।
सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा बिडालपदकं पिबेत् ॥ २८ ॥
मद्यैर्मांसरसैर्यूषैस्तक्रेणोष्णोदकेन वा ।
सर्पिषा वापि लेह्य तु दधिमण्डेन वा पुनः ॥ २९ ॥
अस्थिसन्धिगतं वायुं स्नायुमज्जाश्रितं तथा ।
गृध्रसीं च कटिस्तम्भं मन्यास्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ३० ॥
ये च कोष्ठगता रोगास्तांश्च सर्वान् प्रणाशयेत् ।

आभाद्यं चूर्णमेतत्तु सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३१ ॥

वातरोग में आभाद्य चूर्ण—आभा (ज्योतिष्मती), रास्ना, गुडूची, शतावरी, सोंठ, सौंफ, अश्वगन्धा, हाऊबेर, विधारा, अजवायन, अजमोदा—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे और एक कर्ष की मात्रा में—मद्य, मांसरस, यूष, मट्ठा, या गरमजल से पान करे अथवा, घृत या दधिमण्ड से चाटे। यह आभाद्य चूर्ण, अस्थिगतवात, सन्धिगतवात, स्नायु तथा मज्जागतवात, गृध्रसी (लंगड़ी का दर्द), कमर का जकड़न, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह तथा जितने कोष्ठगत रोग हैं उन सभी रोगों को नाश करता है और भी सभी रोगों को नाश करनेवाला है ॥ २७–३१ ॥

अतिसारे कपित्थाष्टकम्—

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ।
मरिचेन्द्रयवाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ ३२ ॥
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः ।
त्रिगुणैः पट्सितायुक्तैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ ३३ ॥
चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ।
कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाञ्जयेत् ॥ ३४ ॥

अतिसार रोग में कपित्थाष्टक चूर्ण—अजवायन, पिपरामूल, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर), मरिच, इन्द्रयव, स्याहजीरा, धनिया, सौवर्चल नमक—समभाग—वृक्षाम्ल, धातकी (धाय का फूल), मंगरैल, बेल का गूदा, अनार, अजमोदा—तीन २ भाग, शक्कर छः भाग, कैथ का गूदा आठ भाग—इन द्रव्यों को मिला कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण अतिसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्मरोग, गले का रोग, कास, श्वास, मन्दाग्नि, अर्श, पीनस रोग तथा अरोचक को जीत लेता है ॥ ३२–३४ ॥

ग्रहण्यां द्वितीयं कपित्थाष्टकम्—

कपित्थत्रुटिवराङ्गविश्वौषधं धान्यका
चव्याजाजीयवान्यश्च तुल्यांशकाः ।
मरिचदहनदाडिमं धातकी चुक्रिका
बिल्वसौवर्चलं पिप्पलीमूलवृक्षाम्लकम् ॥ ३५ ॥
अपरमपि कपित्थाष्टकं षड्गुणा
पिप्पली सर्वतुल्यांशका शर्करा
ग्रहणिनाशनं वह्निसन्दीपन
कासहृद्रोगगुल्मार्शसां नाशनम् ॥ ३६ ॥

ग्रहणी रोग में द्वितीय कपित्थाष्टक चूर्ण—कैथ का गूदा, इलायची,

दालचीनी, सोंठ, धनिया, चव्य, स्याहजीरा, अजवायन—समभाग—मरिच, चित्रकमूल, अनार का दाना, धाय का फूल, इमली, वेल का गूदा, सौवर्चल नमक, पिपरामूल, वृक्षाम्ल—समभाग, कैथ का गूदा आठ भाग, पीपर छः भाग—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण बनाये और सभी चूर्ण के बराबर शक्कर मिला दे। यह चूर्ण ग्रहणीदोषनाशक, उदराग्निसंदीपक तथा कास, हृदय रोग, गुल्मरोग एवं अर्शरोगों को नाश करने वाला है ॥ ३५-३६ ॥

ग्रहण्यां दाडिमाष्टकम्—

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ।
यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम् ॥ ३७ ॥
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
कपित्थाष्टकवच्चाय गुणः स्याद्दाडिमाष्टकः ॥ ३८ ॥

ग्रहणी रोग में दाडिमाष्टक चूर्ण—तुगाक्षीरी (वंशलोचन), एक कर्ष, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) दो कर्ष, अजवायन, धनिया, स्याहजीरा, पिपरामूल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच)—एक २ पल, अनार का दाना, आठ पल—इन द्रव्यों को चूर्ण बना कर समभाग शर्करा मिलाकर रख ले। यह दाडिमाष्टक चूर्ण गुणों में कपित्थाष्ट के समान है अर्थात् ग्रहणी, अतिसार आदि रोग नाशक, अग्निसंदीपक, कास, हृद्रोग, गुल्मरोग तथा अर्श रोग को नाश करता है ॥ ३७-३८ ॥

अतिसारे द्वितीयं दाडिमाष्टकचूर्णम्—

दाडिमस्य पलान्यष्टौ चातुर्जातं पलद्वयम् ।
अजाजीनां पलार्धं तु पलार्धं धान्यकस्य च ॥ ३९ ॥
पृथक् तु पालिकान् भागांस्त्रिकटोर्ग्रन्थिकस्य च ।
त्वक्क्षीरी बालकं चैव दद्यात्कर्षसमान् भिषक् ॥ ४० ॥
शर्करायाः पलान्यष्टावेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
आमातीसारकासघ्नस्तथा हृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ४१ ॥
हृद्रोगमरुचिं गुल्मं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ।
प्रयुक्तो नाशयत्याशु चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ॥ ४२ ॥

अतिसार रोग में द्वितीय दाडिमाष्टक चूर्ण—अनार आठ पल, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर), दो पल, स्याजीरा आधा पल, धनियां आधा पल, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), अलग २ एक पल, पिपरामूल एक पल, वंशलोचन, सुगन्धवाला एक २ कर्ष लेकर चूर्ण बनावे। और शर्करा आठ पल मिला दे। यह चूर्ण आमातिसार तथा कास को नाश करने वाला है। हृदयशूल, पार्श्वशूल को दूर करने वाला है। यह दाडिमाष्टक

चूर्ण प्रयोग करने से हृदय रोग, अरुचि, गुल्मरोग, ग्रहणी रोग तथा मन्दाग्नि को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ३९–४२ ॥

गलरोगे एलाद्यं चूर्णम्—

एला त्वग्दलनागपुष्पमरिचं स्यात्पिप्पली नागरं
भागैः स्यात्क्रमवर्धितैः किल युतं सर्वैश्च तुल्या सिता ।
एतच्चूर्णमजीर्णगुल्मजठरेऽप्यर्शःसु हृद्रोगिषु
कासश्वासिषु रक्तपित्तिषु हित कोष्ठामयध्वंसनम् ॥ ४३ ॥

गले के रोग में एलाद्य चूर्ण—इलायची एक भाग, दालचीनी दो भाग, तेजपत्र तीन भाग, नागकेशर चार भाग, मरिच पांच भाग, पीपर छः भाग, सोंठ सात भाग—इन द्रव्यों के चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे। यह एलाद्य चूर्ण अजीर्ण, गुल्मरोग, उदररोग, अर्श, हृदयरोग, कास, श्वास तथा रक्तपित्त के रोगियों के लिये हितकर है और कोष्ठ के रोगों को नाश करने वाला है ॥४३॥

अरोचके वृद्धैलाद्यं चूर्णम्—

वृद्धैला पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ।
मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ ४४ ॥
अजमोदाऽजगन्धा च कपित्थं चार्धकार्षिकम् ।
अत्यन्तपरिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुष्पलम् ॥ ४५ ॥
चूर्णं सेव्यमिदं पुम्भिः परमं रुचिवर्धनम् ।
प्लीहकासमथार्शांसि श्वासशूल वमि ज्वरम् ॥ ४६ ॥
निहन्ति दीपयत्यग्नि बलवर्णकरं परम् ।
वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ४७ ॥

अरोचक रोग मे वृद्ध एलाद्य चूर्ण—बडी इलायची, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मरिच, दीप्यक (स्याहजीरा), कोकमवृक्ष, अम्लवेंत, अजमोदा, अजवायन, कैथ आधा २ कर्ष, स्वच्छशर्करा चार पल—इन द्रव्यों का चूर्ण अत्यन्त रुचि को बढानेवाला है, मनुष्यों को सदा इसका सेवन करना चाहिये। यह प्लीहावृद्धि, कास, अर्श, श्वास, शूल, वमन तथा ज्वर को नाश करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है, बल को बढ़ाता और कान्ति को सुन्दर बनाता है। यह वात का अनुलोमन करनेवाला है। हृदय को बल देनेवाला और कण्ठ तथा जिह्वा को शुद्ध करनेवाला है ॥ ४४–४७ ॥

अरोचके कर्पूराद्यं चूर्णम्—

कर्पूरचोचकङ्कोलजातीफलदलाः समाः ।
लवङ्गोषणनागाह्वकृष्णाशुण्ठ्यो विवर्धिताः ॥ ४८ ॥
चूर्णं सितासमं हृद्य रोचनं क्षयकासजित् ।

वैस्वर्यश्वासगुल्मार्शश्छर्दिकण्ठामयापहम् ॥ ४९ ॥
प्रयुक्तं चान्नपाने हि भेषजद्वेषिणां वरम् ।

अरोचक में कर्पूराद्य चूर्ण—कर्पूर, मोटे दल की दालचीनी, कवावचीनी, जायफर, तेजपत्र—समभाग, लवंग एक भाग, मरिच दो भाग, नागकेशर तीन भाग, पीपर चार भाग, सोंठ पांच भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा समभाग शर्करा मिला ले। यह चूर्ण हृदय को बल देनेवाला, रोचक, क्षय तथा कास को जीतनेवाला, स्वरविकृति, श्वास, गुल्म, अर्श, छर्दि तथा कण्ठरोग को नाश करनेवाला है। भोजन से द्वेष करनेवाले (मन्दाग्नि) रोगियों के लिये अन्न-पान में प्रयोग करना उत्तम है ॥ ४८–४९ ॥

अरोचके त्वगेलाद्यं चूर्णम्—

त्वगेलाव्योषधान्याम्लनागकेसरजीरकम् ।
लवलीफलकक्कोलं लवङ्गं जातिपत्रिका ॥ ५० ॥
भागानेषां समान् कृत्वा दद्याद् द्विगुणितां सिताम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तं चूर्णं रुचिकरं परम् ॥ ५१ ॥

अरोचक में त्वगेलाद्य चूर्ण—दालचीनी, इलायची, सोंठ, पीपर, मरिच, धनिया, अम्लवेत, नागकेशर, स्याहजीरा, हर्फारेवड़ी, कवावचीनी, लवंग, जावित्री समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर मिश्री मिला दे। तथा थोड़ा कर्पूर मिलाकर चूर्ण तैयार कर ले। यह चूर्ण अत्यन्त रुचिकर है ॥ ५०–५१ ॥

गुल्मे त्रिलवणाद्यं चूर्णम्—

त्रिलवणहपुषाजमोदाजगन्धावचाहिङ्गुपाठोपकुञ्चीशटीजीरकाजाजिकुस्तुम्बरीबाष्पिकाः कारवी तुम्बरुः स्वर्जिका यावशूको जटा पौष्करं दाडिमं तिन्तिडीकं विडङ्गानि भार्गी वरी वेधको, मिशिमरिचगजोपकुल्याऽभयाः पञ्चकोलं निकुम्भा विशाला यवानी सुराह्वं च तत्सर्वमेकत्र चूर्णीकृतं बीजपूरार्द्रकेनासकृद्भावित यः पिबेत्प्रातराहारकालेऽथवा मासमात्रं हिताशी नरः, प्लुतमशिशिरवारिणा जीर्णमद्येन तक्रेण मूत्रेण कोलाम्भसा मस्तुना सर्पिषौष्ट्रेण दुग्धेन कौलत्थयूषेण वा क्षारनिश्र्योततोयेन वा दाडिमस्यैव वाराऽऽत्मवानेभिरेवौषधैः साधितं वा घृतं, हृदयगुदकटीयकृत्प्लीहजं तस्य शूलं प्रणश्येत्तथा गुल्मविष्टम्भदुर्नामकृच्छ्रोदराध्मानहिध्मारुचिश्लीपदश्वासकासाः प्रपक्तुं च शक्तो भवेत्पावकः प्राश्यमानानि पाषाणचूर्णान्यपि ॥ ५२ ॥

गुल्मरोग में त्रिलवणाद्य चूर्ण—त्रिलवण, (सेन्धा-सौवर्चल-विड नमक), हाऊवेर, अजमोदा, अजवायन, वच, हिंगु, पाढ़ी, छोटी इलायची, कपूरकचरी,

सफेदजीरा, स्याहजीरा, कुस्तुम्बरी (धनिया), नाडीहिंगु, मंगरैल, सज्जीखार, यवक्षार, जटामांसी, पुष्करमूल, अनार, तिन्तिडीक, विडंग, भांगरा, शतावरी, वेधक (इमली), सौंफ, मरिच, गजपीपर, हर्रे, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), दन्ती का मूल, इन्द्रायन, अजवायन, मुरामांसी—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनाकर विजौरानीबू के रस मे अनेक बार भावित करे। इस चूर्ण को जो व्यक्ति प्रातःकाल भोजन के समय या एक मास तक पथ्यपूर्वक सौंफ के क्वाथ मे मिलाकर, पुराने मद्य के साथ, तक्र, गोमूत्र, बेर का रस, दही का तोड, घृत, ऊंटनी का दूध, कुलथी का क्वाथ, क्षार से निकाला जल तथा अनार के रस के साथ या इन्हीं औषधों से साधित घृत के साथ सेवन करता है, उसका हृदय, गुदा, कटि (कमर), यकृत् तथा प्लीहा का शूल नष्ट हो जाता है। और गुल्मरोग विष्टम्भ, अर्श, कृच्छ्रोदर, आध्मान, हिध्मा, अरुचि, श्लीपद (फीलपाव), श्वास तथा कास भी नष्ट हो जाते हैं। जठराग्नि खाये हुए पत्थर के चूर्ण को भी पकाने में समर्थ हो जाता है ॥ ५२ ॥

अरोचके सूक्ष्मैलाद्यं चूर्णम्—

सूक्ष्मैला केसरं त्वक्च पत्रं तालीसकं तुगा।
पृथ्वीका दाडिमं धान्यं जीरकं च द्विकार्षिकम् ॥ ५३ ॥
पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्।
मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् ॥ ५४ ॥
अजमोदाजगन्धे च दधित्थं चेति कार्षिकम्।
चूर्णमग्निप्रदं ह्येतत्परम रुचिवर्धनम् ॥ ५५ ॥

अरोचक में सूक्ष्मैलाद्य चूर्ण—छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपत्र, तालीसपत्र, वंशलोचन, बडी इलायची, अनार, धनिया, स्याहजीरा दो २ कर्ष, पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मरिच, अजवायन, कोकम वृक्ष, अम्लवेत, अजमोदा, अजवायन, कैथ—एक २ कर्ष—इन सभी द्रव्यों का चूर्ण बनावे। यह चूर्ण अत्यन्त रुचिवर्द्धक है ॥ ५३–५५ ॥

अरोचके लवङ्गाद्यं चूर्णम्—

लवङ्गकङ्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम्।
एला सकृष्णाऽगुरुभृङ्गकेसरं कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुना ॥ ५६ ॥
कर्पूरजातीफलवंशरोचनाः सितार्धभागं सकलं तु चूर्णितम्।
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषजित् ॥ ५७ ॥
उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिध्मारुचियक्ष्मपीनसम्।
ग्रहण्यतीसारसथास्रजः क्षयं प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ५८ ॥

अरोचक में लवंगाद्य चूर्ण—लवंग, कवावचीनी, खस, रक्तचन्दन, तगर, नीलकमल, स्याहजीरा, इलायची, मंगरैल, अगर, भृङ्गराज, नागकेशर, पीपर, सोंठ, जटामांसी, सुगन्धवाला, कपूर, जायफर, वंशलोचन—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण वनावे और चूर्ण के आधा मिश्री पीस कर मिला दे। यह चूर्ण रोचक, तृप्तिकर, अग्निदीपक, वलप्रद, वीर्यवर्द्धक, तथा त्रिदोष को जीतने वाला है। ऊरुरोग, विवन्ध (मलावरोध), तमकश्वास, गलग्रह, कास, हिध्मा, अरुचि, यक्ष्मारोग, पीनस, (दुर्गन्धयुक्त पुराना नासास्राव), ग्रहणी दोष, अतिसार, रक्तक्षय, प्रमेह तथा गुल्म रोग को शीघ्र ही नाश करता है ॥ ५६–५८ ॥

अरुचौ द्वितीयं लवङ्गाद्यं चूर्णम्—

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागं समं कर्षमितं प्रकुर्यात् ।
पलार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ५६ ॥
सितासमं चूर्णमिदं प्रयुक्तं प्रसह्य रोगान् प्रबलान्निहन्यात् ।
कासक्षयारोचकमेहगुल्ममर्शांसि चोग्रान्ग्रहणीप्रदोषान् ॥ ६० ॥
हृत्कण्ठनासावदनप्रबोधं करोति सन्दीपयते च वह्निम् ।

अरुचि रोग में द्वितीय लवंगाद्य चूर्ण—लवंग, जायफर, पीपर—समभाग एक २ कर्ष, मरिच डेढ़पल, सोंठ चार पल—इन द्रव्यों का चूर्ण वनावे और चूर्ण के वरावर मिश्री पीस कर मिला दे। यह चूर्ण प्रयोग करने से प्रवल कास, क्षय, अरोचक, प्रमेह, गुल्मरोग, अर्श, उग्र ग्रहणी दोष आदि रोगों को नाश करता है। हृदय, कण्ठ, नासा तथा मुख को प्रबुद्ध करता है और अग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ ५९–६० ॥

तृतीयं लवङ्गाद्यं चूर्णम्—

लवङ्गकङ्कोलकणावराङ्गतालीसचव्यत्रुटिग्रन्थिकौन्त्यः ।
ऐलेयशृङ्गी लवली तुरङ्गी सकेसरा सोषणपत्रिका च ॥ ६१ ॥
द्विदाडिमं तिन्तिडिकोलमम्लं रोध्रत्वचा तूणभवं च तैलम् ।
कर्षांशमानानि पलं च शुण्ठ्याः शशी कलांशः समशर्करोऽयम् ॥६२॥
लवङ्गकाद्यो रुचिपक्तिदाता सुगन्धिहृद्यः क्षयरोगहन्ता ।
बलाग्निसवर्धन एष चूर्णो वरः प्रयोज्यो नृपतेर्हिताय ॥ ६३ ॥

तृतीय लवंगाद्य चूर्ण—लवंग, कवावचीनी, पीपर, दालचीनी, तालीसपत्र, चव्य, इलायची, पिपरामूल, रेणुकावीज, एलवालु, काकड़ासिंघी, हर्फारेवड़ी, अश्वगंधा, नागकेशर, मरिच, जाविंत्री, दोनों अनार, तिन्तिडीक, वेर, अम्लवेत, लोध्र की छाल, तूणभव (कर्पूरवल्ली का तैल) एक २ कर्ष, सोंठ एक पल, कर्पूर सोलहवां भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण वनावे और समभाग चीनी मिला दे।

यह लवंगाद्य चूर्ण रुचिवर्द्धक तथा पाचन-शक्ति को बढ़ाने वाला है। यह चूर्ण सुगन्धित तथा हृदय को बल देनेवाला, और क्षयरोग को नाश करने वाला है। बल और अग्नि को बढाने वाले इस श्रेष्ठ चूर्ण का राजाओं के हित के लिये प्रयोग करना चाहिए॥ ६१–६३॥

रक्तपित्ते चन्दनाद्यं चूर्णम्—

चन्दनं नलदं रोध्रमुशीरं पद्मकेसरम्।
नागपुष्पं तथा बिल्वं भद्रमुस्तं सशर्करम्॥ ६४॥
ह्रीबेरं चैव पाठा च कुटजस्य फलत्वचम्।
शृङ्गवेरं विषा चैव धातकी च रसाञ्जनम्॥ ६५॥
आम्रास्थि जम्बुसारं च तथा मोचरसः स्मृतः।
नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचः॥ ६६॥
चतुर्विंशतिसेतानि समभागानि कारयेत्।
तन्दुलोदकसंयुक्तं क्षौद्रेण सह योजयेत्॥ ६७॥
चलतां चामगर्भाणां स्तम्भनं परमुच्यते।
अश्विभ्यां विहितं पूर्वं रक्तपित्तविनाशनम्॥ ६८॥
हितं लोहितपित्तिभ्यो ह्यर्शस्सु लोहितेषु च।
तमोमूर्च्छोपसृष्टानां तृषार्तानां च दापयेत्॥ ६९॥

रक्तपित्त में चन्दनाद्य चूर्ण—चन्दन, जटामांसी, लोध्र, खस, कमल का पराग, नागकेशर, बेल का गूदा, नागरमोथा, शक्कर, हाऊबेर, पाढ़ी, इन्द्रयव, कोरैया की छाल, सोंठ, अतीस, धाय का फूल, रसाञ्जन, आम की गुठली, जामुन की गुठली, सेमर का गोंद, नीलकमल, मंजीठ, छोटी इलायची, अनार का छिलका—समभाग—इन चौबीस द्रव्यों का चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को चावल के पानी (चावल को एक घंटा तक पानी में भिगोकर मसल कर छाना हुआ जल) तथा मधु के साथ मिलाकर सेवन करे। यह चूर्ण (असमय में) कच्चे गर्भ को गिरने से रोकता है। अश्विनीकुमार का बनाया हुआ यह चूर्ण रक्तपित्त को नाश करने वाला है। रक्तपित्त के रोगी तथा रक्तार्श में लाभप्रद है। तम तथा मूर्च्छा के रोगी एवं पिपासा से व्याकुल व्यक्तियों को यह चूर्ण दिलाना चाहिए॥ ६४–६९॥

प्रतिश्याये व्योषादिचूर्णम्—

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसैः।
जीरचव्यैश्च तुल्यांशैः पादैस्त्वक्त्रुटिपत्रकैः॥ ७०॥
व्योषादिकमिदं नाम पुराणगुडसंयुतम्।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम्॥ ७१॥

प्रतिश्याय में व्योषादि चूर्ण—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक, तालीसपत्र, तिन्तिडीक, अम्लवेत, स्याहजीरा, चव्य—समभाग—दालचीनी, इलायची, तेजपत्र—चौथाई २ भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे और गुड़ की (चूर्ण से दुगुनी) चासनी बनाकर मिला दे, या सूखा गुड़ मिला कर प्रयोग करे। यह व्योषादिक नामक चूर्ण पीनस (दुर्गन्ध युक्त चिरकालीन नासास्राव, एवं प्रतिश्याय) श्वास तथा कास को नाश करने वाला है और रुचि एवं स्वर को बढ़ाने वाला है ॥ ७०-७१ ॥

शोषे षाडवं चूर्णम्—

पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
सिता-पलचतुष्कं च नागरार्धपलं तथा ॥ ७२ ॥
धान्यसौवर्चलाजाजीत्वगेलाश्चार्धकार्षिकाः ।
कोलदाडिमवृक्षाम्लयवान्यश्चाम्लवेतसः ॥ ७३ ॥
कार्षिकांश्चूर्णयेत्सर्वान् हृद्यं त्वन्नप्ररोचकम् ।
प्लीहहृद्ग्रहणीदोषपञ्चकासनिबर्हणम् ॥ ७४ ॥
षाडवं नाम गुल्मार्तिविबन्धानाहशूलनुत् ।

शोष रोग में षाडव चूर्ण—पीपर एक सौ, मरिच दो सौ, मिश्री चार पल, सोंठ आधा पल, धनिया, सौवर्चलनमक, स्याह जीरा, दालचीनी, इलायची—आधा २ कर्ष, बैर, अनार, कोकमवृक्ष, अजवाइन, अम्लवेत—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण हृदय को बल देनेवाला, अन्नमे रुचि करनेवाला, प्लीहावृद्धि, हृदयरोग, ग्रहणी दोष तथा पांचों प्रकार के कास को दूर करने वाला है। यह षाडव नामक चूर्ण गुल्मरोग, विबन्ध, आनाह तथा शूल को दूर करता है ॥

शोषे महाषाडवं चूर्णम्—

तालीसोपणचव्यनागलवणैः सर्वैः समांशैस्ततो
द्विघ्नैर्ग्रन्थिकतिन्तिडीकहुतभुक्त्वग्जीरकृष्णायुतैः ।
विश्वैलाबदराम्लवेतसघनैर्धान्याजमोदायुतै-
स्त्र्यंशैर्दाडिमबीजपादसहितैः श्रेष्ठः सितार्धांशकः ॥ ७५ ॥
कण्ठास्योदरहृद्विकारशमनः कायाग्निसंदीपनो
गुल्माध्मानविसूचिकागुदरुजाश्वासक्रिमिच्छर्दिहा ।
कासारुच्यतिसारमूढमरुतां हृद्रोगिणां कीर्तित-
श्चूर्णोऽयमिपजामतीव दयितः ख्यातो महाषाडवः ॥ ७६ ॥

शोषरोग में महाषाडव चूर्ण—तालीसपत्र, मरिच, चव्य, नागकेशर, सेन्धानमक—समभाग—पीपरामूल, तिन्तिडीक, चित्रक, दालचीनी, स्याह-

जीरा, पीपर—दो २ भाग, सोंठ, इलायची, बेर, अमलवेंत, मोथा, धनिया, अजमोदा—तीन २ भाग, अनार का बीज चौथाई भाग—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण बनावे और चूर्ण के आधा मिश्री मिला दे। वैद्यों का अतीव प्रिय प्रसिद्ध महाषाडव नामक चूर्ण कण्ठ, मुख, उदर तथा हृदय के विकारों को शान्त करनेवाला है, जाठराग्नि को दीप्त करनेवाला है। गुल्मरोग, आध्मान, हैजा, अर्शरोग, श्वासरोग, कृमि तथा वमन को नाश करनेवाला है और कास, अरुचि, अतिसार, मूढवात (प्रतिलोमवात) एवं हृदय के रोगियों के लिये हितकर है ॥ ७५-७६ ॥

अरोचके दाडिमाद्यं चूर्णम्—

द्वे पले दाडिमादष्टौ खण्डाद्व्योषात्पलत्रयम् ।
त्रिसुगन्धिपलं चैकं चूर्णमेतच्च कारयेत् ॥ ७७ ॥
रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासजित् ।

अरोचक में दाडिमाद्य चूर्ण—अनार का बीज दो पल, मिश्री आठ पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन पल, त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) एक पल—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। यह चूर्ण रुचिवर्द्धक, उदराग्निदीपक, स्वरवर्द्धक एवं पीनस, श्वास तथा कास को जीतनेवाला है ॥

कासे लघुतालीसाद्यं चूर्णम्—

मरिचं चैव तालीसं नागरं पिप्पली शुभा ॥ ७८ ॥
यथोत्तर भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ।
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ॥ ७९ ॥
श्वासकासारुचीर्हन्ति चूर्णं दीपनकं परम् ।
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहशोफज्वरापहम् ॥ ८० ॥
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ।
कल्पयेद् गुटिकां चैव चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ॥ ८१ ॥
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा मता ।

कास रोग में लघु तालीसाद्य चूर्ण—मरिच एकभाग, तालीसपत्र दो भाग, सोंठ तीन भाग, पीपर चार भाग, वंशलोचन पांच भाग, दालचीनी, इलायची, आधा २ भाग, पीपर से अठगुना मिश्री—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण श्वास, कास, अरुचि को नाश करता है। और उत्तम उदराग्नि दीपक है। हृदय, पाण्डु, ग्रहणीदोष, प्लीहावृद्धि, शोथ तथा ज्वर रोग को नाश करता है। वमन, अतिसार तथा शूल को नाश करने वाला एवं मूढवात का अनुलोम करने वाला है। मिश्री की चासनी बनाकर उसमें चूर्ण

को पकाकर गुटिका बनावे। यह गुटिका अग्नि से संयोग होने के कारण हल्की होती है॥

गुल्मे शार्दूलं चूर्णम्—

भागवृद्धयोत्तरं हिङ्गुवचाबिडसहौषधम्॥ ८२॥
यवानीमभयां चैव चूर्ण मस्त्वादिभिः पिबेत्।
विबन्धानाहशूलार्शोवर्ध्मश्वासोदरापहम्॥ ८३॥
ग्रहणीरोगशूलघ्नं शार्दूलं नाम दीपनम्।

गुल्मरोग में शार्दूल चूर्ण—हिंगु एक भाग, वच दो भाग, बिडनमक तीन भाग, सोंठ चार भाग, अजवायन पांच भाग, हर्रे छः भाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे और इस चूर्ण को मस्तु (दही का तोड़), मद्य आदि से पान करे। यह शार्दूल नामक चूर्ण, विबन्ध (मलबन्ध), आनाह, शूल, अर्शरोग, वर्ध्म श्वास रोग तथा उदररोग को नाश करने वाला, ग्रहणी रोग तथा शूल को दूर करने वाला, एवं जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है॥८२-८३॥

उदरे नारायणं चूर्णम्—

यवानी त्रिफला धान्यं हपुषा सोपकुञ्चिका॥ ८४॥
पृथ्वीका पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा।
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रका॥ ८५॥
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठ लवणपञ्चकम्।
विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा॥ ८६॥
द्विगुणे तु त्रिवृच्चित्रे सातला च चतुर्गुणा।
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः॥ ८७॥
एतं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः।
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना॥ ८८॥
सुरया बद्धवाते च वातरोगे प्रसन्नया।
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि॥ ८९॥
परिकर्तेषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्भोभिरजीर्णके।
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे॥ ९०॥
दूषीविषे विषे मौले सगरे कृत्रिमे विषे।
यथार्हस्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्॥ ९१॥

उदररोग में नारायण चूर्ण—अजवायन, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), धनिया, हाऊबेर, मगरैल, बड़ी इलायची, पिपरामूल, अजमोदा, कपूरकचरी, वच, सौंफ, स्याहजीरा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), सत्यानासी, चित्रक, सज्जीखार, यवक्षार, पुष्करमूल, कूठ, लवण पंचक (सेन्धा-सौवर्चल-बिड-

साँभर-सामुद्रनमक), विडंग—समभाग—दन्तीमूल तीन भाग, निशोथ दो भाग, चित्रक दो भाग, सातला चार भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह नारायण नामक चूर्ण रोगसमूहों को नाश करने वाला है। इस चूर्ण को प्रयोग करने से विष्णु के आने से असुरों के तरह रोग नष्ट हो जाते हैं। उदर के रोगी को तक्र के साथ, गुल्म के रोगियों को बेर के रस, वातविबन्ध में मद्य, वातरोग में प्रसन्ना, विबन्ध में दधिमण्ड (दही का पानी), अर्श रोग में अनार का रस, परिकर्त रोगों में (पेट मे कैंची काटने के तरह पीड़ा होने पर) वृक्षाम्ल के रस, अजीर्ण में गरम जल तथा भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, दंष्ट्राविष (सांप का विष), विष, मूलविष (जड़ का विष—कनेर आदि का), गर (संयोगज) विष तथा कृत्रिम विष में, यथायोग्य, कोष्ठ को स्निग्ध करनेवाले स्नेह द्रव्यों से स्नेहन करने के बाद पान करना चाहिए। यह चूर्ण विरेचनकारक है॥ ८४-९१॥

उदरे हपुषाद्यं चूर्णम्—

हपुषां काञ्चनक्षीरीं त्रिफलां कटुरोहिणीम्।
नीलिनीं त्रायमाणां च सप्तलां त्रिवृतां वचाम्॥ ९२॥
काचलवणसिन्धूत्थे पिप्पलीं चेति चूर्णयेत्।
दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः॥ ९३॥
पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु प्लीह्नि सर्वोदरेषु च।
श्वित्रकुष्ठेष्वजीर्णेषु सदने विषमाग्निषु॥ ९४॥
शोफार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके।
वातपित्तकफोद्भूतान् विकारान् सन्निवारयेत्॥ ९५॥

उदर रोग में हपुषाद्य चूर्ण—हाऊबेर, सत्यानासी, त्रिफला, (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), कुटकी, नील, त्रायमाण, सातला, निशोथ, वच, सौवर्चलनमक, सेन्धानमक, पीपर—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को अनार का रस, त्रिफला का क्वाथ, मांसरस, गोमूत्र तथा गरम जल से सभी प्रकार के गुल्म रोग, प्लीहावृद्धि, सभी प्रकार के उदर रोग, श्वित्रकुष्ठ (सफेद कोढ़), अजीर्ण, सदन (सूखा रोग), विषमाग्नि, शोथ, अर्श, पाण्डुरोग, कामला तथा हलीमक रोग में पान करना चाहिए। यह चूर्ण वात-पित्त-कफजन्य विकारों को दूर करता है॥ ९२-९५॥

उदरे नाराचकं चूर्णम्—

विडङ्गाजाजिकाचव्यत्रिफलाधान्यकं वचा।
पट्नि पञ्च च क्षारौ ग्रन्थिकं पुष्करं शटी॥ ९६॥
यवानी कुञ्चिका कुष्ठं विशाला धान्यक वचा।

शतपुष्पाऽजगन्धा च हेमक्षीरी सनीलिका ॥ ९७ ॥
हपुषा त्रिवृता दन्ती सातला द्विगुणोत्तरम् ।
चूर्णं नाराचकं पीतं मद्यमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ९८ ॥
गुल्मार्शोग्रहणीरोगान् श्वासं कासोदरे जयेत् ।

उदररोग मे नाराचक चूर्ण—विडंग, स्याहजीरा, चव्य, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), धनिया, वच, पाचों नमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सामुद्र, साँभर नमक), सज्जीखार, यवक्षार, पिपरामूल, पुष्करमूल, कपूर-कचरी, अजवायन, मंगरैल, कूठ, इन्द्रायण, धनिया, बालवच, सौंफ, अजमोदा, सत्यानासी, नील, हाऊबेर, निशोथ, दन्तीमूल, सातला—इन द्रव्यों को उत्तरोत्तर दुगुनी मात्रा मे (विडंग एक भाग, स्याहजीरा दो भाग, चव्य चार भाग, इत्यादि) लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह नाराचक चूर्ण मद्य, मस्तु (दही का तोड) तथा अम्ल काञ्जिक के साथ पान करने से गुल्म, अर्श, ग्रहणी रोग, श्वास, कास तथा उदर रोगों को जीत लेता है ॥

उदरे सुवर्णसमकं चूर्णम्—

मरिचं पञ्चकोलं च द्वौ क्षारौ त्रिफला वचा ॥ ९९ ॥
यवानी कुञ्चिका हिङ्गु तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।
त्रायन्ती दाडिमं धान्यमजगन्धा यवाग्रजम् ॥ १०० ॥
कटुका कौटजं बीजं सैन्धवं च समं पृथक् ।
द्विगुणा त्रिवृता दन्ती कम्पिल्लो नीलिकाऽभया ॥ १०१ ॥
स्वर्णक्षीरी सप्तला च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
उष्ट्रमूत्रे तथा गव्ये सप्ताहं परिभावयेत् ॥ १०२ ॥
द्विगुणां शर्करां चात्र दापयेत्तत्पिवेत् त्र्यहम् ।
गोमूत्रत्रिफलाक्षाररसैर्मद्यैः सुखाम्बुना ॥ १०३ ॥
सुवर्णसमकं चूर्णं सर्वरोगातिभेषजम् ।
प्लीहानमुदरं हन्ति गुल्मं हृद्रोगमेव च ॥ १०४ ॥
वाताष्ठीलामथानाहं श्वयथुं सर्वगात्रजम् ।
हलीमकं कामलां च पाण्डु मेहं ज्वरं तथा ॥ १०५ ॥

उदररोग में सुवर्णसमक चूर्ण—मरिच, पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ,), सज्जीखार, यवखार, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), वच, अजवायन, मंगरैल, हिंगु, तिन्तिडीक, अम्लवेंत, त्रायमाणा, अनारदाना, धनिया, अजमोदा, यवक्षार, कुटकी, इन्द्रयव, सेन्धानमक—समभाग—निशोथमूल, दन्तीमूल, कबीला, नीलवृक्ष, हर्रे, सत्यानाशी (भंडभाड़), सातला—दो २ भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। ऊँट का मूत्र

तथा गाय के मूत्र में एक सप्ताह भावित कर सुखा ले। इसके बाद पुनः चूर्ण कर चूर्ण के दुगुना चीनी मिला दे। इस चूर्ण को छः मासा की मात्रा में गाय का मूत्र, त्रिफला का क्वाथ, लाचारस, मद्य तथा ईषदुष्ण जल से तीन दिन तक पान करे। यह सुवर्णसमक चूर्ण, सभी रोगों के उपद्रवों की औषधि है और प्लीहा, उदररोग, गुल्म, हृदयरोग, वाताष्ठीला (पेट में वाताष्ठीला ग्रन्थि का बढ़ जाना), आनाह, सभी अंग का शोथ, हलीमक, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह तथा ज्वर को नाश करता है॥ ९९–१०५॥

कुष्ठे पटोलाद्यं चूर्णम्—

मूलं पटोलस्य तथा रजन्यो फलत्रिकं चेति समानि षट् च।
स्यान्नीलिनी द्वित्रिगुणा विशाला कम्पिल्लकश्चापि चतुर्भिरंशैः॥
त्रिवृत्तथा पञ्चगुणेति योगं चूर्णीकृतं मुष्टिमितं पिबेद्धि।
कुष्ठेषु मूत्रेण तु रोहिणीनां श्वित्रे गरे वाथ हलीमके च॥ १०७॥
जातोदकान्यप्युदराणि हन्यात्पाण्ड्वामयार्शःश्वयथुप्रमेहान्।
एनं प्रयोगं च पिबन् हि कुष्ठी खादेद्रसैर्धन्वमृगद्विजानाम्॥ १०८॥

कुष्ठरोग में पटोलाद्य चूर्ण—परोरा की जड़, आमाहल्दी, दारुहल्दी, फलत्रिक (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) समभाग (छः द्रव्यों का छः भाग), नील दो भाग, इन्द्रायण तीन भाग, कबीला चार भाग, निशोथ पांच भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और एक कर्ष की मात्रा मे पान करे। कुष्ठ रोग में मूत्र के साथ रोहिणी, सफेद कोढ़, संयोगज विष, हलीमक में भी मूत्र के साथ पान करे। यह चूर्ण जलोदर रोग, उदर रोग, पाण्डु रोग, अर्श, शोथ तथा प्रमेह को नाश करता है। कुष्ठ का रोगी इस चूर्ण को पान करने के समय में धन्व मृग तथा पक्षियों के मांसरस के साथ भोजन करे॥१०६–१०८॥

कुष्ठे द्राक्षाद्यं चूर्णम्—

द्राक्षा निशा च मञ्जिष्ठा त्रिफला देवदारु च।
नागरं पञ्चमूले द्वे मुस्ता मधुरसा तथा॥ १०९॥
सप्तपर्णो ह्यपामार्गः पिचुमन्दाटरूषकौ।
विडङ्गं चित्रको दन्ती पिप्पल्यो मरिचानि च॥ ११०॥
एतेषां समभागानां कुष्ठी चूर्णं पलं पिबेत्।
मासं गोमूत्रसंयुक्तं तथा कुष्ठात्प्रमुच्यते॥ १११॥

कुष्ठरोग में द्राक्षाद्य चूर्ण—मुनक्का, आमाहल्दी, मजीठ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), देवदारु, सोंठ, पंचमूल दोनों (बेल, गम्भारी, पाटला, अरलू, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभटा, भटकटैया, गोखरू), मोथा, मुलेठी, छतिवन, अपामार्ग, नीम, अडूसा, विडंग, चित्रक, दन्तीमूल, पीपर, मरिच—

समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे तथा कुष्ठ रोग-पीडित व्यक्ति एक पल की मात्रा में एक मास तक गोमूत्र के साथ मिलाकर पान करे तो कुष्ठरोग से मुक्त होता है ॥ १०९–१११ ॥

आमवाते अलम्बुषाद्यं चूर्णम्—

अलम्बुषाऽमृता शुण्ठी चित्रकस्त्रिफला कणा ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि वृद्धदारु च तत्समम् ॥ ११२ ॥
सूक्ष्मचूर्णीकृतान् सर्वान् स्वेच्छाहारविहारिणः ।
पिबतो मदिरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकैर्जयेत् ॥ ११३ ॥
प्लीहानमामवातं च यकृत्पाण्डुविसूचिकाः ।
उक्तं काङ्कायनेनेदं चूर्णमग्निकरं परम् ॥ ११४ ॥

आमवात में अलम्बुषाद्य चूर्ण—अलम्बुषा (लज्जालुभेद), गुडूची, सोंठ, चित्रक, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), पीपर—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे और इन चूर्णों के बराबर विधारा का सूक्ष्म चूर्ण मिला दे। इस चूर्ण को अपनी इच्छा के अनुसार आहार-विहार करने वाला, मदिरा, तक्र, कांजिक तथा गरम जल से पान करने से प्लीहावृद्धि, आमवात, यकृत् रोग, पाण्डु तथा विसूचिका (हैजा) को जीत लेता है। कांकायन का बताया यह चूर्ण उदराग्नि को अच्छी तरह बढ़ाता है ॥ ११२–११४ ॥

आमवाते द्वितीयमलम्बुषाद्य चूर्णम्—

अलम्बुषा श्वदंष्ट्रा च त्रिफला नागरामृते ।
यथोत्तर भागवृद्धाः श्यामाचूर्ण च तत्समम् ॥ ११५ ॥
पिबेन्मस्तुसुरातक्रपयोमांसरसादिभिः ।
आमवात निहन्त्येतत्सशोथं वातशोणितम् ।
अलम्बुषादिक चूर्णं बहुरोगविनाशनम् ॥ ११६ ॥

आमवात में द्वितीय अलम्बुषाद्य चूर्ण—अलम्बुषा (लज्जालुभेद) एक भाग, गोखरू दो भाग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आवला) तीन भाग, सोंठ चार भाग, गुडूची पांच भाग—इन सभी द्रव्यों के बराबर कालानिशोथ मिलाकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मस्तु (दही का तोड), सुरा, तक्र, दूध तथा मांसरस आदि के साथ पान करे। यह अलम्बुषादिक चूर्ण आमवात, सूखा रोग तथा वातरक्त को नाश करता है और बहुत रोगों को नाश करने वाला है ॥ ११५–११६ ॥

श्वासकासे विडङ्गाद्यं चूर्णम्—

विडङ्गश्चित्रको मुस्ता ग्रन्थिकं देवदारु च ।
वराङ्गचविकाजाजीबिभीतकफलानि च ॥ ११७ ॥

शुण्ठी खदिरसारश्च मेषशृङ्गी सपिप्पली ।
भार्गी शृङ्गी तथा छत्रा कर्चूरो मरिचानि च ॥ ११८ ॥
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
उष्णेन वारिणा पीत हन्ति श्लेष्मगलामयान् ॥ ११९ ॥
हृद्रोगांश्चैव कासांश्च कण्ठरोगांश्च दारुणान् ।
अन्ये च कफजा रोगा विलय यान्ति तत्क्षणात् ॥ १२० ॥

श्वास-कास रोग से विडाङ्गाद्य चूर्ण—विडंग, चित्रक, सोंथा, पिपरामूल, देवदारु, दालचीनी, चव्य, स्याहजीरा, बहेडा, मदनफल, सोंठ, खैरसार, मेढ़ासिंघी, पीपर, भांगरा, काकडासिंघी, छत्रा (सौंफ), कचूर, मरिच—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर महीन चूर्ण बनावे । यह चूर्ण गरम जल से पान करने पर श्लैष्मिक गला रोग, हृदय रोग, कास तथा भयंकर कण्ठ रोगों को नाश करता है और अन्य कफजन्य रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ११७-१२० ॥

मन्दाग्नौ वडवानलं चूर्णम्—

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं हरीतक्यः ।
क्रमवृद्धमग्निवृद्धिं करोति वडवानल चूर्णम् ॥ १२१ ॥

मन्दाग्नि में वडवानल चूर्ण—सेन्धानमक एक भाग, पिपरामूल दो भाग, पीपर तीन भाग, चव्य चार भाग, चित्रक पांच भाग, सोंठ छः भाग, हर्रे सात भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण करे । यह वडवानल चूर्ण उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १२१ ॥

मन्दाग्नौ द्वितीय वडवानल चूर्णम्—

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जवेल्लाग्निभिः सितातुल्यैः ।
वडवानलं तु जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १२२ ॥

मन्दाग्नि में द्वितीय वडवानल चूर्ण—हर्रे, सोंठ, पीपर, करंज, विडंग, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण के बराबर शर्करा मिलाकर रख दे । यह वडवानल नामक चूर्ण अधिक गरिष्ठ (भारी, दुष्पच) भोजन को पचा देता है ॥ १२२ ॥

ग्रहण्यामग्निमुखं चूर्णम्—

त्रिकटुत्रिफलाभागा पञ्च षट् च पृथक् चव्यचित्रकयोः ।
बिडसैन्धवसौवर्चलमेकद्वित्रीणि कर्षाणि ॥ १२३ ॥
इति चूर्णं ग्रहणीगदगुदजोदरगुल्मशूलघ्नम् ।
जनयति च जातवेदसमल्पभुजामेतदग्निमुखम् ॥ १२४ ॥

ग्रहणी-विकार में अग्निमुख चूर्ण—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन

भाग, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आँवला) तीन भाग, चव्य पांच भाग, चित्रक छः भाग, विडनमक एक भाग, सेन्धानमक दो भाग, सौवर्चल नमक तीन भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण, ग्रहणी रोग, गुदज (अर्श) रोग, उदररोग, गुल्मरोग तथा शूल को नाश करता है। यह अग्निमुख चूर्ण अल्पाहारियों (मन्दाग्नि वालों) के जठराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १२३-१२४ ॥

गुल्मे द्वितीयमग्निमुखं चूर्णम्—

चित्रकहपुषाग्रन्थिकसैन्धवसौवर्चलाजमोदाभिः।
विडधान्यशटीपुष्करकर्चूराजाजितिन्तिडीकैश्च ॥ १२५ ॥
चव्ययवानीदाडिमपृथ्वीकेलाम्लवेतसैश्च समैः।
अग्निमुखोऽयं चूर्णः काञ्जिकमस्तूष्णवारिसीधूनाम् ॥ १२६ ॥
पीतोऽन्यतमेन नृभिर्गुल्मारुचिवह्निसादशूलानि।
दुर्नामप्लीहोदरकफवातगदान्विनाशयति क्षिप्रम् ॥ १२७ ॥

गुल्म रोग में द्वितीय अग्निमुख चूर्ण—चित्रक, हाऊबेर, पिपरामूल, सेन्धानमक, सौवर्चल नमक, अजमोदा, विडनमक, धनिया, कपूरकचरी, पुष्करमूल, कचूर, स्याहजीरा, तिन्तिडीक, चव्य, अजवायन, अनार, पृथ्वीका (मगरल), इलायची, अम्लवेत—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। यह अग्निमुख नामक चूर्ण कांजिक, मस्तु (दही का तोड), गरम जल तथा सीधु में से किसी एक के साथ पान करने से मनुष्यों के गुल्म, अरुचि, मन्दाग्नि, शूल, दुर्नाम (अर्श) रोग, प्लीहोदर (पुराना प्लीहावृद्धि) तथा कफवातजन्य रोगों को शीघ्र ही नाश करता है ॥ १२५-१२७ ॥

गुल्मे बृहदग्निमुखं चूर्णम्—

द्वौ क्षारौ चित्रकः पाठा विडङ्ग लवणानि च।
सूक्ष्मैला तगर भार्गी कारवी हिङ्गु पौष्करम् ॥ १२८ ॥
शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्ता वचा चेन्द्रयवास्तथा।
धात्रीजीरकवृक्षाम्लश्रेयस्यः सोपकुञ्चिकाः ॥ १२९ ॥
अम्लवेतसमम्लीका दाडिमं कटुत्रयम्।
भल्लातकाजमोदे च यवानी सुरदारु च ॥ १३० ॥
अभयाऽतिविषा चव्या हपुषाऽऽरग्वधस्तथा।
तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ १३१ ॥
क्षारा अमूनि तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
लोहकिट्टं च सप्ताहं तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ १३२ ॥
विद्वान्सुभावितं कृत्वा योगेऽस्मिन्प्रक्षिपेत्ततः।

मातुलुङ्गरसेनैव भावयेत्तु दिनत्रयम् ॥ १३३ ॥
दिनत्रयं तु शुक्तेन तथाऽऽर्द्रकरसेन च ।
सुभावितं ततः कृत्वा भक्तमध्ये प्रयोजयेत् ॥ १३४ ॥
एषोऽग्निकल्पचूर्णस्तु नाशयत्यचिराद् गदान् ।
अजीर्णकं तथाऽऽनाहं पञ्च गुल्मान् सुदुस्तरान् । १३५ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च श्वासकासांश्च दारुणान् ।
प्रतिश्यायं क्षयं शोषं विद्रधिं कफवातजाम् ।
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च ह्यष्ठीला वातशोणितम् ।
कुष्ठानि च विशीर्णानि सन्निपातं सुदुर्जयम् ।
अर्शांसि वातरक्तं च कुष्ठमन्त्रस्य वृद्धिताम् ॥
अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं च मदात्ययम् ॥ १३६ ।
प्रणुदत्युल्बणानेतान्नष्टमग्निं च दीपयेत् ।
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं कृत्वा तु भोजने ॥ १३७ ॥
प्रदद्यादस्य चूर्णस्य बिडालपदकं भिषक् ।
ततस्तद्द्रवतां याति कोष्णत्वं च प्रपद्यते ॥ १३८ ॥
एष चाग्निमुखश्चूर्णश्चूर्णराजो निगद्यते ।
ब्रह्मणा निर्मितश्चैष ह्यश्विभ्यां परिकीर्तितः ॥ १३९ ॥

गुल्मरोग में बृहत् अग्निमुख चूर्ण—सज्जीक्षार, यवक्षार, चित्रक, पाठा, विडंग, सेन्धानमक, सौवर्चल-विड-सांभर-सामुद्र, छोटी इलायची, तगर, भांगरा, कारवी (सौंफ), हिंगु, पुष्करमूल, कपूरकचरी, दारुहल्दी, निशोथ, मोथा, वच, इन्द्रयव, आवला, जीरा, कोकमवृक्ष, गजपीपर, मंगरैल, अम्लवेंत, इमली, अनार, कटुत्रय (सोंठ, पीपर, मरिच), भल्लातक, अजमोदा, अजवायन, देवदारु, हर्रे, अनीस, चव्य, हाऊवेर, अमलतास, तिलक्षार, पाढ़ल क्षार, सहिजनक्षार, तालमखानाक्षार, पलासक्षार—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे । मण्डूर को गरम कर गाय के मूत्र में बुझावे । इस प्रकार सात दिन तक करे पुनःभावित कर सुखा ले और पीस कर इस योग में मिला दे (यहां मण्डूरभस्म की मात्रा नहीं है अतः समभाग लेना चाहिए) फिर विजौरा नीबू के रस से तीन दिन तक भावित करे । इस प्रकार तीन दिन तक शुक्त से तथा तीन दिन तक अदरक के स्वरस से भावित करे । इस चूर्ण को अच्छी तरह भावित कर पुनः चूर्ण बना ले और भोजन के मध्य में प्रयोग करे । यह अग्निकल्प चूर्ण रोगों को शीघ्र ही नाश करता है । अजीर्ण, आनाह, पांचों प्रकार के दुस्साध्य गुल्म रोग, ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, भयंकर श्वास-कास, प्रतिश्याय, क्षय, सूखा रोग, कफवातजन्य विद्रधि, उदर रोग, आन्त्रवृद्धि,

अष्ठीला, वातरक्त, विशीर्ण कुष्ठरोग, दुर्जयसन्निपात, अर्शरोग, वातरक्त, कुष्ठ, अतड़ी का बढ़ना, अपस्मार, उन्माद, विभ्रम तथा मदात्यय उग्रतर इन रोगों को दूर करता है और उदराग्नि को प्रदीप्त करता है। वैद्य सभी व्यंजनों से युक्त भात बनाकर उसमें इस चूर्ण को एक अक्ष मात्रा मे मिला दे। इसके बाद वह भात द्रवीभूत होता हैं और थोडा सा गरम हो जाता है। यह अग्निमुख चूर्ण चूर्णों का राजा कहा गया है। ब्रह्मा ने इस चूर्ण को बनाया और अश्विनीकुमारों ने प्रयोग किया है ॥ १२८-१३९ ॥

अग्निमान्द्ये वैश्वानरं चूर्णम्—

लवणयवानीदीप्यकपिप्पलीनागरमुत्तरोत्तर वृद्धम्।
सर्वसमांशा पथ्या चूर्णो वैश्वानरः साक्षात्॥ १४० ॥

अग्निमान्द्य में वैश्वानर चूर्ण—सेन्धानमक एक भाग, अजवायन दो भाग, अजमोदा तीन भाग, पीपर चार भाग, सोंठ पांच भाग, सभी द्रव्यों के बराबर हर्रे लेकर, इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। यह साक्षात् वैश्वानर चूर्ण है। अर्थात् यह चूर्ण अग्नि को प्रदीप्त करने वाला है ॥ १४० ॥

गुल्मे द्वितीयं वैश्वानरं चूर्णम्—

सैन्धवलवणात्कर्षौ द्वौ च यवान्यास्त्रयोऽजमोदायाः।
पिप्पल्याश्चापि पलं पञ्चकर्षाणि शुण्ठ्याश्च ॥ १४१ ॥
द्वादश हरीतकीनां चूर्णमिदं कारयेच्छ्लक्ष्णम्।
मद्योष्णोदकयूषैः पिबेद्धि तक्रेण सर्पिषा वापि ॥ १४२ ॥
गुल्मे तथा रुजायां पार्श्वोदरवस्तियोनिशूलेषु।
वातानुलोमनकरं चूर्ण वैश्वानरं नाम ॥ १४३ ॥

गुल्म रोग में द्वितीय-वैश्वानर चूर्ण—सेन्धानमक एक कर्ष, अजवायन दो कर्ष, अजमोदा तीन कर्ष, पीपर एक पल (चार कर्ष), सोंठ पांच कर्ष, हर्रे बारह कर्ष, लेकर इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण करे। इस चूर्ण को मद्य, गरम जल, यूष तक्र या घृत के साथ गुल्म रोग, पार्श्व, उदर, वस्ति तथा योनिशूल में पान करे। यह वैश्वानर चूर्ण वात का अनुलोमन करने वाला है ॥१४१-१४३॥

गुल्मे तृतीयं वैश्वानरं चूर्णम्—

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव च।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम्॥ १४४ ॥
दश चैव हरीतक्याः सूक्ष्मचूर्णीकृताः शुभाः।
मस्त्वारनालमद्यैश्च सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ १४५ ॥
आमवातं जयेत्पीत गुल्मं हृद्वस्तिज गदम्।
वातानुलोमनं श्रेष्ठं चूर्ण वैश्वानरं स्मृतम्॥ १४६ ॥

गुल्मरोग में तृतीय वैश्वानर चूर्ण—मणिमन्थ (सेन्धानमक) दो भाग, अजवायन दो भाग, अजमोदा तीन भाग, सोंठ पांच भाग, हर्रे दश भाग,—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह उत्तम वैश्वानर चूर्ण मस्तु (दही का तोड), आरनाल, मद्य, घृत या गरम जल से पान करने पर आमवात, गुल्म रोग, तथा वस्ति के रोग (अर्श) को जीत लेता है। और वात का अनुलोमन करने वाला है ॥ १४४–१४६ ॥

अग्निदीप्त्यर्थं ज्वालामुखं चूर्णम्—

हिङ्ग्वम्लवेतसकटुत्रिकचित्रकेभ्यः
सक्षारपौष्करफलत्रिकदाडिमेभ्यः।
कर्षान्पृथग्गुडपलान्यथ चूर्ण्य भुक्तो
ज्वालामुखोऽयमनलस्य करोति दीप्तिम् ॥ १४७ ॥

अग्निदीप्त्यर्थ ज्वालामुख चूर्ण—हिंगु, अम्लवेत, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक, यवक्षार, पुष्करमूल, फलत्रिक (हर्रे, आंवला, बहेडा), अनार एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर गुड सात पल मिला दे। यह ज्वालामुख नामक चूर्ण अग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १४७ ॥

उदावर्ते नाराचकं चूर्णम्—

हिङ्गु कुष्ठ वचा चैव स्वर्जिका बिडमेव च।
एको द्वावथ चत्वारस्तथाऽष्टौ षोडशैव च ॥ १४८ ॥
यथाक्रमकृतान् भागांश्चूर्णमानाहभेदनम्।
नाराचविवृतो ह्येष योगो नाराचको मतः ॥ १४९ ॥
उदावर्तेषु शूलेषु गुल्मेष्वथ भगन्दरे।
हृद्रोगस्य प्रमेहस्य योगोऽयं शमनः परः ॥ १५० ॥

उदावर्त में नाराचक चूर्ण—हिंगु एक भाग, कूठ दो भाग, वच चार भाग, सज्जीखार आठ भाग, विडनमक सोलह भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण आनाह को दूर करता है। नाराच-निर्मित यह योग नाराचक नामक है। उदावर्त, शूल, गुल्म तथा भगन्दर रोग में प्रशस्त है। और यह योग हृदय रोग तथा प्रमेह को अच्छी तरह शान्त करता है ॥ १४८–१५० ॥

सारस्वतं चूर्णम्—

कुष्ठाश्वगन्धसैन्धवपिप्पलिमरिचं द्विजीरकं शुण्ठी।
पाठाऽजमोदसहिता समभागा चूर्णिता च वचा ॥ १५१ ॥
प्रातर्मधुसर्पिर्भ्यां बिडालपदमात्रमेतदवलिह्य।
सप्ताह पथ्याशी किन्नरमधुरस्वरो भवति मर्त्यः ॥ १५२ ॥
द्विगुणीकृते च तस्मिन्मेधावी भवति मिष्टवाक्यश्च।

त्रिगुणीकृते च तस्मिञ्छ्लोकसहस्रं पठत्याशु ॥ १५३ ॥
दुर्मेधसः किलायं भिक्षोराचार्यलोकसेनेन ।
अप्रार्थितेन दत्तो योगवरो नन्दविहारे ॥ १५४ ॥

सारस्वत चूर्ण—कूठ, अश्वगन्धा, सेन्धानमक, पीपर, मरिच, स्याह जीरा, सफेद जीरा, सोंठ, पाढी, अजमोदा—इन द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और सभी चूर्णों के बराबर बालवच का चूर्ण मिला दे। मनुष्य इस चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा में पथ्यपूर्वक भोजन करते हुए एक सप्ताह तक मधु एक भाग तथा घृत आधा भाग के साथ सेवन करने से किन्नर के समान मधुर स्वर बोलने वाला होता है। दो सप्ताह तक सेवन करने से मेधा शक्ति से युक्त मृदुभाषी होता है। तीन सप्ताह तक सेवन करने वाला व्यक्ति शीघ्र ही दो हजार श्लोकों को पढ़ लेता है। इस श्रेष्ठ योग (चूर्ण) को आचार्य त्रिलोक सेन ने दुर्मेधस भिक्षु के लिये नन्द विहार में दिया (बताया) था ॥ १५१–१५४ ॥

बृहत्सारस्वतं चूर्णम्—

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा।
माङ्गल्यपुष्पी च समानि चूर्णं कृत्वा तु चूर्णेन वचोद्भवेन ॥ १५५ ॥
तुल्येन युक्तं बहुशो रसेन तद्भावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः।
सर्पिर्मधुभ्यां च ततोऽक्षमात्रं लिह्यान्नरः सप्तदिनं हिताशी ॥ १५६ ॥
सौस्वर्यमिच्छन्मनसश्च धैर्यं मेधां तथेच्छन्द्विगुणं च कालम्।
पठेन्नरः श्लोकसहस्रमह्ना तद्वत्प्रयुक्तं त्रिगुणं च कालम् ॥ १५७ ॥
सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम्।
जगद्धिताय लोकानां दुर्मेधसां विचेतसाम् ॥ १५८ ॥

बृहत्सारस्वत चूर्ण—कूठ, अश्वगन्धा, सेन्धानमक, अजमोदा, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), पाढा, मांगल्यपुष्पी (त्रायमाणा)—समभाग इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनाये और चूर्ण के बराबर बालवच का चूर्ण मिलाकर ब्राह्मी के रस से अनेक बार भावित करे तथा सुखा कर चूर्ण बना ले। इसके बाद अच्छे स्वर को चाहने वाला पथ्यपूर्वक रहकर एक सप्ताह तक एक अक्ष की मात्रा में मधु तथा आधा भाग घृत के साथ चाटे। मन की स्थिरता एवं धारणा शक्ति को चाहने वाला दुगुने समय तक (दो सप्ताह) सेवन करे। इसी प्रकार तीन सप्ताह तक सेवन करने वाला व्यक्ति एक ही दिन में एक हजार श्लोक पढ़ लेता है। ब्रह्मा ने इस सारस्वत चूर्ण को मन्दबुद्धि तथा दूषित चित्तवाले प्राणियों के हित के लिये स्वयं बनाया है ॥१५५-१५८॥

अर्शोरोगे यवानिकाद्यं चूर्णम्—

यवान्यतिविषा कुष्ठं वचा हिङ्गु हरीतकी ।
कत्तृण रोहिषं मुस्त रास्ना विबुधदारु च ॥ १५९ ॥
पिप्पल्यः शृङ्गवेर च मरिचं चव्यचित्रकौ ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि पालाश मूलमेव च ॥ १६० ॥
त्रिफलाशटिसूक्ष्मैलाः पौष्कर त्वग्घरीतकी ।
अजाजी चेति तच्चूर्ण पिबेदुष्णोदकासवैः ॥ १६१ ॥
एतदर्शोविबन्धानां प्रयोगादमृतोपमम् ।

अर्शरोग मे यवानिकाद्य चूर्ण—अजवायन, अतीस, कूठ, वच, हिंगु, हर्रे, कत्तृण (सुगन्धित तृण), दूर्वा, मोथा, रासन, विधारा, पीपर, सोंठ, मरिच, चव्य, चित्रक, मातुलुंग की जड, पलास की जड, त्रिफला (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), कपूरकचरी, छोटी इलायची, पुष्करमूल, हर्रे, स्याहजीरा—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे । और इस चूर्ण को गरम जल-तथा आसव के साथ पान करे । यह चूर्ण अर्श तथा विवन्ध (मलावरोध) से पीडित व्यक्तियों के लिये प्रयोग करने से अमृत के समान कार्य करता है (अर्थात् अर्श तथा विबन्ध को दूर करता है ॥ १५९–१६१ ॥

श्वासकासे विभीतकाद्यं चूर्णम्—

बिभीतक विषा चैव भद्रमुस्ता च पिप्पली ।
भार्गी च शृङ्गवेरं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १६२ ॥
तानि चूर्णानि मद्येन पीतान्युष्णोदकेन वा ।
नाशयन्ति नृणां क्षिप्रं श्वासकासापतन्त्रकान् ॥ १६३ ॥

श्वासकास में विभीतकाद्य चूर्ण—वहेड़ा, अतीस, नागरमोथा, पीपर, भांगरा, सोंठ—समभाग—इन औषधियों को चूर्ण बनावे । यह चूर्ण मद्य तथा गरम जल के साथ पान करने से मनुष्यों के श्वास-कास तथा अपतन्त्रक (मृगी सदृश वात व्याधि) को शीघ्र ही नाश करता है ॥ १६२–१६३ ॥

हिक्काकासे रेणुकाद्यं चूर्णम्—

हरेणुश्चोरकं मुस्तं सूक्ष्मैलाशटिनागरम् ।
त्वगेला पुष्करं शृङ्गी ह्रीबेरागरुकेसरम् ॥ १६४ ॥
यवान्यामलकी भार्गी पिप्पली सुरसा तथा ।
सिताचतुर्गुणं चूर्णं तत्पीतं लीढमेव वा ॥ १६५ ॥
अन्नपानप्रयुक्तं वा भक्षितं वापि केवलम् ।
कासहिक्काज्वरश्वासपार्श्वशूल च नाशयेत् ॥ १६६ ॥

हिक्का-कास में रेणुकाद्य चूर्ण—रेणुका बीज, चोरा, मोथा, छोटी इलायची,

कपूर कचरी, सोंठ, दालचीनी, बडी इलायची, पुष्करमूल, काकड़ा सिंघी, हाऊबेर, अगर, नागकेशर, अजवायन, आंवला, भांगरा, पीपर, तुलसी—इन समभाग औषधियों को चूर्ण बनाकर, चूर्ण के चौगुना मिश्री मिला ले। इस चूर्ण को पान करने से या चाटने से एव भोजन के साथ प्रयोग करने से अथवा केवल ही प्रयोग करने से कास, हिक्का (हिचकी) ज्वर, श्वास तथा पार्श्वशूल को नाश करता है ॥ १६४–१६६ ॥

हिक्काश्वासे सुरसाद्यं चूर्णम्—

सुरसा चोरकं शृङ्गी सूक्ष्मैला पुष्करं शटी।
पिप्पलीत्वग्विडक्षारशुण्ठीहिङ्ग्वम्लवेतसम् ॥ १६७ ॥
भार्गी तामलकी जीवा वृक्षाम्लश्चेति चूर्णितम्।
हिक्काश्वासविबन्धार्शःकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १६८ ॥

हिक्का-श्वास में सुरसाद्य चूर्ण—तुलसी, चोरा, काकडासिंघी, छोटी इलायची, पुष्करमूल, कपूरकचरी, पीपर, दालचीनी, विडनमक, यवक्षार, सोंठ, हिंगु, अम्लवेत, भांगरा, भुइ आंवला, जीवक, कोकम वृक्ष—समभाग—इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह चूर्ण हिक्का (हिचकी), श्वास, मलावरोध, अर्श, कास, हृदयशूल तथा पार्श्वशूल को दूर करता है ॥ १६७–१६८ ॥

तमकश्वासे शट्याद्यं चूर्णम्—

शटीचोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तापुष्कराह्वयम्।
सुरसातामलक्येलापिप्पल्यगरुनागरम् ॥ १६९ ॥
बालकं च समं चूर्णं कृत्वाऽष्टगुणशर्करम्।
सर्वथा तमके श्वासे हिक्कायां च प्रयोजयेत् ॥ १७० ॥

तमक श्वास में शट्याद्य चूर्ण—कपूरकचरी, चोरा, जीवन्ती, दालचीनी, मोथा, पुष्करमूल, तुलसी, भुइ आंवला, इलायची, पीपर, अगर, सोंठ, सुगन्ध बाला—समभाग—इन औषधियों को चूर्ण बनावे और उसमें अठगुना शक्कर मिला दे। यह चूर्ण हमेशा तमक श्वास (कफाधिक श्वास रोग—अस्थमा) तथा हिक्का (हिचकी) में प्रयोग करना चाहिए ॥ १६९–१७० ॥

दन्तरोगे तिक्तकं चूर्णम्—

मुस्तं त्रिकटुकं पाठां त्वग्बीजं वत्सकस्य च।
पटोलकटुके निम्बं हरिद्रां धन्वयासकम् ॥ १७१ ॥
जातीप्रवालभूनिम्बौ मधुकं सरसाञ्जनम्।
त्रायमाणां गुडूची च त्रिफलां चेति चूर्णयेत् ॥ १७२ ॥
चूर्णोऽयं तिक्तको नाम कवलः प्रतिसारणः।
दन्तमूलास्यकण्ठस्थान् रोगानाशु व्यपोहति ॥ १७३ ॥

दन्तरोग में तिक्तक चूर्ण—मोथा, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), पाठा, दालचीनी, इन्द्रयव, परोरा का पत्ता, कुटकी, नीम, हलदी, धमासा, चमेली का पत्ता, चिरायता, मुलेठी, रसाञ्जन, त्रायमाणा, गुडूची, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला)—समभाग—इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह तिक्तक नामक चूर्ण कवल (कवर-कुल्ला) धारण करने से तथा प्रतिसारण (अंजन) करने से दांत के मूल (मसूडा), मुख तथा कण्ठ में स्थित रोगों को दूर करता है ॥ १७१–१७३ ॥

दन्तरोगे पीतक चूर्णम्—

दार्वीपटोलयष्ट्याह्वप्रियङ्ग्वतिविषा घनम्।
त्रायन्ती नागपुष्पं च भूनिम्बस्तिक्तरोहिणी ॥ १७४ ॥
दाडिमत्वग्बिभीतं च हरितालं मनःशिला।
समांशानि त्रिभागांशं सशैलेयं रसाञ्जनम् ॥ १७५ ॥
पीतकं चूर्णमेतद्धि सक्षौद्रं प्रतिसारणम्।
दन्तमूलगलास्योष्ठजिह्वातालुविकारिणाम् ॥ १७६ ॥

दन्तरोग मे पीतक चूर्ण—दारुहलदी, परोरा का पत्ता, जेठीमधु, प्रियंगु, अतीस, मोथा, त्रायमाणा, नागकेशर, चिरायता, कुटकी, अनार, दालचीनी, बहेडा, हरिताल, मनःशिला—समभाग, छडीला तीनभाग, रसांजन तीन भाग—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण बनावे। इस पीतक चूर्ण को मधु में मिलाकर दांत के मूल (मसूड़ा), गला, मुख, ओंठ, जिह्वा तथा तालु विकारवाले रोगियों के लिये अंजन करना चाहिए। अर्थात् विकार के अनुसार उन स्थानों मे लेप करना चाहिए ॥ १७४–१७६ ॥

गलरोगे कालकं चूर्णम्—

गृहधूमं यवक्षारं पाठां व्योषं रसाञ्जनम्।
तेजोह्वां त्रिफलां रोध्रं चित्रकं चेति चूर्णयेत् ॥ १७७ ॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद् गलरोगविनाशनम्।
कालकं नाम चूर्णं तु दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ १७८ ॥

गलरोग मे कालक चूर्ण—गृहधूम, यवक्षार, पाठा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), रसाञ्जन, तेजबल, त्रिफला, (हर्रे, बहेडा, आंवला), लोध्र, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मधु मे मिलाकर मुख में धारण करना चाहिए। यह कालक चूर्ण गला के रोगों को नाश करता है तथा दाँत, मुख और गला के रोगों को दूर करता है ॥ १७७–१७८ ॥

मुखरोगे द्वितीयं पीतकं चूर्णम्—

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम्।

दार्वी त्वक्चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ १७९ ॥
मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम चूर्णकम् ॥ १८० ॥

मुखरोग में पीतक चूर्ण—शु० मनःशिला, यवक्षार, हरिताल, सेन्धानमक, दारुहल्दी, दालचीनी—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और मधु मिलाकर घृतमण्ड (मेहरु) के साथ गरम कर कण्ठ रोग तथा मुख रोग में धारण (मुख में कवल ग्रहण) करे। यह पीतक नामक चूर्ण कण्ठ तथा मुख रोग में श्रेष्ठ है ॥ १७९–१८० ॥

कासे जीवन्त्याद्यं चूर्णम्—

जीवन्ती मधुकं पाठा त्वक्क्षीरी त्रिफला शटी ।
मुस्तैलापद्मकं द्राक्षा द्वे बृहत्यौ वितुन्नकम् ॥ १८१ ॥
सारिवा पौष्करं मूलं कर्कटाख्या रसाञ्जनम् ।
पुनर्नवा लोहरजस्त्रायमाणा यवानिका ॥ १८२ ॥
भार्गी तामलकी वृद्धिर्विडङ्गं धन्वयासकम् ।
क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योषदारु च ॥ १८३ ॥
चूर्णीकृत्य समांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा ।
चूर्णं पाणितलं कृत्वा पञ्चकासान् व्यपोहति ॥ १८४ ॥

कासरोग में जीवन्त्याद्य चूर्ण—जीवन्ती, मुलेठी, पाठा, वंशलोचन, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), कपूरकचरी, मोथा, इलायची, पद्मकाठ, मुनक्का, वनभंटा, रेगनी, धनियां, सारिवा, पुष्करमूल, काकड़ासिंघी, रसाञ्जन (रसौंत), पुनर्नवा, लौहभस्म, त्रायमाणा, अजवायन, भांगरा, भुइ आंवला, वृद्धि, विडंग, धमासा, यवक्षार, चित्रक, चव्य, अम्लवेत, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), देवदारु—समभाग इन द्रव्यों का चूर्ण बनाकर एक अक्ष की मात्रा में—मधु एक भाग तथा घृत आधा भाग के साथ चाटे। यह चूर्ण पांचों प्रकार के कासों को दूर करता है ॥ १८१–१८४ ॥

अतिसारे भूनिम्बाद्यं चूर्णम्—

भूनिम्बकटुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान् समान् ।
द्वौ चित्रकात्कलिङ्गत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ॥ १८५ ॥
चूर्णं मस्त्वम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मजित् ।
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारजित् ॥ १८६ ॥

अतिसार में भूनिम्बाद्य चूर्ण—चिरायता, कुटकी, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), मोथा, इन्द्रयव—समभाग—चित्रक दो भाग, कोरैया की छाल, सोरह भाग—इन औषधों को चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मस्तु जल (दही

के तोड़) के साथ पान करे। यह चूर्ण ग्रहणी दोष, गुल्म रोग, कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि तथा अतिसार को जीत लेता है ॥१८५–१८६॥

ग्रहण्यां पाठाद्यं चूर्णम्—

पाठाप्रतिविषामुस्तव्योषभूनिम्बवत्सकाः ।
तिक्ताचित्रकदुस्पर्शास्तुल्यैस्तैः कुटजः समः ॥ १८७ ॥
गुडशीताम्बुना पीतो ग्रहणीहाऽग्निकारकः ।

ग्रहणी में पाठाद्य चूर्ण—पाढ़ी, अतीस, मोथा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), चिरायता, इन्द्रजव, कुटकी, चित्रक, यवासा—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बना कर कोरैया की छाल का चूर्ण, सबके बराबर मिला दे। यह चूर्ण गुड के रस के साथ पान करने से ग्रहणी दोष को नाश करता है और उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥

ग्रहण्यां नागराद्यं चूर्णम्—

नागरातिषामुस्त भूनिम्ब सरसाञ्जनम् ।
वत्सकत्वक्फले बिल्व पाठा कटुकरोहिणीम् ॥ १८८ ॥
पिबेत्समांशक चूर्ण सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्त यश्चापवेश्यते ॥ १८९ ॥

ग्रहणी विकार मे नागराद्य चूर्ण—सोंठ, अतीस, मोथा, चिरायता, रसाञ्जन, कोरैया की छाल, इन्द्रयव, बेल का गूदा, पाढी, कुटकी—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मधु मिला कर चावल के जल (एक तोला चावल अठगुना जल मे कम से कम एक घंटा भिगोकर छान ले, यही चावल का जल कहलाता है) के साथ पान करे। यह पैत्तिक ग्रहणी दोष में तथा जिस ग्रहणी दोष में रक्तस्राव होता हो उसमें लाभप्रद है ॥ १८८–१८९ ॥

राजयक्ष्मणि सितोपलाद्यं चूर्णम्—

सितोपलां तवक्षीरी पिप्पलीं बहुला त्वचम् ॥ १९० ॥
अन्त्यादूर्ध्व द्विगुणित लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ।
चूर्णक प्राशयेच्चैतच्छ्वासकासकफातुरम् ॥ १९१ ॥
सुप्तजिह्वारोचकिनं मन्दाग्नि पार्श्वशूलिनम् ।
हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १९२ ॥

राजयक्ष्मारोग में सितोपलाद्य चूर्ण—मिश्री सोलह भाग, वंशलोचन आठ भाग, पीपर चारभाग, इलायची दो भाग, दालचीनी एक भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को श्वास, कास तथा कफ के रोगियों को और शून्य जिह्वा, अरुचि, मन्दाग्नि एवं पार्श्वशूल के रोगी को मधु एक भाग तथा आधा

भाग घृत के साथ चटाये। हाथ-पैर तथा अंस के दाह में ज्वर में तथा मुख से रक्त निकलने पर यह चूर्ण प्रशस्त है ॥ १९०-१९२ ॥

योनिदोषे पुष्यानुगं चूर्णम्—

पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मज्जा शिलोद्भेदो रसाञ्जनम्।
अम्बष्ठा मोचनिर्यासः समङ्गा पद्मकेशरम् ॥ १९३ ॥
वाह्लिकातिविषे बिल्वं रोध्रो मुस्तं सगैरिकम्।
कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ १९४ ॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ १९५ ॥
तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ १९६ ॥
दोषा दन्तकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं जलं श्वेतं सपाण्डुरम् ॥ १९७ ॥
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्तयेत्।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १९८ ॥

योनि रोग में पुष्यानुग चूर्ण—पाढ़ी, जामुन तथा आम की गुठली, पाषाण-भेद, रसाञ्जन (रसौत), अम्बष्ठा (जूही), सेमर का गोंद, मंजीठ, पद्मकेशर, चित्रक, अतीस, बेल, लोध, मोथा, गेरू, कायफर, मरिच, सोंठ, मुनक्का, रक्तचन्दन, सोनापाठा, कोरैया, अनन्तमूल, धाय का फूल, मुलेठी, अर्जुन—इन औषधियों को पुष्य नक्षत्र में ग्रहणकर—समभाग—लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मधु में मिलाकर चावल के धोवन के साथ अर्श, अतिसार तथा रक्तातिसार में पान कराये। दांत के रोग तथा बालकों के रोग को नाश करता है। स्त्रियों के योनिदोष, रजोदोष श्वेत तथा पाण्डुर वर्ण का स्राव, काला तथा रक्तवर्ण के स्राव को अवश्य ही दूर करता है। यह पुष्यानुग नामक चूर्ण आत्रेय महर्षि के द्वारा पूजित, स्त्रीसम्बन्धी रोगों में लाभप्रद है ॥ १९३-१९८ ॥

पाण्डुरोगे योगराजं चूर्णम्—

त्रिफलायास्त्रयो भागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च।
भागश्चित्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ १९९ ॥
मुस्ताकम्पिल्लयोर्भागो देयश्चापि पृथक् पृथक्।
पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च ॥ २०० ॥
माक्षिकस्य तु शुद्धस्य लोहस्य रजसस्तथा।
अष्टौ भागाः सितायाश्च तत्सर्वं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ २०१ ॥

माक्षिकेणाप्लुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ।
उदुम्बरसमां मात्रां ततः खादेद्यथाग्नि ना ॥ २०२ ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं जीर्णे भोज्यं यथेप्सितम् ।
वर्जयित्वा कुलत्थांश्च काकमाचीं कपोतकान् ॥ २०३ ॥
योगराजोऽयमाख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं शिवम् ॥ २०४ ॥
पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माण विषमज्वरम् ।
कुष्ठान्यजरकं मेहान् श्वासं हिक्कामरोचकम् ॥
विशेषाद्धन्त्यपस्मार कामलां गुदजानि च ॥ २०५ ॥

पाण्डुरोग में योगराज चूर्ण—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला) तीन भाग, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन भाग, चित्रक एक भाग, विडंग, एक भाग, मोथा एक भाग, कबीला एक भाग, शिलाजीत पांच भाग, रौप्य माक्षिक पांच भाग, स्वर्णमाक्षिक पांच भाग, शु० लौहभस्म पांच भाग, शर्करा आठ भाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और मधु में मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्र मे रक्खे। मनुष्य इस चूर्ण को गूलर के फल के बराबर मात्रा में भक्षण करे। प्रतिदिन भोजन करने के बाद अपनी इच्छा के अनुसार कुलथी, मकोय तथा कपोत-मांस को छोड़ कर भक्षण करना चाहिए, यह योगराज नामक चूर्ण "योग" अमृत के समान है और सभी रोगों को नाश करने वाला, कल्याणकारक, उत्तम रसायन है। यह चूर्ण पाण्डुरोग, विष, कास, यक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठरोग, अजरक (अजीर्ण), प्रमेह, श्वास, हिक्का, (हिचकी), अरोचक, विशेष कर अपस्मार, कामला तथा अर्श रोगों को नाश करता है ॥ १९९–२०५ ॥

कुष्ठे त्रिफलाद्यं चूर्णम्—

त्रिफलातिविषाकटुकानिम्बकलिङ्गवचापटोलानाम् ।
मागधिकारजनीद्वयपद्मकभार्गीमूर्वाविशालानाम् ॥ २०६ ॥
भूनिम्बपलाशानां दद्याद् द्विपल त्रिवृत्त्रिगुणा ।
तैश्च समाना ब्राह्मी तच्चूर्णं सुप्तिनुत् परमम् ॥ २०७ ॥

कुष्ठ रोग में त्रिफलाद्य चूर्ण—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), अतीस, कुटकी, निम्ब, इन्द्रयव, वच, परोरा का पत्ता पीपर, आमाहल्दी, दारुहल्दी, पद्मकाष्ठ, भांगरा, मूर्वा (मोरवेल), इन्द्रायण, चिरायता, पलास दो २ पल, निशोथ छ पल, इन सभी द्रव्यों के बराबर ब्राह्मी लेकर, एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह चूर्ण सुप्ति (सुन्न) कुष्ठ को अच्छी तरह दूर करता है ॥ २०६–२०७ ॥

मन्दाग्नौ व्योषाद्यं चूर्णम्—

सव्योषं क्रिमिजित्सपञ्चलवणं साजाजिकं साभयं
सक्षारं सहुताशनं सचविकं सग्रन्थिकं सत्रिवृत् ।
एतच्चूर्णमुदश्विता प्रपिबतामुष्णेन वा वारिणा
वह्निर्वृद्धिमुपैति सर्वगदजिद्भ्राजिष्णुतामावहेत् ॥ २०८ ॥

मन्दाग्नि से व्योषाद्य चूर्ण—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), विडंग, पंच लवण (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सांभर, सामुद्र), स्याहजीरा, हर्रे, यवक्षार, हुताशन (चित्रक), चविक (चव्य), पिपरामूल, निशोथ—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण, उदश्वित् (अर्ध जल मिश्रित दही) या गरम जल से पान करने पर जाठराग्नि को बढ़ाता है, सभी रोगों को दूर करता है तथा पाचन शक्ति को बढ़ाता है ॥ २०८ ॥

पाण्डुरोगे खण्डसमकं चूर्णम्—

त्रिफलाव्योषबिल्वाब्दपिप्पलीमूलचित्रकैः ।
त्वगेलापत्रचविकातिन्तिडीकाम्लवेतसैः ॥ २०९ ॥
समांशैर्धातुमाक्षीकं सर्वैस्तुल्य प्रदापयेत् ।
लोहचूर्णं समं तैश्च सर्वैः खण्डं समांशकम् ॥ २१० ॥
चूर्णित मधुना लेह्य वटकान् वा समाक्षिकान् ।
भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २११ ॥
नाशयेत्कुष्टमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ।
पाण्डुरोगं तथा कासं हलीमकशिरोरुजम् ॥ २१२ ॥
प्रसेकमरुचिं मूर्च्छां हृल्लास मन्दवह्निताम् ।
रक्तपित्तं परीसर्पं श्वयथु च नियच्छति ॥ २१३ ॥

पाण्डुरोग में खण्डसमक चूर्ण—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), बेल का गूदा, अब्द (मोथा), पिपरामूल, चित्रक, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, चविका (चव्य), तिन्तिडीक, अम्लवेत—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर धातुमाक्षिक (रौप्यमाक्षिक), सभी चूर्णों के बराबर लौहभस्म एवं चूर्ण, रौप्यमाक्षिक तथा भस्म के समभाग शर्करा मिला दे । या शर्करा की चासनी बनाकर उस में चूर्ण छोड़ कर ठंढा होने पर मधु मिला कर वटक बना ले । इस चूर्ण को मधु के साथ चाटे या वटक को खाकर यथासात्म्य (यथा अनुकूल) अनुपान का प्रयोग करे । यह चूर्ण या 'वटक' कुष्ठ, आलस्य, प्रमेह, उदर रोग, कामला, पाण्डुरोग, कास, हलीमक (पाण्डुरोग के बाद रोगी का वर्ण हरित, नील तथा पीत वर्ण का हो जाना) तथा शिरःशूल को नाश करता है । और

प्रसेक (नजला), अरुचि, मूर्च्छा, हल्लास (मिचली), मन्दाग्नि, रक्तपित्त, परीसर्प (चर्म कुष्ठ) तथा शोथ को दूर करता है ॥ २०९-२१३ ॥

शोफे पाठाद्यं चूर्णम्—

पाठा सकृष्णा गजपिप्पली च निदग्धिका नागरचित्रकौ च।
सपिप्पलीमूलसजाजिरात्रिमुस्तं च चूर्णं सुखतोयपीतम्।
हन्यात्त्रिदोषं चिरजं च शोफं कुष्ठं च चूर्णस्य हि सुप्रयोगात् ॥२१४॥

शोथ रोग में पाठाद्य चूर्ण—पाढ़ी, पीपर, गजपीपर, छोटी कटेरी (रेंगनी), सोंठ, चित्रक, पिपरामूल, स्याहजीरा, रात्रि (निशा-हल्दी), मोथा—समभाग इन द्रव्यों का चूर्ण, ईषद् उष्ण जल से पान करने पर पुराना त्रिदोषज शोथ तथा कुष्ठ रोग को नाश करता है। इस चूर्ण को पथ्यपूर्वक सेवन करने से उपर्युक्त रोगों को अच्छी तरह दूर करता है ॥ २१४ ॥

कुष्ठे वाकुचिकाद्यं चूर्णम्—

वाकुची त्रिफला वह्निर्भल्लातश्च शतावरी।
सिन्दुवारोऽश्वगन्धा च निम्बः पञ्चाङ्गसंयुतः ॥ २१५ ॥
मासैकं भक्षितं हन्ति चूर्णमेषां समाशकम्।
सर्वकुष्ठानि वातांश्च रोगिणां नात्र संशयः ॥ २१६ ॥

कुष्ठरोग में वाकुचाद्य चूर्ण—वाकुची, त्रिफला (हर्रें, बहेड़ा, आंवला), चित्रक, शु० भल्लातक, शतावरी, सिन्दुवार, अश्वगन्धा, पत्र-पुष्प-फल-छाल सहित नीम—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण एक मास तक खाने से सभी प्रकार के कुष्ठ रोग, तथा रोगियों के वात रोगों को नाश करता है। इसमे सन्देह नहीं है ॥ २१५-२१६ ॥

कुष्ठे पृथुनिम्बपञ्चकं चूर्णम्—

काले त्वक्छदसारबीजकुसुमैर्निम्बस्य तुल्यांशकैः
कृत्वा चूर्णमदः कटुत्रिकनिशाधात्र्यक्षपथ्यायुतैः।
पञ्चारिष्टमिदं पयोमधुघृतैरुष्णाम्बुना वा पुमान्
पीत्वा कासगरप्रमेहपिटिकाकुष्ठादिभिर्मुच्यते ॥ २१७ ॥

कुष्ठरोग मे पृथु निम्ब-पंचक चूर्ण—नीम की छाल-पत्र-सार-बीज तथा पुष्प यथासमय समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और सोंठ, पीपर, मरिच, आमाहल्दी, आंवला, बहेडा, हर्रें—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। इस पञ्चारिष्ट चूर्ण को मनुष्य—दूध, घृत, मधु या उष्ण जल से पान कर, कास, गर (संयोगज विष), प्रमेह-पिडका तथा कुष्ठ आदि रोगों से मुक्त हो जाता है ॥ २१७ ॥

कुष्ठे बृहत्पञ्चनिम्बकं चूर्णम्—

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणाऽमिततेजसा ।
प्रोक्त यच्च्यवनादिभिरुपयुक्तं महर्षिभिः ॥ २१८ ॥
पुष्पकाले तु निम्बस्य कुसुमानि समाहरेत् ।
फलकाले फल चैव मूल पत्र त्वचं तथा ॥ २१९ ॥
चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशक्रजौ ।
भल्लातको हरीतक्यः शुण्ठी चामलकैः सह ॥ २२० ॥
श्वदंष्ट्रा लोहचूर्ण च भृङ्गस्वरसभावितम् ।
अरिष्टखदिराभ्यां च भावयेत्पञ्चनिम्बकम् ॥ २२१ ॥
भावयित्वा पुनः पिष्टमेकस्थाने च कारयेत् ।
ततः कर्षमितां मात्रां सर्पिषा माक्षिकेण वा ॥ २२२ ॥
सुखाम्बुना वा तत्पीत तत्क्षणादेव जीर्यति ।
हन्यात्कुष्ठानि सर्वाणि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ २२३ ॥
अर्शांसि वातगुल्म च खालित्य पलितानि च ।
वातरक्त विशेषेण श्वित्रं कुष्ठं तथैव च ॥ २२४ ॥
कुष्ठनाशनमेतद्धि ब्रह्मणा गदित पुरा ।
वातातपसहो ह्येष न चात्र नियमः क्वचित् ॥ २२५ ॥
ग्राम्यधर्मं च कुर्वाणो भोजनं च यथेप्सितम् ।
मासमात्रोपयोगेन जीवेद्वर्षशतं पुमान् ॥ २२६ ॥
सर्वकामप्रसक्तोऽपि सर्वरोगैः प्रमुच्यते ।
षण्मासमुपयोगेन सर्परपि न दृश्यते ॥ २२७ ॥
वर्षमात्रोपयोगेन जीवेद्वर्षशतत्रयम् ।
नास्मात्परममस्त्यन्यत्कुष्ठरोगस्य भेषजम् ॥ २२८ ॥
साध्यानि यानि कुष्ठानि तान्येवामुं प्रकुर्वतः ।
निवर्तन्ते यथा क्रुद्धे सौपर्णे पवनाशिनः ॥ २२९ ॥

कुष्ठरोग मे बृहत्पञ्चनिम्बक चूर्ण—अतिशय तेजस्वी ब्रह्मा का कहा हुआ तथा च्यवनादि महर्षियों द्वारा प्रयुक्त रसायन को कहूँगा ।

पुष्प के समय में नीम का पुष्प तथा बीज के समय में बीज लेकर छिलका निकाल कर, और नीम की जड, पत्र तथा छाल, एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बना ले, एवं चित्रक, विडंग, व्याधिघातक (अमलतास), इन्द्रयव, शु० भल्लातक, हर्रे, सोंठ, आंवला, गोखरू—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे, तथा पूर्वोक्त निम्ब-पञ्चाग चूर्ण पांच भाग, लोह भस्म एक भाग मिलाकर, भृङ्गराज के स्वरस से भावित करे । सुखा कर पुन. नीम के क्वाथ तथा खैर के क्वाथ से

भावित कर सुखा ले और चूर्ण बनाकर रख ले। इसके बाद इस चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा में घृत या मधु के साथ या ईषदुष्ण जल के साथ पान करने से शीघ्र ही परिपाक हो जाता है। यह चूर्ण सभी प्रकार के कुष्ठरोग, सात प्रकार के महाक्षय (राजयक्ष्मारोग), अर्श, वातगुल्म, खालित्य (बाल का गिरना), पलित (असमय मे बाल का पकना), वातरक्त—तथा विशेष कर श्वित्र कुष्ठ (सफेद कोढ़) को नाश करता है। यह पञ्चनिम्बक कुष्ठनाशक चूर्ण को ब्रह्मा ने पहले कहा था। इस चूर्ण के सेवन-काल में वायु तथा धूप को सहन कर सकता है, कोई परहेज नहीं है। सभी ग्राम्यधर्म एवं यथेप्सित भोजन आदि को करते हुए एक—एक मास तक प्रयोग करने से एक सौ वर्ष तक मनुष्य जीवित रहता है। सभी कार्य में प्रसक्त रहने पर भी सभी रोगों से मुक्त हो जाता है। ६ मास तक प्रयोग करने पर सांप नहीं काट सकता (अर्थात् सांप के विष का असर नहीं होता है) एक वर्ष तक सेवन करने से तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इसको छोडकर कुष्ठ रोग की अन्य कोई औषध नहीं है। इस चूर्ण को प्रयोग करने से साध्य कुष्ठ दूर हो जाते है, जैसे गरुड़ के क्रुद्ध होने पर सर्प नष्ट हो जाते है॥ २१८–२२९ ॥

मन्दाग्नौ लवणभास्करं चूर्णम्—

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम्।
सैन्धवं च बिडं चैव पत्रं तालीसकेसरम्॥ २३० ॥
एषां द्विपलिकान् भागान् पञ्च सौवर्चलस्य च।
सारिवाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम्॥ २३१ ॥
त्वगेले चार्धभागे च सामुद्रात्कुडवद्वयम्।
दाडिमात्कुडवं चैकं द्वे पले चाम्लवेतसात्॥ २३२ ॥
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम्।
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम्॥ २३३ ॥
जगतोऽस्य हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम्।
तक्रमस्तुसुराशुक्तसीधुकाञ्जिकयोजितम्॥ २३४ ॥
जाङ्गलानूपमांसेषु भक्ष्येषु विविधेषु च।
मन्दाग्नीनां खादयतां शक्तो भवति पावकः॥ २३५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषशोषकुष्ठभगन्दरान्।
हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरस्थितान्॥ २३६ ॥
प्लीहानं वातगुल्मं च श्वासकासोदरक्षयान्।
शूलं च नाशयत्येतत्तुष्टो नृप इवापदः॥ २३७ ॥

मन्दाग्नि में लवण भास्कर चूर्ण—पीपर, पिपरामूल, धनिया, स्याहजीरा,

सेन्धानमक, विडनमक, तेजपत्र, तालीसपत्र, नागकेशर—दो २ पल, सौवर्चल नमक पांच पल, सारिवा, सफेद जीरा, सोंठ—एक २ पल, दालचीनी, इलायची—आधा २ पल, सामुद्र नमक दो कुडव (आठ पल), अनार का बीज एक कुडव (चार पल), अम्लवेत दो पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस गन्ध से युक्त अमृत के समान भास्कर नामक चूर्ण को सांसारिक मनुष्यों के हित के लिये भास्कर ने बनाया है। इस चूर्ण को तक्र, मस्तु (दही का तोड), सुरा, शुक्त, सीधु तथा काञ्जिक के साथ प्रयोग करने से वात श्लेष्म रोगों को नाश करता है। इस चूर्ण को जंगली तथा आनूपदेश के पशु-पक्षियों के मांस एवं अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों के साथ खाने से मन्दाग्नि के रोगियों की उदराग्नि प्रबल हो जाती है। यह चूर्ण—अर्शरोग, ग्रहणीदोष, सूखारोग, कुष्ठ, भगन्दर, हृदयरोग, आम दोष, अनेक प्रकार के उदरस्थ रोगों को एवं प्लीहावृद्धि, वातगुल्म, श्वास, कास, उरःक्षय तथा शूल को नाश करता है, जैसे संतुष्ट राजा गरीबों के आपत्तियों को नष्ट कर देता है ॥ २३०–२३७ ॥

परिणामशूले सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रामठं बिडम् ।
दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥ २३८ ॥
दधिगोमूत्रतोयैश्च मन्दपावकपाचितम् ।
तं यथाग्निबलं चूर्णं किंचिदुष्णेन वारिणा ॥ २३९ ॥
जीर्णे जीर्णे तु भुञ्जीत मांसादिस्निग्धभोजनम् ।
नाभिशूलमुरःशूलं गुल्मप्लीहभवं च यत् ।
परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम् ॥ २४० ॥

परिणाम शूल में सामुद्राद्य चूर्ण—सामुद्रनमक, सेन्धानमक, सज्जीखार, यवक्षार, सौवर्चलनमक, हिंगु, विडलमक, दन्तीमूल, लौहभस्म, मण्डूरभस्म, निशोथ, सूरन (जिमीकन्द)—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे और दधि, गोमूत्र तथा जल के साथ मन्द आँच से पकावे। शुष्क हो जाने पर पुनः चूर्ण बना दे। इस चूर्ण को कुछ उष्ण जल से अग्नि तथा बल के अनुसार पान करे। औषधि के परिपाक हो जाने पर मांस आदिक स्निग्ध भोजन करे। यह चूर्ण नाभिशूल, उरःशूल, गुल्म तथा प्लीहा का शूल, परिणामजन्य शूल के लिये अत्यन्त हितकर है ॥ २३८–२४० ॥

तुम्बर्वाद्यं चूर्णम्—

चूर्णं तदेतदिति तुम्बरुपुष्कराह्व-
पथ्याम्लवेतसबिडं रुचकं सहिङ्गु ।

सिन्धूद्भवेन सहितं यववारिपीतं
शूलापतन्त्रकविकारहरं यदुक्तम् ॥ २४१ ॥

तुम्बर्वाद्य चूर्ण—तुम्बरु, पुष्करमूल, हर्रे, अम्लवेत, विडनमक, सौवर्चल नमक, हिंगु, सेन्धानमक—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण यव के जल के साथ पान करने पर शूल तथा अपतन्त्रक के विकारों को दूर करता है ॥ २४१ ॥

शूले हिङ्ग्वष्टकं चूर्णम्—

व्योषाजमोदयुतजीरकयुग्मसिन्धु-
चूर्णं सरामठविभागमिति प्रयुक्तम् ।
हिङ्ग्वष्टकं हरति हृज्जठरान्तराल-
शूलानि गुल्मगुदजग्रहणीविकारान् ॥ २४२ ॥

शूल रोग में हिंग्वष्टक चूर्ण—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), अजमोदा, सफेदजीरा, स्याहजीरा, सेन्धानमक, हिंगु—इन द्रव्यों को समभाग—लेकर चूर्ण बनावे। यह हिंग्वष्टक चूर्ण हृदय, जाठराग्नि के अन्दर का शूल, गुल्म, अर्शरोग तथा ग्रहणी रोग को दूर करता है ॥ २४२ ॥

अरोचके द्वितीय हिङ्ग्वष्टकं चूर्णम्—

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति ॥ २४३ ॥

अरोचक रोग मे द्वितीय हिंग्वष्टक चूर्ण—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), अजमोदा, सेन्धानमक, सफेदजीरा, स्याह जीरा ये सातों सम (बराबर २ में धरण—तुला से तौल) चूर्ण बनावे और आठवे भाग की पूर्ति करने वाले हिंगु को घृत में भूनकर महीन बनाकर अच्छी तरह मिला दे। इस चूर्ण को भोजन करते समय सर्वप्रथम (एक मासे से तीन मासे तक) घृत के साथ मिलाकर प्रथम ग्रास अन्न के साथ भक्षण करे। यह चूर्ण उदराग्नि को बढ़ाता है और वात रोगों को नाश करता है ॥ २४३ ॥

मन्दाग्नौ रामठाद्यं चूर्णम्—

रामठं रुचकं वह्निर्वचाजीरकनागरम् ।
विडङ्गश्चित्रकः कुष्ठं कणामरिचवेतसम् ॥ २४४ ॥
दीप्यकश्चेति सर्वाणि समभागानि कारयेत् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतं वह्निवृद्धिकरं परम् ॥ २४५ ॥

मन्दाग्नि से रामठाद्य चूर्ण—हिंगु, सौवर्चलनमक, वह्नि (शु० भल्लातक), वच, स्याहजीरा, सोंठ, विडंग, चित्रक, कूठ, पीपर, मरिच, अम्लवेत, अज-

वायन—इन सभी द्रव्यों को समभाग लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह चूर्ण गरम जल से पान करने पर अच्छी तरह उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ २४४–२४५ ॥

सर्वाङ्गशूले चित्रकाद्यं चूर्णम्—

चित्रकः पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली।
हिङ्गु पुष्करमूलं च दाडिमं कृष्णजीरकम् ॥ २४६ ॥
विडङ्गहपुषाधान्यशताह्वाहिङ्गुपत्रिकाः।
चव्याम्लवेतसाजाजीबस्तगन्धाशटीवचाः ॥ २४७ ॥
तुम्बुरुश्चाजमोदा च यवानी रुचकं तथा।
समभागानि सर्वाणि सर्वस्तुल्यं तु नागरम् ॥ २४८ ॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा मातुलुङ्गेन भावयेत्।
ततः कर्षमितां मात्रां पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २४९ ॥
मद्येन मस्तुना वापि यूषेणापि रसेन वा।
जयेत्सर्वाङ्गजं शूलं कोष्ठगं कुक्षिगं तथा ॥ २५० ॥
अर्शोजठरगुल्मघ्नं दीपनीयं विशेषतः।
चित्रकाद्यमिदं चूर्णमामवातहरं परम् ॥ २५१ ॥

सर्वाङ्ग शूल में चित्रकाद्य चूर्ण—चित्रक, पिपरामूल, पीपर, गजपीपर, हिंगु, पुष्करमूल, अनार, मंगरैल, विडंग, हाऊबेर, धनिया, सौंफ, हिंगुपत्री, चव्य, अम्लवेत, स्याहजीरा, बस्तगन्धा (अजवायन), शटी (कपूरकचरी), वच, तुम्बुरु, अजमोदा, खुरासानी अजवायन, सौवर्चलनमक—समभाग और सभी द्रव्यों के बराबर सोंठ लेकर इन सभी द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और बिजौरा नीबू के रस से भावित कर शुष्क हो जाने पर चूर्ण बना ले। इस चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा में गरम जल, मद्य, मस्तु (दही का तोड़), यूष या रस के साथ पान करे। यह चित्रकाद्य चूर्ण सर्वाङ्ग शूल, कोष्ठकगत शूल तथा उदरगत शूल को जीत लेता है। अर्शरोग, उदररोग तथा गुल्म को नाश करने वाला है। विशेष कर दीपक है एवं आमवात को अच्छी तरह दूर करने वाला है ॥ २४६–२५१ ॥

मन्दाग्नौ सैन्धवाद्यं चूर्णम्—

सिन्धुसौवर्चलव्योषपथ्याजीरकचित्रकैः।
विडङ्गयावशूकाह्वपाक्यग्रन्थिकरोमकैः ॥ २५२ ॥
त्रिवृच्चव्ययुतैश्चूर्णं तक्रेणाम्लाम्बुना पिबेत्।
कल्पितं वह्निदीप्त्यर्थं प्रातरुत्थाय मानवः ॥ २५३ ॥

मन्दाग्नि में सैन्धवाद्य चूर्ण—सिन्धु (सेन्धानमक), सौवर्चलनमक,

व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), हर्रे, जीरा, चित्रक, विडंग, यावशूक (यवक्षार), पाक्य (विडनमक), ग्रन्थिक (पिपरामूल), रोमक (साँभरनमक), निशोथ, चव्य—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। मनुष्य इस चूर्ण को प्रातःकाल उठकर तक्र या अम्ल जल से पान करे। यह अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये बनाया गया है ॥ २५२–२५३ ॥

वातव्याधौ सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानां क्षारो यवानामजमोदभागः।
हरीतकीपिप्पलिशृङ्गवेरं हिङ्गुर्विडङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ २५४ ॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पिण्डान् प्रथमं तु पञ्च।
अजीर्णवातं ग्रहगुल्मवातं वानप्रमेहं विषमं च वातम्।
सकामले पाण्डुविसूचिके च श्वासं च कासं च हरेत्प्रयुक्तम् ॥२५५॥

वात व्याधि में सामुद्राद्य चूर्ण—सामुद्रनमक, सौवर्चलनमक, सेन्धानमक, यवक्षार, अजमोदा, हर्रे; पीपर, सोंठ, हिंगु, विडंग—समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को घृत में मिलाकर भोजन के साथ, पहले पांच ग्रास (कौर) भोजन करे। यह चूर्ण इस प्रकार प्रयोग करने से अजीर्णवात, ग्रह, गुल्मवात, प्रमेहवात, विषमवात, कामला, पाण्डुरोग, विसूचिका, श्वास तथा कास को दूर करता है ॥ २५४–२५५ ॥

नारसिंहं चूर्णम्—

प्रस्थं शतावरीचूर्णं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिम् ॥ २५६ ॥
प्रस्थद्वयं तु भल्लातांश्चित्रकस्य दशैव तु।
तिलानां लुञ्चितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ २५७ ॥
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः।
माक्षिकं शर्करार्धेन तदर्धेन च वै घृतम् ॥ २५८ ॥
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दचूर्णकम्।
एतानि सूक्ष्मचूर्णानि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २५९ ॥
पलार्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चात्र भोजनम्।
एष मासोपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥ २६० ॥
वलीपलितखालित्यप्लीहव्याधींश्च पीनसान्।
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं च भिनत्त्यपि ॥ २६१ ॥
अष्टादशैव कुष्ठानि तथाऽष्टावुदराणि च।
प्रमेहं च महाव्याधिं पञ्चकासान् सुदुस्तरान् ॥ २६२ ॥
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्।

विंशति श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान् ।
एताः सर्वा रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २६३ ॥
सकाञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गवेगी जलदौघनिःस्वनः ।
स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरम्यः सुरूपवान् सत्त्ववतां वरिष्ठः ॥२६४॥
पुत्रान् संजनयेद्धीमान्नरसिंहनिभांस्तथा ।
नारसिंहेति विख्यातश्चूर्णो रोगगणापहः ॥ २६५ ॥

नारसिंह चूर्ण—शतावरी, गोखरू १-१ प्रस्थ, वाराहीकन्द वीस पल, गुडूची चूर्ण वीस पल, शु० भल्लातक चूर्ण दो प्रस्थ, चित्रक की छाल का चूर्ण दशप्रस्थ, शु० तिल का चूर्ण एक प्रस्थ, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण आठपल, शर्करा सत्तरपल, मधु पैंतिस पल, घृत साढ़े सत्रह पल, विदारीकन्द चूर्ण, शतावरी चूर्ण के बराबर (एक प्रस्थ)—इन सभी सूक्ष्म चूर्णों को मिलाकर घृतस्निग्ध भाण्ड मे भरकर रख दे । इस चूर्ण को आधा पल की (दो कर्ष) मात्रा में सेवन करे और अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करे । यह चूर्ण एक मास तक प्रयोग करने से रोगसहित वृद्धावस्था को नाश करता है अर्थात् जराजन्य उपद्रवों को दूर करता है, वलि (मुख में झुर्री पड़ना), पलित (असमय में बाल का पकना), खालित्य (बाल का गिरना), प्लीहावृद्धि, पीनस (पुराना दुर्गन्ध युक्त नासास्राव), भगन्दर तथा मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है और पथरी को भेदन भी करता है । अट्ठारह प्रकार के कुष्ठरोग, आठ प्रकार के उदररोग, प्रमेह, महाव्याधि (राजयक्ष्मा), पांच प्रकार के दुस्साध्य कास, अस्सी प्रकार के वात रोग, चालिस प्रकार के पित्तरोग, वीस प्रकार के श्लैष्मिक रोग, द्विदोष जन्य रोग तथा सान्निपातिक रोग—इन सभी रोगों को नाश करता है, जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नाश करता है । इस चूर्ण को सेवन करने से स्वर्ण के समान कान्ति, सिंह के समान पराक्रम, घोड़े के समान वेग, मेघ के समान स्वर, अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवान, पराक्रमियों में श्रेष्ठ होता है और सैकड़ों स्त्रियों के साथ संभोग करने मे समर्थ होता है । एवं नरसिंह के समान पराक्रमी तथा बुद्धिमान् पुत्र को पैदा करता है । यह नारसिंह नामक प्रसिद्ध चूर्ण रोग-समूह को नाश करने वाला है ॥ २५६–२६५ ॥

अतिसारे गङ्गाधरं चूर्णम्—

अरलुकघनशुण्ठीधातकीबिल्वरोध्र
कुटजफलसमेतं मोचनिर्याससयुक्तम् ।
अतिविषजलपाठाः साहकारं च बीजं
मसृणमधुविमिश्रं तण्डुलाम्बुप्रपीतम् ॥ २६६ ॥

कफोद्भवं मारुतपित्तसंभवं जयेदतीसारमयं तथाऽऽमजम् ।
प्रवृद्धगङ्गाधरनाम चूर्णकं तथा हि दोषं ग्रहणीभवं च ॥ २६७ ॥

अतिसार में गंगाधर चूर्ण—अरलु (स्योनाक), मोचा, सोंठ, धाय का फूल, बेलका गूदा, लोध्र, इन्द्रयव, सेमर का गोंद, धमासा, नागरमोथा, (सुगन्धवाला), पाढ़ी, आम की गुठली—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस सूक्ष्म चूर्ण को मधु में मिलाकर तण्डुल के जल के साथ पान करें। यह प्रवृद्ध गंगाधर नामक चूर्ण कफजन्य, वात-पित्तजन्य तथा आमदोषजन्य अतिसार को जीत लेता है। और ग्रहणीजन्य दोष को भी नाश करता है ॥ २६६-२६७ ॥

गुल्मे कटुत्रिकाद्यं चूर्णम्—

कटुत्रिकं तिक्तकरोहिणी घन किराततिक्तोऽथ शक्रतोयकाः ।
ससप्तपर्णातिविषादुरालभा पटोलमूलं सह त्रायमाणया ॥ २६८ ॥
विडङ्गचव्यं सगुडूचि निम्बकं प्रियङ्गुनीलोत्पलरोध्रमञ्जनम् ।
सधातकीमोचरसं फलत्रिकं तथा नवं बिल्वकपित्थसारिवम् ।
समाः स्युरेते द्विगुणं तु चित्रकं द्विरष्टभागं कुटजात्त्वचं ततः ॥२६९॥
सुसूक्ष्मपिष्टं शिशिराम्बुयोजितं पिबन्मनुष्योऽर्धपलं गुडान्वितम् ॥
बुभुक्षिते स्यान्मृदु भोजनं हिमं निहन्ति गुल्मान्कफपित्तसंभवान् ॥
ज्वरातिसारग्रहणीगदारुचीः प्रमेहमूत्रक्षयवर्ध्मविद्रधीन् ॥ २७० ॥
अजीर्णपाण्डुक्षतकासशोफान् सदा प्रयुक्तः सगुडः कटुत्रिकः ।

गुल्मरोग में कटुत्रिकाद्य चूर्ण—कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), कुटकी, मोथा, किराततिक्तक (चिरायता), इन्द्रयव, छतिवन, अतीस, धमासा, परोरा की जड़, त्रायमाणा, विडंग, चव्य, गुडूची, नीम, प्रियंगु, नीलकमल, लोध्र, अंजन (स्रोतोञ्जन), धाय का फूल, सेमर का गोंद, फलत्रिक (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), नव (रक्त पुनर्नवा), बेल का गूदा, कैंथ का गूदा, सारिवा-मूल—समभाग, चित्रक दो भाग, कोरैया की छाल सोलह भाग—इन सभी औषधों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। मनुष्य इस चूर्ण को आधा पल की मात्रा मे बराबर गुड़ मिलाकर ठंढा जल से पान (सेवन) करने पर, कफ-पित्तजन्य गुल्म रोग को नाश करता है। भूख लगने पर हल्का तथा ठंढा भोजन करे। यह कटुत्रिकाद्य चूर्ण गुड़ के साथ हमेशा प्रयोग करने से ज्वर, अतिसार, ग्रहणीरोग, अरुचि, प्रमेह, मूत्राघात, वर्ध्म, विद्रधि, अजीर्ण, पाण्डु-रोग, उरःक्षत, कास तथा शोथ को नाश करता है ॥

स्थौल्ये व्योषाद्यं चूर्णम्—

व्योषकट्वीवराशिग्रुविडङ्गातिविषास्थिराः ।
हिङ्गुसौवर्चलाजाजीयवानीधान्यचित्रकाः ॥ २७१ ॥

बृहत्यौ हपुषा पाठा निशे मूलं च केवुकात् ।
एषां चूर्णं समध्वाज्य तैलं चापि दशांशकम् ॥ २७२ ॥
कलाभागैस्तु सक्तूनां युक्तं पीतं निहन्ति तत् ।
नृणां स्थौल्यादिकान्दोषान् कफमेदोभवांस्तथा ॥ २७३ ॥
हृद्रोगकामलाश्वित्रश्वासकासगलग्रहान् ।
करोति बुद्धिं मेधां च सन्नस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ २७४ ॥
अतिस्थौल्यादिकान् दोषान् रोगानन्यांश्च तद्विधान् ।

स्थूलता में व्योषाद्य चूर्ण—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कुटकी, वरा (त्रिफला), सहिजन, विडंग, अतीस, शालपर्णी, हिंगु, सौवर्चल नमक, स्याहजीरा, अजवायन, धनिया, चित्रक, वनभंटा, रेंगनी, हाऊवेर, पाढ़ी, आमाहल्दी, दारुहल्दी, केसुआ की जड़—इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मधु एक भाग, घृत आधा भाग, तैल दश भाग, सक्तु सोलह भाग मिला कर पान करे। यह चूर्ण मनुष्यों के स्थूलता आदि दोषों को, कफमेदोजन्य दोषों को तथा हृद्रोग, कामला, सफेद कोढ, श्वास, कास तथा गलग्रह को नाश करता है। बुद्धि (स्मरण शक्ति), एवं मेधा (धारणा शक्ति) को बढाता है, मन्दाग्नि को प्रदीप्त करता है। अत्यन्त स्थूलता आदि दोष तथा उसी प्रकार के अन्य रोगों को भी नाश करता है ॥

वातकासे विडङ्गाद्य चूर्णम्—

विडङ्गं नागरं रास्ना पिप्पली हिङ्गु सैन्धवम् ।
भार्गी क्षारश्च तच्चूर्णं पिबेद्धि घृतमात्रया ॥ २७५ ॥
सकलेऽनिलजे कासे श्वासे हिध्मानिलार्तिषु ।

वातजन्य कास में विडंगाद्य चूर्ण—विडग, सोंठ, रासन, पीपर, हिगु, सेन्धानमक, भांगरा, यवक्षार—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण घृत में (छः मासा की मात्रा) मिलाकर, सभी प्रकार के वातविकार, कास, श्वास, हिध्मा, एवं वातजन्य उपद्रवों में पान करे। अर्थात् उपर्युक्त रोगों को नाश करता है ॥

गुल्मे वचाद्यं चूर्णम्—

वचा वत्सकबीजं च कुष्ठं चित्रकमेव च ॥ २७६ ॥
पिप्पली शृङ्गवेरं च पाठा कटुकरोहिणी ।
यवानी च पटोलं च सैन्धवातिविषे तथा ॥ २७७ ॥
हपुषा चाजगन्धा च शटी पौष्करमेव च ।
एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २७८ ॥

तत्र कर्षसमां मात्रां पिबेदुष्णेन वारिणा ।
गुल्मान् पञ्च च हृद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ २७९ ॥

गुल्म रोग में वचाद्य चूर्ण—वच, इन्द्रयव, कूठ, चित्रक, पीपर, सोंठ, पाढ़ी, कुटकी, अजवायन, परोरा का पत्ता, सेन्धानमक, अतीस, हाऊबेर, अजमोदा, कपूरकचरी, पुष्करमूल—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इस चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा में गरम जल से पान करे । यह चूर्ण पाँच प्रकार के गुल्म, हृदयरोग तथा पेट के रोगों को नाश करता है ॥ २७६–२७९ ॥

पाण्डुरोगे किराततिक्तकाद्यं चूर्णम्—

किराततिक्तं सुरदारु दार्वी मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम् ।
दुरालभा पर्पटकं सनिम्ब फलत्रिकं वह्निकटुत्रिकं च ॥ २८० ॥
विडङ्गसारं च समांशकानि ह्ययोरजोऽर्धेन विचूर्णितानि ।
ईषद्घृताक्तं मधुनाऽवलीढमर्शांसि शोष ग्रहणीप्रदोषम् ।
कुष्ठानि कृच्छ्राणि हलीमक च ज्वरांश्च घोरानथ पाण्डुरोगान् ॥
आमोद्भवान् वातसमुत्थितांश्च पित्तोद्भवाञ्छ्लेष्मसमुद्भवांश्च ।
दुष्टव्रणान्वै कफविद्रधींश्च श्वित्राणि हन्याच्छतशः प्रयोगः ॥ २८२ ॥

पाण्डुरोग में किराततिक्तकाद्य चूर्ण—किराततिक्त (चिरायता), देवदारु, दारुहल्दी, मोथा, गुडूची, कुटकी, परोरा का पत्ता, धमासा, पित्तपापड़ा, नीम, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आँवला), चित्रक, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), विडंग, विजयसार—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे और चूर्ण के आधा भाग लौहभस्म मिला दे । यह चूर्ण थोड़ा घृत तथा मधु के साथ मिलाकर चाटने से अर्श रोग, सूखा रोग, ग्रहणी दोष, कष्टसाध्य कुष्ठ रोग, हलीमक, (पाण्डु रोग के बाद शरीर का नील वर्ण हो जाना), ज्वर, भयंकर आमजन्य, वातजन्य, पित्तजन्य तथा कफजन्य पाण्डु रोग को नाश करता है । सैकड़ों बार प्रयोग करने से, दुष्टव्रण (बिगडा हुआ घाव), कफ विद्रधि तथा श्वित्र (सफेद कोढ़) को भी नाश करता है ॥ २८०–२८२ ॥

कुष्ठादौ खण्डसमं चूर्णम्—

त्रिफलाव्योषबिल्वाब्दपिप्पलीमूलचित्रकैः ।
चविकात्वचपत्रैलातिन्तिडीकाम्लवेतसैः ॥ २८३ ॥
समांश धातुसाक्षीकं सर्वैस्तुल्या सिता भवेत् ।
भक्षयित्वा यथासात्म्यमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २८४ ॥
चूर्णितं मधुना लेह्य वटकान् वा समाक्षिकान् ।
नाशयेत्कुष्ठमालस्यं प्रमेहोदरकामलाः ॥ २८५ ॥

पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं हलीमकशिरोरुजम् ।
प्रसेकमरुचिं मूर्च्छां हृल्लासं मन्दवह्निताम् ॥ २८६ ॥
रक्तपित्तं परीसर्पं श्वयथुं चाङ्गतापकम् ।
जनयेत्प्राणमुत्साहं बलवर्णास्थिराङ्गताम् ॥ २८७ ॥
चूर्णं खण्डसमं नाम समस्तान्नाशयेद् गदान् ।

कुष्ठ आदि रोग में खण्डसमचूर्ण—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), बेल का गूदा, अब्द (मोथा), पिपरामूल, चित्रक, चव्य, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, तिन्तिडीक, अम्लबेत, धातुमाक्षिक (माक्षिक)—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे । इस चूर्ण को यथासात्म्य अनुपान (अनुकूल पड़ने वाले अनुपान) के साथ प्रयोग करे । इस चूर्ण को मधु के साथ चाटे या मधु के साथ वटक बनाकर भक्षण करे । यह चूर्ण कुष्ठरोग, आलस्य, प्रमेह, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, हलीमक, शिरःशूल, प्रसेक (नजला), अरुचि, मूर्च्छा, हृल्लास (मिचली), मन्दाग्नि, रक्तपित्त, परीसर्प (विसर्प-झलकई), शोथ तथा अपतानक (आक्षेपक-टिटनस) को नाश करता है और प्राण (जीवन), उत्साह, बल, कान्ति तथा अंग की दृढ़ता को उत्पन्न करता है । यह खण्डसमनामक चूर्ण सभी रोगों को नाश करता है ।

कुष्ठे वाकुच्याद्यं चूर्णम्—

पलानि संगृह्य दशेन्दुराज्याः फलत्रयस्यापि समानमेतत् ।
विडङ्गसारस्य पलानि सप्त शिलोद्भवाऽर्धं च पुरस्य चैकम् ॥ २८८ ॥
शतं च भल्लातकसत्फलानां पलं तथा पुष्करमूलनाम्नः ।
पलत्रयं लोहभवं सुचूर्णं त्रुटिः पलार्धं ह्यथ कर्षभागान् ॥ २८९ ॥
सपत्रकृष्णाघनयष्टिकानां सचित्रकग्रन्थिककेशराणाम् ।
न्यग्रोधमूलोषणकुङ्कुमानामेकत्र सचूर्ण्य समं तु खण्डम् ॥ २९० ॥
खादेद्यथाग्नि प्रयतस्तु मात्रां कुष्ठान्यशेषाण्यपयान्ति नाशम् ।
अर्शोविकाराः षडपि प्रवृद्धाः श्वित्राणि चित्राण्युदराणि चाष्टौ ॥२९१॥
क्षयाश्च कृच्छ्राः खलु पाण्डुरोगाः कण्ठामयाः विंशतिरेव मेहाः ।
उन्मादरोगज्वरनेत्ररोगा नासोद्भवाः पञ्चविधाश्च गुल्माः ॥ २९२ ॥
वातमशीतिविकारं चत्वारिंशत्प्रभेदजं पित्तम् ।
श्लेष्माणं विंशतिकं विनाशयत्यति च दुष्टमपि ॥ २९३ ॥
भवति रुचिरदीप्तिर्गौरवर्णो मनुष्यः
समधिकशतवर्षं जीवतीह प्रगल्भम् ।

विघटितघनरोगो मासमात्रप्रयोगाद्-
युवतिनयनहारी हृष्टपुष्टो वृषश्च ॥ २९४ ॥

कुष्ठरोग मे वाकुचाद्य चूर्ण—इन्दुराजी (वाकुची) दशपल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) दशपल, विडंगसार, सातपल, शिलोद्भव (पाषाण-भेद) आधापल, गुग्गुलु एक पल, शु० भल्लातक का फल एक सौ (पल), पुष्करमूल एक पल, लौह भस्म तीन पल, इलायची आधा पल, तालीसपत्र, पीपर, मोथा, मुलेठी, चित्रक, पिपरामूल, नागकेशर, न्यग्रोधमूल (वरोही 'वटांकुर'), मरिच, केशर—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनाये और चूर्ण के बराबर मिश्री मिला दे। इस चूर्ण को अग्नि के अनुसार, मात्रापूर्वक भक्षण करे, इसके भक्षण करने से सभी प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते है। प्रवल छः प्रकार के अर्शरोग, अनेक प्रकार के श्वित्र (सफेद कोढ़), आठ प्रकार के उदररोग, क्षय (राजयक्ष्मा), कष्टसाध्य-पाण्डुरोग, कण्ठरोग, बीस प्रकार के प्रमेहरोग, उन्मादरोग, ज्वर, नेत्ररोग, नासारोग, पांच प्रकार के गुल्म रोग भी नष्ट होते है। बिगड़े हुए अस्सी प्रकार के वात रोग, चालिस प्रकार के पित्तरोग, बीस प्रकार के श्लैष्मिक रोगों को नाश करता है। मनुष्य इस चूर्ण को एक मास तक प्रयोग करने से सुन्दर तेज, तथा गौर वर्ण का हो जाता है। अच्छी तरह सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहता है। भयंकर रोगों को दूर कर प्रसन्न, पुष्ट तथा बलवान होता है और युवतियों के नेत्र को अपनी तरफ खीचनेवाला होता है ॥ २८८–२९४ ॥

उदरे भस्मार्कचूर्णम्—

युगर्तुसंख्यानि दलानि भानोश्चत्वारि काण्डानि सुधाद्रुमस्य।
सुरेन्द्रवल्लथा दश सत्फलानि पञ्चैव पत्राणि कुमारिकायाः ॥ २९५ ॥
चत्वारि वृन्ताकतरोः फलानि व्याघ्रीचतुःषष्टिफलानि युक्त्या।
पञ्चाङ्गमेक हरिपर्णकन्दं सिद्धार्थतैल च पलप्रमाणम् ॥ २९६ ॥
यवाह्वसौवर्चलयोः पलं स्याद् धूर्तस्य वार्धेश्च फलं पल हि।
पलानि पञ्चैव शिवाह्वयस्य गोकण्टक चापि वदन्ति वैद्याः ॥ २९७ ॥
गुरूपदेशादधिगम्य सम्यग्भाण्डे स्वबुद्ध्याऽर्कदलानि मुक्त्वा।
सर्वाणि चान्यानि महौषधानि सिद्धार्थतैलेन विमिश्रितानि ॥ २९८ ॥
प्रक्षिप्य संरुद्धय मुख तदीयं मृत्कर्पटं सन्धिषु वेष्टनीयम्।
गम्भीरगर्ते कुहरे निवेश्य प्रच्छादनीयं छगणैः प्रभूतैः ॥ २९९ ॥
उत्तार्य यत्नेन सुशीतल तं क्षारं चतुर्भिः प्रहरैः सुसिद्धम्।
सूक्ष्मीकृत जीरककर्षषट्कं मध्ये क्षिपेदर्धपलं क्षवस्य ॥ ३०० ॥
तदाढ्यवाते ह्यथ पाण्डुरोगे भगन्दराजीर्णविसूचिकासु।

आनाहबन्धे ग्रहणीविकारे पाषाणिकाविद्रधिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३०१ ॥
तक्रेण कर्षार्धमिदं प्रदेयं भस्मार्कचूर्णं दधिमस्तुना वा ।
श्वासे सकासे हृदयोपरोधे कण्ठग्रहे जीर्णगुडेन देयम् ॥ ३०२ ॥
तैलेन शूले मधुनोदरेषु गुल्मप्रकोपे फलपूरकेण ।
सौवीरकेणाथ सदा प्रयोज्यमुष्णेन सर्वत्र जलेन देयम् ॥ ॥ ३०३ ॥
यथा मृगेन्द्रो द्विपदर्पहन्ता वज्रं यथा भूधरमध्यभेदि ।
अयं तथा योगवरो जनानां निहन्ति दुष्टानपि रोगसंघान् ॥ ३०४ ॥
योगप्रदीपो मुनिभिः पुराणैर्निवेदितो मूलमसौ हितानाम् ।
अनेन भीमादपि गाढवह्निर्नरो भवेत्पथ्यहितोपचारः ॥ ३०५ ॥

उदररोग में भस्मार्क चूर्ण—मदार का पत्ता चौसठ, सेहुड़ का काण्ड (कोपड़पत्र) चार, इन्द्रायण का स्वच्छ फल दश, घृतकुमारी का पत्ता चार, वृन्ताकतरु (वनभंटा) का फल चार, भटकटैया का फल चौसठ, हरिपर्ण (मूली) कन्द पञ्चांग सहित एक, सरसों का तैल एक पल, इन्द्रयव एक पल, सौवर्चलनमक एकपल, धतूर का फल एकपल, वार्धिकाफल (समुद्रफल) एक-पल, हरें पांचपल, गोकण्टक (गोखरू) पांच पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर गुरु के उपदेश तथा अपनी बुद्धि से अच्छी तरह समझ कर स्वच्छ भाण्ड में मदार का पत्ता रक्खे और सरसों के तैल मे सभी द्रव्यों को मिलाकर छोड़ दे और कपड़मिट्टी बनाकर मुख तथा सन्धियों को बन्द कर दे । गहरे गढ्ढे में रखकर पर्याप्त कण्डों से ढक दे तथा आग जलादे । चार पहर के बाद चार सिद्ध एवं शीत हो जाने पर उतार ले । इसको पीसकर स्याहजीरा का चूर्ण छः कर्ष, सफेद सरसो का चूर्ण आधा कर्ष मिला दे । इस भस्मार्कचूर्ण को आधा कर्ष की मात्रा मे दधि मस्तु या तक्र के साथ आढ्यवात, पाण्डुरोग, भगन्दर, अजीर्ण, विसूचिका (हैजा), आनाह, विबन्ध (पेट का फूलना तथा मलावरोध होना), ग्रहणी-विकार, पाषाणिका (कर्णमूलशोथ—कर्णफेर) तथा मूत्रकृच्छ्र में सेवन कराना चाहिए । श्वास, कास, हृदय का उपरोध (कफ जकड़ जाने पर) तथा कण्ठग्रह में पुराने गुड़ के साथ देना चाहिए । शूल मे तैल के साथ, उदररोग में मधु के साथ, गुल्म रोग में बिजौरा नीबू के साथ, एवं सौवीरक (कांजी) तथा गरम जल से सर्वत्र देना चाहिए । जैसे सिंह हाथी के गर्व को नष्ट कर देता है और वज्र पर्वत के मध्य को भेदन कर देता है वैसे ही यह भस्मार्क चूर्ण मनुष्यों के दुष्ट रोग-समूहों को नाश करता है । प्राचीन महर्षियों ने कल्याण के मूलभूत इस उत्तम योग को बताया है । इस योग को पथ्य तथा हितकर उपचार के साथ प्रयोग करने से मनुष्य की उदराग्नि प्रदीप्त हो जाती है ॥ २९५–३०५ ॥

अर्शसि पूतीकरञ्जाद्यं चूर्णम्—

पूतीकरञ्जसूरणसुरताडकरञ्जसिन्धुजातानाम् ।
पथ्यामुसलीशीतककुब्जाग्नीनां च तुल्यांशम् ॥ ३०६ ॥
चूर्णं तक्रेणैनं पिबतस्तेनैव चाश्नतो भुक्तम् ।
पक्वफलानीव तरोरर्शांसि पतन्ति मासेन ॥ ३०७ ॥

अर्शरोग मे पूतीकरञ्जाद्य चूर्ण—पूतीकरञ्ज, सूरन, सुरताड (देवदाली), करंज, सेन्धानमक, हर्रे, मुसली, शीतक (लसोडा), कुब्ज (कूजा 'सदा गुलाब'), चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे । इस चूर्ण को तक्र के साथ पान करने से तथा तक्र के ही साथ भोजन करने से, एक मास में अर्श (अर्शाङ्कुर) गिर जाते हैं । जैसे पके पल पेड़ से गिर जाते है । (सूरन को पहले छीलकर टुकडा २ काटकर सुखा ले, उसके बाद चूर्ण बनावे) ॥ ३०६–३०७ ॥

गुल्मे यवक्षाराद्यं चूर्णम्—

यवक्षारं यवानी च पिबेदुष्णेन वारिणा ।
एतेन वातजं शूलं गुल्मश्चैव चिरोत्थितः ॥ ३०८ ॥
भिद्यते सप्तरात्रेण पवनेन यथा घनः ।
जीर्णे रसैस्तु भुञ्जीत शशलावकतैत्तिरैः ॥ ३०९ ॥

गुल्मरोग मे यवक्षाराद्य चूर्ण—यवक्षार तथा अजवायन के चूर्ण को बराबर लेकर गरम जल से पान करे । इस चूर्ण को सेवन करने से वातजन्य शूल, पुराना गुल्मरोग सात दिन के प्रयोग से नष्ट हो जाता है । जैसे वायु से मेघ नष्ट हो जाता है । भोजन के परिपाक हो जाने पर, शश (खरगोस), लावक (जंगली छोटी पक्षी) तथा तित्तिर के मांसरस के साथ औषधि को सेवन करे तथा इनके मांसरस के साथ भोजन करे ॥३०८–३०९॥

ज्वरातिसारे व्योषाद्यं चूर्णम्—

व्योषं वत्सकबीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
चित्रकं रोहिणी पाठा दार्वी चातिविषा समाः ॥ ३१० ॥
सूक्ष्मचूर्णीकृताः सर्वास्तत्तुल्या वत्सकत्वचः ।
सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ३११ ॥
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ।
अरुचिं हन्ति तृष्णां च ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३१२ ॥
कामलां ग्रहणीदोषान् गुल्मं प्लीहानमेव च ।
प्रमेहं पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ३१३ ॥

ज्वरातिसार में व्योषाद्य चूर्ण—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), इन्द्रयव,

नीम, भूनिम्ब (चिरायता), भृङ्गराज, चित्रक, मांसरोहिणी, पाढ़ी, दारुहल्दी, अतीस—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा चूर्ण के बराबर कोरैया की छाल का चूर्ण लेकर महीन बनाकर सब को एक जगह मिला दे और तण्डुल के जल से (एक तोला चावल चौगुना जल में एक घंटा तक भिगोकर मसल कर छान ले। इसको तण्डुलोदक कहते हैं) पान करे या मधु के साथ मिला कर चाटे। यह पाचक एवं ग्राही (मल को रोकने वाला) औषध है। अरुचि, तृष्णा को नाश करता है और ज्वर तथा अतिसार को नाश करने वाला है। यह चूर्ण कामला, ग्रहणी दोष, गुल्म, प्लीहवृद्धि, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा शोथ को अच्छी तरह नाश करता है ॥ २१०–२१३ ॥

शोफे कृष्णाद्यं चूर्णम्—

कृष्णाग्निविश्वघनजीरककण्टकारी-
पाठानिशाकरिकणामगधाजटानाम् ।
चूर्णं कवोष्णसलिलैरवलोड्य पीतं
नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ २१४ ॥

शोथ रोग में कृष्णाद्य चूर्ण—मरिच, चित्रक, सोंठ, मोथा, स्याहजीरा, भटकटैया, पाढ़ी, आमाहल्दी, करिकणा (गजपीपर), पीपर, जटामांसी—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को थोड़े गरम जल में मिला कर पान करे। इस चूर्ण को छोड़कर और कोई दवा मनुष्यों के शोथ को अच्छी तरह दूर करने वाला नहीं है ॥ २१४ ॥

श्वासहृद्रोगयोर्हिङ्गुपञ्चकं चूर्णम्—

हिङ्गु सौवर्चलं विश्वं दाडिमं साम्लवेतसम् ।
हन्ति श्वासं च हृद्रोगमिदं स्याद्धिङ्गुपञ्चकम् ॥ २१५ ॥

श्वास तथा हृदय रोग में हिंगुपंचक चूर्ण—हिंगु, सौवर्चलनमक, सोंठ, अनारदाना, अम्लबेंत—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण बनावे। यह हिंगु-पंचक नामक चूर्ण श्वास तथा हृदय के रोग को नाश करता है ॥ २१५ ॥

शोषे तिलाद्यं चूर्णम्

तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्वाज्यलेहिनः ।
क्षीरानुपानं मासेन शोषघ्नं नास्त्यतः परम् ॥ २१६ ॥

शोष रोग में तिलाद्य चूर्ण—तिल, कर्कन्धू (बेर), लाजा (लावा)—इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मधु तथा आधा भाग घृत मिलाकर दूध के अनुपान से चाटने पर एक मास में शोष (सूखा रोग) को नाश करता है। इससे अच्छी और कोई औषध नहीं है ॥ २१६ ॥

वर्ध्मरोगे बिल्वमूलाद्यं चूर्णम्—

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामातिल्वकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ।
कृष्णाग्रन्थिकवेल्लपञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं वर्ध्मजित् ॥३१७॥

वर्ध्मरोग मे बिल्वमूलाद्य चूर्ण—वेल, कैंथ, अरलु, चित्रक, वनभंटा, भटकटैया, कालानिशोथ, तिल्व (लोध्र), करंज, सहिजन—इन द्रव्यों का मूल—समभाग, सोंठ, शु० भल्लातक, पीपर, पिपरामूल, वेल्ल (विडंग), पञ्चलवण (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सांभर, सामुद्रनमक), यवक्षार, अजमोदा—समभाग लेकर पूर्वोक्त औषधियों की जड़ को अच्छी तरह स्वच्छ कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को काञ्जिक तथा गरम जल में मिला कर पान करे। यह चूर्ण वर्ध्म रोग को जीत लेता है ॥ ३१७ ॥

सर्वमेहेष्विन्द्रयवाद्यं चूर्णम्—

इन्द्रयवतीक्ष्णबीजासौवर्चलयावशूककर्षांशम् ।
मूर्वापाठाशुण्ठीद्विचतुरष्टांशकैर्भागैः ॥ ३१८ ॥
हिङ्ग्वर्धकर्षयुक्तं पेयामण्डेन दध्ना वा ।
नाशयति सर्वमेहानर्शांसि च दीपयत्यग्निम् ॥ ३१९ ॥

सभी प्रकार के प्रमेह रोग में इन्द्रयवाद्य चूर्ण—इन्द्रयव, तीक्ष्णबीजा, (सहिजन का बीज), सौवर्चलनमक, यवक्षार—एक २ कर्ष, मूर्वा (मोरवेल) दो कर्ष, पाठा चार कर्ष, सोंठ आठ कर्ष, हिंगु आधा कर्ष—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे (हिंगु को घृत में भून लेना चाहिए) यह चूर्ण पेया, मण्ड या दही के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह तथा अर्श रोगों को नाश करता है और उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ ३१८-३१९ ॥

शूले शर्कराद्यं चूर्णम्—

मरिचं शर्करा हिङ्गु सूक्ष्मचूर्णीकृतं पिबेत् ।
सुखोदकेन तद्धन्त्याशु शूलघ्नममृतोपमम् ॥ ३२० ॥

शूल रोग में शर्कराद्य चूर्ण—मरिच, शर्करा, घृत में भूना हुआ हिंगु—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को ईषदुष्ण जल से पान करे। यह चूर्ण शीघ्र ही शूल को नाश करता है और शूल के लिये अमृत के समान है ॥ ३२० ॥

आनाहे द्विरुत्तरं हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्—

द्विरुत्तरं हिङ्गुवचाग्निकुष्ठ सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् ।
सुखाम्बुनाऽऽनाहविसूचिकार्तिहृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ ३२१ ॥

आनाह में दुगुना उत्तरोत्तर हिंग्वाद्य चूर्ण—शु० हिंगु एक भाग, वच दो भाग, चित्रक चार भाग, कूट आठ भाग, सज्जीखार सोलह भाग, विडंग बत्तीस भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण थोड़े गरम जल के साथ पान करने से आनाह (पेट में वायु का भरना), हैजा, हृदय रोग, गुल्म तथा ऊर्ध्वग वायु को नाश करता है॥ ३२१॥

पानीयच्छायायां मुस्ताद्यं चूर्णम्—

मुस्ताजमोदबृहतीद्वयवाजिगन्धा-
द्विजीरकं दहनभृङ्गविडङ्गरास्नाः।
भूनिम्बनिम्बभववल्कलराजवृक्ष-
सौवर्चलं त्रिकटुकं त्रिफला सभार्गी॥ ३२२॥
सुधाकराख्यो जरणः सकुष्ठस्तथाऽपरो मालवदेशजातः।
निर्गुण्डिका सैन्धवमेथिके च मरीचमुण्डीमुशलीगुडूच्यः॥ ३२३॥
वातव्याधिं विसूचीं च छायामपरदेशजाम्।
निहन्ति सेवितं चूर्णमेतेषां पथ्यभोजिना॥ ३२४॥

पानीयच्छाया में मुस्ताद्य चूर्ण—मोथा, अजमोदा, वनभंटा, भटकटैया, अश्वगन्धा, सफेदजीरा, स्याहजीरा, दहन (चित्रक), भृङ्गराज, विडंग, रास्ना, चिरायता, नीम की छाल, भववल्कल (चालता फल = रोम फल की छाल), राजवृक्ष (अमलतास), सौवर्चलनमक, त्रिकटुक (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, वहेडा आवला), भांगरा, सुधाकराख्य (कर्पूर), जरण (हिंगु), कूठ, मालव देश-जात (पाठा), निर्गुण्डी, सेन्धानमक, मेथी, मरिच, मुण्डी, मुसली, गुडूची—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। यह चूर्ण पथ्यपूर्वक भोजन करने वाले व्यक्ति के सेवन करने पर वातव्याधि, विसूचिका तथा अपरदेशज छाया (अंग-प्रत्यंग में उत्पन्न व्यङ्ग रोग) को नाश करता है॥ ३२२-३२४॥

मन्दाग्नौ शतपुष्पाद्यं चूर्णम्—

शतपुष्पा विडङ्गानि सैन्धवं मरिचं समम्।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसंदीपनं परम्॥ ३२५॥

मन्दाग्नि मे शतपुष्पाद्य चूर्ण—सौंफ, विडंग, सेन्धा नमक, मरिच—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण गरम जल से पान करने पर अच्छी तरह उदराग्नि को प्रदीप्त करता है॥ ३२५॥

गुल्मे नारायण चूर्णम्—

शतपुष्पावचाकुष्ठकारव्योऽजाजिधान्यकम्।
द्वौ क्षारौ पिप्पलीमूलं यवानी कुञ्चिका शटी॥ ३२६॥

स्वर्णक्षीर्यजगन्धा च विशाला चित्रकः समम् ।
बृहद्दन्ती सप्तला च देया द्वित्रिचतुर्गुणाः ॥ ३२७ ॥
नारायणमिति ख्यातं चूर्णं श्रेष्ठं विरेचने ।
गुल्मानाहविषाजीर्णश्वासकासगलग्रहान् ॥ ३२८ ॥
शोफार्शोग्रहणीदोषभगन्दरगदाञ्जयेत् ।

गुल्म रोग में नारायण चूर्ण—सौंफ, वच, कूठ, कारवी (कलजीरी), स्याहजीरा, धनिया, सज्जीखार, यवक्षार, पिपरामूल, अजवायन, कुञ्चिका (मेथी), कपूरकचरी, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी), अजमोदा, इन्द्रायण, चित्रक—समभाग—बड़ी दन्तीमूल दो भाग, छोटी दन्तीमूल तीन भाग, सातला चार भाग—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह नारायण नामक चूर्ण विरेचन के लिये श्रेष्ठ है। यह चूर्ण गुल्म रोग, आनाह (पेट में वायु का भरना), विषजन्य उपद्रव, अजीर्ण, श्वास, कास, गलग्रह, शोथ, अर्श रोग, ग्रहणी दोष तथा भगन्दर रोग को जीत लेता है ॥

गुल्मे त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्—

त्र्यूषणत्रिफलाहिङ्गु कार्षिकं त्रिवृतापलम् ॥ ३२९ ॥
सौवर्चलार्धकर्षं च पलार्धं चाम्लवेतसम् ।
तच्चूर्णं शर्करातुल्यं मद्येनाम्लेन पाययेत् ॥ ३३० ॥
गुल्मपार्श्वार्तिनुत्सिद्धं जीर्णे चास्मिन् नवौदनम् ।

गुल्म रोग में त्र्यूषणाद्य चूर्ण—त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), शु० हिंगु ये द्रव्य एक २ कर्ष, निशोथ एक पल, सौवर्चल नमक—आधा कर्ष, अम्लवेत आधा पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे। इस चूर्ण को मद्य तथा अम्लरस के साथ पान कराये। यह चूर्ण गुल्म तथा पार्श्वशूल को दूर करता है। औषध के परिपाक हो जाने पर सिद्ध नवीन भात को खाना चाहिए ॥

मन्दाग्नौ सैन्धवाद्यं चूर्णम्—

पालिकं सैन्धवं शुण्ठी द्वे च सौवर्चलात्पले ॥ ३३१ ॥
कुडवांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमर्जकात् ।
एकैकं मरिचाजाज्योर्धान्यकार्धचतुर्थिका ॥ ३३२ ॥
कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।
रुच्यं तद्दीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित् ॥ ३३३ ॥

मन्दाग्नि में सैन्धवाद्य चूर्ण—सेन्धानमक, एक पल, सोंठ एक पल, सौवर्चलनमक दो पल, वृक्षाम्ल (कोकम वृक्ष) एक कुडव, अनार एक कुडव, अर्जक (निर्गन्ध श्वेतपुष्प तुलसी भेद) पत्र एक कुडव, मरिच एक पल,

स्याहजीरा एक पल, धनिया अर्ध चतुर्थिका (आधा पल)—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनाकर, अन्न-पान में मात्रापूर्वक प्रयोग करे। यह चूर्ण रुचिवर्द्धक, अग्निदीपक, बलवर्द्धक, पार्श्वशूल, श्वास तथा कास को जीत लेने वाला है ॥ ३३१-३३३ ॥

आमातीसारे पिप्पल्याद्यं चूर्णम्—

पिप्पली चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी।
पाठा वत्सकबीज च हरीतक्यौ महौषधम् ॥ ३३४ ॥
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम्।
कफात्मकं सपित्त च पुरीषं चाशु रोधयेत् ॥ ३३५ ॥

आमातिसार में पिप्पल्याद्य चूर्ण—पीपर, रक्त चन्दन, मोथा, खस, कुटकी, पाढ़ी, इन्द्रयव, बड़ी हर्रे, छोटी हर्रे, महौषध (सोंठ)—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। यह चूर्ण वेदनायुक्त आमजन्य अतिसार, कफजन्य एवं पित्त जन्य पुरीष (मल प्रवृत्ति) को शीघ्र ही रोक देता है ॥ ३३४-३३५ ॥

पीनसे चव्याद्यं चूर्णम्—

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीक-
तालीसजीरकरुजादहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडप्रमृदित त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ३३६ ॥

पीनस रोग में चव्याद्य चूर्ण—चव्य, अम्लवेत, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), तिन्तिडीक, तालीसपत्र, स्याहजीरा, कुष्ठ, चित्रक—समभाग लेकर चूर्ण बनावे और इसमें गुड तथा त्रिसुगन्धि (दालचीनी, तेजपत्र, इलायची) का चूर्ण मिला दे। यह चूर्ण स्वरविकृति, पीनस (चिरकालीन दुर्गन्ध युक्त नासास्राव), तथा कफजन्य अरुचि में प्रशस्त है। अर्थात् इन रोगों को दूर करता है ॥ ३३६ ॥

कासेऽजमोदादिभस्मचूर्णम्—

अजमोदा पलद्वन्द्वं हरिद्रा च बिड तथा।
सारस्तु खदिरस्यापि ह्यौद्भिदं लवणं तथा ॥ ३३७ ॥
अभया पौष्करं भार्गी ह्येलाटङ्कणकट्फलम्।
वृषापामार्गयोर्मूलं क्षारयुग्मं तथैव च ॥ ३३८ ॥
प्रत्येकं पलमानानि रविपुष्पचतुष्पलम्।
चूर्णीकृत्य ततो दद्यात्कुमारीरसभावनाम् ॥ ३३९ ॥
सान्तर्धूमं घटे दग्ध्वा चूर्णितं वस्त्रगालितम्।
मधुना लीढमेतद्धि पञ्चकासनिवारणम् ॥ ३४० ॥

कासरोग में अजमोदादिभस्म चूर्ण—अजमोदा दो पल, हल्दी, विडनमक, खैरसार (खैर), औद्भिदनमक (पांशुनमक), सेन्धानमक, हर्रे, पुष्करमूल, भांगरा, इलायची, शु० टंकण, कायफर, अडूसा की जड़, अपामार्ग की जड़, सज्जीखार, यवक्षार—ये प्रत्येक द्रव्य एक २ पल—इन सभी द्रव्यों को तथा मदार का फूल चार पल लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और घृतकुमारी के स्वरस की भावना देकर टिकिया बना ले। इस टिकिया को घड़े में बन्द कर अन्त-धूम जलावे और पीस कर कपड़ा से छान ले। यह भस्म मधु के साथ चाटने पर पांच प्रकार के कास को दूर करता है ॥ २३७–२४० ॥

दाहरोगे द्राक्षादिचूर्णम्—

द्राक्षालाजसितोत्पलं समधुकं खर्जूरगोपीतुगा-
ह्रीवेरामलकाब्दचन्दननत कक्कोलजातीफलम्।
चातुर्जातकणं सधान्यकमिदं चूर्णं समां शर्करां
दत्त्वा शीतजलेन भक्षितमिदं पित्तं सदाहं जयेत् ॥२४१॥
मूर्च्छां छर्दिमरोचकं च प्रदरं पाण्डुं भ्रमं कामलां
यक्ष्माणं समदात्ययं सतमकं तृष्णास्रपित्त तथा ॥ २४२॥

दाहरोग में द्राक्षादि चूर्ण—द्राक्षा, लाजा (धान का लावा), श्वेतकमल, मुलेठी, खजूरफल, गोपी (सारिवा) तुगा, (वंशलोचन), हाऊवेर, आंवला, अब्द (मोथा), रक्तचन्दन, तगर, कबावचीनी, जायफर, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर), पीपर, धनिया—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे। यह चूर्ण, ठंढे जल के साथ खाने से दाहसहित पित्त, मूर्च्छा, छर्दि (वमन), अरोचक, प्रदर, पाण्डुरोग, भ्रम, कामला, यक्ष्मारोग, मदात्यय, तमकश्वास, तृष्णा तथा रक्तपित्त को जीत लेता है ॥ २४१–२४२ ॥

पाण्डुरोगे नवायसं चूर्णम्—

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गदहनाः समाः।
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ २४३ ॥
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःशमनं परम्।

पाण्डुरोग में नवायस चूर्ण—त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, (हर्रे, वहेडा, आंवला), मोथा, विडंग, चित्रक—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा नवीन लौह भस्म—समभाग मिलाकर मधु तथा आधा भाग घृत के साथ भक्षण करे। यह चूर्ण पाण्डुरोग, हृदयरोग, कुष्ठ तथा अर्श को अच्छी तरह शान्त करता है ॥

राजयक्ष्मणि द्वितीयं बृहन्नवायसचूर्णम्—

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवङ्गकैः ॥ ३४४ ॥
नवभागोन्मितैरेतैः समं तीक्ष्णं मृतं भवेत् ।
संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रे नित्यं यः सेवते नरः ॥ ३४५ ॥
कासं श्वासं क्षतं मेहं पाण्डुरोगं भगन्दरम् ।
ज्वरं मन्दानलं शोफं संमोहं ग्रहणीं जयेत् ॥ ३४६ ॥

राजयक्ष्मारोग में द्वितीय बृहन्नवायस चूर्ण—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), इलायची, जायफर, लवंग—एक २ भाग लेकर चूर्ण बनावे और नवभाग इस चूर्ण के बराबर कान्त लौह का भस्म मिला दे, और मधु के साथ मिलाकर जो सेवन करता है वह, कास-श्वास, क्षय, प्रमेह, पाण्डुरोग, भगन्दर, ज्वर, मन्दाग्नि, शोथ, मोह तथा ग्रहणी रोग को जीत लेता है ॥ ३४४-३४६ ॥

मन्दाग्नौ शुण्ठ्याद्यं चूर्णम्—

शुण्ठीं ससौवर्चलचित्रकाभयां सरामठां दाडिमसैन्धवान्विताम् ।
खादन्ति ये मन्दहुताशना भुवि भवन्ति ते वाडवतुल्यवह्नयः ॥३४७॥

मन्दाग्नि में शुण्ठ्याद्य चूर्ण—सोंठ, सौवर्चलनमक, चित्रक, हर्रे, हिंगु, अनार, सेन्धानमक—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर जो मन्दाग्नि के रोगी खाते हैं, वे इस संसार में वाडवाग्नि के समान उदराग्नि वाले हो जाते हैं ॥ ३४७ ॥

हृद्रोगे तिक्तकं चूर्णम्—

मुस्तैलाचन्दनोशीरं यवानी व्योषवत्सकौ ।
फलं त्वक् कटुका दारु दार्वी त्वक् पर्पटस्तथा ॥ ३४८ ॥
पटोलपत्रं षड्ग्रन्था मूर्वाभूनिम्बशिग्रुकाः ।
त्रायमाणा च सौराष्ट्री मुरा प्रतिविषा समाः ।
तिक्तकं नाम हृद्गुल्मशूलघ्नं सन्निपातनुत् ॥ ३४९ ॥

हृदय के रोग में तिक्तक चूर्ण—नागरमोथा, इलायची, रक्त चन्दन, खस, अजवायन, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कोरैया की छाल, इन्द्रयव, कुटकी, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी, पित्तपापड़ा, परोरा का पत्ता, वच, मूर्वा (मोरवेल), चिरायता, सहिजन बीज, त्रायमाणा, सौराष्ट्री (गोपीचन्दन), मुरा (जटामांसी), अतीस—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। यह तिलक नामक चूर्ण हृदयरोग, गुल्म तथा शूल को नाश करता है और सन्निपात को दूर करता है ॥ ३४८-३४९ ॥

कुष्टे लाक्षाद्यं चूर्णम्—

लाक्षा दन्ती च मूर्वा मधुररसवचाद्वीपिपाठाद्रिकर्णी-
प्रत्यक्पुष्पी विडङ्गं त्रिकटुकरजनीसप्तपर्णाटरूपम् ।
रक्ता निम्बं सुरतरु वचा पञ्चमूल्यौ च चूर्णं
पीत्वा मासं जयति सितभुग् गव्यमूत्रेण कुष्टम् ॥ ३५० ॥

कुष्ठरोग में लाक्षाद्य चूर्ण—लाक्षा, दन्ती (वनरेंड़ा), मूर्वा (मोरवेल), मधुरस (मुलेठी), वच, द्वीपि (चित्रक), पाठा, अद्रिपर्णी, (अपराजिता), प्रत्यक्पुष्पी (अपामार्ग), विडंग, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), रजनी (आमाहल्दी), सप्तपर्ण (छतिवन), अटरूपक (अडूसा), रक्ता (मंजीठ), नीम की छाल, देवदारु, वच, पञ्चमूल्यौ (बेल की छाल, गम्भारी, अरलु, पाटला, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरु)—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को गाय के मूत्र के साथ एक मास तक पानकर पथ्यपूर्वक भोजन करने वाला—कुष्ठरोग को जीत लेता है।

ग्रहण्यां पञ्चामृतरसः—

कर्षं रसान् गन्धकतस्तथैव विमर्द्य खल्वेऽभ्रकमेव तावत् ।
दद्यात्तथा ताम्रमयोरजश्च नव्येन चाज्येन विमृश्य किञ्चित् ॥३५१॥
पात्रे मन्दं वह्निना ज्वालयेत्तद्द्यान्मात्रां रक्तिकैकप्रवृद्ध्या ।
यावन्माषो नाधिकं मानवेभ्यः कृत्वा वह्नेर्दीपनं हन्ति रोगान् ॥३५२॥
पाण्डुप्लीहोन्मादुर्नामामेहान् पित्तं साम्लं सातिसारं ज्वरं च ।
सद्यः शूलान् त्वग्ग्रहण्यामयं च रोगांश्चैवं सूतिकाया निहन्ति ॥३५३॥
अयं हि पञ्चामृतनामधेयो रसेन्द्रराजः क्षयरोगहारी ।
वातास्रमुग्रं श्वयथुं च हन्यात्स्वयोगयुक्तः सकलान्विकारान् ॥ ३५४ ॥

ग्रहणी रोग मे पञ्चामृत रस—पारा एक कर्ष, गन्धक एक कर्ष खरल में घोट कर कज्जली बनावे और अभ्रक भस्म एक कर्ष, ताम्र भस्म एक कर्ष, लौहभस्म एक कर्ष—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर गाय के घृत के साथ मिला कर पात्र में रख कर मन्द आंच से जलाये। इस रस को एक २ रत्ती की मात्रा में प्रतिदिन बढ़ा कर एक मासा तक की मात्रा में सेवन करे। इससे अधिक मात्रा में प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह मनुष्यों के अग्नि को दीप्त कर रोगों को नाश करता है। पाण्डुरोग, प्लीहावृद्धि, उन्माद, दुर्नाम (अर्श), प्रमेह, अम्लपित्त, अतिसार, ज्वर, तात्कालिक शूल, चर्मरोगः, ग्रहणी रोग तथा प्रसूता के रोगों को नाश करता है। यह पञ्चामृत नामक रसेन्द्रराज-क्षय रोग को दूर करने वाला है। अपने योग से युक्त यह रस, भयंकर वातरक्त, शोथ तथा सभी विकारों को नाश करता है ॥ ३५१–३५४ ॥

पञ्चसमं चूर्णम्—

पथ्यानागरजीरकाख्यरुचकैः श्यामान्वितैः पञ्चभि-
श्चूर्णं पञ्चसमं समस्तगदहृत्कायाग्निसंदीपनम् ।
प्राणोत्साहविवर्धनं रुचिकरं गुल्मघ्नप्लीहापहं
प्रत्याध्मानगरादिरोगशमनं सामानिले पूजितम् ॥ ३५५ ॥

पञ्चसम चूर्ण—हर्रे, सोंठ, स्याहजीरा, सौवर्चल नमक, काला निशोथ—समभाग—इन पांचों द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। यह पञ्चसम चूर्ण सभी रोगों को दूर करने वाला है तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है। प्राण तथा उत्साह का वर्द्धक, रुचिकारक, गुल्म रोग-नाशक, प्लीहावृद्धि को दूर करने वाला, प्रत्याध्मान, संयोगज विषजन्य रोगों को शान्त करता है और आमवात में पूजित है अर्थात् लाभप्रद है ॥ ३५५ ॥

छर्द्यां बदराद्यं चूर्णम्—

बदरत्रिफलानां च व्योषस्य च पलद्वयम् ।
विधोः कर्षस्तु लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ३५६ ॥
एलात्वक्पत्रकाणां तु पलं स्याद्वंशलोचना ।
पलाष्टकोऽम्लवेतश्च चतुष्पल उदाहृतः ॥ ३५७ ॥
चूर्णं द्विगुणखण्डं तु हृद्यं वमिहरं परम् ।
यक्ष्माणं रक्तपित्तं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ३५८ ॥

छर्दि में बदराद्य चूर्ण—बेर, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच)—दो २ पल, विधु (कर्पूर) एक कर्ष, लाजा (लावा) बारह पल—इलायची, दालचीनी, तेजपत्र—एक पल, वंशलोचन आठ पल, अम्लवेत चार पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। और चूर्ण के दुगुना मिश्री मिला दे। यह हृदय को बल देनेवाला तथा वमन को अच्छी तरह दूर करनेवाला है और राजयक्ष्मा (टी. बी.), रक्तपित्त, ज्वर तथा कास को नाश करता है ॥ ३५६–३५८ ॥

उदरे नवक्षारकं चूर्णम्—

तुवरीटङ्कणव्योषसामुद्रं सैन्धवं बिडम् ।
काचं सौवर्चलं चव्यं क्षारश्चेक्षुरकोद्भवः ॥ ३५९ ॥
एतानि समभागानि चूर्णीकृत्य प्रयोजयेत् ।
रक्तवातारुचिप्लीहोदररोगापनुत्तये ॥ ३६० ॥

उदर रोग में नवक्षारक चूर्ण—तुवरी (फिटकरी क्षार), टंकण क्षार, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), सामुद्र नमक, सेन्धा नमक, विडनमक, सांभर नमक, सौवर्चल नमक, चव्य, यवक्षार, सज्जीखार, तालमखाना—

समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर रक्तवात, अरुचि, प्लीहोदर (पुराना प्लीहावृद्धि)—इन रोगों को दूर करने के लिये (डेढ़ मासा से लेकर तीन मासा तक गरम जल के साथ) प्रयोग करें ॥ ३५९-३६० ॥

मन्दाग्नावजमोदाद्यं चूर्णम्—

साजमोदलवणा हरीतकी शृङ्गवेरसहिता च पिप्पली ।
मद्यतक्रशृतशीतवारिणा चूर्णपानमुदराग्निदीपनम् ॥ ३६१ ॥

मन्दाग्नि में अजमोदाद्य चूर्ण—अजमोदा, सेन्धा नमक, हरें, सोंठ, पीपर—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को मद्य, तक्र तथा शृतशीत जल से पान करे। यह चूर्ण उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ ३६१ ॥

दन्तरोगे जातीपत्राद्यं चूर्णम्—

जातीपत्रपुनर्नवातिलकणाकोरण्टपुष्पं वचा
शुण्ठीदीप्यकपथ्यकाः समधृतं चूर्णं मुखे धारयेत् ॥
वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धिशूलापहं ।
सद्यः शोफहरं च रक्तशमनं दन्तांश्च वज्रायते ॥ ३६२ ॥

दन्तरोग में जातीपत्राद्य चूर्ण—जातीपत्र (चमेली की पत्ती), पुनर्नवा, तिल, कोरण्ट पुष्प (कटसरैया का फूल "नीलीझिण्टीपुष्प"), वच, सोंठ, अजवायन, हरें—इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण बनावे और मुख में रक्खे। यह चूर्ण वातनाशक, कफनाशक, कृमिहर, मुख-दुर्गन्ध-नाशकर, दन्तशूल-नाशक, तात्कालिक शोथ को हरण करनेवाला, रक्तस्रावशामक तथा दांतों को वज्र के समान मजबूत बनाता है ॥ ३६२ ॥

कासे जातीफलाद्यं चूर्णम्—

जातीफलं विडङ्गं च चित्रकस्तगरस्तिलाः ।
तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका ॥ ३६३ ॥
कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिप्पली शुभा ।
एषामक्षसमान् भागान् चातुर्जातकसंयुतान् ॥ ३६४ ॥
पलानि त्रीणि भृङ्गायाः शर्करा समयोजिता ।
मधुना चूर्णमेतत्तु कर्षार्धं लेहयेत्तथा ॥ ३६५ ॥
जयेत्कास क्षय श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ।
वातश्लेष्मोद्भवांश्चान्यान् प्रतिश्यायमरोचकम् ॥ ३६६ ॥
एता. सर्वा रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

कास रोग में जातीफलाद्य चूर्ण—जायफर, विडंग, चित्रक, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लवंग, उपकुञ्चिका (मंगरैल), कपूर, हरें, आंवला,

मरिच, पीपर, शु० फिटकरी—इन द्रव्यों को एक २ अक्ष समान भाग, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर)—एक अक्ष, भृङ्गराज तीन पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे। इस चूर्ण को एक कर्ष की मात्रा में मधु के साथ चाटे। यह चूर्ण कास, श्वास, ग्रहणी दोष, मन्दाग्नि, वातश्लेष्मजन्य अन्य रोग, प्रतिश्याय (जुकाम) तथा अरोचक को जीत लेता है। इन सभी रोगों को नाश करता है। जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नाश करता है ॥ ३६३–३६६ ॥

दाडिमाद्यं चूर्णम्—

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शृङ्गवेरपलत्रयम् ॥ ३६७ ॥
पलद्वयं पिप्पली च कोलचूर्णं पलद्वयम्।
यवानी चाजमोदा च मिशिश्चैवाम्लवेतसम् ॥ ३६८ ॥
वृक्षाम्लं चविका चात्र ह्यभया च पलोन्मिता।
सौवर्चलं च धान्याकं सूक्ष्मैला त्वक्तथैव च ॥ ३६९ ॥
ग्रन्थिकं मरिचं चात्र पत्रकं स्तुगाह्वयम्।
एषामर्धपलान् भागान् सर्वैस्तुल्या सिता भवेत् ॥ ३७० ॥
एतत्प्राग् भोजनाच्चूर्णं दीपनं गुल्मनाशनम्।
अर्शांसि ग्रहणीदोषमतीसारं प्रवाहिकाम्।
पार्श्वशूलमथानाहं प्रमेहांश्च प्रणाशयेत् ॥ ३७१ ॥

दाडिमाद्य चूर्ण—अनार का दाना आठ पल, सोंठ तीन पल, पीपर दो पल, बैर का चूर्ण दो पल, अजवायन, अजमोदा, सौंफ, अम्लबेंत, वृक्षाम्ल (कोकमवृक्ष), चव्य, हर्रे—एक २ पल, सौवर्चलनमक, धनिया, छोटी इलायची, दालचीनी, पिपरामूल, मरिच, पतंग, वंशलोचन—ये द्रव्य आधा २ पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर मिश्री मिला दे। यह चूर्ण भोजन के पहले भक्षण करने से जाठराग्नि दीप्त करता है गुल्म रोग को नाश करता है तथा अर्श रोग, ग्रहणी दोष, अतिसार, प्रवाहिका, पार्श्वशूल, आनाह एवं प्रमेहों को नाश करता है ॥ ३६७–३७१ ॥

मन्दाग्नावामलक्यादिचूर्णम्—

आमलकवह्निपथ्यामागधिकासैन्धवैः कृतं चूर्णम्।
विनिहन्ति कण्ठरोगं मन्दाग्निं रक्तपित्तमपि ॥ ३७२ ॥

मन्दाग्नि में आमलक्यादि चूर्ण—आंवला, चित्रक, हर्रे, पीपर, सेन्धा नमक—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण कण्ठ रोग, मन्दाग्नि तथा रक्तपित्त को भी नाश करता है ॥ ३७२ ॥

स्त्रीरोगे मेथिकाद्यं चूर्णम्—

मेथिका शतपुष्पा च यवानी मधुयष्टिका ।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता त्रिजातं च पुनर्नवा ॥ ३७३ ॥
ऋष्यप्रोक्ता समङ्गा च चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
द्राक्षापुष्करमञ्जिष्ठाः समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७४ ॥
घृतखण्डेन पक्तव्य काले स्त्रीणां च दापयेत् ।
गर्भप्रदं च वन्ध्यानां स्त्रीणां बलविवर्धनम् ॥ ३७५ ॥
शमनं रक्तवातस्य पित्तोपद्रवनाशनम् ।
त्रिदोषे रुद्धगर्भे च परमं सुखकारकम् ॥ ३७६ ॥

स्त्री रोग में मेथिकाद्य चूर्ण—मेथी, सौफ, अजवायन, मुलेठी, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), मोथा, त्रिजात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र), पुनर्नवा, ऋष्यप्रोक्ता (शतावरी), समंगा (वरियार), सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, मुनक्का, पुष्करमूल, मंजीठ—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे । इस चूर्ण को घृत में भूनकर—समभाग शर्करा मिला कर बल के अनुसार मात्रापूर्वक ऋतुकाल में स्त्रियों को खिलाये । यह चूर्ण, बन्ध्या स्त्रियों को गर्भ देनेवाला, स्त्रियों को बल देने वाला, वातरक्तशामक तथा पित्तजन्य उपद्रव-नाशक है और त्रिदोष में एवं गर्भ के अवरोध होने पर अत्यन्त सुखकारक है अर्थात् इन उपद्रवों को शान्त करता है ॥ ३७३-३७६ ॥

कामवृद्धौ राजयोगः—

अहिफेनं वत्सनाभः केशरं चव्यचित्रकम् ।
धत्तूरभृङ्गशिग्रूणां बीजानि सितजीरकम् ॥ ३७७ ॥
अश्वगन्धाऽऽत्मगुप्ता च कलिङ्गकलवङ्गकम् ।
आकल्लकोऽजमोदा च मुशली च शतावरी ॥ ३७८ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूल चातुर्जातकसंयुतम् ।
कटाहे मधुना पक्त्वा कुर्यात्पूगोपमा वटीः ॥ ३७९ ॥
भोजनान्तर वक्त्रे गुटी धार्या घटीद्वयम् ।
जातीपत्री विशेषेण धारणीया मुखे सदा ॥ ३८० ॥
क्षाराम्लदधिवर्ज च कार्यं भोजनमुत्तमम् ।
षण्ढत्वं स्वल्पवीर्यत्वं हन्याच्छीतमिवानलः ॥ ३८१ ॥
अतिसारे प्रमेहे च मन्दाग्नौ राजयक्ष्मणि ।
आमवाते महावाते पाण्डुरोगे शिरोगदे ॥ ३८२ ॥
प्लीह्नि पानीयजे रोगे सर्वाङ्गवात इष्यते ।
ईश्वरेण च संप्रोक्तः कार्तिकेयाय सुन्दरः ॥ ३८३ ॥

एष द्वात्रिंशको नाम योगराजः प्रकीर्तित. ।

कामवृद्धि में राजयोग—शु० अफीस, शुद्ध वत्सनाभ (विष), केशर, चव्य, चित्रक, शु० धत्तूर बीज, भृङ्गराज बीज, सहिजन बीज, सफेद जीरा, अश्वगन्धा, केवाछ बीज, कलिगक (इन्द्रयव), लवंग, आकल्लक (अकरकरा), अजमोदा, मुसली, शतावरी, पीपर, पिपरामूल, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेसर)—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे, इस चूर्ण को कड़ाही में डालकर (घृत में भूनकर) मधु के साथ सुपारी के बराबर वटी बनावे। (चातुर्जात चूर्ण को चूर्ण भून लेने के बाद में डालना चाहिए)। इस वटी को भोजन करने के बाद दो घड़ी तक मुँह मे धारण करना चाहिए। जावित्री को विशेष कर हमेशा मुख मे धारण करना चाहिए। क्षार, अम्ल तथा दही को छोड़ कर उत्तम पौष्टिक भोजन करना चाहिए। यह नपुंसकता तथा वीर्य की कमी को वैसे दूर करती है जैसे अग्नि शीतलता को दूर कर देती है। यह राजयोग अतिसार, प्रमेह, मन्दाग्नि, राजयक्ष्मा (टी० बी०), आमवात, वातरोग, पाण्डुरोग, शिरोरोग, प्लीहावृद्धि. पानीयज (जलीय प्रदेश मे उत्पन्न होने वाले) रोग तथा सर्वांग वातरोग में लाभप्रद है। इस सुन्दर द्वात्रिंशक नामक योगराज को शंकर ने कार्तिकेय के लिये कहा था इसी योग को योगराज कहते है ॥

क्षये आभाद्यं चूर्णम्—

आभा च धातुमाक्षीक गिरिजं च त्रिजातकम् ।। ३८४ ।।
जीरकर्षभको मेदा काकोली पुण्डरीयकम् ।
व्योषं च बालकं चैव पृथ्वी कालेयकं बिडम् ।। ३८५ ।।
एतानि समभागानि ह्मायस द्विगुण क्षिपेत् ।
शर्करा च समा देया मधुना सह लेह्येत् ।। ३८६ ।।
क्षयमेकादशाकारं श्वासं कासं तथैव च ।
स्वरभेदं पार्श्वशूलं ज्वरं कम्पं च दारुणम् ।। ३८७ ।।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पीनस च हनुग्रहम् ।
हिध्मां च कण्ठरोगांश्च नाशयेन्नात्र संशयः ।। ३८८ ।।

क्षयरोग में आभाद्य चूर्ण—आभा (ज्योतिष्मती), धातुमाक्षिक (रौप्य-माक्षिक), गिरिज (छड़ीला), त्रिजातक (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र), जीवक, ऋषभक, मेदा, काकोली, पुण्डरीक (कमल), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), बालक (सुगन्धवाला), पृथ्वी (पुनर्नवा), कालेयक (दारुहल्दी), विडनमक—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और चूर्ण के दुगुना लौहभस्म मिला दे। इसके बाद सभी चूर्णो के बराबर शर्करा मिला दे और

मधु के साथ (एक माशा से दो माशा तक की मात्रा में) चाटे। यह चूर्ण ग्यारह प्रकार के क्षय रोग, श्वास, कास, स्वरभेद, पार्श्वशूल, ज्वर, भयंकर कम्परोग, रक्तष्ठीवन (रक्त का मुख से गिरना), तृष्णा, पीनस (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासास्राव), हनुग्रह (जबड़ों का अकड़ना), हिध्मा तथा कण्ठ के रोगों को नाश करता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८४-३८८ ॥

पिप्पल्याद्यं चूर्णम्—

चत्वारि पिप्पलीनां तु पञ्च सौवर्चलोद्भवाः।
जीरकस्य त्रयो भागाः शुण्ठ्या भागत्रयं तथा ॥ ३८९ ॥
सप्त सप्त स्मृता भागास्तीक्ष्णदाडिमसारयोः।
द्वौ भागौ तिन्तिडीकस्य चत्वारश्चाम्लवेतसात् ॥ ३९० ॥
षड्भागाः सैन्धवस्योक्तास्तथाऽर्धो हिङ्गुलः स्मृतः।
निस्तुषाणां विडङ्गानामेको भागः प्रकीर्तितः ॥ ३९१ ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत्।
लवणं दीपनं चेदं वातश्लेष्मविकारनुत्।
रुच्यमन्नेन संयुक्तं केवलं वा हितं तथा ॥ ३९२ ॥

पिप्पल्याद्य चूर्ण—पीपर चार भाग, सौवर्चलनमक पाच भाग, स्याहजीरा तीन भाग, सोंठ तीन भाग, तीक्ष्ण (सहिजनबीज) सातभाग, दाडिमसार (अनारदाना) सातभाग, तिन्तिडीक दो भाग, अम्लवेत चार भाग, सेन्धानमक छः भाग; शु० हिंगु आधाभाग, छिलका रहित वायविडंग एक भाग—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह चूर्ण लवण उदराग्नि-दीपक तथा वात-श्लेष्म विकारों को दूर करता है। अन्न (भोजन) के साथ मिलाकर खाने से या केवल जल के साथ खाने से रुचि को बढाने वाला है तथा हितकर है। अर्थात् रोगों को नाश करता है ॥ ३८९-३९२ ॥

मन्दाग्नौ रुचकाद्यं चूर्णम्—

रुचकमरिचशुण्ठीजीरकैर्भागवृद्धै-
बिडलवणविभागः सैन्धवं चापि सार्धम्।
कफपवनविकारे शस्यते वातगुल्मे
जनयति जठराग्निं भोजने चेत्सतक्रम् ॥ ३९३ ॥

मन्दाग्नि मे रुचकाद्य चूर्ण—रुचक (सौवर्चलनमक) एक भाग, मरिच दो भाग, सोंठ तीन भाग, स्याहजीरा चार भाग, विडनमक एक भाग, सेन्धानमक आधा भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण कफ-वात विकार तथा गुल्म रोग में प्रशस्त है। अर्थात् इन रोगों को नाश करता

है। भोजन में तक्र (मट्ठा) के साथ खाने पर उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ २९३ ॥

मन्दाग्नौ सिंहणचूर्णम्—

अर्धं हिङ्गुपलं पलं सुविमलं सौवर्चलं द्वे पले
प्रत्येकं मरिचाम्लदीप्यलवणाम्भोराशिजातान् क्षिपेत् ।
शुण्ठ्याश्च त्रिपलं चतुष्पलमपि स्याद्दाडिमं जीरकं
श्रीमत्सिंहणभूमिपालकथितं सेव्यं सदेदं बुधैः ॥ २९४ ॥

मन्दाग्नि में सिंहण चूर्ण—शु० हिंगु आधा पल, शु० फिटकरी एकपल, सौवर्चलनमक दो पल, मरिच एकपल, अम्लवेत एकपल, अजवायन एकपल, सैन्धानमक एकपल, अम्भोराशिजात (कमलगट्टा) एकपल, सोंठ तीन पल, अनार चार पल, स्याहजीरा चार पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। श्रीमान सिंहण भूमिपाल कथित यह चूर्ण विद्वानों के द्वारा हमेशा सेवन करने योग्य है ॥ २९४ ॥

अर्शसि सूरणाद्यं चूर्णम्—

सूरणं दहनं क्षारो मरिचं नागरं क्रमात् ।
अर्धार्धकमिदं चूर्णं क्षाराम्लार्द्रकभावितम् ॥ २९५ ॥
हन्यादर्शांसि शूलं च गुल्मप्लीहोदरक्रिमीन् ।
भुक्तं भुक्तं पचत्याशु शान्तमग्निं च दीपयेत् ॥ २९६ ॥

अर्शरोग में सूरणाद्य चूर्ण—सूरण सोरह भाग, चित्रक आठ भाग, यवक्षार चार भाग, मरिच दो भाग, सोंठ एक भाग—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और क्षारीय जल, अम्ल जल तथा अद्रक के रस से भावित करे। पुनः सुखाकर चूर्ण बना ले। यह चूर्ण अर्शरोग, शूल, गुल्मरोग, प्लीहोदर तथा कृमि रोग को नाश करता है। और बार २ भोजन करने पर भी पचा देता है तथा मन्दाग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ २९५–२९६ ॥

वातरोगे हरीतकीयोगः—

धान्यकाञ्जिकयुता हरीतकी हिङ्गुसैन्धवकणासुपूरिता ।
भक्षिता भवति वातरोगहा हन्त्यजीर्णमथ च क्षुधाकरी ॥ २९७ ॥

वातरोग में हरीतकी योग—हरीतकी (हर्रे) को धान्य-कांजिक (धान्य को पानी में डाल मुख बन्द कर तीन दिन तक रक्खे और तीन दिन बाद निकालकर छान ले यही धान्यकांजिक है) में एक दिन भिगोकर निकाल कर सुखा ले और इसको चूर्ण बना ले। इसमें हिंगु, सैन्धानमक तथा पीपर का चूर्ण मिला ले। यह चूर्ण खाने से वात रोग नाशक होता है, अजीर्ण को नाश करता है तथा भूख को बढ़ाता है। (शु० हिंगु की मात्रा अष्टमांश रखना चाहिए। सैन्धानमक तथा पीपर समभाग लेना चाहिए) ॥ २९७ ॥

विद्रधौ भूनिम्बाद्यं चूर्णम्—

भूनिम्बार्धपल निशापलयुतं दार्व्याः पले द्वे तथा
दार्व्यर्धेन पुनर्नवां कुरु समां दार्वीसमः प्रग्रहः ।
सार्धं दुलभया स्मृता तु कटुका योज्या तदर्धेन वै
ह्यश्माह्वं निशया समानममृता पादाधिक स्यात्पलम् ॥३९८॥
एतद्वत्सकसप्तकर्षसहितं सुश्लक्ष्णचूर्णीकृतं
वासायाः स्वरसेन भावितमिदं त्रीन् सप्त वा वासरान् ।
भूयस्तद्गुडवारिणा प्रमुदितं पेयं पुरःस्थे रवौ
ह्येतद्विद्रधिरोगिणां विजयकृतच्चूर्णं तु गुह्योत्तमम् ॥ ३९९ ॥

विद्रधि मे भूनिम्बाद्य चूर्ण—भूनिम्ब (चिरायता) आधा पल, आमा-हल्दी एकपल, दारुहल्दी दो पल, पुनर्नवा एकपल, प्रग्रह-(कर्णिकार = कणियार) दो पल, दुरालभा (धमासा) एकपल, कुटकी आधा पल, पाषाणभेद एकपल, गुडूची दो पल, वत्सक (कोरैया की छाल) सात कर्ष—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और अडूसा के स्वरस से तीन दिन या सात दिन तक भावना दे । पुनः सुखाकर चूर्ण बना ले । इस चूर्ण को गुड के रस में मिलाकर सूर्योदय के पहले पान करे । यह गुह्य उत्तम चूर्ण विद्रधि के रोगियों को विजय देने वाला है अर्थात् विद्रधि को नाश करता है ॥३९८–३९९॥

ज्वरे किराततिक्ताद्यं चूर्णम्—

किराततिक्तं त्रिफलापटोलं तिक्तेन्द्रबीज सुरदारु दार्वी ।
व्योषं शटीचन्दनयुग्मनिम्बं दुरालभाचन्दनपद्मकं च ॥ ४०० ॥
पुनर्नवोशीरविषागुडूचीत्रायन्तिकापिप्पलिमूलतुल्यम् ।
चूर्णं विलिह्यान्मधुनाऽथ वारा तथाऽनुपानं त्वमृतारसो वा ॥४०१॥
ज्वरं पुराण विनिहन्ति शीघ्र तृतीयक वा'वमिदाहयुक्तम् ।
चातुर्थकं चास्यगतांश्च रोगान् सपीनसं कामलमाशु हन्ति ॥ ४०२ ॥

ज्वर रोग में किराततिक्तकाद्य चूर्ण—किराततिक्त (चिरायता), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), परोरा का पत्ता, तिक्ता (कुटकी), इन्द्रयव, देवदारु, दारुहल्दी, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कपूरकचरी, सफेदचन्दन, नीम, महानिम्ब (बकायन), दुरालभा (यवासा), रक्त चन्दन, पद्मकाठ, पुनर्नवा, खस, अतीस, गुडूची, त्रायमाणा, पिपरामूल—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इस चूर्ण को मधु के साथ चाटे या जल से तथा गुडूची रस के अनुपान से सेवन करे । यह चूर्ण पुराना ज्वर तथा वमन एवं दाह युक्त तृतीयक ज्वर को नाश करता है और चातुर्थिक ज्वर, मुखगत रोग, पीनस तथा कामला रोग को भी शीघ्र ही नाश करता है ॥ ४००–४०२ ॥

कासे दुरालभाद्यं चूर्णम्—

दुरालभां शटीं द्राक्षां शृङ्गवेरं सितोपलाम् ।
लिह्यात्कर्कटशृङ्गीं च कासे तैलेन वातजे ॥ ४०३ ॥

कासरोग में दुरालभाद्य चूर्ण—दुरालभा (धमासा या यवासा), कपूर-कचरी, मुनक्का, सोंठ, काकड़ासिंघी—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर मिश्री मिला दे । इस चूर्ण को वातजन्य कास में तैल के साथ चाटे ॥ ४०३ ॥

ग्रहण्यां पिप्पलीमूलाद्यं चूर्णम्—

समूला पिप्पली क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ।
मातुलुङ्गाभयारास्नाशटीमरिचनागरम् ॥ ४०४ ॥
चूर्णं समांशकं कृत्वा पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ।
श्लेष्मके ग्रहणीदोषे बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ४०५ ॥

ग्रहणीरोग में पिप्पलीमूलाद्य चूर्ण—पीपर, पिपरामूल, सज्जीखार, यव-खार, पञ्चलवण (सेन्धानमक—सौवर्चल—विड—साभर—सामुद्रनमक), मातुलुंग (मधुकुक्कटी—मुखुर), हर्रे, रास्ना, कपूरकचरी, मरिच, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और गरम जल से प्रातः काल पान करे । यह चूर्ण कफजन्य ग्रहणी रोग में सेवन करे यह बल, वर्ण तथा अग्नि को बढ़ाने वाला है ॥ ४०४–४०५ ॥

ग्रहण्यां कुठेरकाद्यं चूर्णम्—

कुठेरकश्चामलकी यवानी फलत्रिकं चैव कटुत्रिकं च ।
वृन्ताकगण्डीरवृषं सनिम्बं कुष्ठं तथा चेन्द्रयवा विडङ्गम् ॥ ४०६ ॥
बीजानि दद्यान्निचुलस्य दार्वी दुरालभा तिक्तकरोहिणी च ।
दूर्वोग्रगन्धाऽतिविषा गुडूची किराततिक्तं गजपिप्पली च ॥ ४०७ ॥
सर्वाण्युपाहृत्य तु चूर्णमेषां भागांशयुक्तं लवणं द्विरंशम् ।
अयोरजः स्यात्त्रिगुणं च युक्तं फलत्रिकं स्याच्चतुरंशयुक्तम् ॥ ४०८ ॥
चूर्णीकृतं तद्घृतभाजनस्थं पिबेच्च मद्येन सुखोदकेन ।
चूर्णं यथासात्म्यबलानुरूपं प्लीहाग्निसादारुचिपार्श्वशूलम् ॥ ४०९ ॥
प्रमेहकुष्ठानथ पाण्डुरोगं हृद्रोगगुल्मं विषमज्वरं च ।
भगन्दरं श्वासगदांश्च हन्यात् सुदुस्तरान् वातकफोद्भवांस्तु
एतद्धि चूर्णं बलमांसकारि ह्योजस्करं रोगगणापहारि ॥ ४१० ॥

ग्रहणी रोग में कुठेरकाद्य चूर्ण—कुठेरक (श्वेत तुलसी—वर्वरी—'वबुई' इति भाषा), आंवला, अजवायन, फलत्रिक (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), कटुत्रिकी

(सोंठ, पीपर, मरिच), वृन्ताक (वनभंटा) गण्डीर (दूर्वा), अडूसा, नील, कूठ, इन्द्रयव, निचुल बीज (हिज्जल बीज), दारुहल्दी, यवासा, कुटकी, दूर्वा, उग्रगन्धा (वच), अतीस, गुडूची, चिरायता, गजपीपर—समभाग—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण बनाये । इसमें सेन्धानमक पीसकर दो भाग, लौह भस्म तीन भाग, फलत्रिक (हर्रे, बहेडा, आंवला) चार भाग—इन सभी द्रव्यों के चूर्ण को घृतस्निग्ध भाण्ड में रक्खे । इस चूर्ण को मद्य तथा गरम जल से पान करे । यह चूर्ण यथासात्म्य बल के अनुसार मात्रापूर्वक पान करने से प्लीहा-वृद्धि, मन्दाग्नि, अरुचि, पार्श्वशूल, प्रमेह, कुष्ठरोग, पाण्डुरोग, हृदयरोग, गुल्म-रोग, विषम ज्वर, भगन्दर, दुस्साध्य वात-कफजन्य श्वास—रोगों को नाश करता है । यह चूर्ण बल तथा मांस को बढानेवाला है, ओज शक्ति को देने वाला तथा रोग-समूहों को नाश करने वाला है ॥ ४०६–४१० ॥

शोफे अयोरजश्चूर्णम्—

कुडवं त्रिफलायास्तु पिप्पलीकुडवं तथा ।
विडङ्गमरिचाभ्यां तु द्वे पले च समावपेत् ॥ ४११ ॥
पलं पलं तु कुर्वीत दन्तीचित्रकयोरपि ।
गुडूचीपिप्पलीमूलकुष्ठानां च पलं पलम् ॥ ४१२ ॥
शृङ्गवेरपले द्वे तु पञ्च चव्यात्पलानि च ।
शेषाण्यर्धपलानि स्युर्यानि वक्ष्यामि तद्यतः ॥ ४१३ ॥
गोक्षुरकः स्थिरा रास्ना मधुकं देवदारु च ।
वचा चातिविषा चैव मुस्तकं कटुरोहिणी ॥ ४१४ ॥
कट्फलं सारिवे द्वे च श्यामा भल्लातकानि च ।
पुनर्नवा त्वचं पत्रं तेजस्वती शतावरी ॥ ४१५ ॥
क्षुद्रा व्याघ्रनखं चैव मञ्जिष्ठा कूटशाल्मलिः ।
निचुलं त्रिवृता भार्गी कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ४१६ ॥
एतदौषधसंभारं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्यादयोरजः ॥ ४१७ ॥
तदेकत्र कृतं शोफी प्रलिह्यान्मधुसर्पिषा ।
क्षीरं चानुपिबेद्युक्त्या निरन्नः क्षीरसेवनः ॥ ४१८ ॥
अयोरजसमित्येतत्ख्यातं सिद्धं रसायनम् ।
संवत्सरप्रयोगेण शतवर्षं च जीवति ॥ ४१९ ॥
निहन्ति श्वयथुं चोग्रं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।
अर्शांसि पाण्डुरोगं च मन्दाग्निं क्रिमिकोष्ठताम् ॥ ४२० ॥
भगन्दरं च पामां च कुष्ठानि किटिभानि च ।

यस्मिन् यस्मिन् विकारे हि युज्यते त्वयसो रजः ।
त तं निहन्ति वै रोगं देवारीन् केशवो यथा ॥ ४२१ ॥

शोथरोग में अयोरजश्चूर्ण—त्रिफला (हर्रे, वहेडा, आंवला) एक कुडव (चार पल), पीपर एक कुडव, विडंग, मरिच, दन्तीमूल, चित्रक, गुडूची, पिपरामूल, कूठ एक २ पल, सोंठ दो पल, चव्य पांच पल, शेष द्रव्य आधा २ पल, गोखरू, शालपर्णी, रास्ना, मुलेठी, देवदारु, वच, अतीस, मोथा, कुटकी, कायफर, कृष्ण सारिवा, रक्तसारिवा, काला निशोथ, शु० भल्लातक, पुनर्नवा, दालचीनी, तेजपत्र, तजस्वती (तेजबल), शतावरी, छोटी कटेरी, व्याघ्रनख, मंजीठ, कूटशाल्मलि (रोहितक "रोहेडा"), निचुल (हिजल या समुद्रफेन), निशोथ, भांगरा, इन्द्रयव, कोरैया की छाल—आधा २ पल—इन द्रव्यों के समूह को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के दुगुना लौहभस्म मिला दे। इस एकत्र किये हुए चूर्ण को (छ रत्ती की मात्रा में) एक तोला मधु, आधा तो० घृत के साथ शोथ का रोगी चाटे, और ऊपर से दूध पान करे। युक्तिपूर्वक अन्न न भक्षण करे केवल दूध पीवे। यह प्रख्यात अयोरजस् नामक चूर्ण सिद्ध रसायन, एक वर्ष तक प्रयोग करने से सौ वर्ष तक जीवित रहता है। उग्र शोथ को नाश करता है, जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नष्ट करता है और भगन्दर, पामा (खुजली) तथा किटिभ नामक कुष्ठ को भी नाश करता है। जिन २ रोगों में लौहभस्म का प्रयोग होता है उन २ रोगों को निश्चय ही नाश करता है। जैसे विष्णु भगवान् देवताओं के शत्रुओं को नाश कर देते हैं ॥ ४११–४२१ ॥

पाण्डुरोगे किराततिक्तादिलौहम्—

किराततिक्तं सुरदारु दार्वी मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम् ।
दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रिक च ॥ ४२२ ॥
विडङ्गकं चैव समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथापि लौहम् ।
सर्पिर्मधुभ्यां गुटिका विधेयाः सेव्याः सदा वै बदरप्रमाणाः ॥ ४२३ ॥
निहन्ति पाण्डुं श्वयथुं प्रमेहं हलीमकं संग्रहणीप्रदोषम् ।
श्वासं च कासं च सरक्तपित्तमर्शांसि चोर्वोर्ग्रहमामवातम् ॥ ४२४ ॥

पाण्डुरोग में किराततिक्तादि लौह—किराततिक्त (चिरायता), देवदारु, दारुहल्दी, मोथा, गुडूची, कुटकी, पटोलपत्र, यवासा, पित्तपापड़ा, नीम की छाल, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक, फलत्रिक (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), विडंग—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। और सभी चूर्णों के बराबर लौहभस्म मिला दे। इस चूर्ण को बैर के बराबर एक भाग मधु तथा आधा भाग घृत के साथ गुटिका बनाये तथा हमेशा सेवन

करें। यह लौह पाण्डुरोग, शोथ, प्रमेह, हलीमक, ग्रहणीदोष, श्वास, कास, रक्तपित्त, अर्शरोग, ऊरुग्रह (दोनों ऊरुओं का अकडन) तथा आमवात को नाश करता है ॥ ४२२-४२४ ॥

प्रवाहिकायां कुटजाद्यं चूर्णम्—

कुटजत्वगिन्द्रयवान् पाठां मुस्तं रसाञ्जनं शुण्ठीम् ।
बालं बिल्वमतिविषां कटुकं वै धातकीं समाहृत्य ॥ ४२५ ॥
मधुनाऽऽलोड्य निपीत तण्डुलपयसा प्रवाहिकां हरति ।
अर्शांसि गुदे शूलं पित्तरक्तातिसार च ॥ ४२६ ॥

प्रवाहिका रोग में कुटजाद्य चूर्ण—कोरैया की छाल, इन्द्रयव, पाढ़ी, मोथा, रसाञ्जन (रसौत), सोंठ, वाल (सुगन्धवाला), बेल का गूदा, अतीस, कुटकी, धाय का फूल—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और (तीन से छ: मासा की मात्रा में) मधु में मिला कर चावल के जल के साथ पान करे। यह चूर्ण प्रवाहिका (आंव), अर्श रोग, गुदा का शूल, रक्तपित्त तथा अतिसार को दूर करता है ॥ ४२५-४२६ ॥

गुल्मे समशर्करं चूर्णम्—

त्रिवृत्तुल्याऽर्धकर्षाणि हिङ्गुसौवर्चलत्वचः ।
श्रेष्ठाम्लवेतसव्योषं सर्वैस्तुल्या तु शर्करा ॥ ४२७ ॥
समकं नाम तच्चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ।
गुल्मान् पञ्च सहृद्रोगान् कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ ४२८ ॥

गुल्म रोग में समशर्कर चूर्ण—शु० हिंगु, सौवर्चल नमक, दालचीनी, श्रेष्ठा ("त्रिफला" हर्रे, बहेडा, आंवला), अम्लवेत, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच)—आधा २ कर्ष—इन द्रव्यों को बराबर निशोथ लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और सभी चूर्ण के बराबर शर्करा मिला दे। इस समशर्करा नामक चूर्ण को गरम जल से पान करे। यह चूर्ण पाच प्रकार के गुल्म रोग, हृदय रोग तथा उदरशूल को नाश करता है ॥ ४२७-४२८ ॥

शोषे तिलाद्य चूर्णम्—

तिलकर्कन्धुलाजानां चूर्णं मध्वाज्यसयुतम् ।
मासेन हन्ति शोष तु क्षीर स्यादनुपानकम् ॥ ४२९ ॥

शोष रोग में तिलाद्य चूर्ण—तिल, कर्कन्धू (वैर) तथा लावा का चूर्ण, मधु एक भाग, घृत आधा भाग मिला कर चाटे और ऊपर से दूध पीवे। यह चूर्ण एक मास प्रयोग करने से सूखा रोग को नाश करता है ॥ ४२९ ॥

मन्दाग्नौ आमलकादिचूर्णम्—

धात्रीभागैकमुक्तं च पथ्याभागत्रयं तथा ।

कणाभागत्रयं चैव द्वौ भागौ चित्रकस्य च ॥ ४३० ॥
भागैकं सैन्धवस्यैतच्चूर्णमामलकादिकम् ।
क्षुधाकरमिदं चूर्णं मन्दाग्निं विनिवारयेत् ॥ ४३१ ॥

मन्दाग्नि में आमलकादि चूर्ण—आँवला एक भाग, हरें तीन भाग, पीपर तीन भाग, चित्रकमूल दो भाग, सेन्धा नमक एक भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह आमलकादिक चूर्ण है। यह चूर्ण भूख को बढ़ाने वाला है और मन्दाग्नि को दूर करता है ॥ ४३०–४३१ ॥

मन्दाग्नौ सौवर्चलाद्यं चूर्णम्—

सौवर्चलं कणा शुण्ठी रामठं जीरकद्वयम् ।
मरिचं चाजमोदा च ह्यम्लवेतसमेव च ॥ ४३२ ॥
समभागमिदं चूर्णं मन्दाग्निविनिवारणम् ।

मन्दाग्नि में सौवर्चल चूर्ण—सौवर्चलनमक, पीपर, सोंठ, शु० हिंगु, सफेदजीरा, स्याहजीरा, मरिच, अजमोदा, अम्लवेत—समभाग—इन द्रव्यों का चूर्ण मन्दाग्नि को दूर करता है ॥

मन्दाग्नौ अग्निचूर्णम्—

सौवर्चलं सैन्धवं च विडं क्षारः समांशकम् ॥ ४३३ ॥
द्विगुणा च कणा शुण्ठी जीरकं षड्गुणं तथा ।
अग्निचूर्णकमेतच्च वातमन्दाग्निवारणम् ॥ ४३४ ॥

मन्दाग्नि में अग्नि चूर्ण—सौवर्चल नमक, सेन्धा नमक, विडनमक, यवक्षार—समभाग, पीपर दो भाग, सोंठ दो भाग तथा स्याहजीरा छः भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे। यह अग्नि चूर्णक नामक चूर्ण वातजन्य मन्दाग्नि दूर करता है ॥ ४३३–४३४ ॥

मन्दाग्नौ सिंहणचूर्णम्—

सौवर्चलं सैन्धवं च सामुद्रं मरिचं तथा ।
दाडिमं सारकं चाम्लवेतसं समभागकम् ॥ ४३५ ॥
नागरं त्रिगुणं चैव जीरकं च चतुर्गुणम् ।
सिंहणं चूर्णमेतच्च मन्दाग्निविनिवारणम् ॥ ४३६ ॥

इति श्रीवैद्यसोढलग्रथिते गदनिग्रहे चूर्णाधिकारस्तृतीयः ।

मन्दाग्नि में सिंहण चूर्ण—सौवर्चलनमक, सेन्धा नमक, सामुद्र नमक, मरिच, अनारदाना, सारक (शु० जयपाल), अम्लवेत—समभाग, सोंठ तीन भाग, स्याहजीरा चार भाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। यह सिंहण चूर्ण मन्दाग्नि को दूर करता है ॥ ४३५–४३६ ॥

इति श्री वैद्य सोढल-ग्रथित गदनिग्रह में तृतीय चूर्णाधिकार समाप्तः ।

अथातश्चतुर्थो गुटिकाधिकारः

अग्निमान्द्येऽभयाद्या गुटिका—

हरीतकीनां कुडवं त्र्यूषणाच्च पलत्रयम् ।
द्वे पले पिप्पलीमूलात्तथा चैवाम्लवेतसात् ॥ १ ॥
चविकां चित्रक धान्यमजाजी हपुषामपि ।
यवानीं चाजमोदं च तिन्तिडीकं च दाडिमम् ॥ २ ॥
सौवर्चलोपकुञ्च्यौ च पलिकानि प्रदापयेत् ।
त्वगेलापत्रकनकं कर्षांशं चात्र दापयेत् ॥ ३ ॥
गुडस्य च पलान्यत्र दापयेद् द्विगुणानि च ।
अभयागुटिका ह्येषा मन्दस्याग्नेस्तु दीपिनी ॥ ४ ॥
वातशोणितमानाहं गुल्मं पञ्चविधं तथा ।
चतुरो ग्रहणीदोषानर्शांसि षड्विधानि च ॥ ५ ॥
कास क्षयं विबन्धं च शूल हृज्जठराश्रयम् ।
भक्षित्वा नाशयत्येषा भोज्य नियन्त्रणं स्मृतम् ॥ ६ ॥

अब चतुर्थ गुटिका अधिकार प्रारम्भ करते हैं ।

अग्निमान्द्य में अभयाद्या गुटिका—हर्रे एक कुडव (चार पल), त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच) तीनपल, पिपरामूल दो पल, अमलवेत दो पल, चव्य, चित्रक, धानयाँ, स्याहजीरा, हाऊवेर, अजवायन, अजमोदा, तिन्तिडीक, अनार, सौवर्चलनमक, उपकुंची (मगरैल)—ये द्रव्य एक २ पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कनक (नागकेशर)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को एकत्र कर कूट-पीस, छानकर महीन चूर्ण बनावे । चूर्ण से दुगुना गुड लेकर एक तार की चासनी बनाये और उस चासनी मे पूर्वोक्त चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर बेर के बराबर गुटिका बना ले । यह अभया नाम की गुटिका मन्दाग्नि को प्रदीप्त करती है । यह गुटिका भक्षण करने से वातरक्त, आनाह, पांच प्रकार का गुल्मरोग, चार प्रकार के ग्रहणीदोष, छः प्रकार के अर्शरोग, कास, क्षय, विबन्ध (मलावरोध), हृदय तथा उदर के शूल को नाश करती है । इसके सेवनकाल में भोजन मे कोई परहेज नहीं है ॥ १–६ ॥

गुटिका प्रकरण : गुटिका-परिभाषा—

वटकाश्चात्र कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी ।
मोदको वटक. पिण्डी गुण्टी वर्तिस्तथोच्यते ॥
लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा ।
गुग्गुलुर्वा क्षिपेत्तत्र, चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥

कुर्यात्तां वह्निसिद्धेन क्वचिद् गुग्गुलुना वटीम् ।
द्रवेण मधुना वापि, गुडिकां कारयेद् बुधः ॥

एक या अनेक औषधियों के महीन चूर्ण को जल, दूध, वनौषधियों के स्वरस, क्वाथ, शहद, गुड़ या शक्कर की चासनी में मिला अच्छी रीति से खरल कर गोलियाँ बनायी जाती हैं, उसे गुटिका कहते हैं। गुटिका में आकृति भेद से या परिमाण भेद से गुटिका, वटिका, वटी (बडे), मोदक (लड्डू), पिण्डी (मुठिया), वर्ति (बत्ती के सदृश आकार वाली), गुड आदि अनेक प्रकार के होते हैं। आग पर लेह के समान गुड, शक्कर तथा गुग्गुलु पका कर उसमें चूर्ण मिलाकर जो बनाया जाता है उसे वटी कहते हैं। कहीं पर गुग्गुलु को बिना पकाये ही घृत आदि के साथ कूट कर गुग्गुलु वटी निर्माण का किया जाता है। द्रव से या मधु से चूर्ण भावित कर वटी बनाई जाती है। जल, दूध, स्वरस या क्वाथ आदि की भावना देकर गोलिया बनानी हों तो औषधि अच्छी तरह भीग जाय उतना द्रव पदार्थ मिला खरल करके गोलियां बनानी चाहिए। यदि गोलिया बनाने में किसी औषधि के क्वाथ की भावना देनी हो तो मूल औषधि के चूर्ण के बराबर क्वाथ करने के द्रव्य को अठगुने जल में पका कर अष्टमांश अवशिष्ट क्वाथ छान कर भावना दे।

गुड तथा शक्कर प्रायः चासनी करके मिलाये जाते है। और गुग्गुलु को पका या घृत मिला कूट करके गोलिया बनायी जाती है। गुग्गुलु को शुद्ध करके ही मिलाना चाहिए।

सिता चतुर्गुणा देया, वटीषु द्विगुणो गुडः ।
चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ।
द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः ॥

यदि शक्कर मिलानी हो तो चूर्ण से चौगुनी, गुड मिलाना हो तो दुगुना, शहद मिलाना हो तो चूर्ण के समान और गुग्गुलु मिलाना हो तो भी चूर्ण के बराबर लेना चाहिए। मोदकों में द्रव पदार्थ दुगुना देना चाहिए। यह परिमाण वहां के लिये विहित है जिस योग में, शक्कर, गुड, मधु तथा गुग्गुलु के परिमाण का निर्देश नहीं किया गया है। जहा परिमाण का निर्देश है वहां निर्दिष्ट परिमाण ही लेना चाहिए।

गुडवद् गुग्गुलोः पाकः सम्बन्धस्तु विशेषत ।
मण्डूराणा च सर्वेषां पाकोऽयं परिकीर्तितः ॥

यदि गुग्गुलु का पाक करना हो तो गुड के पाक के समान करे किन्तु गाढा बनावे। जो जल मे डालने पर डूब जाय, इधर-उधर फैल न जाय, ऐसा पाक होने पर औषधियों के चूर्ण के साथ मिलावे। यदि पाक न करना

हो तो चूर्ण और शु० गुग्गुलु मिला थोडा २ घी डाल इमामजिस्ते में कूट कर अच्छी तरह मुलायम बना ले। पश्चात् गोलियां बाँधे। सभी मण्डूरों का भी पाक गुडपाक विधि के तरह करे। गुडपाक-लक्षण गदनिग्रह के प्रयोग खण्ड गुटिकाधिकार श्लोक १७१ से १७३ में वर्णन किया गया है।

भस्म तथा रसायन की अपेक्षा काष्ठौषध की बनाई हुई गुटिका प्रायः सौम्य होती है। अतः कमजोर, अशक्त तथा उष्ण प्रकृतिवाले रोगियों के लिये और पुराने रोग से लाभदायक है। यद्यपि चूर्ण आदि अनेक कृति सौम्य है तथापि उनकी मात्रा ज्यादा है। गुटिका की मात्रा कम है और गुटिका को निगलने में औषधि के कटु आदि गुण से मन में ग्लानि भी नहीं होती है। अतः बालक, स्त्रियां तथा कमजोर व्यक्तियों को आसानी से प्रयोग करायी जा सकती है। हानिकारक न होने से साधारण वैद्य भी निर्भयतापूर्वक इसका प्रयोग कर सकते है।

गुग्गुलु और अनेक प्रकार की औषधियां, शनैः शनैः लाभ पहुँचाती हैं अतः इन औषधों को धैर्यपूर्वक पथ्य के साथ सेवन करना चाहिए। जिस गुटिका में जमालगोटा, वत्सनाभ कुचिला आदि विशेष मिलाये जाते है। उसमें मिलाने के पहले, "गोमूत्र आदि" मे शुद्ध कर मिलाना चाहिए। जहरीले द्रव्यों को बिना शुद्ध किये मिलाने से औषधियाँ उग्र होती है और विषका प्रकोप सेवन करनेवाले के ऊपर होता है। वत्सनाभ आदि विष-मिश्रित गुटिकायें उग्र होती है अतः इसका प्रयोग विचारपूर्वक करना चाहिए। ये औषधें लाभ शीघ्र ही करती है किन्तु जीवनीय शक्ति को निर्बल बनाती हैं अथवा उत्तेजना के बाद अवसादक असर पहुँचाती है।

जिन वटियों को शास्त्रकार ने सूर्य के ताप मे सुखाने को लिखा है उनको सूर्य के धूप में सुखाना चाहिए। बाकी गुटिकावों को छाया एव हवा में पत्थर या कलईवाले बर्तन या चीनी मिट्टी के पात्र मे सुखाना चाहिए।

नीबू या खट्टे रस से तैयार वटियों को कलईदार बर्तन मे सुखाने से दूषित होने का भय रहता है अतः चीनी मिट्टी या काच के बर्तन मे सुखाना चाहिए। गोलियों को अच्छी तरह सूख जाने पर बन्द कर रखना ठीक है अन्यथा सत्वहीन हो जाती हैं।

अफीम आदि के योग को पेचिस अथवा अतिसार में आंव एवं मल के निकल जाने पर ही देना चाहिए। जमालगोटा आदि विष-द्रव्यों से बनी गोलियों को सावधानी से स्वल्प मात्रा मे प्रयोग करना चाहिये, और सगर्भा, स्त्री, बालक, वृद्ध, अति निर्बल मनुष्य, क्षय के रोगी तथा ताप के रोगी को

नहीं देनी चाहिए । कुचिला-मिश्रित गोलियों को १५ दिन से अधिक नहीं सेवन कराना चाहिए।

कठोर गोलियों का सेवन पीस कर मधु आदि उपयुक्त अनुपान के साथ कराना चाहिए । क्योंकि कडी गोलियाँ कभी २ परिपाक हुए विना ही बाहर निकल जाती है । इसके अलावा पीस कर प्रयोग करने से शीघ्र ही लाभप्रद होती है ।

अर्शसि काङ्कायनवटकः—

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्या जीरकस्य च ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ॥ ७ ॥
क्रमेण पलवृद्धं हि यवक्षारपलद्वयम् ।
भल्लातकफलान्यष्टौ कन्दस्तद्द्विगुणो मतः ॥ ८ ॥
द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसंमितान् ।
एकैकं भक्षयेत्प्रातस्तक्रमम्लं पिबेदनु ॥ ९ ॥
वह्निं संदीपयत्याशु ग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।
काङ्कायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ॥ १० ॥
कथितो वटको ह्येष गुदजानां विनाशनः ।

अर्शरोग में कांकायनवटक—हर्रे पाचपल, स्याहजीरा एक पल, सफेद जीरा एक पल, पीपर एक पल, पिपरामूल दो पल, चव्य तीन पल, चित्रक चारपल, सोंठ पांच पल, यवक्षार दो पल, शु० भल्लातक का फल आठ पल, वाराहीकन्द सोरह पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । चूर्ण के दुगुना गुड लेकर चासनी बनावे और उसमें चूर्ण को अच्छी तरह मिलाकर बहेडा के बराबर या एक २ अक्ष की मात्रा से वटक बनावे । एक २ वटक प्रातः काल भक्षण करे और ऊपर से मट्ठा तथा अम्ल रस पीवे । यह वटक अग्नि को प्रदीप्त करता है और ग्रहणी तथा पाण्डुरोग को जीत लेता है । कांकायन महर्षि ने अपने शिष्यों से शस्त्रकर्म, क्षारकर्म तथा अग्निकर्म के विना ही अर्श रोग को नाश करने के लिये इस वटक को कहा है ॥

गुल्मे काङ्कायनगुटिका—

शटी पुष्करमूलं च वह्नि लवणपञ्चकम् ।
शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ११ ॥
त्रिवृतायाः पल कुर्यात्त्रीन् कर्षानथ हिङ्गुतः ।
यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ १२
यवान्यजाजिमरिच धान्याकं शीतपुष्पकम् ।
उपकुञ्च्यजमोदे च ह्येपामष्टमिकां तथा ॥ १३ ॥

मातुलुङ्गरसेनैता गुटिकाः कारयेद्भिषक् ।
तासामेकां पिबेद् द्वे वा तिस्रोऽथ च सुखाम्बुना ॥ १४ ॥
अम्लैश्च मद्यैः पातव्या घृतेन पयसा तथा ।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी ॥ १५ ॥
अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी ।
गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ १६ ॥
क्षीरेण पित्तगुल्मं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् ।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सान्निपातिकम् ॥ १७ ॥
रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ।

गुल्मरोग में कांकायन गुटिका—कपूरकचरी, पुष्करमूल, चित्रक, लवण-पचक, (सेन्धानमक-सौवर्चलनमक-विड—सांभर-सामुद्र-नमक), सोंठ, वच—एक २ पल, निशोथ एक पल, शु० हिंगु तीन कर्ष, यवक्षार दो पल, अम्लवेत दो पल, अजवायन, स्याहजीरा, मरिच, धनिया, शीतपुष्पक (अर्कपुष्प), उपकुंची (मगरैल), अजमोदा—ये सब द्रव्य एक २ अष्टमिका (दो २ कर्ष), उपरोक्त सभी द्रव्यों को लेकर विजौरा नीबू के रस से भावितकर वैद्य गुटिका बनावे । इस वटी मे से एक, दो, या तीन वटिका गरम जल से, अम्ल रस से, मद्य से, घृत से या दूध से पान करे । यह कांकायन की बतायी हुई गुटिका गुल्म रोग को नाश करनेवाली है । अर्श रोग तथा हृदय रोग को शान्त करनेवाली है । तथा कृमि रोग को नाश करनेवाली है । गोमूत्र के साथ पान करने से पुराने गुल्म रोग को शान्त करती है । दूध के साथ भक्षण करने से पित्त-गुल्म, मद्य के साथ वात-गुल्म तथा त्रिफला के क्वाथ के साथ भक्षण करने से सान्निपातिक गुल्म रोग को दूर करती है । स्त्रियों के रक्त गुल्म में ऊंटनी के दूध के साथ इस गुटिका को पान कराये ।

गुल्मे निकुम्भाद्या गुटिका—

निकुम्भरजनीपाठात्रिकटुत्रिफलाग्निकाः ।
वाला वृक्षकबीजं च चूर्णं स्यादनवो गुडः ॥ १८ ॥
पथ्यया सहितं चूर्णं गवां मूत्रयुतं पचेत् ।
घनीभूते वटीं कृत्वा तां तु खादेदभुक्तवान् ॥ १९ ॥
गुल्मप्लीहाग्निसादांस्ता नाशयेयुरशेषतः ।
हृद्रोगं ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगं च दारुणम् ॥ २० ॥

गुल्मरोग में निकुम्भाद्या गुटिका—निकुम्भ (दन्तीमूल), दारुहल्दी, पाठा, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), चित्रक,

सुगन्धवाला, वृत्तकबीज (इन्द्रयव), हरे—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। पुराना गुड (चूर्ण के दुगना) लेकर गोमूत्र (चूर्ण के दुगुना) में मिलाकर चासनी बनाये और उस चूर्ण को मिलाकर गाढ़ा हो जाने पर वटी बनाये। इस वटी को भोजन के पहले भक्षण करे। ये वटी—गुल्मरोग, प्लीहा-वृद्धि, तथा मन्दाग्नि को निश्शेष नाश करती है और हृदयरोग, ग्रहणी दोष एवं भयंकर पाण्डुरोग को भी नाश करती है ॥ १८–२० ॥

विड्बन्धेऽभयावटकाः—

पथ्याकटुत्रिकविडङ्गदलत्वगेलाः
सग्रन्थिकाः सचविकामलकाः समुस्ताः।
अष्टौ त्रिवृद्भवजटाचरणास्त्रिभागा
दन्त्याश्च षड्गुणसितामधुमोदकाः स्युः ॥ २१ ॥
विड्भेदनाय सुकुमारतराः सुहृद्याः
प्रोक्ताः प्रगाढतरविड्भिदिकारिणस्ते।
तावद्विरेचनकरा न भवन्ति याव-
दुष्णं पिबेन्न च नराः सलिलं यथेच्छम् ॥ २२ ॥
हृद्रोगगुल्मगुदजश्वयथुप्रमेह-
पाण्ड्वामयोदरविकारभगन्दरघ्नाः।
स्थौल्याम्लवातविकृतिप्रशमार्थमेते
नृणां भिषग्भिरभयावटकाः प्रदिष्टाः ॥ २३ ॥

विड्बन्ध में अभयावटक—हरें, कटुत्रिक (सोंठ पीपर, मरिच), दल (तेजपत्र), दालचीनी, इलायची, पिपरामूल, चव्य, आंवला, मोथा—समभाग, निशोथ आठ भाग, भव (रोमफल) की जटा तथा मूल तीन भाग, दन्तीमूल तीन भाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। चूर्ण के चौगुना मिश्री की चासनी बनाकर चूर्ण को मिला दे, ठंडा होने पर मिश्री के आधा भाग मधु मिलाकर वटक बनावे। ये वटक मल भेदन करने के लिये सुकुमारतर (सौम्य) हृदय को बल देने वाले कहे गये हैं और जकडे हुए मल को भी भेदन करने वाले (निकालने वाले) है। ये मोदक तब तक विरेचन करने वाले नहीं होते है जब तक मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार गरम जल नही पीता है। ये वटक हृदयरोग, गुल्म, गुदजरोग (अर्श रोग), शोथ, प्रमेह, पाण्डुरोग, उदर-विकार तथा भगन्दर को नाश करने वाले है तथा मनुष्यों की स्थूलता तथा अम्लवात विकृति को शान्त करने के लिये इस अभयानामक वटक को वैद्यों ने कहा है ॥ २१–२३ ॥

पाण्डुरोगे वज्रकगुटिका—

रोहिणी चिरविल्वश्च कुटजश्च फलत्रिकम् ।
मुस्तकं पिप्पलीमूलं यष्ट्याह्वं निम्बनागरम् ॥ २४ ॥
पक्त्वा कषायमेषां तु भावयेच्च शिलाजतु ।
शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥ २५ ॥
वांश्याः कर्कटशृङ्ग्याश्च मागध्याश्च पलं पलम् ।
धात्रीफलपलार्धं च व्याघ्रीमूलत्वचं तथा ॥ २६ ॥
पत्रत्वगेला गन्धार्थे दत्त्वा चूर्णानि कारयेत् ।
तं विमर्द्य यथान्याय दद्यान्मधु पलत्रयम् ॥ २७ ॥
वर्तयेद्वटकानेतानुदुम्बरफलोपमान् ।
तत्रैक भक्षयेत्कल्ये सानुपानं यथाबलम् ॥ २८ ॥
विडङ्गरसयूषैश्च सुरारिष्टासवादिभिः ।
क्षीरैर्वा दाडिमाम्लैर्वा पथ्यभोजी पिबेन्नरः ॥ २९ ॥
स जयेत्पाडुरोगास्रदुष्टमेहगलग्रहान् ।
यक्ष्मकासांश्च वातादीन् श्वासशोषोदरामयान् ॥ ३० ॥
रोगानीकप्रणाशार्थं सृष्टा भगवता पुरा ।
वज्रकेति समाख्याता वटिकेयं महागुणा ॥ ३१ ॥
नैव दद्यात्कृतघ्नाय नास्तिकायोद्धताय च ।
इष्टाय संप्रयोक्तव्या ब्राह्मणाय विशेषतः ॥ ३२ ॥

पाण्डुरोग में वज्रक गुटिका—रोहिणी (मांसरोहिणी), चिरबिल्व (करञ्ज), कोरैया की छाल, फलत्रिक (हर्रे, बहेडा, आंवला), मोथा, पिपरामूल, जेठीमधु, नीम की छाल, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों के चौगुने जल से क्वाथ करे, चौथाई शेष क्वाथ से शिलाजीत आठपल तथा शर्करा आठपल भावित करे और उसमें वंशलोचन, काकडासिंही, पीपर—एक २ पल, आंवला आधापल, भटकटैया की जड आधापल, गन्ध के लिये तेजपत्र, दालचीनी, इलायची एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। और मर्दन करे तथा तीन पल मधु मिला दे। इस को गूलर के फल के समान वटक बनाये। इसमें से एक वटक को प्रातःकाल बल के अनुसार अनुपान के साथ भक्षण करे। मनुष्य इस वटक को पथ्यपूर्वक भोजन करता हुआ विडंग रस, यूष, सुरा, अरिष्ट, आसव या दूध या दाडिम (अनार का रस) या अम्ल रस के साथ पान करे। यह वटक पाण्डुरोग, दूषित रक्त होने पर, प्रमेह, गलग्रह, यक्ष्मा (राजयक्ष्मा), कास, वातादिक रोग, श्वास रोग तथा सूखा रोग को जीत लेता है। यह महान गुण वाला वज्रक नामक प्रसिद्ध वटिका को रोगसमूहों को शान्त करने के लिये

पहले पहल भगवान ब्रह्मा ने बनाया था। इस वटक को कृतघ्न, उद्धत तथा नास्तिक को नहीं देना चाहिए। मित्र, सात्त्विक, आस्तिक, विनम्र तथा विशेष कर ब्राह्मणों के लिये देना चाहिए ॥ २४–३२ ॥

शूले शम्बूकाद्या गुटिका—

पलानि त्रीणि शम्बूकाल्लोहचूर्णात्पलद्वयम् ।
रसाञ्जनात्पलं चैक लोहकिट्टात्पुनः पलम् ॥ ३३ ॥
शर्करां च समां सर्वैर्मधुना च परिप्लुताम् ।
सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान्कारयेद्भिषक् ॥ ३४ ॥
तान् भक्षयेत्प्रयत्नेन शूले गुल्मे हृदामये ।
पक्तिशूले विशेषेण शोफे पाण्डूदरे भ्रमे ॥ ३५ ॥
कासे कृच्छ्रे च दुर्नाम्नि प्रमेहाश्मरिवृद्धिषु ।
अग्निमान्द्ये स्मृतिभ्रंशे पीनसार्धावभेदके ॥ ३६ ॥

शूल रोग में शम्बूकाद्या गुटिका—शम्बूक (शंख) भस्म तीन पल, लौहभस्म दो पल, रसाञ्जन (रसौंत) एक पल, मण्डूरभस्म एक पल—सभी द्रव्यों के बराबर शर्करा तथा मधु मिला कर अच्छी तरह मर्दन कर मोदक बनाये । इस वटक को प्रयत्नपूर्वक शूलरोग, गुल्म, हृदयरोग, परिणामशूल, विशेषकर शोथ, पाण्डुरोग, उदररोग, भ्रम, कास, कष्टप्रद अर्शरोग, प्रमेह, पथरी, अण्डवृद्धि, मन्दाग्नि, स्मृतिभ्रंश, पीनस (दुर्गन्धयुक्त पुराना नासास्राव) तथा अर्धावभेदक (आधा शीशी) में भक्षण कराये ॥३३–३६॥

कल्याणवटकाः—

विडङ्गं पिप्पलीमूलं त्रिफलाधान्यचित्रकाः ।
मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पल्यः श्रेयसी तथा ॥ ३७ ॥
लवणान्यजमोदा च चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
तिलतैलं त्रिवृच्चूर्णं भागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ ३८ ॥
धात्रीरसस्य प्रस्थांस्त्रीन् गुडस्यार्धतुलां तथा ।
पक्त्वा मृद्वग्निना खादेदुत्तार्योदुम्बरोपमान् ॥ ३९ ॥
गुडान् कृत्वा न चात्र स्याद्विहाराचारयन्त्रणा ।
मन्दाग्नित्व ज्वरं मूर्च्छां मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् ॥ ४० ॥
अस्वप्नं च यकृच्छूलं कासं शोषं गरं विषम् ।
कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥ ४१ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्यु· पुंसवनाश्च ते ।
कल्याणका इति ख्याताः सर्वेष्वृतुषु यौगिकाः ॥ ४२ ॥

कल्याण वटक—विडंग, पिपरामूल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), धनिया,

चित्रक, मरिच, इन्द्रयव, स्याहजीरा, पीपर, श्रेयसी (गजपीपर), सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, सांभरनमक, सामुद्रनमक, अजमोदा—एक २ कर्ष— इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे । तिल तैल आठ पल लेकर मूर्च्छित कर चूर्ण को भून ले और उसमे निशोथ का चूर्ण आठ पल मिला दे । इसके वाद आंवला का रस तीन प्रस्थ, गुड आधा तुला मिलाकर मन्द आंच से चासनी करे और चूर्ण को मिला दे । घनीभूत होने पर उतार कर गूलर के बराबर गुटिका वनाये और भक्षण करे । इस गुटिका के सेवनकाल मे आहार-विहार का कोई नियम नहीं है । ये वटक मन्दाग्नि, ज्वर, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, अरोचक, अनिद्रा, यकृत (जिगर) का शूल, कास, सूखारोग, संयोगजविष, विष, कुष्ठरोग, अर्श, कामलारोग, प्रमेह, गुल्मरोग, उदररोग, भगन्दर, ग्रहणी दोष तथा पाण्डु रोगों को नाश करते है । ये प्रसिद्ध कल्याणक वटक सभी ऋतुवों में प्रयोग करने योग्य हैं और पुंसवन (पुत्रोत्पादक) हैं ॥ ३७–४२ ॥

क्षतक्षीणे एलाद्या गुटिका—

एलापत्रत्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्धपलं तथा ।
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ ४३ ॥
सचूर्ण्य मधुना युक्त्या गुटिकाः संप्रकल्पयेत् ।
अक्षतुल्यां ततश्चैकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ४४ ॥
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् ।
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ४५ ॥
शोषप्लीहाढ्यवातांश्च स्वरभेदं तथा क्षयम् ।
गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥ ४६ ॥

क्षतक्षीण में एलाद्या गुटिका—इलायची, तेजपत्र, दालचीनी—आधा अक्ष, पीपर आधापल, सिता (श्वेतदूर्वा), मुलेठी, खजूर, मुनक्का—एक २ पल—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण कर मधु मिलाकर युक्तिपूर्वक एक २ अक्ष के वरावर वटिका वनाये । इसके वाद एक वटिका प्रतिदिन भक्षण करे । यह गुटिका—कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, छर्दि (वमन), मद, भ्रम (चक्कर), रक्तष्ठीवन (मुख से खून का आना), तृष्णा, पार्श्वशूल, अरोचक, सूखारोग, प्लीहावृद्धि, आढ्यवात (दोनों ऊरुवों का घात), स्वरभेद, क्षय तथा रक्त-पित्त को नाश करती है और तर्पण करने वाली रस आदि धातुवों को बढ़ाने वाली एवं शक्ति देने वाली हैं ॥ ४३–४६ ॥

क्षतक्षीणे सर्पिर्गुटिका—

विदारी च बला ह्रस्वापञ्चमूली पुनर्नवा ।
पञ्चानां क्षीरवृक्षाणां शुङ्गा मुष्टचंशका अपि ॥ ४७ ॥

एषां कषाये द्विक्षीरे विदार्याः स्वरसांशके ।
जीवनीयैः पचेत् कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ४८ ॥
सितापलानि पूतेऽस्मिञ्छीते द्वात्रिंशदावपेत् ।
गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ४९ ॥
सक्षौद्रं कुडवं शीतं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान् कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ५० ॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरं मद्यं चानुपिबेत्कफे ।
शोषे कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्शिते ॥ ५१ ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसेऽप्युरसि क्षते ।
शस्ता पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ ५२ ॥

क्षतक्षीण में सर्पिर्गुटिका—विदारीकन्द, वरियार, लघुपंचमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभटा, भटकटैया, गोखरू), पुनर्नवा, वट, पीपर, पकड़ी, गूलर, पारिस पीपर—इन पाचों क्षीरी वृक्षों का टूसा एक २ मुष्टि (पल)—इन द्रव्यों के कषाय (चौगुने जल में क्वाथ करने के बाद चतुर्थांशावशिष्ट कषाय) सेहुड का दूध, मदार का दूध तथा विदारीकन्द के स्वरस में जीवनीय गण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी)—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के कल्क के साथ घृत एक आढक (चार प्रस्थ) पकाये । छानने के बाद ठंढा होने पर, मिश्री बत्तीस पल, गोधूम (गेहूँ का सत्त) एक कुडव, पीपर का चूर्ण एक कुडव, वंशलोचन एक कुडव, सिंहाडा का चूर्ण एक कुडव, मधु एक कुडव मिलाकर कलछी से अच्छी तरह चलायें, गाढ़ा हो जाने पर गोली बनाये और उन गोलियों को भोजपत्र में लपेट दे । उसके बाद इन गोलियों को उपले के आग में जलाये । अच्छी तरह जल जाने के बाद पुनः भस्म बनाकर एक २ पल की मात्रा में दूध या मद्य के साथ कफजन्यरोग, सूखारोग, कास, क्षतक्षीण, श्रमजन्य कृशता, स्त्रीप्रसंगजन्य दुर्बलता, रक्तष्ठीवन, ताप, पीनस (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासास्राव), ताप, उरःक्षत, पार्श्वशूल, शिरःशूल, स्वरभेद तथा वर्ण भेद में पान करना उत्तम है ॥ ४७–५२ ॥

पाण्डुरोगे मण्डूरवटकाः—

मरिचं पञ्चकोलं च देवदारु फलत्रिकम् ।
विडङ्गमुस्तं तुल्यानि भागांस्तु पलसंमितान् ॥ ५३ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ।
पक्त्वाऽष्टगुणिते मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ५४ ॥
वटकानक्षमात्रांस्तु पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् ।

पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ५५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषशोफमूत्रहलीमकम् ।
कृमिं प्लीहानमुदरं हृद्रोगं चाशु नाशयेत् ॥ ५६ ॥
मण्डूरवटका ह्येते रोगानीकप्रणाशनाः ।

पाण्डुरोग में मण्डूर वटक—मरिच, पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), देवदारु, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), विडंग, मोथा—समभाग एक २ पल—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे। और इस चूर्ण के दुगुना मण्डूर भस्म लेकर—इन सभी चूर्णों को अठगुना गोमूत्र मे पकावे। गाढा हो जाने पर, एक २ अक्ष परिमाण का वटक बनावे और तक्र के साथ भक्षण करे एवं तक्र के ही साथ भोजन करे। यह वटक, पाण्डुरोग को जीत लेता है, मन्दाग्नि, अरोचक, अर्शरोग, ग्रहणीदोष, शोथ, मूत्ररोग, हलीमक, कृमिरोग, प्लीहावृद्धि, उदररोग तथा हृदय-रोग को शीघ्र ही नाश करता है। ये मण्डूर-वटक रोगसमूहों को नाश करने वाले हैं ॥ ५३–५६ ॥

पाण्डुरोगे द्वितीयो मण्डूरवटकः—

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥ ५७ ॥
दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ।
एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् ॥ ५८ ॥
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ।
मूत्रमष्टगुणं कृत्वा तस्मिंश्च प्रक्षिपेत्ततः ॥ ५९ ॥
शनैः सिद्धं ततः शीताः कार्याः कर्षसमा गुडाः ।
यथाग्नि भक्षणीयास्ते प्लीहपाण्ड्वामयापहाः ॥ ६० ॥
ग्रहण्यर्शोनुदश्चैव तक्रवाट्याशिनः स्मृताः ।

पाण्डुरोग में द्वितीय मण्डूर वटक—त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), मोथा, विडंग, चव्य, चित्रक, दारुहल्दी, दालचीनी, स्वर्णमाक्षिक, धातु (रौप्यमाक्षिक), पिपरामूल, देवदारु—दो २ पल—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे। चूर्ण के दुगुना मण्डूर भस्म शुद्ध अञ्जन समान भाग ले ले और दोनों को अठगुने गोमूत्र में मिलाकर धीरे २ मन्द आंच से पकावे। गाढ़ा एवं ठण्ढा होने पर एक २ कर्ष के बराबर गुटिका बनाये। उदराग्नि के अनुसार मात्रापूर्वक भक्षण करे। ये वटक प्लीहावृद्धि तथा पाण्डुरोग को नाश करने वाले हैं और ग्रहणी एवं अर्शरोग को दूर करने वाले हैं। इस वटक के सेवन-काल में जव की गूढ़ी की रोटी को मट्ठा के साथ खाना चाहिए ॥

शोषे क्षारगुटिका—

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वार्ययोरजो व्योषफलत्रिके च ।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ॥ ६१ ॥
कलिङ्गजं चित्रकमूलपाठे यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलांशम् ।
सहिङ्गुकर्षं त्वणु शुष्कचूर्णं द्रोणं तथा मूलकशुण्ठिकानाम् ॥ ६२ ॥
स्याद्भस्मनस्तत् सलिलेन साध्यमालोड्य यावद्घनमप्रदग्धम् ।
वटीं ततः कोलसमानमात्रां कृत्वा सुशुष्कां विधिना तु युञ्ज्यात् ॥६३॥
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकार्शःपाण्ड्वामयारोचकशोषशोफान् ।
विसूचिकागुल्मगराश्मरीश्च सश्वासकासाः प्रणुदेत्सकुष्ठाः ॥ ६४ ॥

शोष रोग में क्षारगुटिका—सज्जीक्षार, यवक्षार, चारोनमक (सेन्धा, सौवर्चल, विड, सामुद्र), लोहभस्म, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), फलत्रिक (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), पीपर, पिपरामूल, विडंग, विजयसार, मोथा, अजमोदा, देवदारु, बेल की छाल, कलिंगज (इन्द्रयव), चित्रकमूल, पाठा, जेठीमधु, अतीस—एक २ पल—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे, और उसमें हिंगु एक कर्ष घी में भूनकर मिला दे। इसके बाद सूखी मूली एक द्रोण लेकर भस्म बनायें। उस भस्म को चौगुने जल में घोलकर छान ले और कलईदार बर्तन में रख कर उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर तब तक पकावे जब तक गाढ़ा न हो जाय किन्तु जलने न पाये। इसके बाद गाढ़ा हो जाने पर बेर के बराबर २ वटी बनावे और सुखा कर रख लें। इस वटी को विधिपूर्वक प्रयोग करे। यह वटी प्लीहोदर (पुराना प्लीहावृद्धि), श्वित्र (सफेद कोढ़), हलीमक, अर्शरोग, पाण्डुरोग, अरोचक, सूखारोग, शोथ, विसूचिका (हैजा), गुल्मरोग, मूत्र का पथरी रोग, श्वास-कास तथा कुष्ठ को नाश करती है ॥ ६१–६४ ॥

कुष्ठे माणिभद्रवटकः—

विडङ्गसारामलकाभयानां पलं पलं स्यात्त्रिवृतापलानि ।
गुडस्य च द्वादश एष योगो मासेन त्रिंशद्गुटिकोपयोगः ॥ ६५ ॥
इयं हि कुष्ठज्वरगुल्मपाण्डुताभगन्दरश्वासगरोदरार्शसाम् ।
प्रणाशनी यक्षपतिः स्वयं ददौ स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे ॥६६॥

कुष्ठरोग में माणिभद्र वटक—विडंग, विजयसार, आंवला, हर्रे—एक २ पल, निशोथ ४ पल—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे। गुड बारह पल लेकर चासनी बनावे और चूर्ण को मिलाकर तीस गुटिका बनावे तथा एक मास तक सेवन करे। यह वटिका कुष्ठ रोग, ज्वर, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, भगन्दर, श्वासरोग, गर (संयोगज विष), उदररोग तथा अर्शरोग को नाश करनेवाली है। इस माणिभद्र वटकको शाक्यभिक्षु के लिये यक्षपति ने स्वयं दिया था ॥ ६५–६६ ॥

कुष्ठे माणिभद्रवटकः—

विडङ्गामलक पथ्या पलांशा त्रिवृता त्रिपलम् ।
गुडं तु द्विगुणं दत्त्वा वटकांस्त्रिंशदाचरेत् ॥ ६७ ॥
कुष्ठानि पिडकार्शांसि कृमिगुल्मोदराणि च ।
कासं श्वासं च शमयेद्विशेषान्माणिभद्रकः ॥ ६८ ॥

कुष्ठरोग में माणिभद्र वटक—विडङ्ग, आंवला, हरें—एक १ पल, निशोथ तीन पल—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण के दुगुना गुड़ की चासनी बनाकर तीस वटक बनावे। यह माणिभद्रक वटक कुष्ठरोग, पिडका (फिन्सी) अर्शरोग, कृमिरोग, गुल्मरोग, उदररोग, विशेष प्रकार से श्वास तथा कासरोग को शान्त करता है ॥ ६७–६८ ॥

अर्शसि सूरणवटकः—

षोडश सूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यापि ।
अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्धेन ॥ ६९ ॥
त्रिफला कणा समूला तालीसारुष्करक्रिमिघ्नानाम् ।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ७० ॥
भागः सूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि ।
भृङ्गैले मरिचांशे चूर्णेऽस्मिन्योजयेन्मतिमान् ॥ ७१ ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽय मोदकः प्रकामघनैः ।
गुरुवृष्यभोज्यरहितैस्त्वितरैपूपद्रवान्कुरुते ॥ ७२ ॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।
भीमस्य मारुतेरपि येन हि ते महाशना जाताः ॥ ७३ ॥
अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाऽप्यर्शसामेष ॥ ७४ ॥
श्वयथुश्लीपदगरजिद्दुग्रहणीं च कफानिलाज्जाताम् ।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं च ॥ ७५ ॥
हिक्कां कासं श्वासं सराजयक्ष्मप्रमेहं च ।
प्लीहानमप्यथोग्रं हन्ति च रसायनं पुंसाम् ॥ ७६ ॥

अर्शरोग मे सूरण वटक—सूरन (जिमीकन्द) सोलह भाग, चित्रक आठ भाग, सोंठ चारभाग, मरिच दो भाग, त्रिफला (हरें, वहेडा. आंवला), पीपर, पिपरामूल, तालीसपत्र, अरुष्क (शु० भल्लातक), विडग—दो २ भाग, तालमूली (मुसलीकन्द) आठ भाग, वृद्धदारु (विधारा) सोरह भाग, भृङ्गराज तथा इलायची—दो २ भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को चूर्ण के दुगुना गुड़ की चासनी में मिलाकर पकावे

गाढ़ा होने पर मोदक बना ले। इस मोदक को अधिक धनी व्यक्ति सेवन करे। मोदक-सेवनकाल में गुरु, वृष्य, (शक्तिवर्द्धक) पदार्थों को भोजन करना चाहिए अन्यथा यह मोदक अनेक प्रकार के उपद्रवों को करता है। पहले इस योगराज के प्रयोग से अगस्त्य को भस्मक (अधिक पचाने का सामर्थ्य) प्राप्त हुआ था। इसी योग से भीम तथा मारुति को अधिक खाने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ था। यह महान वीर्यवाला सूरन, केवल एक अग्निबल को ही बढ़ानेवाला नहीं है बल्कि यह शस्त्रकर्म, क्षारकर्म तथा अग्निकर्म के बिना भी अर्शरोग को नष्ट करनेवाला है। यह मोदक शोथ, श्लीपद (फीलपांव), गर (संयोगजविष) को जीत लेता है और ग्रहणी दोष एवं कफ-वातजन्य रोगों को नाश करता है। वली (मुख में झुरी पड़ना), पलित (असमय मे बाल पकने) से बचाता है और धारणाशक्ति तथा बल को बढ़ाता है। यह रसायन पुरुषों के हिक्का, कास, श्वास, राजयक्ष्मा, प्रमेह भयंकर प्लीहावृद्धि, को भी नाश करता है। (सूरन को टुकडा २ कर सुखाले इसके बाद सूक्ष्म चूर्ण बनावे) ॥ ६९-७६ ॥

अर्शसि लघुसूरणवटिका—

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य भागास्ततोऽर्धा नवचित्रकस्य।
महौषधाद् द्वौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी॥ ७७॥

अर्शरोग में लघु सूरण वटक—(सूरन कन्द को छोटा २ टुकड़ा बनाकर सुखा ले और महीन चूर्ण बनाये) सूरन चूर्ण सोरह भाग, ताजा चित्रक का चूर्ण आठ भाग, सोंठ का चूर्ण दो भाग, मरिच का चूर्ण एक भाग—इन चूर्णों को दुगुने गुड की चासनी मे मिलाकर गुटिका बना ले। इस वटी को दुर्नाम (अर्श) रोग नाश करने के लिये प्रयोग करे। (सूरन के चूर्ण को घृत में भून लेना चाहिए) ॥ ७७ ॥

अर्शोरोगे मरिचाद्या गुटिका—

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान् क्रमविवर्धितभागसुचूर्णितान्।
शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान् कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदे ॥७८॥

अर्शरोग में मरिचाद्या गुटिका—मरिच एक भाग, पीपर दो भाग, सोंठ तीन भाग, चित्रक चार भाग, अपामार्ग पाच भाग, सूरन चतुर्गुण (बीस भाग)—इन सभी द्रव्यों को लेकर चूर्ण बना ले। चूर्ण के दुगुना गुड़ की चासनी मिलाकर गुटिका बना ले। इस गुटिका को अर्शरोग को नाश करने के लिये प्रयोग करे। (इसकी मात्रा डेढ तोला से दो तोला तक बल एवं अग्नि के अनुसार कल्पित करना चाहिए)॥ ७८ ॥

अर्शसि कलिङ्गाद्या गुटिका—

कलिङ्गलाङ्गलीकृष्णायष्ट्यपामार्गपिप्पली ।
भूनिम्बसैन्धवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥ ७९ ॥

अर्शरोग मे कलिगाद्या गुटिका—कलिग (इन्द्रयव), लांगली (कलिहारी), मरिच, जेठी मधु, पीपर, चिरायता, सेन्धानमक—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को चूर्ण के दुगुना गुड की चासनी मे मिलाकर वटक वनाये । ये वटक अर्शरोग को नाश करनेवाले है ॥ ७९ ॥

गुल्मे गुडवटकाः—

गुडविश्वौषधपथ्यामागधिकादाडिमैः कृता गुटिका ।
विनिहन्ति भक्ष्यमाणा गुल्मार्शोवह्निसादगदान् ॥ ८० ॥

गुल्मरोग में गुड वटक—सोंठ, हर्रे, पीपर, अनारदाना—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को (चूर्ण से दुगुना) गुड की चासनी मे मिलाकर बनाई हुई गुटिका गुल्मरोग, अर्शरोग तथा मन्दाग्निरोग को नाश करती है ॥ ८० ॥

अतिसारेऽभयाद्या वटकाः—

अभयागुडपिप्पल्यः समांशा वटकीकृताः ।
भक्षिता घ्नन्त्यतीसारमर्शःपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ८१ ॥

अतिसार रोग मे अभयाद्य वटक—हर्रे चूर्ण, पीपर चूर्ण, तथा समभाग गुड लेकर (गुड की चासनी वना ले) वटक वनावे । यह अतिसार, अर्शरोग, पाण्डुरोग तथा ज्वरों को नाश करता है ॥ ८१ ॥

सर्वातिसारेऽङ्कोलवटिका—

पलमङ्कोलमूलस्य पाठां दार्वीं च तत्समाम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटिकामक्षसंमिताम् ॥ ८२ ॥
छायाशुष्कां पिबेत्क्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
वातपित्तकफप्रायान् द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान् ॥ ८३ ॥
हन्यात्सर्वातिसारांस्तु वटिकेयं प्रयोजिता ।

सभी अतिसार रोगों मे अकोल वटिका—अंकोलमूल (अंकोट-ढेरा की जड), पाठा, दारुहल्दी—एक २ पल, चावल के पानी के साथ पीस कर एक २ अक्ष की वटिका वनावे, और छाया में सुखा ले तथा तण्डुलोदक के साथ पान करें या तुरन्त तण्डुलोदक से पीसकर पान करे । यह वटिका सेवन करने से वात, पित्त तथा कफजन्य, द्वन्द्वज, (कफ-वातजन्य, वातपित्तजन्य, कफ-पित्तजन्य), सान्निपातिक (त्रिदोषजन्य) सभी प्रकार के अतिसारों नाश करती है ॥ ८२–८३ ॥

सर्वातिसारे बृहदङ्कोलवटिका—

सदार्व्यङ्कोलपाठानां मूलं तु कुटजस्य च ।
शाल्मलेरथ निर्यासो धातकीरोध्रदाडिमम् ॥ ८४ ॥
पिष्ट्वाऽक्षसंमितान् कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्भसा ।
ततस्तु मधुसंयुक्तमेकैकं प्रातरुत्थितः ॥ ८५ ॥
पिबेदत्यन्तमापन्नो विधिसर्गेण मानवः ।
अङ्कोलवटका नाम्ना सर्वातीसारनाशनाः ॥ ८६ ॥

सभी प्रकार के अतिसाररोग में बृहत्—अंकोल वटिका—दारुहल्दी का मूल, अंकोल (अंकोट "ढेरा") का मूल, पाठामूल, कोरैया का मूल, सेमर का गोंद, धाय का फूल, लोध्र, अनार—समभाग—इन द्रव्यों को तण्डुलोदक (चावल के पानी) से पीसकर एक २ अक्ष का वटक बनावे । इन वटकों में से एक २ वटक प्रातःकाल मधु के साथ दुर्भाग्यवश अत्यन्त संकटापन्न अतिसार रोग से पीडित व्यक्ति पान करे । अंकोल वटक, सभी प्रकार के अतिसार रोग को नाश करता है ॥ ८४–८६ ॥

अतिसारे कट्वङ्गाद्या गुटिका—

पलानि दश कट्वङ्गाद् द्वे पले पद्मकत्वचः ।
स्थिराया बिल्वपेश्याश्च पलान्यष्टौ पृथक् पृथक् ॥ ८७ ॥
कटुकाह्वाञ्जनोशीररोध्रयष्ट्याह्वमुस्तकान् ।
कालीयकं नखं चैव हरिद्रारक्तचन्दनम् ॥ ८८ ॥
करञ्जफलचूतास्थिदाडिमत्वग्वितुन्नकाः ।
केतक्यर्जुनपुष्पाणि वल्कान्यक्षप्रियालयोः ॥ ८९ ॥
समङ्गा शालबीजानि ग्रन्थि चाप्यरिमेदतः ।
फलस्य, वत्सकफलं सक्षुद्य पलसंमितम् ॥ ९० ॥
द्विद्रोणं विपचेदम्भः पूत्वा क्वाथ पचेदनु ।
पिण्डमक्षसमं तस्माद्घृतमादाय बुद्धिमान् ॥ ९१ ॥
कारयेद् गुटिकां श्लक्ष्णां प्रसतोऽर्धां सुखाम्बुना ।
अवृक्षतैलसंयुक्तां कफपित्तानिलार्तिषु ॥ ९२ ॥
केवले सन्निपाते च ततस्तक्र पिबेदनु ।
तक्रेणैवानुभुञ्जीत नरोऽतीसारपीडितः ॥ ९३ ॥
मृत्युपाशान् जयेच्छीघ्रमियं सम्यक् प्रयोजिता ।
अतिसारसमुत्थानं मृत्युमप्यागतं जयेत् ॥ ९४ ॥

अतिसार रोग में कट्वंगाद्या गुटिका—अरलू दशपल, पद्मकाठ की छाल

दो पल, शालपर्णी आठ पल. बेल की छाल आठ पल, कुटकी, अंजन (रसांजन), खस, लोध्र, मुलेठी, मोथा, कालीयक (दारुहल्दी), व्याघ्रनख, आमाहल्दी, रक्तचन्दन, करंज फल, आम की गुठली, अनार का छिलका, वितुन्नक (धनियां), केतकी का फूल, अर्जुन का फूल, बहेड़ा का छिलका, पियाल (चीरिका "खिरिणी") की छाल, संजीठ, शाल्वृक्ष का बीज, इरिमेद (दुर्गन्ध खदिर) की गांठ, मदनफल, इन्द्रयव—इन द्रव्यों को एक २ पल लेकर सभी द्रव्यों को मिलाकर दो द्रोण मे पकावे, इस क्वाथ को छान कर पुनः पकावे गाढ़ा होने पर एक २ अक्ष की मात्रा मे चिकनी गुटिका बनावे। इस गुटिका में से आधी गुटिका को अवृक्ष तैल (तूनीवृक्ष का तैल) मे मिलाकर थोड़े गरम जल से कफ, पित्त तथा वातजन्य अतिसार एवं सान्निपातिक अतिसार में सेवन करे और ऊपर से तक्र पीवे। अतिसार से पीडित मनुष्य तक्र के ही साथ भोजन करे। यह वटी अच्छी तरह प्रयोग करने से मृत्युपाश से शीघ्र ही छुडा देती है। अतिसार से उत्पन्न मृत्यु को भी जीत लेती है ॥ ८७–९४ ॥

ग्रहण्यां चित्रकाद्या गुटिका—

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषं हिङ्ग्वजमोदं च चव्यं चकत्र चूर्णयेत् ॥ ९५ ॥
गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा ।
कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ९६ ॥

ग्रहणीरोग में चित्रकाद्या गुटिका—चित्रकमूल, पिपरामूल, सज्जीखार, यवक्षार, सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, साभरनमक, सामुद्रनमक, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), शु० हिंगु, अजमोदा, चव्य—समभाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे, इस चूर्ण को विजौरा नीबू के रस मे या अनार के रस से भावित कर गुटिका बनावे। यह गुटिका आमदोष को पचाती है तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करती है ॥ ९५–९६ ॥

ग्रहण्यां क्षारगुटिका—

द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृता निकुम्भा पाठा वचास्फोटबलाश्च रास्ना ।
सकारवीचित्रकमर्कमूलं पृथक् पृथक् तानि पलैर्दशाख्यैः ॥ ९७ ॥
भस्मीकृतान्यम्भसि गालयित्वा पचेत्तुलां जीर्णगुडस्य सम्यक् ।
द्वे पञ्चमूल्यौ यवशूकजं च क्षार तथा स्वर्जिकसंज्ञिकं च ॥ ९८ ॥
व्योषं वचां चैव हरीतकीं च पृथक पलानां सह चित्रकेण ।
हिङ्ग्वम्लभल्लातकमक्षतुल्यं विपाचयेत्क्षारगुड यथावत् ॥ ९९ ॥
ततोऽक्षमात्रा गुटिका प्रयोज्या कायाग्निहीनैरबलैर्नरैश्च ।

सश्लेष्मकासारुचिगुल्मवृद्धौ कफश्च कण्ठोरसि यस्य तिष्ठेत् ॥१००॥
कुष्ठप्रमेहान् श्वयथुं च हन्याद्वातामयप्लीहयकृद्भवांश्च ।
अन्नं हि भुक्तं जरयेच्च शीघ्रं युक्तो रसैः क्षारगुडप्रयोगः ॥ १०१ ॥

ग्रहणीरोग में क्षारगुटिका—दोनों पञ्चमूल (बिल्व, गम्भारी, अरलू, पाटला, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू), निशोथ, दन्तीवृक्ष, पाठा, वच, मदार, वरियार, रास्ना, मगरैल, चित्रक, रक्तमदार का मूल—इन द्रव्यों को दश २ पल लेकर हाड़ी में भरकर जलाये और चौगुना पानी में घोल कर छान लें, पुनः उसमें गुड पाँच तुला तथा दोनों पंचमूल, यवक्षार, सज्जीक्षार, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) वच, हर्रे, चित्रक—एक २ पल, शु० हिंगु, अम्लवेत, शु० भल्लातक—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे तथा इस चूर्ण को पूर्वोक्त द्रवद्रव्य में मिलाकर पकावे, गुडपाक हो जाने पर एक अक्ष प्रमाण की गुटिका बनावे और मन्दाग्नि एवं दुर्बल मनुष्यों के लिये, कफजन्य कास, अरुचि, गुल्म, वृद्धि रोग तथा जिसके कण्ठ एवं छाती में कफ रुकता हो उसमें प्रयोग करे। यह गुटिका कुष्ठरोग, प्रमेह, शोथ, वातरोग, प्लीहावृद्धि तथा यकृद् रोग को नाश करती है। यह क्षार गुड़ मांसरस के साथ प्रयोग करने से भुक्त अन्न को शीघ्र ही पचा देता है ॥ ९७–१०१ ॥

तालीसाद्या गुटिका—

मरिचं चव्यतालीसं पलार्धांशानि नागरात् ।
अध्यर्धं पिप्पलीमूलात्पिप्पल्याश्च पलं पलम् ॥ १०२ ॥
कर्षं तु नागपुष्पस्य त्रुटीकर्षार्धमेव च ।
त्वक्पत्रोशीरकर्षस्तु चूर्णात्त्रिगुणितो गुडः ॥ १०३ ॥
गुटिका ह्यक्षमात्रा च मद्ययूषपयोरसैः ।
पीताम्भसाऽथवा प्रातः सर्वान् हन्याद् गुदोद्भवान् ॥ १०४ ॥
शूलं पानात्ययं छर्दिं प्रमेहं विषमज्वरान् ।
गुल्मं पाण्डुरुजं शोफं हृद्रोगं ग्रहणीगदान् ॥ १०५ ॥
कासहिक्कारुचिश्वासक्रम्यतीसारकामलाः ।
मूत्रकृच्छ्रं च मन्दाग्निं हन्याच्छोफं च सा भृशम् ॥ १०६ ॥
एतदेव भवेच्चूर्णं सिताचूर्णचतुर्गुणम् ।
सपित्तेषु विकारेषु विशेषेणामृतोपमम् ॥ १०७ ॥
सा चैव गुटिका पथ्याफलत्रयविशेषिता ।
शोफार्शोग्रहणीशोषपाण्डुशूलापहारिणी ॥ १०८ ॥

तालीसाद्या गुटिका—मरिच, चव्य, तालीसपत्र—आधा २ पल, सोंठ एक

कर्ष, पिपरामूल एक पल, पीपर एक पल, नागकेशर एककर्ष, इलायची आधा कर्ष, दालचीनी, तेजपत्र, खस—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाये। चूर्ण के तीनगुना गुड लेकर चासनी बनाकर उसमे चूर्ण मिलाकर एक २ अक्ष प्रमाण की गुटिका बनावे और मद्य, यूप, दूध, मांसरस या जल से प्रातःकाल पान करे। यह गुटिका सभी गुदोद्भव (अर्श) रोगों को नाश करती है। शूल, पानात्यय, छर्दि, प्रमेह, विषमज्वर, गुल्म, पाण्डुरोग, शोथ, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कास, हिचकी, अरुचि, श्वास, कृमि, अतिसार, कामला, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि तथा सूखा रोग को नाश करती है। इसी पूर्वोक्त चूर्ण को चौगुना मिश्री मिलाकर सेवन करने से पित्तजन्य विकारों में अमृत के समान लाभकारक होता है। इसी गुटिका मे हर्रे आदि त्रिफला मिला देने से शोथ, अर्श, ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग तथा शूलरोग को नाश करनेवाली है ॥ १०२–१०८ ॥

क्षयरोगे मरीचादिवटिका—

मरीचपत्रतालीसचविकानां पलं पलम् ।
कृष्णातन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठीपलत्रयम् ॥ १०९ ॥
चातुर्जातमुशीरं च कर्षांश श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
तत्र त्रिंशत्पलं दद्यात्क्वथितादमलाद्गुडात् ॥ ११० ॥
मरीचवटका ह्येते क्षयघ्ना दीपनाः परम् ।

क्षयरोग में मरिचादि वटिका—मरिच, तालीसपत्र, चव्य—एक २ पल, पीपर, पिपरामूल—दो २ पल, सोंठ तीन पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), खस—एक २ कर्ष, इन सभी द्रव्यों को महीन चूर्ण बनावे और तीस पल गुड़ की चासनी में मिलाकर वटक बनावे। ये मरिच वटक, क्षयरोग को नाश करनेवाले हैं तथा उत्तम अग्निदीपक है ॥

लवङ्गाद्या गुटिका—

पलार्धं तु लवङ्गस्य तालीसत्रुटिवल्कलम् ॥ १११ ॥
यवानीचव्यकाजाजीधान्यकं च पलोन्मितम् ।
द्विपलं मरिच कृष्णा वृक्षाम्ल साम्लवेतसम् ॥ ११२ ॥
कृष्णायाश्च जटा शुण्ठी पथ्या च कुडवोन्मिता ।
एतत्सर्वं समाहृत्य त्रिगुणेन गुडेन तु ॥ ११३ ॥
ततोऽर्धपलिकाः कार्या गुटिकास्तु भिषग्वरैः ।
वटीमेकां ततः खादेन्मद्यतक्ररसासवैः ॥ ११४ ॥
भक्षिता येन तस्यार्शःपाण्डुहृत्पार्श्वशूलनुत् ।
कासगुल्मारुचिश्वासहिक्कामयगलग्रहान् ॥ ११५ ॥
ज्वरातिसार तन्द्रां च सेविता हन्ति वेगतः ।

लवंगाद्या गुटिका—लवंग आधा पल, तालीसपत्र, इलायची, दालचीनी, अजवायन, चव्य, स्याहजीरा, धनिया—एक २ पल, मरिच, पीपर, कोकमवृक्ष, अम्लवेंत—दो २ पल, कृष्णा की जटा (पिपरामूल), सोंठ, हर्रे—एक २ कुडव—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और चूर्ण के तीन गुना गुड़ लेकर चासनी बनाकर चूर्ण मिला दे और वैद्यराज, आधा २ पल की गुटिका बना ले। इस वटी को मद्य, तक्र, मांसरस तथा आसव के साथ भक्षण करे। जो व्यक्ति इस वटी को भक्षण करता है उसके अर्शरोग, पाण्डुरोग हृदयरोग तथा पार्श्वशूल को दूर करती है। यह वटी सेवन करने से कास, गुल्म, अरुचि, श्वास, हिक्का (हिचकी), गलग्रह, ज्वरातिसार तथा तन्द्रा को शीघ्र ही नाश करती है॥

कुष्ठे तुवरास्थिवटकाः—

हरीतकी कलिङ्गानि पटोलफलपुष्करम्॥ ११६॥
बाकुची राजवृक्षश्च वह्न्यर्कमूलमेव च।
आवर्तकीफलं चैव भागवृद्ध्या यथोत्तरम्॥ ११७॥
यावन्त्यमूनि तुल्यानि तुवरास्थ्नां च संभवा।
मज्जा खदिरसंसिद्धा गोमूत्रकथिता पुनः॥ ११८॥
एभिः कर्षमितां सर्वैर्गुटिकां कारयेद्भिषक्।
प्राश्यैनामनु गोमूत्र पिबेच्चापि पलद्वयम्॥ ११९॥
जीर्णज्वरे ज्वरक्षीणे घृतमुष्णोदनं भजेत्।
सप्ताह तिलतैलेन निष्पावकङ्गुसेवनम्॥ १२०॥
तक्रानुपानं मासं च तत्परं सर्वभुग्भवेत्।
जयेत्क्षाराम्लवर्जी च सर्वकुष्ठानि मानवः॥ १२१॥

कुष्ठरोग में तुवरास्थि वटक—हर्रे एक भाग, कलिंग (इन्द्रयव) दो भाग, परोरा का पत्ता तीन भाग, फल (मदनफल) चार भाग, पुष्करमूल पांच भाग, शु० वाकुची छः भाग, अमलतास सात भाग, चित्रक आठ भाग, मदार की जड़ नव भाग, आवर्तिकी फल (लता विशेष का फल) दश भाग (उत्तरोत्तर वृद्धि मात्रा में) तथा इन सभी द्रव्यों के बराबर तुवरक की गुठली से मज्जा निकाल कर खैर के क्वाथ में पकावे और सुखा ले, इसके बाद पुनः गाय के मूत्र में पकावे, तथा सुखा लें, इस प्रकार इन सभी द्रव्यों को चूर्ण बनाकर गोमूत्र से भावित कर वैद्य एक २ कर्ष की गुटिका बनावे। इस वटी को खाकर दो पल गाय का मूत्र पान करे। जीर्ण ज्वर में तथा ज्वर से क्षीण होने पर घृत तथा गरम २ भात भक्षण करे। एक सप्ताह तक तिल तैल के साथ निष्पाव (भटवांसु) तथा कङ्गु (कौंगुनी "टंगुनी") को सेवन

करे और तक्र का अनुपान रक्खे (अर्थात् तक्र—मठा ऊपर से पान करे) इसके बाद सभी चीजों को भक्षण करे। और अम्ल तथा क्षारीय चीजों को छोड़ दे। मनुष्य इस वटी को सेवन कर सभी प्रकार के कुष्ठों को जीत लेता है ॥ ११६–१२१ ॥

कुष्ठे खदिरादिवटिका—

खदिराद्बीजकान्निम्बात्कुटजाच्छालसारतः।
पञ्चाशत्पलिकान् भागान् गोमूत्रस्याढकद्वयम् ॥ १२२ ॥
जलद्रोणद्वये चापि सुगुप्तं दिवसान् दश।
दशरात्रस्थितं तत्तु कषायमनुसाधयेत् ॥ १२३ ॥
अध्यर्धाढकशेषं तु पुनरग्नावधिश्रयेत्।
चूर्णीकृतान्यथेमानि भेषजान्यत्र दापयेत् ॥ १२४ ॥
वरां भल्लातकं चैव विडङ्गानि वचां तथा।
चित्रकावल्गुजौ चैव भागान् दशपलांशकान् ॥ १२५ ॥
काकमाच्यास्तु मूलानि पलानां पञ्चविंशतिम्।
घनीभूतं तु तं ज्ञात्वा गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ १२६ ॥
तां भक्षयेत कुष्ठार्तः पथ्यभोजी जितेन्द्रियः।
कुष्ठानि नाशयत्येषा छिन्नाभ्राणीव मारुतः ॥ १२७ ॥

कुष्ठरोग में खदिरादि वटिका—खैर, बीजक (विजयसार), नीम की छाल, कोरैया की छाल, शाल की लकड़ी—इन द्रव्यों को पचास पल लेकर गोमूत्र दो आढक तथा जल दो द्रोण में मिलाकर, मुंहबन्द कर दश दिन तक गुप्त स्थान में रक्खे, इसके बाद क्वाथ सिद्ध करे। आधा आढक शेष क्वाथ को पुनः आग पर चढ़ा कर पकावे और उसमें वरा (त्रिफला "हर्रे, बहेड़ा, आंवला"), शु० भल्लातक, विडंग, वच, चित्रक, अवल्गुजा (बाकुची)—इन द्रव्यों को दश २ पल तथा मकोय की जड़ को पच्चीस पल लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे तथा मिला दे। गाढ़ा हो जाने पर उतार कर वटी बनाले। जितेन्द्रिय होकर पथ्यपूर्वक भोजन करनेवाला, कुष्ठ रोग से पीडित व्यक्ति इस वटी को भक्षण करे। यह वटी कुष्ठ रोगों को नाश करती है। जैसे वायु मेघ को छिन्न-भिन्न कर देती है ॥ १२२–१२७ ॥

कुष्ठे विषगुटिकाः—

त्रिफलाव्योषयष्ट्याह्वविषं तुल्यानि पेषयेत्।
भृङ्गाम्बुना वटी कार्या श्लक्ष्णा चणकसम्मिता ॥ १२८ ॥
एकैकां वर्धयेद्यावदष्टावस्मान्न वर्धयेत्।
आस्तिकेन कृतो योगो विजयेद्वातजान् गदान् ॥ १२९ ॥

अशीतिं विंशति श्लेष्मभवान्सप्त महाक्षयान् ।
अष्टादशैव कुष्ठानि सन्नमग्निं च दीपयेत् ॥ १३० ॥

कुष्ठरोग में विष गुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), त्र्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), मुलेठी, शु० विष (वत्सनाभ)—समभाग—लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और भृङ्गराज के रस से भावित कर चना के बराबर चिकनी २ वटी बनावे । इस वटी को एक २ वटी प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ा कर आठ वटी तक सेवन करे । आठ वटी से अधिक वटी न भक्षण करे । आस्तिक (देवता गुरु, ईश्वर एवं औषधि में विश्वास कर) सेवन करने से यह योग अस्सी प्रकार के वातरोग, बीस प्रकार के कफरोग, सात प्रकार के यक्ष्मारोग, तथा अठारह प्रकार के कुष्ठ रोगों को जीत लेता है और नष्ट जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १२८–१३० ॥

कुष्ठे लाङ्गलीगुटिका—

लाङ्गलीत्रिवृतालोहचूर्णं दत्त्वाऽपलं पृथक् ।
त्रिंशत्तु गुटिकाः पथ्याः कार्या भृङ्गरसप्लुताः ॥ १३१ ॥
छायाशुष्कां च तत्रार्धां गुटिकां भक्षयेत्ततः ।
जीर्णे रसेन रूक्षेण पेया पूर्वं न भोजयेत् ॥ १३२ ॥
यन्त्रितो ब्रह्मचर्याद्यैः क्रमेण गुटिकामपि ।
खादेत्प्रातस्तु मासैकं भवेत्कामचरः क्रमात् ॥ १३३ ॥
एवं सर्वाणि कुष्ठानि जयत्यतिबलान्यपि ।
धीमेधास्मृतियुक्तस्तु नित्यं जीवेत्समाः शतम् ॥ १३४ ॥

कुष्ठरोग में लांगली गुटिका—लांगली (कलिहारी), निशोथ तथा लौह चूर्ण को एक पल लेकर भृङ्गराज के रस में भावित कर एवं अच्छी तरह घोट कर तीस गुटिका बनाये और छाया में सुखाकर आधा २ गुटिका भक्षण करे । भोजन के पच जाने पर रूक्ष पदार्थों के रस के साथ पान करना चाहिए, भोजन के पहले नहीं भक्षण करना चाहिए । ब्रह्मचर्यादि व्रत को पालन करते हुए, क्रमशः एक मास तक प्रातःकाल इस वटिका को भक्षण करे, और धीरे २ दवा सेवन के पश्चात् अपने इच्छानुकूल आचरण करे । इस प्रकार सेवन करने से सभी प्रकार के प्रबल कुष्ठ रोगों को जीत लेता है और धी (बुद्धि), मेधा (धारणाशक्ति) तथा स्मरण शक्ति से युक्त होकर सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहता है ॥

कण्ड्वां त्रिजातगुटिका—

त्रिजातत्रिफलाव्योषं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ।
तत्तुल्यं त्रिवृताचूर्णं शर्कराक्षौद्रमेव च ॥ १३५ ॥

बद्ध्वाऽत्र मोदकानेषां भक्षयेद्ध यथाबलम् ।
विरेकः प्रबले ह्येष तथा कण्डूविनाशनः ॥ १३६ ॥

कण्डूरोग में त्रिजात गुटिका—त्रिजात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच)—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर निशोथ का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर शक्कर की चासनी में छोड़कर गाढ़ा हो जाने पर उतार ले, ठंढा होने-पर मधु मिलाकर मोदक बना ले। इस मोदक को बल के अनुसार मात्रा में भक्षण करे। यह मोदक प्रबल (बलवान्) कोष्ठवालों के लिये विरेचक है तथा कण्डू (खुजली) को नाश करता है। (शक्कर चूर्ण के चौगुना तथा मधु आधा लेना चाहिये) ॥ १३५-१३६ ॥

मुखरोगे खदिरगुटिका—

तुलां खदिरसारस्य द्विगुणां त्वरिमेदतः
प्रक्षाल्य जर्जरीकृत्य चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १३७ ॥
द्रोणशेषं कषायं तु पूत्वा भूयः पचेच्छनैः ।
ततस्तस्मिन्घनीभूते चूर्णं कृत्वाऽक्षभागिकम् ॥ १३८ ॥
चन्दनं पद्मकोशीरं मञ्जिष्ठाधातकीघनम् ।
प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वत्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १३९ ॥
लाक्षां रसाञ्जनं मांसीत्रिफलारोध्रवालुकम् ।
रजन्यौ फलिनीमेलां समङ्गां कट्फलं वटम् ॥ १४० ॥
यवासागरुपत्तङ्गगैरिकाञ्जनमावपेत् ।
लवङ्गजातिकक्कोलजातीकोशान् पलोन्मितान् ॥ १४१ ॥
कर्पूरकुडवं चापि पुनः शीतेऽवतारयेत् ।
ततस्तु गुटिकाः कार्याः शुष्कास्त्वास्ये निधापयेत् ॥ १४२ ॥
तैलमेतेन कल्केन कषायेण विपाचयेत् ।
शूलप्रबलविभ्रंशशौषिर्यकृमिदन्तनुत् ॥ १४३ ॥
जाड्यदौर्गन्ध्यतिक्तत्वमुखप्रक्लेदपाकजित् ।
गलशोषपरीदाहसादसदोहलेपहृत् ॥ १४४ ॥
दन्तास्यगलपाकेषु सर्वेष्वेतत्परायणम् ।

मुखरोग में खदिरगुटिका—खदिरसार (खैर की लकड़ी, एक तुला, इरिमेद (दुर्गन्ध खैर) की लकडी दो तुला ले ले और साफ तथा कूटकर चार द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष रहने पर छानकर पुनः धीरे-धीरे आंच से पकावे और गाढ़ा होने पर, चन्दन, पद्मकाठ, खस, मंजीठ, धाय का फूल, मोथा, प्रपौण्डरीक, मुलेठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर,

लाचा। (लाख), रसौत, जटामांसी, त्रिफला (हरें, बहेडा, आंवला), लोध, एलवालु, आमाहल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, बड़ी इलायची, समंगा (वरियार), कायफर, वट (वरोही), यवासा, अगर, पतङ्ग, गेरु, अञ्जन—एक २ अक्ष— इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर तथा लवंग, जायफर, कङ्कोल (कवाबचीनी), जातीकोष, (जावित्री) एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। ठंढा होने पर कर्पूर एक कुडव (चार पल) मिलाकर गुटिका बनाये, तथा मुख में धारण करे। इन्हीं द्रव्यों के कल्क तथा कषाय के साथ तैल भी सिद्ध करें (और मुख में रखे)। यह गुटिका तथा तैल प्रबल शूल, विश्लथ (दांत हिलना), शौषिर्य (दन्तमूलगतशोथ), कृमिदन्त को दूर करता है। जड़ता, दुर्गन्ध, मुख की तिक्तता, मुख से पानी आना, मुख का पकना—आदि को जीत लेता है। गलारोग, गले का सूखना, जलन, दन्तशूल, संरोह तथा चिपचिपाहट को दूर करता है और सभी प्रकार के दांत, मुख तथा गले के पाक (पकने पर) होने पर यह गुटिका तथा तैल, लाभप्रद हैं॥

मुखरोगे द्वितीया खदिरगुटिका—

खदिरस्य तुलां शुद्धां जलद्रोणे विपाचयेत्॥ १४५॥
अष्टभागेऽवशिष्टे तु पुनः कल्कं प्रदापयेत्।
जातीकर्पूरपूगानि सकङ्कोलफलानि च॥ १४६॥
इत्येषां गुटिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धनी।
दन्तोष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च॥ १४७॥

मुखरोग में द्वितीय खदिरगुटिका—स्वच्छ खैरसार एक तुला लेकर एक द्रोण जल मे पकावे। अष्टमांशशेष क्वाथ को छानकर पुनः आग पर पकावे और उसमें जायफर, सुपारी, कवाबचीनी, मदनफल—समभाग (एक २ पल)—इन द्रव्यों का कल्क मिला दे। गाढ़ा हो जाने पर उतार ले और ठंढाकर कर्पूर (एक तो०) मिला दे। इसके बाद गुटिका बना ले। यह गुटिका मुख के स्वाद को बढ़ाने वाली है। तथा इस वटी को दाँत, ओंठ, मुखरोग, जिह्वा रोग एवं तालुरोग में प्रयोग करे॥ १४५-१४७॥

मुखरोगे तृतीया खदिरगुटिका—

कुङ्कुमलवङ्गपत्रत्वक्त्रुटिशङ्खाम्बुजानि तुल्यानि।
कङ्कोलजातिमृगमदभागैर्द्विगुणीकृतैः सम्यक्॥ १४८॥
पञ्चाशत्खदिरस्य भागाः सप्तैव शशधरस्यापि।
सहकारतैलयुक्ता खदिरगुटिकाऽऽस्यरोगघ्नी॥ १४९॥

मुखरोग में तृतीय खदिरगुटिका—कुंकुम (केशर), लवंग, तेजपत्र, दालचीनी, इलायची, शंखभस्म, कमलगट्टा—समभाग, कवाबचीनी, जायफर,

कस्तूरी—तीन तीन भाग, खैर पचासभाग, शशधर (कर्पूर) सात भाग—इन द्रव्यों को लेकर कूटने-पीसने योग्य द्रव्यों को कूट-पीस छानकर रख ले, कर्पूर तथा कस्तूरी महीन कर मिला दे और आम की गुठली के तैल में मिलाकर गुटिका बना ले। यह गुटिका—मुख रोग को नाश करने वाली है ॥१४८-१४९॥

गलरोगे मरिचाद्या गुटिका—

मरिचं पिप्पली पाठा यवक्षारः सनागरः।
एलापत्रत्वचं पथ्या सैन्धवं चाम्लवेतसः ॥ १५० ॥
मधुना गुटिका छेया कण्ठरोगविनाशिनी।

गलरोग में मरिचाद्या गुटिका—मरिच, पीपर, पाढी, यवखार, सोंठ, इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, हर्रे, सेन्धानमक, अम्लवेत—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और मधु में मिलाकर गुटिका बना ले। यह गुटिका कण्ठरोग को नाश करती है ॥

गलरोगे पिप्पल्यादिक्षारगुटिका—

कर्षमेकं तु पिप्पल्या मरिचानां तथैव च।
दाडिमस्य पलार्धं च गुडस्य च पलद्वयम् ॥ १५१ ॥
यवक्षारार्धकर्षं च गुटिकां कारयेद्भिषक्।
मुखेन धारिता हन्ति कासश्वासगलामयान् ॥ १५२ ॥

गलरोग में पिप्पल्यादिक्षारगुटिका—पीपर का चूर्ण एक कर्ष, मरिच चूर्ण एक कर्ष, अनार का चूर्ण आधा पल (दो कर्ष), गुड़ दो पल, यवखार आधा कर्ष—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर गुटिका बनावे (गुड़ की चासनी बना लेनी चाहिए)। यह गुटिका मुख में रखने से कास, श्वास तथा गले के रोगों को नाश करती है ॥ १५१-१५२ ॥

कफरोगे वत्सनाभाद्या गुटिका—

वत्सनाभवल्लयुगं षड्वल्लास्त्रिकटुकचूर्णस्य।
चित्रकवल्लद्वितयं पिप्पलिमूलस्य वल्लयुगम् ॥ १५३ ॥
अभया द्वादशवल्ला द्वादशद्विगुणा च गुग्गुलोर्वल्लाः।
गुटिका धार्या वदने क्षणदायां कफविनाशार्थम् ॥ १५४ ॥

कफरोग में वत्सनाभाद्या गुटिका—शु० वत्सनाभ चार वल्ल (एक मासा), त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण छः वल्ल (बारहगुञ्जा), चित्रक चूर्ण दो वल्ल (चार गुंजा), पिपरामूल का चूर्ण दो वल्ल, हर्रे चूर्ण बारहवल्ल (तीन मासा), शु० गुग्गुलु चौबीसवल्ल (छः मासा)—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर जल के साथ गुटिका बनाये और मुख में रात्रि के समय कफ को नाश करने के लिये धारण करे।

त्रिकट्वाद्या गुटिका—

त्रिकटुत्रिफलादुरालभाद्विनिशादारुवचाः सचित्रकाः ।
रसगन्धककर्कटाह्वया रुचककट्फलहिङ्गुपत्रिकाः ॥ १५५ ॥
इति दर्शितभेषजैर्गुटी मधुना कर्षमिता कृता नृणाम् ।
प्रणिहन्ति निषेविता प्रगे पवनासृक्कफकोपजामयान् ॥ १५६ ॥

त्रिकट्वाद्या गुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), दुरालभा (यवासा), आमाहल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, वच, चित्रक, रस (पारा), गन्धक, काकड़ासिंघी, रुचक (सौवर्चलनमक, कायफर, हिंगुपत्री—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बना लें और शुद्ध पारा तथा शु० गन्धक की कज्जली बनाकर मिला दे । पुनः इस चूर्ण को मधु में मिलाकर, एक २ कर्ष की गुटिका बनावे । यह गुटिका प्रातः काल सेवन करने से वातरक्त, तथा कफजन्य रोगों को नाश करती है । (शु० पारा तथा शु० गन्धक की कज्जली बना लेनी चाहिए) १५५–१५६ ॥

भार्ग्यादिगुटिका—

भार्गी सकृष्णा द्विनिशेन्दुकान्तापथ्याविभीतत्वचकुष्ठविश्वाः ॥
कन्यारसेनापि गुटिर्विधेया सश्वासकासामरुचिं निहन्ति ॥ १५७ ॥

भार्ग्यादि गुटिका—भारंगी, पीपर, द्विनिशा (आमाहल्दी, दारुहल्दी), इन्द्रकान्ता (मांसरोहिणी), हर्रे, वहेड़ा, दालचीनी, कूठ, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और घृतकुमारी (घीकुआर) के स्वरस के साथ मिलाकर गुटिका बनावे । यह गुटिका श्वासरोग, कास (खांसी) तथा अरुचि को नाश करती है ॥ १५७ ॥

ज्वरे त्रिवृताद्यो मोदकः—

त्रिवृतापिप्पलीयुक्तो गुडसर्पिर्विभावितः ।
मण्डानुपानो देयोऽयं मोदकः सन्निपातहा ॥ १५८ ॥

ज्वररोग में त्रिवृताद्य मोदक—निशोथ तथा पीपर का चूर्ण घृत में भून ले और गुड की चासनी में मिलाकर मोदक बनाये । यह मोदक मण्ड के अनुपान से सेवन करने पर सन्निपात रोग को नाश करता है ॥ १५८ ॥

कम्पिल्लकाद्यो मोदकः—

कम्पिल्लकत्रिवृत्कृष्णापथ्यानागरकैरपि ।
सितागुडयुतो ह्येष मोदको ज्वरिणां हितः ॥ १५९ ॥
शीतानुपानतश्छर्दितृष्णापित्तामयान् जयेत् ।

कम्पिल्लकाद्य मोदक—कम्पिल्लक (कबीला), निशोथ, पीपर, हर्रे, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को खाँड़ की चासनी में मिलाकर मोदक

बनावे। यह मोदक ज्वर के रोगियों के लिये हितकर है तथा शीतल जल के साथ पान करने से छर्दि, तृष्णारोग तथा पैत्तिक रोगों को जीत लेता है॥

त्रिफलाद्यो मोदकः—

त्रिवृतार्धवराव्योषशर्करागुडसंयुतम्॥ १६०॥
मोदकं भक्षयित्वा तु पिबेच्चोष्णं जलं पुनः।
पार्श्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे॥ १६१॥

त्रिफलाद्य मोदक—वरा (त्रिफला—हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच)—समभाग—तथा इन सभी द्रव्यों के बराबर निशोथ लेकर चूर्ण बनावे और शर्करा या गुड़ के दुगुनी चासनी में मिलाकर मोदक बनावे। इस मोदक को पार्श्वशूल, अरुचि, कास तथा वातजन्य ज्वर में भक्षण कर गरम जल पान करे॥ १६०-१६१॥

ज्वरे सप्तलाद्यो मोदकः—

सप्तला पिप्पलीमूलं श्यामा दन्ती पृथक्-पृथक्।
एषां दशपलान् भागान् दशमूल्यास्तुलां तथा॥ १६२॥
हरीतक्यक्षधात्रीणां प्रस्थं प्रस्थं समावपेत्।
जलद्रोणद्वये पक्वं पूतं पादावशेषितम्॥ १६३॥
विडङ्गं मुस्तकं श्यामां शङ्खिनीं मालतीमपि।
त्रिवृद्व्योषयुतं ह्येतत्कृत्वा चूर्णं रसे क्षिपेत्॥ १६४॥
वटकानक्षमात्रांस्तु वातश्लेष्मकृते ज्वरे।
शूले पक्वाशयस्थे च शुद्ध्यर्थं भक्षयेदिमान्॥ १६५॥

ज्वर में सप्तलाद्य मोदक—सातला, पिपरामूल, कालानिशोथ, दन्तीमूल—दश २ पल, दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाढ़ल, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बनभंटा, भटकटैया, गोखरू), एक तुला, हर्रे, बहेड़ा, आंवला एक प्रस्थ—इन सभी द्रव्यों को लेकर दो द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष क्वाथ को छान कर उस में विडंग, मोथा, काला निशोथ, अपामार्ग, मालती, श्वेत निशोथ, सोंठ, पीपर, मरिच—(एक २ पल)—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर पकावे। गाढ़ा हो जाने पर एक २ अक्ष परिमाण वटक बनावे और इन वटकों को कोष्ठ-संशोधन के लिये, वात-श्लेष्मजन्य ज्वर तथा पक्वाशयस्थ शूल में भक्षण करावे॥ १६२-१६५॥

भ्रमे कृष्णाद्या गुटिका—

कृष्णाशुण्ठीशताह्वानामभयानां पलं पलम्।
गुडस्य षट्पलान्येषां गुटिका भ्रमनाशिनी॥ १६६॥

भ्रमरोग में कृष्णाद्य गुटिका—पीपर, सोंठ, सौंफ, हर्रे—एक पल—इन

द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और गुड़ छः पल की चासनी बनाकर मिला दे और गुटिका बना ले। यह गुटिका श्रम को नाश करने वाली है ॥ १६६ ॥

ज्वरातिसारे कट्वङ्गाद्या वटकाः—

कट्वङ्गबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम् ।
ह्रीवेरं च निशे लाक्षां कट्फलं शुकनासिकाम् ॥ १६७ ॥
रोध्रं मोचरसं शङ्खं धातकीं वटशुङ्गकान् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसंमितान् ॥ १६८ ॥
छायाशुष्कान्पिबेत्क्षिप्रं ज्वरातीसारशान्तये ।
शमनान् रक्तपित्तस्य शूलातीसारनाशनान् ॥ १६९ ॥

ज्वरातिसार में कट्वङ्गाद्य वटक—कट्वङ्ग (अरलू), बेल की छाल, जामुन की गुठली, आम की गुठली, कैथ, रसाञ्जन, हाऊबेर, आमाहल्दी, दारुहल्दी, लाख, कायफर, शुकनासिका (मिरिचियाकन्द), लोध, मोचरस (सेमर का गोंद), शंखभस्म, धाय का फूल, वटशुङ्ग (वटांकुर)—समभाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाये और चावल के धोवन (एक तोला चावल एक पाव पानी में भिगोकर एक घण्टा बाद छान ले, इसी को तण्डुलोदक कहते हैं) के साथ पीसकर एक २ अक्ष परिमाण का वटक बनावे और छाया में सुखा ले। इन रक्तपित्तशामक, शूल तथा अतिसारनाशक वटकों को ज्वरातिसार की शान्ति (नाश) के लिये शीघ्र ही पान करे। (इस वटक को तण्डुलोदक से ही पान करना लाभदायक है) ॥ १६७–१६९ ॥

प्लीहोदरे रोहितकवटकाः—

भागाः पञ्चदशाथ कोलकभवा रोहीतकस्य त्रयः
पथ्यायास्त्रय एव तद्द्विगुणितं संयोज्य सिद्धं गुडम् ।
चातुर्जातकभागसंगसुरभीनश्नन्नरो मोदकान्
प्लीहार्शःश्वयथूदरज्वरवमीन् गुल्माग्निसादाञ्जयेत् ॥१७०॥

प्लीहोदर में रोहितक वटक—कोलकभव (कबाबचीनी) पन्द्रह भाग, रोहीतक (रोहेडा) तीन भाग, हर्रे तीन भाग—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर चूर्ण के दुगुना स्वच्छ गुड़ की चासनी बनाकर मिला दे और चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर)—इन द्रव्यों के चूर्ण को सुगन्धित करने के लिये डाल दे तथा मोदक बना ले। मनुष्य इस मोदक को खाकर प्लीहावृद्धि, अर्शरोग, शोथ, उदररोग, ज्वर, वमन, गुल्मरोग तथा अग्निसाद (मन्दाग्नि) को जीत लेता है अर्थात् इन रोगों को दूर करता है ॥ १७० ॥

गुडपाकविधिः—

मृद्वा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्वा तन्तुली भवेत् ।

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ १७१ ॥
क्षिप्तोऽप्सु निश्चलस्तिष्ठेत्पतितश्च न शीर्यति ।
एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः ॥ १७२ ॥
सुखमर्द्यः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः ।
पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ १७३ ॥

गुडपाक विधि—जब गुड की चासनी, कलछुल में चिपकने लगे या जब तार बनने लगे और जलसे पूर्ण पात्र में छोड़ने पर न तैरे तथा जल के नीचे जाकर बैठ जाय एवं जल में गिरने पर न बिखरे, यह सभी गुड़ आदि के पाक की विधि कही गयी है। आसानी से मसला जा सके, स्पर्श करने में चिकना हो, गन्ध, वर्ण तथा रस से युक्त हो, बांधने से पीढी बन जाय तब समझना चाहिए की गुड़ का पाक तैयार हो गया है ॥ १७१–१७३ ॥

धातुक्षये महाकल्याणको गुडः—

पिप्पलीं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ।
धान्यकं च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ १७४ ॥
त्रिफलां चाजमोदां च नीलिनीं जीवकं तथा ।
सौवर्चलं ससिन्धूत्थं सामुद्रं चौद्भिदं वचाम् ॥ १७५ ॥
आरग्वध त्वचं पत्रं सूक्ष्मैलामुपकुञ्चिकाम् ।
नागरेन्द्रयवांश्चैव गृह्णीयात् कर्षभागिकान् ॥ १७६ ॥
मृद्वीकायाः प्रधानाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ।
त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ रसमामलकस्य च ॥ १७७ ॥
प्रस्थं द्विगुणितं कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
यदा पक्वं विजानीयात्तदैनमवतारयेत् ॥ १७८ ॥
उदुम्बरेण धात्र्या वा बदरेणाथ वा समम् ।
यथाबलं प्रयुञ्जीत समीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥ १७९ ॥
सर्वांश्च ग्रहणीदोषान्प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ।
अर्शांसि वातगुल्मांश्च कुष्ठानाहभगन्दरम् ॥ १८० ॥
उरोघातं प्रतिश्यायं हृद्रोगं चैव नाशयेत् ।
धातुक्षीणे बलक्षीणे स्त्रीभिः क्षीणे क्षये तथा ॥ १८१ ॥
ज्वराणां चैव सर्वेषां वन्ध्यानां चापि पुत्रदम् ।
रूपौदार्यं स्वरौदार्यं मेधामाविन्दते स्थिराम् ॥ १८२ ॥
महाकल्याणको ह्येष रसायनमनुत्तमम् ।

धातुक्षय में महाकल्याणक गुड—पीपर, पिपरामूल, चित्रक, गजपीपर, धनियां, विडंग, अजवायन, मरिच, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला,)

अजमोदा, नीलवृक्ष, जीवक, सौवर्चल नमक, सेन्धानमक, सामुद्रनमक, औद्भिद-नमक (रेह का नमक), वच, अमलतास, दालचीनी, तेजपत्र, छोटी इलायची, उपकुञ्चिका (मंगरैल), सोंठ, इन्द्रयव—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और इस चूर्ण को तथा मुनक्का चार पल, निशोथ चूर्ण आठ पल, आंवला का रस दो प्रस्थ में मिला कर मन्द आंच से धीरे २ पकावे और पक जाने पर उतार ले। बुद्धिमान वैद्य इसको बल के अनुसार, गूलर फल, आंवला या बैर के बराबर वटी बना कर प्रयोग करे। यह वटी सभी प्रकार के ग्रहणी रोग, बीस प्रकार के प्रमेह, अर्शरोग, वातगुल्म, कुष्ठरोग, आनाह, भगन्दर, उरोघात, प्रतिश्याय (जुकाम) तथा हृदय के रोग को नाश करती है। धातुक्षीण, बलक्षीण, स्त्रियों के द्वारा क्षीण तथा क्षय रोग में यह लाभप्रद है। सभी ज्वरों को नाश करने वाला तथा वांझ स्त्रियों को पुत्र देने वाला यह महा कल्याणक नामक वटक उत्तम रसायन है और सुन्दरता, अच्छा स्वर तथा स्थिर धारणाशक्ति को देने वाला है॥

ग्रहण्यां कल्याणको गुडः—

कृष्णात्वग्ग्रन्थिकं वह्निं दीप्यकोपणसैन्धवम्।
कृमिघ्नत्रिफलाधान्यकोलाजाव्यजमोदकाः। १८३॥
पलिकानि त्रिवृच्चूर्णतैलयोश्च पलाष्टकम्।
रसप्रस्थत्रयं धात्र्या गुडस्यार्धशतं क्षिपेत्॥ १८४॥
एतत्कल्याणको नाम ग्रहणीपाण्डुजित्परम्।

ग्रहणीरोग में कल्याणक गुड—पीपर, दालचीनी, पिपरामूल, चित्रक, अजवायन, मरिच, सेन्धानमक, विडंग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), धनिया, कोल (बैर), स्याहजीरा, अजमोदा—एक २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण, निशोथ चूर्ण आठ पल, तैल आठ पल, आंवला स्वरस तीन प्रस्थ, गुड़ पचास पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्रकर मन्द आंच से पकावे, गाढ़ा हो जाने पर उतार वटक बना ले। यह कल्याणक नामक वटक ग्रहणी रोग तथा पाण्डुरोग को अच्छी तरह जीत लेता है॥

ग्रहण्यां यवान्याद्या गुटिका—

यवानी धान्यकं बिल्वं चविकात्रुटिवल्कलम्।
अम्लवेतसवृक्षाम्लं त्रिफला शिखिग्रन्थिकम्॥ १८५॥
सौवर्चलं सैन्धवं च हपुषा च हरीतकी।
यष्टिका सातला स्पृक्का पलमानानि चूर्णयेत्॥ १८६॥
गुडस्य तु पलान्यत्र दापयेद् द्विगुणानि तु।
यवानीगुटिका ह्येषा ग्रहणीनाशनी परा॥ १८७॥

ग्रहणीरोग में यवान्याद्या गुटिका—अजवायन, धनिया, बेल का गूदा, चव्य, इलायची, दालचीनी, अम्लबेत, कोकमवृक्ष, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), अपामार्ग, पिपरामूल, सौवर्चल नमक, सेन्धानमक, हाऊबेर, हर्रे, मुलेठी, सातला, स्पृक्का (सुगन्धित द्रव्य विशेष 'पृका')—एक २ पल—इन द्रव्यों को चूर्ण बनावे, और सभी द्रव्यों के चूर्ण के दुगुना, गुड़ की चासनी बनाकर मिला दे और गाढ़ा हो जाने पर गुटिका बना ले। यह यवान्याद्या गुटिका ग्रहणीरोग को अच्छी तरह नाश करनेवाली है ॥ १८५–१८७ ॥

चन्द्रप्रभा गुटिका—

कीटघ्नेभकणाग्निमागधिजटामुस्ताशटीताप्यकं
भूनिम्बत्रिफलासुराह्वचविकाव्योषं वचा धान्यकम् ।
रात्रीयुग्मविषात्रिवृत्त्रिलवणं क्षारत्रिजातान्वितं
कर्षं कर्षमतः पुरादशपलं शैलेयकाष्टान्वितम् ॥ १८८ ॥
लोहात्तत्र सिताचतुष्पलयुतं स्याद्वंशजायाः पलं
हन्त्यर्शांसि षडेव गुल्ममजयं शोषं क्षयं कामलाम् ।
नाडीमर्मगदाम्बुलोदररुजो दीर्घज्वरान्विद्रधीन्
यक्ष्माणं सभगन्दरं कफमरुत्पित्तोद्भवं पाण्डुताम् ॥ १८९ ॥
तं तं व्याधिसमूहशुक्रविकृतीन्ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदान्
मेहान्शुक्रविनाशमश्मरिरुजस्त्वन्यांश्च देहस्थितान् ।
व्याधीन्हन्ति दृढाननेन विधिना चन्द्रप्रभा सेविता
मन्दाग्नेः परमं प्रदीपनमियं कुर्याज्जरां जर्जराम् ॥ १९० ॥
स्वेच्छाहारविधौ च पानविषये शीतातपे मैथुने
भुक्ता नास्ति विरोधिनी च सततं प्रोक्ता पुरा ब्रह्मणा ॥१९१॥

चन्द्रप्रभा गुटिका—विडंग, गजपीपर, चित्रक, पीपर, जटामांसी, मोथा, शटी (कपूरकचरी), स्वर्णमाक्षिक, चिरायता, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), देवदारु, चव्य, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, धनिया, आमाहल्दी, दारुहल्दी, अतीस, निशोथ, सेन्धानमक, यवक्षार, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र)—इन द्रव्यों का चूर्ण एक २ कर्ष, पुर (शु० गुग्गुलु) दशपल, शैलेयक (शिलाजीत) आठ पल, लौहभस्म आठ पल, मिश्री चार पल, वंशलोचन एक पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर वटिका बनावे। यह वटिका, छः प्रकार के अर्शरोग, अजेय गुल्मरोग, सूखारोग, क्षय, कामला रोग, नाडीदौर्बल्य, मर्मरोग, जलोदररोग, पुराना दीर्घकालीन ज्वर, विद्रधि, यक्ष्मा रोग, कफ-वातपित्तजन्य भगन्दर तथा पाण्डुरोग को नाश करती है। यह चन्द्रप्रभावटी को विधिपूर्वक सेवन करने से उक्त रोगसमूह, वीर्यविकार,

ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, प्रमेह, शुक्रनाश, पथरीरोग तथा अन्य शरीरस्थ दृढ व्याधियों को नाश करती है और मन्दाग्नि को दीप्त करने वाली तथा जरा को दूर करनेवाली है। इस वटी के सेवन-काल में अपनी इच्छा के अनुसार, भोजन—पान शीत तथा धूप-सेवन-स्त्रीप्रसंग आदि का निषेध नहीं है। इस गुटिका को पहले पहल ब्रह्मा ने बताया था ॥ १८८–१९१ ॥

पित्ते कल्याणका-गुटिका—

द्राक्षां नियोज्य विधिना द्विगुणां शिवायाः
संचूर्ण्य ह्यक्षफलमात्रमितां प्रभाते ।
कल्याणकारककृतां गुटिकामिमां यः
संसेवते भवति तस्य हि पित्तनाशः ॥ १९२ ॥
हृद्रोगरक्तविषमज्वरपाण्डुवान्ति-
कुष्ठानि कासपिटिकारुचिमेहमुख्याः ।
आनाहगुल्मगरविद्रधिकामलाद्याः
सर्वेऽपि ते विलयमाशु सुखेन यान्ति ॥ १९३ ॥

पित्तरोग मे कल्याणक गुटिका—मुनक्का एक भाग, हर्रे दो भाग लेकर चूर्ण बनावे और बहेडा के बराबर गुटिका बना ले और एक २ वटी प्रातःकाल सेवन करे। इस कल्याणकारक गुटिका को जो सेवन करता है उसका पित्त-विकारजन्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इस गुटिका को सेवन करने से हृदयरोग, रक्तपित्त, विषम ज्वर, पाण्डु, वमन, कुष्ठरोग, कास, पिडिका, अरुचि, प्रमेह, आनाह, गुल्म, संयोगज विष, विद्रधि, कामला, ये सभी रोग सुखपूर्वक (आसानी से) नष्ट हो जाते है ॥ १९२–१९३ ॥

अर्शसि प्राणदा गुटिका—

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च
पिप्पल्याः कुडवार्धं च चविकापलमेव च ।
पलं तालीसपत्रस्य पलार्धं केशरस्य च
द्वे पले पिप्पलीमूलाच्चित्रकस्य पलं तथा ॥ १९४ ॥
सूक्ष्मैलाकर्षमेकं तु कर्षं चोचमृणालयोः ।
अजमोदामजाजी च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ १९५ ॥
गुडस्य विंशतिपलं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
वट्यो ह्यक्षप्रमाणास्तु प्राणदा इति विश्रुता; ॥ १९६ ॥
पूर्वं भक्ष्यास्तु पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् ।
मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ १९७ ॥
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजान्यपि ।

वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ १९८ ॥
पानात्यये तथा पाण्डौ वातरोगे गलग्रहे ।
मन्दाग्नौ मूत्रकृच्छ्रे च तथैव विषमज्वरे ॥ १९९ ॥
कृमिहृद्रोगिणां चैव ह्येताः स्युरमृतोपमाः ।
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तवायुजे ॥ २०० ॥
प्राणदायां सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ।
अम्लपित्ते सशूले च प्रयोज्या गुदजातुरे ॥ २०१ ॥
अनुपान प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ।
पलद्वयं चानिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ २०२ ॥

अर्शरोग में प्राणदा गुटिका—सोंठ तीन पल, मरिच (चौथा पल) एक पल, पीपर आधा कुडव (दो पल), चव्य एकपल, तालीसपत्र एकपल, नागकेशर आधापल, पिपरामूल दो पल, चित्रक एकपल, छोटी इलायची एक कर्ष, चोच (मोटे छाल की दालचीनी) एक कर्ष, कमल का फूल एक कर्ष, अजमोदा, स्याहजीरा—एक कर्ष—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और बीस पल गुड की चासनी में मिलाकर एक २ अक्ष—परिमाण की वटी बनावे। यह प्रसिद्ध प्राणदा गुटिका है। इस वटिका को बल के अनुसार भोजन के पहले तथा बाद में भक्षण करे और ऊपर से, मद्य, मांसरस, यूष, क्षीर तथा जल पीवे। यह वटी सभी प्रकार के सहज तथा रक्तार्श एवं वात-पित्त तथा कफजन्य, सन्निपातजन्य अर्श रोगों को नाश करती है। पानात्यय, पाण्डुरोग, वातरोग, गलग्रह, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र तथा विषम ज्वर में अमृत के समान है एवं कृमि रोग तथा हृदय रोगियों के लिये भी अमृत के समान लाभप्रद है। पित्त-वातजन्य, विड्विबन्ध (मलावरोध) में सोंठ के स्थान पर हर्रे मिलाना चाहिए। इस प्राणदा गुटिका में चूर्ण के चौगुना मिश्री मिलाकर गुटिका बनावे और शूलयुक्त अम्लपित्त में एवं गुदजरोग (अर्शरोग) में प्रयोग करे। श्लेष्मजन्य रोग में एक पल, वातजन्य रोग में दो पल तथा पित्तजन्य रोग में तीन पल, अनुपान का प्रयोग करना चाहिए ॥ १९४–२०२ ॥

वार्ताकगुटिका—

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ।
वार्ताकात्कुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ २०३ ॥
दग्ध्वा रसेन वार्ताक्या वटिका भोजनोत्तरम् ।
कृता भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिता ॥ २०४ ॥
विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्नी च सा स्मृता ।

वार्ताक गुटिका—सुधाकाण्ड (सेहुड) चारपल, तीनोंनमक (सेन्धा,

सौवर्चल, विड) तीन पल, वार्ताक (वनभंटा) एक कुडव (चार पल), मदार आठ पल, चित्रक दो पल—इन द्रव्यों को एकत्रकर हाड़ी में भर कर, कपड़मिट्टी से सन्धिबन्द करे और आग में रखकर जलाये। पुनः पीसकर वनभंटा के स्वरस से वटिका बनाये। यह वटी भोजन के बाद खाने से शीघ्र ही पचा देती है और कास, श्वास एवं अर्शरोग में हितकर है। यह वटिका विसूचिका (हैजा), प्रतिश्याय तथा हृदय रोग को नाश करनेवाली है॥

पाण्डुरोगेऽभयाद्यो मोदकः—

अभया पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
पत्रत्वक्पिप्पलीमुस्ताविडङ्गामलकानि च॥ २०५॥
एतानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत्।
त्रिवृदष्टगुणा देया शर्करा चैव षड्गुणा॥ २०६॥
मधुना मोदकान् कृत्वा मानतः कर्षसंमितान्।
एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानुपिबेज्जलम्॥ २०७॥
तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते।
पाण्डुत्वकासविषमज्वरवह्निसादान्
प्लीहाक्षिरोगमथ चाश्मरिकां तथैव।
हन्याद्रसायनमिदं खलु कामलां च
ह्यल्पव्ययं बहुफल सततोपयोज्यम्॥ २०८॥

पाण्डुरोग में अभयाद्यमोदक—हर्रें, पिपरामूल, मरिच, सोंठ, तेजपत्र, दालचीनी, पीपर, मोथा, विढंग, आंवला—समभाग, दन्तीमूल तीन भाग, निशोथ आठ भाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को छः भाग शक्कर की चासनी में मिलाकर ठंढा होने पर तीन भाग मधु मिला कर एक २ कर्ष परिमाण का मोदक बनावे। इसमें से एक २ मोदक प्रातःकाल भक्षण करे और ऊपर से ठंढा जल पीवे। इस मोदक को भक्षण करने के बाद तब तक विरेचन होता है जब तक गरम जल न पान करे। यह रसायन पाण्डुरोग, कास, विषमज्वर, मन्दाग्नि, प्लीहावृद्धि, नेत्ररोग, पथरीरोग तथा कामलारोग को नाश करता है। यह मोदक कम खर्च में तैयार होने वाला है और बहुत फल देता है। अतः निरन्तर सेवन करने योग्य है॥ २०५-२०८॥

गुल्मेऽभयाद्या वटकाः—

हरीतक्याः पले द्वे तु अधिकं चाम्लवेतसम्।
पलार्ध चार्धकर्षांशा व्योषवृक्षाम्लबाष्पिकाः॥ २०९॥
यवानी चाजमोदा च कारवीशटिपौष्करम्।
बिडं सौवर्चलं चव्यं हपुषाजाजिधान्यकम्॥ २१०॥

कोलाम्लं दाडिमं चैव चातुर्जातं च कार्षिकम् ।
गुडद्विगुणितं चूर्णं कृत्वा तु वटकान्भजेत् ॥ २११ ॥
गुल्मानाहोदरप्लीहपाण्ड्वर्शोग्रहणीगदान् ।
कासातीसारपार्श्वार्तिश्वासारोचककामलाः ॥ २१२ ॥
मदात्ययवमीमेहहिक्कापीनसपित्तजान् ।
शमयेज्ज्वरशूले च ह्यग्निदीप्तिकरं परम् ॥ २१३ ॥
कृष्णात्रिस्मृतियुक्तस्तु नित्यं जीवेत्समाः शतम् ।

गुल्मरोग में अभयाद्य वटक—हर्रे दो पल, पिपरासूल आधा पल, अम्लवेत आधा पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कोकमवृत्त, वाष्पिका (नाडीहिंगु)—आधा २ कर्ष, अजवायन, अजमोदा, मंगरैल, कपूरकचरी, पुष्करमूल, विड-नमक, सौवर्चलनमक, चव्य, हाऊवेर, स्याहजीरा, धानया, वैर, इमली, अनार, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर)—एक २ कर्ष लेकर चूर्ण वनाये और चूर्ण के दुगुना गुड़ की चासनी में मिलाकर एक २ कर्ष का वटक वनाये । यह वटक-गुल्मरोग, आनाह, उदररोग, प्लीहावृद्धि, पाण्डुरोग, अर्शरोग, ग्रहणीरोग, कास (खांसी), अतिसार, पार्श्वशूल, श्वासरोग, अरोचक, कामलारोग, मदात्यय, वमन, प्रमेह, हिक्का (हिचकी), पीनस (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासास्राव), पित्तजरोग, ज्वर तथा शूल को शान्त करता है और अग्नि को अच्छी तरह प्रदीप्त करता है । इस वटक को प्रति दिन सेवन करने से मनुष्य कृष्णात्रि के समान स्मरण-शक्ति से युक्त होकर सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहता है ॥

विसूचिकायां जीरकाद्या गुटिका—

जीरकभागद्वितयमेको भागस्तथैव मरिचस्य ।
द्वौ भागौ सिन्धूत्थाद्धिङ्गोर्भागश्चतुर्थांशः ॥ २१४ ॥
कार्या गुडेन वटिकाऽजीर्णालसकौ विसूचिकाध्मानौ ।
हन्ति सुखोदकपीताऽनुलोमनी मूढवातस्य ॥ २१५ ॥

विसूचिका रोग में जीरकाद्य गुटिका—स्याहजीरा दो भाग, मरिच एक भाग, सेन्धानमक दो भाग, शु० हिंगु चौथाई भाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को चूर्ण से दुगुना गुड़ की चासनी में मिलाकर वटिका वनावे । यह वटिका अजीर्णरोग, अलसक, विसूचिका (हैजा) तथा आध्मान को नाश करती है और थोड़े गरम जल से पान करने पर मूढवात (विलोमवात) को अनुलोमन करती है ।

बृहच्छिवगुटिका—

काले रवितापाढ्ये कृष्णायसे शिलाजतु प्रवरम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहं विशुद्धं पुनः शुष्कम् ॥ २१६ ॥
दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य ।
मधुकरसे गोमूत्रे प्रहर भावयेत्क्रमश एकाहम् ॥ २१७ ॥
क्षीरेण तु तत्परतो भावयित्वा गवां पुनः शुष्कम् ।
सप्ताहं भाव्यं स्यात्क्वाथेनैषां यथालाभम् ॥ २१८ ॥
काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा ।
ऋद्धियुगर्षभवीरामुण्डीतिकाजीरकांशुमत्यश्च ॥ २१९ ॥
रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभर्कणाकलिङ्गचव्याब्दाः ।
कटुका शृङ्गी पाठा चेति पलांशानि कार्याणि ॥ २२० ॥
अब्द्रोणसाधितानां रसेन पादांशकेन भाव्यानि ।
गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षट् च ॥ २२१ ॥
द्विपलं च विश्वधात्रीमागधिकापटाख्यमरिचानाम् ।
चूर्णपलं च विदार्यास्तालीसपलानि चत्वारि ॥ २२२ ॥
षोडश सितापलानि तु चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ ।
तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णस्य पलानि पञ्च पञ्चानाम् ॥ २२३ ॥
त्वक्क्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां च मिश्रयित्वा तु ।
गिरिजस्य षोडशपलैर्गुटिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः ॥ २२४ ॥
ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः ।
तासामेका काले भक्ष्या पेयाऽपि वा सततम् ॥ २२५ ॥
क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवा हिमकरशिशिरतोयानि ।
आलोडनाय तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ २२६ ॥
जीर्णे लघ्वन्नपयोजाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात् ।
सप्ताहं भोजनमेवमतः परं भवेत्सर्वसामान्यम् ॥ २२७ ॥
भुक्त्वाऽपि भक्षितेयं यदृच्छया नावहेद्भयं किंचित् ।
निरुपद्रवा प्रमुक्ता सुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ २२८ ॥
संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम् ।
बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढ्यवातं च ॥ २२९ ॥
ज्वरयोनिशुक्रदोषान् प्लीहार्शःपाण्डुहृद्ग्रहणीरोगान् ।
वध्मवमिगुल्मपीनसहिक्काश्वासारुचिकासान् ॥ २३० ॥
जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाण्ड्यं क्लैब्यं क्षयं मदं शोषम् ।
उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगतान्रोगान् ॥ २३१ ॥
आनाहमतीसारं सासृग्दरकामलाप्रमेहांश्च ।
गलगण्डापच्यर्बुदविद्रधिभगन्दरं रक्तपित्तं च ॥ २३२ ॥

अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमपि श्लीपदं च विनिहन्ति ।
दंष्ट्राविषमपि मौलं गरलानि बहुप्रकाराणि ॥ २३३ ॥
मन्त्रौषधिप्रयोगानरियुक्तान् कौलिकांस्तथा सर्पान् ।
पापमलक्ष्मीं चेयं शमयेद् गुटिका शिवा नाम ॥ २३४ ॥
बल्या वृष्या धन्या कान्तियशःश्रीप्रजाकरी चेयम् ।
दद्यान्नृपवल्लभतां जयं विवादे सुखस्था च ॥ २३५ ॥
श्रीमान्प्रकृष्टमेधास्मृतिबुद्धिबलान्वितो दृढशरीरः ।
पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोबलसंपदोपेतः ॥ २३६ ॥
वलिपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः ।
संवत्सरप्रयोगाद् , द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ २३७ ॥
सर्वामयजिन्महित मुनिभिर्भव्यं रसायनवरिष्ठम् ।
शिवगुटिकेति प्रथितमुक्तं गिरिशेन गणपतये ॥ २३८ ॥

बृहत् शिवा गुटिका—सूर्य के प्रखर धूप के समय (शरद् तथा ग्रीष्म ऋतु) में उत्तम शिलाजीत को लोहे की कड़ाही में रखकर त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) के क्वाथ में तीन दिन तक भावित करे और धूप में सुखाये । शुष्क हो जाने पर पुनः दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बनभंटा, भटकटैया, गोखरू), गुडूची, वरियार, परोरा का पत्ता, मुलेठी का रस, गोमूत्र—इनके स्वरस एवं क्वाथ मे क्रमशः अलग २ एक २ दिन भावित करे । शुष्क होने पर गाय का दूध से भावित करे और उसमें सुखा कर यथालाभ काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शतावरी, मुनक्का, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, वीरा (भूम्यामलकी), मुण्डी, स्याहजीरा, अंशुमती (ज्योतिष्मती), रास्ना, पुष्करमूल, चित्रक, दन्तीमूल, गजपीपर, कलिंग (इन्द्रयव), चव्य, मोथा, कुटकी, काकड़ासिंघी, पाढ़ी—एक २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में क्वाथ करने पर अवशिष्ट चौथाई रस से एक सप्ताह तक भावित करे, इस प्रकार शुद्ध शिलाजीत को सोलह पल लेकर उसमें सोंठ, आंवला, पीपर, कर्कटाख्य (काकड़ासिंघी) मरिच—दो २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण, विदारीकन्द का चूर्ण एक पल, तालीसपत्र का चूर्ण चार पल, मिस्री सोरह पल, घृत चार पल, मधु आठ पल, तिल तैल दो पल, वंशलोचन, तेजपत्र, दालचीनी, नागकेशर, इलायची—इन द्रव्यों का चूर्ण पांच पल मिला दे और एक २ अक्ष परिमाण की गुटिका बनाये । इसको सुखाकर जातीपुष्पादि सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित नवीन घृतभाण्ड में रक्खे । उसमें से एक २ गुटिका प्रातःकाल भक्षण करे तथा ऊपर से दूध, अनार का रस, सुरा, आसव तथा ठंढा जल निरन्तर पान

करे। ये क्षीर रस आदि इस गुटिका को घोलकर पान करने के लिये तथा ऊपर से पान करने के लिये प्रशस्त हैं। औषधि के परिपक्व होने पर हल्का अन्न, दूध, जांगल मांसरस, निर्यूह (वृक्ष का रस "ताड़, खजूर आदि का") तथा यूष का सेवन करें। इस प्रकार एक सप्ताह पथ्यपूर्वक सेवन करे और बाद में सर्व-सामान्य भोजन करे। भोजन करने के बाद भी यह वटी खाने पर कोई भय नहीं है। उपद्रवरहित यह गुटिका सुकुमार एवं कामियों के प्रयोग करने योग्य है। एक वर्ष तक इस प्रकार सेवन करने से प्रबल वातरक्त को नाश करती है और बहुत पुराने एवं उग्र यक्ष्मा रोग को तथा आढ्यवात (आधे अंग की घात) को भी नाश करती है। ज्वर, योनिदोष, शुक्रदोष, प्लीहावृद्धि, अर्श, पाण्डुरोग, हृदय का रोग, ग्रहणीदोष, वर्ध्म, वमन, गुल्मरोग, पीनस (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासास्राव), हिक्का (हिचकी), श्वास, अरुचि, कास, उदर रोग, श्वेत कुष्ठ, पाण्ढ्य (पण्ढता), क्लैब्य (नपुंसकता), क्षयरोग, मदजन्य रोग, सूखारोग, उन्माद, अपस्मार, मुख, नेत्र तथा शिरोगत रोग, आनाह, अतिसार, रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, गलगण्ड (घेघा), अपची, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अतिकृशता, अतिस्थूलता, स्वेद (अधिक पसीना आना) तथा श्लीपद को भी नाश करती है। दंष्ट्राविष (सर्प आदि दांत वाले जन्तुओं का विष), मौलविष (जड़ का विष), अनेक प्रकार के संयोगज विष, शत्रु-प्रयुक्त मन्त्र तथा औषधि-प्रयोगजन्य उपद्रव, कौलिक (कुलज) दोष सर्प-विष, पापजन्य रोग तथा अलक्ष्मी (दरिद्रता) को यह शिवानामक गुटिका शान्त करती है। यह गुटिका बल देनेवाली, वीर्य बढ़ानेवाली, धन देनेवाली, कान्ति, यश, शोभा एवं पुत्रोत्पादन करनेवाली है। यह गुटिका मुख में धारण करने से राजाओं का प्रिय तथा विवाद में विजय प्रदान करती है। पुरुष, शोभा, उत्तम मेधा, स्मरणशक्ति, बुद्धि तथा बल से युक्त होता है। मजबूत शरीरवाला होता है। पुष्टि, ओज, वर्ण, इन्द्रिय-तेज, तथा बल से युक्त होता है और वलि (मुख में झुरी पड़ना), पलित (असमय में बाल का पकना), रोग से मुक्त होकर दो सौ वर्ष तक जीवित रहता है। एक वर्ष तक प्रयोग करने से दो सौ वर्ष तक तथा दो वर्ष प्रयोग करने से चार सौ वर्ष तक जीवित रहता है। सभी रोगों को जीतने वाला महान उत्तम रसायन महर्षिगण के भक्षण करने योग्य है। इस प्रसिद्ध शिवा गुटिका को शंकर जी ने गणेश जी को बताया था ॥ २१६–२२८ ॥

पाण्डुरोगे लघुशिवगुटिका—

कुटकत्रिफलानिम्बपटोलघननागरात्।
भावितानि दशाहं वै रसैश्च द्विगुणैः खलु ॥ २२९ ॥

शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ।
त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यान् पलोन्मितान् ॥ २४० ॥
क्षुद्रायाः फलमूलाभ्यां पलं युञ्ज्यात्त्रिगन्धिकात् ।
मधुत्रिफलसयुक्तान्कुर्यादक्षसमान् गुडान् ॥ २४१ ॥
दाडिमाम्बुपयःक्षीररसयूपसुरासवान् ।
भक्षयित्वा पिबेच्चानु निरन्नो भुक्त एव च ॥ २४२ ॥
पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरान् ।
हृच्छूलशुक्रमूत्राग्निदोषशोफगरोदरान् ॥ २४३ ॥
कासासृग्दरपित्तास्रकृच्छ्रोपगुल्मगलामयान् ।
नेत्रवर्त्मगतान् हन्युः सर्वरोगहराः शिवाः । २४४ ॥

पाण्डुरोग में लघु शिवा गुटिका—शु० शिलाजीत आठ पल लेकर, को त्रिफला, (हर्रे, बहेडा, आंवला), नीम की छाल, परोरा का पत्ता, सोंठ, सोरह पल—इन द्रव्यों के क्वाथ से दश दिन तक भावना दे और शक्कर आठ पल, वंशलोचन, पीपर, आंवला, काकड़ासिंघी—एक २ प इन द्रव्यों का चूर्ण भटकटैया के फल तथा मूल का चूर्ण एक पल, सु (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) का चूर्ण एक पल, मुलेठी, त्रिफला (बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण—एक २ पल मिलाकर एक २ अक्षपरिमाण वटक बनावे। इस वटक को खाकर, अनार का रस, जल, दूध, यूप, तथा आसव पीवे। इस वटक को भोजन के पहले या भोजन के बाद भक्षण करे। ये शिवा गुटिका पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहावृद्धि, तमक श्वास, अर्श, भगन्दर, हृदयशूल, शुक्रदोष, मूत्रविकृति, शोथ, संयोगज विषजन्य उपद्रव, उदररोग, कास, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, सूखा रोग, गुल्मरोग, गले का रोग तथा नेत्र एवं वर्त्मगत रोगों को नाश करती हैं और सभी प्रकार के रोगों को दूर करने वाली हैं॥ २३९–२४४ ॥

कुष्ठे वज्रकगुटिका—

शैलस्य धातो रजसः शिलाभ्यः सूर्यप्रतापाज्जतुसंनिकाशम् ।
कृष्णं स्रवेन्मूत्रसमानगन्धि शिलाजतु प्राज्ञतमास्तदाहुः ॥ २४५ ॥
रूप्यादिधातोर्गलितं दृषद्भ्यस्तेभ्यः प्रशस्तं प्रवदन्ति पूर्वम् ।
विशोधयेत्तत्सुदिने सुपूते द्विपञ्चमूलीसलिले कटाहे ॥ २४६ ॥
लौहे समालोड्य दिवाकरस्य संतापनं रश्मिभिरेव कुर्यात् ।
प्रणीततापात्सरवद्गृहीत्वा पुनः पुनस्तत्तमथोद्धरेच्च ॥ २४७ ॥
तावत्प्रदेय सलिलं क्रमेण गाढस्य संदर्शनमेव यावत् ।
तावच्छिलाजत्वभिसन्निविष्टं समुद्धृतं यावदशेषतश्च ॥ २४८ ॥

अष्टौ पलान्यस्य विशोधितस्य ततः क्रमाद्भावयितुं यतेत ।
द्विपञ्चमूल्यौ चिरबिल्वमुस्तापटोलनिम्बत्रिफलाः पलांशाः ॥ २४९ ॥
सपिप्पलीजीरकरोहिणी च द्रोणेऽम्भसस्तान्द्विपलान्यथोक्तान् ।
प्रक्वाथ्य चैवाष्टमभागशेष तस्मात्सृजेद्भावनमल्पमल्पम् ॥ २५० ॥
पात्रेऽथ लौहे परिशोषयेत्तत्पुनः पुनर्भावितमेव यावत् ।
पलद्वयं पिप्पलिकर्कटाख्ये चूर्णीकृते॰लोहरजःसमांशे ॥ २५१ ॥
पलं बृहत्याः सनिदिग्धिकायाः सितोपलामष्टपलोन्मितां तु ।
पलत्रयं वेणुजरोचनाया मधुत्रयं तद्विनिवेश्य कृत्वा ॥ २५२ ॥
त्रिपष्टिसंख्यान्वटकान्विधिज्ञः खादेत्सुरावारिपयोनुपानात् ।
रसेन वा लावकपिञ्जलानां तोयेन वा दाडिमसंस्कृतेन ॥ २५३ ॥
भुक्तैस्तथाऽभुक्तवति प्रदेया रोगार्दिते निष्परिहारिणी च ।
कुष्ठोदरश्वासगलामयांश्च भगन्दरान्मूत्रविबन्धगुल्मान् ॥ २५४ ॥
यक्ष्माणमर्शांसि सकासहिक्कां प्लीहां च हन्याद्विषमज्वरांश्च ।
वह्नेश्च दीप्तिं परमां करोति वलीश्च हन्यात्पलितानि चैव ॥ २५५ ॥
सेव्या त्वियं वज्रकनामधेया मुनिप्रदिष्टा वटिका प्रधाना ।
वर्ज्याः कुलत्थाश्च सकाकमाच्यः कपोतमांसं च सदा प्रयोगे ॥२५६॥

कुष्ठरोग में वज्रक गुटिका—पहाड-चाँदी का पहाड़, लोहे के पहाड़ के पत्थरों से सूर्य की गर्मी से लाक्षा के वर्ण के समान, मूत्र के समान गन्धवाला काले रंग का स्राव निकलता है उसको शिलाजीत कहते हैं। रूप्यादिधातु तथा पत्थर से निकले हुए शिलाजीत में पत्थर से निकला हुआ शिलाजीत उत्तम होता है। इस प्रकार पत्थर से निकले हुए शिलाजीत को लोहे की कड़ाही में रखकर दोनों पञ्चमूल (बेल की छाल, गम्भारी, पाटला, अरलु, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) के क्वाथ में मिलाकर सूर्य के धूप में तपाये। तपाने से जो शिलाजीत निकले उसको निकाल ले इस प्रकार वार २ सूर्य की गर्मी में पकाये और शिलाजीत को निकाल ले। इस प्रकार उस कड़ाही में तब तक क्रमशः जल छोड़ता रहे जब तक वह गाढ़ा न हो जाय तथा तब तक शिलाजीत को निकालता रहे जब तक पूरा शिलाजीत न निकल आये। इस प्रकार विशुद्ध शिलाजीत को आठ पल लेकर क्रमशः निम्नलिखित द्रव्यों के क्वाथ से भावित करे। दोनों पंचमूल, चिरबिल्व (पूतिकरंज), मोथा, परोरा का पत्ता, नीम, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) एक २ पल, पीपर, स्याहजीरा, मांस-रोहिणी—दो २ पल—इन सभी द्रव्यों को एक द्रोण जल में क्वाथ करे और अष्टमांश शेष क्वाथ को छानकर थोड़ा २ बार २ छोड़कर पूर्वोक्त शिलाजीत-

को भावित करे। इस शिलाजीत को लोहे की कड़ाही में रखकर क्काथ से भावित करे और सूर्य के धूप मे सुखाये। इस क्रिया को बार २ करे और इसमें पीपर चूर्ण तथा काकड़ासिंघीचूर्ण दो पल, लौहभस्म दो पल, वनभंटा के फल का चूर्ण, भटकटैया के फल का चूर्ण एक २ पल, शक्कर आठ पल, वंशलोचन तीन पल तथा मधु तीन पल मिलाकर, त्रिषष्टिसंख्यक (तिरसठ) वटक, विधि-पूर्वक बनाये और सुरा, जल या दूध के अनुपान के साथ भक्षण करे। रोगपीड़ित व्यक्ति के लिये, लाव (पंडुकी) तथा कपिजल पक्षियों के मांसरस से या अनार के रस या अनार के क्काथ से, भोजन के पहले या भोजन के बाद रोग दूर करने के लिये खिलाना चाहिए। यह गुटिका कुष्ठ रोग, उदररोग, श्वासरोग, गले का रोग, भगन्दर रोग, मूत्रविकृति, विबन्ध (मलावरोध), गुल्मरोग, यक्ष्मारोग, अर्शरोग, कास, हिक्का, प्लीहावृद्धि तथा विषमज्वर को नाश करती है, अग्नि को अच्छी तरह प्रदीप्त करती है, वली (मुख में झुरी पड़ना) तथा पलित (असमय में बाल पकना) रोग को नाश करती है। यह मुनि की बतायी हुई वज्रक नामक प्रसिद्ध गुटिका सेवन करने योग्य है। इस गुटिका के सेवन-काल में कुलथी, मकोय तथा कबूतर के मांस को नहीं सेवन करना चाहिए॥ २४५–२५६॥

विषे सर्षपाद्या गुटिकाः—

सर्षपाः पृष्ठिपर्णी च तगरं पद्मकेसरम्।
हरितालं विडङ्गानि रोध्रद्राक्षाप्रियङ्गवः॥ २५७॥
चन्दनं बालकं मांसी विशाला समनःशिला।
श्रीवासकनिशादार्वीपद्मक ध्याममेव च॥ २५८॥
सुरसप्रसवाः स्पृक्का रोचना गन्धनाकुली।
शम्पाकः कुङ्कुमं दारु स्थौणेयं गिरिकर्णिका॥ २५९॥
जात्याः पुष्पं प्रवालं च पिप्पली मरिचानि च।
सूक्ष्मैला सिन्दुवारश्च यष्ट्याह्वं रोध्रमेव च॥ २६०॥
एतान्यङ्गानि षट्त्रिंशत्पुष्येण परिपेष्य वै।
गुटिकां कोलमात्रां च छायाशुष्कां हि कारयेत्॥ २६१॥
नस्यपानाञ्जने चैषा सम्यग्लेपे च पूजिता।
पुंसां सर्वविषार्तानां राजद्वारे रणे तथा॥ २६२॥
वणिजां लाभकामानां विवादे च सदा हिता।
सरीसृपा न तिष्ठन्ति यत्र तिष्ठति वेश्मनि॥ २६३॥
अनया संप्रलिप्तस्य चौरवह्निभयं कुतः।
सर्पदंशभयं चापि जलराशिभयं न च॥ २६४॥

विषजन्यरोग में सर्षपाद्य गुटिका—सरसो, पृष्ठिपर्णी (पिठवन), तगर, पद्मकेशर, शु० हरिताल, विडंग, लोध्र, मुनक्का, प्रियंगु, रक्तचन्दन, सुगन्धवाला, जटामांसी, इन्द्रायण, शु० मनःशिला, श्रीवासक (चीढ़ का गोंद), आमाहल्दी, दारुहल्दी, पद्मकाठ, ध्याम (कत्तृण "गन्धयवासा"), सुरसप्रभव (राल "गुग्गुलु"), स्पृक्का (सुगन्धित द्रव्य "पृका"), गोरोचन, गन्धनाकुली (अन्धाहुली), शम्पाक (अमलतास), केशर, देवदारु, स्थौणेयक (त्रायमाणा), गिरिकर्णिका (अपराजिता), चमेली का पुष्प तथा पत्ता, पीपर, मरिच, छोटी इलायची, सिन्दुवार, मुलेठी, लोध—समभाग—इन द्रव्यों को पुष्य नक्षत्र में पीसकर वैर के बराबर गुटिका बनाये और छाया में सुखा ले। यह गुटिका नस्य कर्म, पान, अञ्जन तथा अच्छी तरह लेप करने में प्रयोग करना चाहिए। और सभी प्रकार के विष से पीडित पुरुषों के लिये, राजद्वार में युद्ध में लाभ चाहनेवाले व्यवसायियों के लिये तथा विवाद में निरंतर कल्याण करने वाली है। यह गुटिका जिस घर मे रक्खी रहती है वहाँ साँप नहीं ठहरते हैं। इस गुटिका को लेप करने से चोर तथा अग्नि से जलने का भय नहीं होता है। साँप के काटने का भय तथा जल में डूबने का भय भी नहीं होता है ॥२५७-२६४॥

भूतदोषे सिद्धार्थकाद्या गुटिका—

सिद्धार्थकव्योषवचाश्वगन्धानिशाद्वयं हिङ्गु पलाशकं च।
बीज करञ्जात्कुसुमं शिरीषात्फलं च वल्कश्च कपित्थवृक्षात् ॥
समाणिमन्थं सनतं च कुष्ठं श्योनाकमूलं किणिही सिता च।
बस्तस्य मूत्रेण सुभावितं तत्पित्तेन गव्येन गुडान्विदध्यात् ॥
दुष्टव्रणोन्मादनिशान्ध्ययुक्ता उद्बन्धका वारिनिमग्नदेहाः।
दिग्धाहता दर्पितसर्पदष्टास्तान्साधयत्यञ्जनपानलेपैः ॥ २६७ ॥

भूतदोष में सिद्धार्थकाद्य गुटिका—सिद्धार्थक (सफेद सरसो), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, अश्वगन्धा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, हिंगु, परास, विजयसार, करंज का बीज, शिरीष का फूल, कैंथ का फल तथा छाल, माणिमन्थ (सेन्धानमक), तगर, कूठ, अरलू का जड़, किणिही (अपामार्ग), शर्करा—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को वस्त (बकरी) के मूत्र की भावना देकर गाय के पित्त के साथ गुटिका बनाये। यह गुटिका दुष्टव्रण (पुराना भयंकर घाव), उन्माद, निशान्ध्य (रतौंधी), उद्‌बन्धक (फांसी से मरे हुए), जल में डूब कर मरे हुए, जल कर मरे हुए तथा भयंकर साँप के काटने से मरे हुए, भूत दोषों को अञ्जन, पान तथा लेप करने से दूर कर देती है ॥ २६५-२६७ ॥

शोषेऽश्वत्थवटकाः—

मूलत्वक्पत्रशुङ्गानामश्वत्थस्य समाहरेत् ।
शतं शतावरीं मेदां मधुपर्णीं पुनर्नवाम् ॥ २६८ ॥
सहाद्वयं गुडूचीं च श्रेयसीं च शिवां स्थिराम् ।
बृहतीं च वयस्थां च काकोलीं काकनासिकाम् ॥ २६९ ॥
दशद्रोणेषु दुग्धस्य पचेत्तत्सममात्रया ।
सिद्धं शीतं पुनः क्षीरं मन्थानेन विमन्थयेत् ॥ २७० ॥
जायते यद्घृतं तत्र तदुद्धृत्य पुनः पचेत् ।
कल्कैर्मधुकजीवन्तीमधुकोत्पलजीवकैः ॥ २७१ ॥
द्राक्षामेदामहामेदावार्ताकीकण्टकारिका- ।
उच्चटात्रायमाणाख्याशृङ्गाटककसेरुकैः ॥ २७२ ॥
मज्जा तालस्य बीजानां पुष्करस्य च केसरैः ।
धात्रीफलविदारीक्षुरसैः काश्मर्यजैः सह ॥ २७३ ॥
तत्सिद्धं कलशे ताम्रे कृतकौतुकमङ्गलः ।
उच्चटेक्षुरसक्षौद्रतुगाक्षीर्याश्च बुद्धिमान् ॥ २७४ ॥
प्रस्थं प्रस्थं पृथग्दद्याच्छर्करार्धतुलां तथा ।
आत्मगुप्ताफलानां च कुडवं मरिचस्य च ॥ २७५ ॥
त्रिसुगन्धकृतावापं मन्थानेन विमन्थितम् ।
पालिकान्मोदकान्कृत्वा स्थापयेन्मृन्मये नवे ॥ २७६ ॥
तेभ्यो द्वावप्यथवाऽप्येकं खादेद्योऽग्निबलं प्रति ।
मोदकं नियताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ २७७ ॥
स हन्याद्यक्ष्मणः सद्य एकादशविधं बलम् ।
स्वरवर्णबलौदार्यतुष्टिपुष्टिविवर्धनम् ॥ २७८ ॥
आयुष्यं परमं चाग्र्यं भूतोपहतचेतसाम् ।
व्याकुलीकृतधातूनां वृद्धानां क्षीणरेतसाम् ॥ २७९ ॥
वाजीकरणमप्येतद्वन्ध्यानां पुत्रदं परम् ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलवर्धनम् ॥ २८० ॥
हृत्पार्श्वग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रापतन्त्रकान् ।
अपस्मारं तथोन्मादं नाशयेत्तद्रसायनम् ॥ २८१ ॥

शोषरोग में अश्वत्थ वटक—अश्वत्थ (पीपलवृक्ष) का मूल, छाल, पत्र, तथा शुङ्ग (टूसा) एक सौ पल, शतावरी, मेदा, मधुपर्णी (गम्भारी), पुनर्नवा, सहाद्वय (मुद्गपर्णी, माषपर्णी), गुडूची, श्रेयसी (गजपीपल), हरें, शालपर्णी, बृहती (वनभंटा), वयस्था (क्षीरकाकोली), काकोली, काकनासिका (कौआ

ठी)—समभाग—एक २ सौ पल लेकर मोटा चूर्ण बनाकर दश द्रोण दूध में पकावे। सिद्ध होने के बाद ठंढा हो जाने पर फिर उस दूध को मथनी से मथे। मथन करने पर जो घृत निकले उसको निकाल कर फिर मुलेठी, जीवन्ती, महुआ, नीलकमल, जीवक, द्राक्षा, मेदा, महामेदा वनभंटा, भटकटैया, उच्चटा (नागरमोथा या उटंगन बीज), त्रायमाणा, सिंघाड़ा, कसेरुक, ताड़ की मज्जा, विजयसार तथा पुष्करमूल का केशर—समभाग—इन द्रव्यों के कल्क (घृत के चतुर्थांश) तथा आंवला स्वरस, विदारीकन्द स्वरस, गन्ने का रस, गम्भारी का स्वरस—समभाग (घृत के बराबर) मिलाकर पकावे। सिद्ध हो जाने पर बुद्धिमान व्यक्ति मांगलिक कृत्य करने के बाद ताम्र के घड़े में रक्खे और उसमे नागरमोथा, इक्षुरस (गुड़), मधु, वंशलोचन—अलग २ एक २ प्रस्थ, शक्कर आधा तुला, केवाछ के बीज का चूर्ण एक कुडव, मरिच चूर्ण एक कुडव, त्रिसुगन्धि (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र) का चूर्ण एक पल मिलाकर मथनी से चला दे, अच्छी तरह मिल जाने के बाद एक २ पल परिमाण का मोदक बनाये और नवीन मिट्टी के बर्तन में रक्खे। उनमें से एक या दो मोदक को अग्नि तथा बल के अनुसार जो व्यक्ति ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय होकर नियमित आहार करता हुआ खाता है, वह शीघ्र ही बलवान् ग्यारह प्रकार के यक्ष्मारोगों को नाश करता है। यह मोदक स्वर, वर्ण (कान्ति), बल, उदारता, तुष्टि तथा पुष्टि को बढ़ानेवाला है, आयु देने वाला है, भूत दोष से विक्षिप्त चित्तवालों के लिये लाभकारक है, विकृत धातुवाले, वीर्यहीन वृद्धों के लिये भी वाजीकरण है और यह वन्ध्या स्त्रियों को भी पुत्र देनेवाला है। धनुपचालन, स्त्रीसंभोग, मद्यपान, भारवहन तथा मार्गश्रम से खिन्न (दुर्बल) व्यक्तियों का बलवर्द्धक है। यह रसायन, हृदयशूल, पार्श्वशूल, ग्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, अपतन्त्रक, अपस्मार तथा उन्माद को नाश करता है॥ २६८-२८१॥

पाण्डुरोगे पुनर्नवामण्डूरम्—

पुनर्नवा त्रिवृच्छुण्ठी पिप्पली मरिचानि च।
विडङ्गं देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराह्वयम्॥ २८२॥
हरिद्राद्वितयं दन्ती त्रिफला चविका तथा।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम्॥ २८३॥
एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः।
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने॥ २८४॥
पाण्डुशोपोदरानाहशूलार्शः कृमिरोगनुत्।

पाण्डुरोग में पुनर्नवा मण्डूर—पुनर्नवा, निशोथ, सोंठ, पीपर, मरिच,

विडंग, देवदारु, चित्रक, पुष्करमूल, आमाहल्दी, दारुहल्दी, दन्तीमूल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), चव्य, कुटजफल (इन्द्रयव), कुटकी, पिपरामूल, मोथा—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और चूर्ण के दुगुना मण्डूर भस्म मिला दे। इन सभी द्रव्यों के अठगुना गोमूत्र मे पकाकर घृतस्निग्ध पात्र में रक्खे। यह पुनर्नवा मण्डूर, पाण्डुरोग, सूखारोग, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श तथा कृमि रोग को दूर करता है॥

वातव्याधौ रसोनपिण्डः—

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ॥ २८५ ॥
हिङ्गु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च।
शतपुष्पा वचा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ २८६ ॥
अजमोदा यवानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान्।
प्रत्येकं च पलं चैषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २८७ ॥
घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडश।
प्रक्षिप्य तैलमाणी च प्रस्थार्धं काञ्जिकस्य च ॥ २८८ ॥
खादेत्कर्षप्रमाणं च तोयं मद्यं पिबेदनु।
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्तृते ॥ २८९ ॥
अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गलामये।
सोन्मादे वातसंभग्ने शूले जत्रुषु शस्यते ॥ २९० ॥

वातव्याधि में रसोनपिण्ड—बुद्धिमानवैद्य, छिलका रहित लहसुन एक सौ पल, तिल एक कुडव, हिंगु, त्रिकटुक (सोंठ, पीपर, मरिच), सज्जीखार, यवखार, पञ्चलवण (सेन्धानमक, सौवर्चल, विड, साँभर, सामुद्रनमक), सौंफ, वच, कूठ, पिपरामूल, चित्रक, अजमोदा, अजवायन, धनिया—प्रत्येक एक २ पल लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। और मजबूत घृत के वर्तन में रखकर तैल एक मानी, काञ्जी आधा प्रस्थ मिलाकर मुख बन्द कर सोलह दिन तक रक्खे। सोलह दिन के बाद एक २ कर्ष की मात्रा में जल या मद्य के साथ पान करे। यह रसोनपिण्ड, आमवात, वातरोग, सर्वाङ्गवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, कास, श्वास, गले का रोग, उन्माद, वायु के द्वारा भग्न, शूल तथा जत्रु (गले से ऊपर के) रोगों में प्रशस्त है। अर्थात् उपर्युक्त रोगों को नाश करता है॥

वातव्याधौ बृहल्लशुनपिण्डः—

चव्यचित्रकतालीसं यवानी धान्यकं वचा।
अजमोदाऽश्वगन्धा च दाडिमं चाम्लवेतसम् ॥ २९१ ॥
रास्नाग्रन्थिविडङ्गाह्वमभयाजीरकद्वयम्।
क्षारद्वयसमायुक्तं लवणत्रयसंयुतम् ॥ २९२ ॥

शतमूली नतं कुष्ठं व्योषं पूतीकरञ्जकम् ।
शतपुष्पाऽजगन्धा च शटीरामठसंयुतम् ॥ २९३ ॥
निस्तुषं लशुनं कृत्वा द्रव्याणां च चतुर्गुणम् ।
घृतेन मिश्रित पिण्डमक्षमात्रं तु भक्षयेत् ॥ २९४ ॥
आढ्यवाते हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ।
कोष्ठशीर्षगते वाते सर्वाङ्गानिलसग्रहे ॥ २९५ ॥
तूनीप्रतूनीगुल्मेषु सप्तस्वेव क्षयेषु च ।
कृमिकोष्ठापहारी च ह्यशीतिपवनापहः ॥ २९६ ॥
क्षीराहारो भवेत्तस्य मांसाहारोऽथवापि वा ।
पुरुषस्य भवेद्देहस्तप्तहेमसमप्रभः ॥ २९७ ॥
त्रिफला गन्धकश्चैव गुग्गुलुः समभागतः ।
कार्या वातारितैलेन गुटिका वातरोगिणाम् ॥ २९८ ॥

वातव्याधि में बृहत् लशुनपिण्ड—चव्य, चित्रक, तालीसपत्र, अजवायन, धनिया, वच, अजमोदा, अश्वगन्धा, अनार, अम्लवेत, रास्ना, पिपरामूल, वायविडंग, हर्रे, स्याहजीरा, सफेदजीरा, सज्जीक्षार, यवक्षार, सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, शतावरी, तगर, कूठ, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), पूतिकरंज, सौंफ, अजगन्धा (अजवायन), शटी (कपूरकचरी), हिंगु—समभाग तथा इन द्रव्यों के चौगुना छिलका रहित लहसुन लेकर महीन चूर्ण बनावे और घृत में मिलाकर (घृत उतना लेना चाहिए जितने में वटी बन सके) एक २ अक्ष परिमाण का पिण्ड (वटक) बनावे और आढ्यवात, हनुस्तम्भ (जबडे का अकड़न), मन्यास्तम्भ (मन्यानाड़ी का अकड़न), गलग्रह, कोष्ठगतवात, शिरोगतवात, सर्वाङ्गवात, तूनी, प्रतूनी, गुल्मरोग तथा सातो प्रकार के क्षय रोग में भक्षण करे। यह लशुनपिण्ड, कृमिजन्य कोष्ठ रोग को दूर करता है तथा अस्सी प्रकार के वात रोगों को नाश करने वाला है। इस लशुनपिण्ड को सेवन करने वाले व्यक्ति को दूध पीना चाहिए या मांसरस का सेवन करना चाहिए। ऐसा करने से प्रतप्त सोना के समान कान्ति हो जाती है।

त्रिफला, गन्धक, गुग्गुलु—समभाग लेकर चूर्ण बनावे और एरण्ड तैल में मिलाकर गुटिका बनावे। इस गुटिका को वातरोगियों के वातशमनार्थ प्रयोग करे॥ २९१–२९८ ॥

वातव्याधौ व्योषाद्या गुटिका—

व्योषं सग्रन्थिकं पथ्यां चित्रकं जीरकद्वयम् ।
अजमोदां यवानी च वचां चैवमवल्गुजम् ॥ २९९ ॥

लवणत्रितयं क्षारौ समभागानि चूर्णयेत् ।
द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्त गुग्गुलुं शुभम् ॥ ३०० ॥
पलार्धसंमितं चात्र योजयेच्चाम्लवेतसम् ।
गुटिकैषा हिता वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ३०१ ॥
नवं करोति भग्नं च जठरानलदीपनी ।
पूजिता देवदेवेन कालपादेन शम्भुना ॥ ३०२ ॥

वातव्याधि में व्योषाद्य गुटिका—व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), पिपरामूल, हर्रे, चित्रक, स्याहजीरा, सफेदजीरा, अजमोदा, अजवायन, वच, अवल्गुज (वाकुची), सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, सज्जीखार, यवक्षार—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और इन द्रव्यों के बराबर शु० गुग्गुलु तथा अम्लवेत चूर्ण आधा पल मिलाकर गुटिका निर्माण करे। यह गुटिका आमवात, सन्धि, अस्थि तथा मज्जागत वात में हितकर है। भग्न अंग को नवीन बना देती है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करती है। यह गुटिका देवों के देव कालपाद, शंकर से पूजित है। अर्थात् शंकर जी ने इसकी प्रशंसा की है ॥ २९९–३०२ ॥

कुष्ठे स्वायम्भुवो गुग्गुलुः—

शशिरेखा पञ्चपलं तावद्गिरिजश्च गुग्गुलोर्दश च ।
ताप्यस्य पलत्रितयं द्वे लोहाच्छ्रवणिकायाश्च ॥ ३०३ ॥
त्रिफलाकरञ्जपल्लवखदिरगुडूचीवचात्रिवृद्दन्ती- ।
मुस्ताविडङ्गरजनीचतुरङ्गुलवह्निकुटजैश्च ॥ ३०४ ॥
पलिकैश्चूर्णमेतन्मूत्रेण गवां पिबेन्नरः प्रातः ।
कुष्ठी घृतमधुमिश्रं जयत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ३०५ ॥
श्वित्राणि कुष्ठकोठौ विषगरगुल्मोदरप्रमेहांश्च ।
उन्मादभगन्दरमपस्मृतिश्लीपदक्रिमिश्वासान् ॥ ३०६ ॥
जयति वलीपलितानि च योगः स्वायम्भुवः प्रोक्तः ।

कुष्ठरोग मे स्वायम्भुव गुग्गुलु—शशिरेखा (बाकुची) पांच पल, शिलाजीत पांचपल, गुग्गुलु दशपल, स्वर्णमाक्षिक तीनपल, लौहभस्म दो पल, मुण्डी चूर्ण दो पल, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), करंज का पत्ता, खैर, गुडूची, वच, निशोथ, दन्तीमूल, मोथा, विडंग, हल्दी, अमलतास, चित्रक, कोरैया—एक २ पल—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण करने योग्य औषधियों को सूक्ष्म चूर्ण बनाकर गुग्गुलु को अच्छी तरह कूटकर गुग्गुलु-निर्माणविधि से गुग्गुलु तैयार करे और गाय के मूत्र के साथ प्रातः काल पान करे, कुष्ठरोगी, घृत तथा मिश्री मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही वातरक्त, श्वेतकुष्ठ, कोठकुष्ठ को जीत लेता

है और विषजन्य उपद्रव, संयोगजविषजन्य उपद्रव, गुल्मरोग, उदररोग, प्रमेह, उन्माद, भगन्दर, अपस्मार, श्लीपद, कृमिरोग, श्वासरोग तथा वली (मुख में झुरी पड़ना), पलित (असमय में वाल पकना) को भी जीत लेता है। यह स्वायम्भुवयोग ब्रह्मा का कहा हुआ है ॥

कुष्ठे धन्वन्तरीया सप्तविंशतिका गुग्गुलुगुटिका—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ ॥ ३०७ ॥
सूक्ष्मैला पिप्पलीमूलं माक्षिकं सुरदारु च ।
तुम्बरुः पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्वयम् ॥ ३०८ ॥
सौवर्चलं बिडं चैव सैन्धवं हस्तिपिप्पली ।
द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्तं गुग्गुलुं पचेत् ॥ ३०९ ॥
प्रक्षिप्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद् बुधः ।
अजमोदा विडङ्गं च दाडिमं साम्लवेतसम् ॥ ३१० ॥
बाष्पिका पौष्करं दारु त्वगेलापत्रकेसरम् ।
एषामर्धपलैर्भागैः पलानि दश गुग्गुलोः ॥ ३११ ॥
संमिश्र्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद् बुधः ।
भक्षयित्वा ससर्पिष्कां जीर्णे च प्रमिताशनम् ॥ ३१२ ॥
वातश्लेष्मविकारेषु नाडीदुष्टव्रणेषु च ।
श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेतं प्रयोजयेत् ॥ ३१३ ॥
जठरं योनिशूलं च ह्यन्तर्भूतं च विद्रधिम् ।
पार्श्वशूलं कृमीन् गुल्मान्प्रमेहांश्छर्द्यरोचकौ ॥ ३१४ ॥
केवलानिलजान् रोगानशीर्ति श्लैष्मिकानपि ।
सेविता नाशयत्याशु रसायनमनुत्तमम् ॥ ३१५ ॥

कुष्ठरोग में धन्वन्तरीय सप्तविंशतिक गुग्गुलु गुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, वहेड़ा, आंवला), मोथा, विडंग, चव्य, चित्रक, छोटी इलायची, पिपरामूल, स्वर्णमाक्षिक, देवदारु, तुम्बरु, पुष्करमूल, कूठ, अतीस, आमाहल्दी, दारुहल्दी, सौवर्चलनमक, विडनमक, सेन्धानमक, गजपीपर—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण के वरावर गुग्गुलु मिलाकर पकावे और बुद्धिमान् वैद्य घृत के साथ गुटिका बनावे (गुग्गुलु को पानी में भिगोकर गरम करना चाहिए गरम करने से वह शुद्ध हो जाता है और उसके विजातीय द्रव्य निकल जाते हैं इस प्रकार गरम कर छान लेना चाहिए और चूर्ण मिलाकर पकाना चाहिए, गाढ़ा होने के बाद घृत के साथ गुटिका बना लेनी चाहिए)।

अजमोदा, विडंग, अनार, अम्लवेंत, वाष्पिका (नाडीहिंगु), पुष्करमूल,

देवदारु, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—आधा पल—इन द्रव्यों के चूर्ण के साथ गुग्गुलु चूर्ण दशपल मिलाकर घृत के साथ गुटिका बनावे। इस गुटिका को घृत के साथ खाकर परिपाक होने पर थोड़ा सा भोजन करे। वात० कफजन्य विकार, नाडीव्रण (नासूर), दुष्ट व्रण, श्लैष्मिक कास तथा शोथ में इस योग को प्रयोग करना चाहिए। यह गुटिका सेवन करने से जठररोग, योनिशूल, अन्दर की तरफ मुखवाला घाव, पार्श्वशूल, कृमिरोग, गुल्मरोग, प्रमेह, छर्दि (वमन), अरोचक, केवल वातजन्य अस्सी प्रकार के रोग तथा कफजन्य रोगों को शीघ्र ही नाश करती है। यह गुग्गुलु उत्तम रसायन है।

रास्नाद्यो गुग्गुलुः—

रास्नामृतरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणाथ विमृद्य खादेत्।
वातामयी कर्णशिरोगदी च नाडीयुतश्चैव भगन्दरी च ॥ ३१६ ॥

रास्नाद्य गुग्गुलु—रास्ना, गुडूची, एरण्ड (रेड़), देवदारु, सोंठ—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण के बराबर शु० गुग्गुलु मिलाकर (घृत के साथ) मर्दन करे और वटी बनाये। इस वटी को वातरोगी, कान तथा शिर का रोगी, नाडी का रोगी तथा भगन्दर का रोगी भक्षण करे ॥ ३१६ ॥

आमवाते धन्वन्तरीया द्वात्रिंशका गुग्गुलुगुटिका—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चित्रकं वचा।
चव्यैलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ ३१७ ॥
तुम्बुरुः पौष्करं कुष्ठं विशाला रजनीद्वयम्।
बाष्पिका जीरक शुण्ठी सपत्रा च दुरालभा ॥ ३१८ ॥
सैन्धवं च बिडं क्षारो विषा च हस्तिपिप्पली।
भागानेषां समान्कृत्वा तुल्यं कृत्वा तु गुग्गुलुम् ॥ ३१९ ॥
ततो बदरमात्रां तु गुटिकां कारयेद् बुधः।
मेधावी भक्षयित्वा तां मधुना सह योजिताम् ॥ ३२० ॥
आमं हन्यात्सुदुर्वारमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन्।
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि गुदजानि च ॥ ३२१ ॥
गृध्रसीं च हनुस्तम्भपक्षाघातापतानकान्।
शोफप्लीहामयं मेहं कामलामरुचिं तथा ॥ ३२२ ॥
नाम्ना द्वात्रिंशको ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान्।
धन्वन्तरिकृतो योगः सर्वरोगनिषूदनः ॥ ३२३ ॥

आमवात में धन्वन्तरीय द्वात्रिंशक गुग्गुलु गुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मोथा, विडंग, चित्रक, वच, चव्य, इलायची, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बरु, पुष्करमूल, कूठ, इन्द्रा-

यण, आमाहल्दी, दारुहल्दी, नाडीहिंगु, स्याहजीरा, सोंठ, तालीसपत्र, यवासा, सेन्धानमक, विडनमक, सज्जीखार, यवक्षार, अतीस, गजपीपर—समभाग— इन द्रव्यों के चूर्ण को लेकर चूर्ण के बराबर शु० गुग्गुलु मिलाकर घृत-मधु के साथ) बेर के बराबर गुटिका बनाये और बुद्धिमान व्यक्ति भक्षण करे। इस गुटिका को खाकर असाध्य आमवात, आन्त्रवृद्धि, गुदकृमि, आनाह, उन्माद, कुष्ठरोग, गुदज (अर्शरोग), गृध्रसीवात, हनुस्तम्भ, पक्षाघात, अपतानक (धनुष्टंकार), शोथ, प्लीहावृद्धि, प्रमेह, कामला रोग तथा अरुचि को नाश करता है। धन्वन्तरि का बनाया हुआ सभी रोगों को नाश करनेवाला यह महान् योग द्वात्रिंशक गुग्गुलु नाम से प्रसिद्ध है ॥ २१७–२२३ ॥

वातव्याधौ बिल्वाद्यो गुग्गुलुः—

बिल्वैलापटुहेमचव्यहपुषाद्राक्षाकणादाडिमं
मूलं पौष्करमक्षपाक्यमरिचं शुण्ठी यवानी वचा।
कर्चूरेन्द्रयवाम्लवेतसत्रुटित्वक्तिन्तिडीकाग्निकं
नैम्बं पत्रमजाजियुग्मरुचकं क्षुद्राम्बुधात्रीफलम् ॥ ३२४ ॥
पाठाधान्ययवासदीप्यककणामूलं दलं नाडिपका
मुस्ता कर्षसमैश्चतुष्पलयुतैः क्षौद्रस्य जीर्णस्य वै।
दत्त्वा गुग्गुलुमत्र चाष्टपलिकं कृत्वा वटान्भक्षये
त्ते जग्धा विनिहन्ति वातकफजान् व्याधीनशेषानपि ॥ ३२५ ॥

वातव्याधि में बिल्वाद्य गुग्गुलु—बेल का गूदा, इलायची, पटु (सेन्धानमक), हेम (सत्यानासी), चव्य, हाऊबेर, द्राक्षा, पीपर, अनार, पुष्करमूल, बहेड़ा, पाक्य (विडनमक), मरिच, सोंठ, अजवायन, वच, कचूर, इन्द्रयव, अम्लबेंत, इलायची, दालचीनी, तिन्तिडीक, चित्रक, नीम, तेजपत्र, सफेदजीरा, स्याहजीरा, रुचक (सौवर्चलनमक), भटकटैया, मोथा, आंवला, पाढी, धनिया, यवासा, अजवायन, पिपरामूल, दल (तालीसपत्र), नाडीहिंगु, नागरमोथा—एक कर्ष—इन द्रव्यों का चूर्ण, पुराना मधु चार पल, शु० गुग्गुलु आठ पल मिलाकर वटक बनावे। यह वटक भक्षण करने से वातकफजन्य विकार एवं सभी व्याधियों को नाश करता है ॥ ३२४–३२५ ॥

अर्शसि योगराजो गुग्गुलुः—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
पाठाविडङ्गभार्गीन्द्रयवहिङ्गुवचान्वितैः ॥ ३२६ ॥
सर्षपानिविषाजाजिधान्यकै रेणुकायुतैः।
गजकृष्णाजमोदाभ्यां कटुमूर्वासमन्वितैः ॥ ३२७ ॥
समभागान्वितैरेतैस्त्रिफला द्विगुणा भवेत्।

त्रिफलासहितैरेतैः समभागस्तु गुग्गुलुः ॥ ३२८ ॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं मधुना च परिप्लुतम् ।
योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३२९ ॥
अर्शांसि वातगुल्मं च पाण्डुरोगमरोचकम् ।
नाभिशूलमुदावर्तं प्रमेहान्वातशोणितम् ॥ ३३० ॥
कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम् ।
महान्तमग्निसादं च श्वासकासभगन्दरान् ॥ ३३१ ॥
रेतोदोषाश्च ये पुंसां योनिदोषाश्च योषिताम् ।
निहन्याच्चाशु तान्सर्वान्दुर्वारानप्यसंशयम् ॥ ३३२ ॥
एष निष्परिहारस्तु पानभोजनमैथुने ।
सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥ ३३३ ॥

अर्श रोग में योगराज गुग्गुलु—पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, पाठा, विडंग, भांगरा, इन्द्रयव, हिंगु, वच, सरसो, अतीस, स्याहजीरा, धनिया, रेणुका बीज, गजपीपर, अजमोदा, कुटकी, मरोरफली—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण, चूर्ण के दुगुना त्रिफला चूर्ण तथा सभी चूर्णों के बराबर शु० गुग्गुलु मिलाकर मर्दन करे और एक २ मासा की वटी बना ले। विद्वान इस वटी को प्रातः काल सेवन करे। यह योगराज अर्शरोग, वातगुल्म, पाण्डुरोग, अरोचक, नाभिशूल, उदावर्त, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ठरोग, क्षयरोग, अपस्मार, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, भयंकर मन्दाग्नि, श्वास, कास, भगन्दर, पुरुषों के वीर्यदोष, स्त्रियों के योनिदोष तथा सभी असाध्य रोगों को शीघ्र ही नाश करता है इसमें संशय नहीं है। इसके सेवन काल में पान, भोजन तथा मैथुन आदि का निषेध नहीं है निरन्तर सेवन करने से वलि (मुख मे झूरी पड़ना), पलित (असमय में बालपकना) को नाश करता है ॥ ३२६–३३३ ॥

नाडीव्रणे त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः—

हन्ति नाडीव्रणक्लेदभगन्दरगलामयान् ।
पिटिकां विद्रधिं गुल्मं गुग्गुलुस्त्रिफलान्वितः ॥ ३३४ ॥

नाडी व्रण में त्रिफलाद्य गुग्गुलु—त्रिफला चूर्ण तथा शु० गुग्गुलु को घृत के साथ कूटकर मुलायम होने पर एक २ मासा की वटी बनावे। यह वटी सेवन करने से नाडीव्रण (नासूर), क्लेद (पसीना आना), भगन्दर, गले का रोग, पिडिका, विद्रधि तथा गुल्म रोग को नाश करती है ॥ ३३४ ॥

प्रमेहे गोक्षुरगुग्गुलुगुटिका—

त्रिकटुं त्रिफलां मुस्तं गुग्गुलुं च समांशकम् ।
गोक्षुरक्वाथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ ३३५ ॥

देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिनीम् ।
न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ३३६ ॥
प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ।
प्रदरं मूत्रदोषं च मूत्राघातं च नाशयेत् ॥ ३३७ ॥

प्रमेह रोग में गोक्षुरगुग्गुलुगुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) मोथा—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा शु० गुग्गुलु—सममाग लेकर गोखरू के क्वाथ में पकाकर गाढ़ा होने पर एक २ मासा की गुटिका बनावे । वायु को अनुलोमन करनेवाली इस गुटिका को देश, काल तथा बल के अनुसार मात्रापूर्वक खाये । इसके सेवनकाल में कोई निषेध नहीं है अपनी इच्छा के अनुसार कर्म करे । यह गुटिका प्रमेह, वातरोग, वातरक्त, प्रदर, मूत्रदोष तथा मूत्राघात को नाश करती है ॥ ३३५–३३७ ॥

वातगुल्मे वातरक्ते च कैशोरको गुग्गुलुः—

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ ३३८ ॥
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ।
संसाधयेत्प्रयत्नाद्दर्व्या संघट्टयेच्च तद्यावत् ॥ ३३९ ॥
अर्धक्षयितं जातं तोयं ज्वलनस्य संपर्कात् ।
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ ३४० ॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलस्पर्शे ।
पथ्याचूर्णं द्विपलं त्रिकटुकचूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ ३४१ ॥
कृमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ।
पलमेकं तु गुडूच्या दत्त्वा संमूर्च्छ्य यत्नेन ॥ ३४२ ॥
संस्थापयेच्च गुप्तं स्निग्धे भाण्डे घृतेन सुरभीणाम् ।
आदाय तस्य मात्रां विहितातिथिदेवताप्रणतिः ॥ ३४३ ॥
खादेद्यथाग्नि मनुजो व्याधिबलापेक्षया सम्यक् ।
उपयुज्य चानुपानं यूष क्षीरं सुगन्धिसलिलं च ॥ ३४४ ॥
इच्छाहारविहारो भेषजकालश्च सर्व एवात्र ।
तनुरोधि वातशोणितमेकद्वित्र्युल्बणं चिरोत्थमपि ॥ ३४५ ॥
भग्नस्रुतपरिशुष्कं स्फुटितमपि तन्निहन्ति यत्नेन ।
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुरोगमेदांसि ॥ ३४६ ॥
मन्दाग्नित्वविबन्धं प्रमेहदोषांश्च नाशयति ।
सततं निषेव्यमाणः कालेन निहन्ति रोगगणम् ॥ ३४७ ॥
अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ।

वातगुल्म तथा वातरक्त में कैशोरक गुग्गुलु—महिष के आंख के ढेढ़र (आंख का उदर, उठा हुआ सफेद भाग) के समान वर्णवाले उत्तम गुग्गुलु एक प्रस्थ, त्रिफला का मोटा चूर्ण एक प्रस्थ, गुडूची बत्तीस पल—इन द्रव्यों को बड़े पात्र में रखकर एक द्रोण जल में पकावे और कलछी से चलाता जाय। आधा शेष रहने पर आग पर से उतार कर कपड़ा से छान कर पुनः आग पर चढ़ावे और पाक करे। गाढ़ा होने पर उतार ले और ठंढा होने पर हर्रे चूर्ण दो पल, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण छः अक्ष, वायविडंग चूर्ण आधा पल, निशोथ चूर्ण एक कर्ष, दन्तीमूल चूर्ण एक कर्ष, गुडूची सत्त्व एक पल छोड़ कर अच्छी तरह मिलाकर घृत से स्निग्ध सुगन्धित बर्तन में रखकर गुप्त स्थान में रक्खे। मनुष्य व्याधिबल के अनुसार देवता तथा अतिथियों को नमस्कार कर इस गुग्गुलु को मात्रापूर्वक भक्षण करे। इसको खाकर यूष, दूध तथा सुगन्धित जल ऊपर से पान करे। इसमें सेवन-काल में अपनी इच्छा के अनुसार आहार-विहार करे तथा प्रत्येक ऋतुओं में सेवन करे। यह गुग्गुलु शरीरवृद्धि को रोकने वाले एकदोषज, द्विदोषज, उल्बण, पुराना, भग्न, बहनेवाला, सूखा हुआ तथा फूटा हुआ वातरक्त को अच्छी तरह नाश करता है। व्रण, कास, कुष्ठरोग, गुल्मरोग, शोथ, उदर-रोग, मेदोरोग, मन्दाग्नि, विबन्ध तथा प्रमेह दोषों को भी नाश करता है। यह गुग्गुलु निरंतर सेवन करने से थोड़े समय में रोगसमूहों को नाश करता है और बुढ़ापे को दूर कर सुन्दर रूप प्रदान करता है ॥ ३३८–३४७ ॥

त्रिफलाद्यो गुग्गुलुः—

पलानि क्वाथयेत्षष्टिं त्रिफलायास्तु गुग्गुलोः ॥ ३४८ ॥
पलैः षोडशभिः सार्धमपां द्रोणद्वयेन तु।
चतुर्भागावशेषं तु कृत्वा भूयोऽप्यधिश्रयेत् ॥ ३४९ ॥
घनीभूतं कषायं तु ज्ञात्वा चोद्धृत्य निःक्षिपेत्।
छिन्नाव्योषविडङ्गानां चूर्णानि पलिकानि च ॥ ३५० ॥
ततो मात्रां बलापेक्षी भक्षयेद्वातरक्तिनम्।
कुष्ठिनं श्वित्रिणं चैव गुल्मिनं मेहिनं तथा ॥ ३५१ ॥
बलं मेधां स्मृतिं ज्ञानं तेज आयुर्विवर्धयेत्।

त्रिफलाद्य गुग्गुलु—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) का मोटा चूर्ण साठ पल तथा गुग्गुलु सोरह पल लेकर दो द्रोण जल में पकाये। चौथाई शेष क्वाथ को छान कर पुनः आग पर चढ़ावे। गाढ़ा होनेपर, गुडूची सत्त्व, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण तथा विडंग का चूर्ण एक २ पल छोड़ दे। और अच्छी तरह मिलाकर गुटिका बनावे और स्निग्ध बर्तन में भर कर

रख ले। इसके बाद बल के अनुसार मात्रापूर्वक वातरक्त के रोगी को खिलाये। इसी प्रकार कुष्ठ के रोगी, श्वेतकुष्ठ के रोगी, गुल्म के रोगी तथा प्रमेह के रोगियों को भी खिलाये। यह गुग्गुलु, बल, मेधा (धारणाशक्ति), स्मृति (स्मरणशक्ति), ज्ञान, तेज तथा आयु को बढ़ाता है ॥ २४८–३५१ ॥

गृध्रस्यां कंसाख्यो गुग्गुलुः—

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम्।
प्रस्थेन युक्तं तु पलङ्कषस्य द्रोणे जलस्य स्थितमेकरात्रम् ॥ ३५२ ॥
अर्धावशेषं क्वथितं कषायं भाण्डे पचेत्तं पुनरेव लौहे।
अमूनि पश्चादवतार्य दद्याद् द्रव्याणि संचूर्ण्य पलार्धकानि ॥ ३५३ ॥
विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकांश्च।
यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानाहितभोजनानि ॥ ३५४ ॥
निषेवमाणस्य निहन्ति रोगाञ्जङ्घागतान्गृध्रसिकादिकांश्च।
प्लीहानमुग्रं जठराणि गुल्मं पाङ्गुल्यकण्डूकृमिवातरक्तम् ॥ ३५५ ॥
कंसाह्वयो गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितौ तत्प्रथितप्रभावः।
बलेन नागेन्द्रसमं मनुष्यं वेगेन कुर्याद्धरिवेगतुल्यम् ॥ ३५६ ॥
आयुष्प्रदो हर्षकरोऽतिपथ्यश्चक्षुष्प्रदः पुष्टिकरो विषघ्नः।
क्षतस्य सन्धानकरो विशेषाद्गरेषु शस्तः सकलेषु चैव ॥ ३५७ ॥

गृध्रसीरोग में कंसाख्य गुग्गुलु—हर्रे एक सौ, बहेड़ा दो सौ, आंवला चार सौ, इन द्रव्यों का मोटा चूर्ण तथा गुग्गुलु एक प्रस्थ लेकर एक द्रोण जल में एक रात्रि भिगोकर क्वाथ करे। आधा शेष रह जाने पर क्वाथ को छानकर पुनः लोहे की कड़ाही में पकावे। गाढ़ा होने पर विडंग, दन्तीमूल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), गुडूची, पीपर, निशोथ, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक—आधा २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे और अच्छी तरह मर्दन कर घृतस्निग्ध भाण्ड में रख ले। इस गुग्गुलु को सेवन करने से अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करनेवाले तथा ठंढा जल पीनेवाले, अहितकर भोजन करनेवाले मनुष्य के भी जंघागत गृध्रसी आदि वातरोग, भयंकर प्लीहावृद्धि, उदररोग, पङ्गुरोग, कण्डू, कृमिरोग, तथा वातरक्त को नाश करता है। कंस नाम से प्रसिद्ध पृथ्वी पर प्रख्यात प्रभाववाला यह गुग्गुलु सेवन करने से हाथी के समान बल तथा घोड़े के समान वेगवाला बना देता है। यह गुग्गुलु आयु बढ़ानेवाला, मनको प्रसन्न करनेवाला, अत्यन्त उपयोगी, नेत्रशक्ति को बढ़ानेवाला, शरीर को पुष्ट करनेवाला, विषनाशक, क्षत को संधान करनेवाला तथा सभी प्रकार के संयोगज विष में प्रशस्त है ॥ ३५२–३५७ ॥

गण्डमालायां त्रिफलाद्या गुग्गुलुगुटिका—

त्रिफलात्रिवृतादन्तीनीलिनीचतुरङ्गुलाः ।
एषां तु भिषजा ग्राह्या प्रत्येकं पलविंशतिः ॥ ३५८ ॥
कुट्टितैः क्वथितैरेभिश्चतुर्द्रोणप्रमाणतः ।
पचेत्तु सलिलं तावद्यावद्द्रोणावशेषितम् ॥ ३५९ ॥
पञ्चाशत्तत्र निक्षिप्य गुग्गुलोस्तु पलान्यपि ।
पचेत् पाकघनीभूते त्वगेलानागकेसरम् ॥ ३६० ॥
त्रिकटुत्रिफलामुस्तयवानीजीरकाणि च ।
पिप्पलीमूलदहनहपुषाकृष्णजीरकम् ॥ ३६१ ॥
नाडिपका साजमोदा च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।
सौवर्चलं च कृत्वैषां श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिपेत् ॥ ३६२ ॥
पलार्धप्रमितैर्भागैः प्रत्येकं च विचक्षणः ।
ततोऽक्षमात्रां गुटिकां भक्षयेत्तां दिने दिने ॥ ३६३ ॥
गण्डमालार्बुदग्रन्थ्यूरुस्तम्भोदरपीडितः ।
अनेनैव विधानेन गिरिजं च प्रयोजयेत् ॥ ३६४ ॥

गण्डमाला में त्रिफलाद्य गुग्गुलु गुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), निशोथ, दन्तीमूल, नीलीवृक्ष, अमलतास—इन द्रव्यों के मोटे चूर्ण को बीस २ पल लेकर तथा गुग्गुलु पचास पल मिलाकर चार द्रोण जल में पकावे, एक द्रोण शेष रहने पर छान कर पुनः आग पर पकावे। गाढ़ा हो जाने पर दालचीनी, इलायची, नागकेशर, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मोथा, अजवायन, स्याहजीरा पिपरामूल, चित्रक, हाऊबेर, संगरैल, वाष्पिका (नाडीहिंगु), अजमोदा, तिन्तिडीक, अम्लवेंत, सौवर्चलनमक—आधा २ पल—इन प्रत्येक द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को मिलाकर एक २ अक्ष परिमाण की गुटिका बना ले। इस गुटिका को गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थि, ऊरुस्तम्भ तथा उदररोग से पीडित व्यक्ति प्रतिदिन भक्षण करे। इसी प्रकार उपर्युक्त विधान एवं द्रव्यों के साथ शिलाजीत की भी गुटिका बनाकर प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् इन्हीं द्रव्यों से गुग्गुलु के स्थान पर शिलाजीत मिलाकर प्रयोग करना चाहिए ॥ ३५८–३६४ ॥

वातरक्ते बृहत्स्वायम्भुवगुग्गुलुः—

अलम्बुषालोहचूर्णमनयोर्द्वे पले पृथक् ।
पलत्रयं च ताप्युत्थाद्वाकुच्याः पलपञ्चकम् ॥ ३६५ ॥
शिलाजतु तयोस्तुल्यं पलानि दश गुग्गुलोः ।
सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ ३६६ ॥

शाणं कर्षार्धकर्षं वा ततः खादेत्प्रयत्नतः
वातरक्तं च कुष्ठानि श्वित्राणि विविधानि च ॥ ३६७ ॥
अर्शांसि क्षुद्ररोगांश्च ग्रहणी च भगन्दरान् ।
वस्तिजाञ्छुक्रदोषांश्च पाण्डुतामुदराणि च ॥ ३६८ ॥
शोफश्लीपदमानाहं यक्ष्माणं च विशेषतः ।
नाडीव्रणांश्च सर्वांस्तु हन्याद्विद्रधिहृद्गदान् ॥ ३६९ ॥
वृष्यो बल्यश्च धन्यश्च केश्यो मेधाग्निवर्धनः ।
आयुर्वर्णकरस्त्वच्यः पुत्रसौभाग्यदस्तथा ॥ ३७० ॥
गर्भसन्धानकृत्प्रोक्तो गर्भपुष्टिकरः परम् ।
कालपादेन विख्यातो नाम्ना स्वायंभुवो भुवि ॥ ३७१ ॥

वातरक्त में बृहत्स्वायम्भुव गुग्गुलु—अलम्बुषा (फूलसोला "लज्जालुभेद"), लौहभस्म दो २ पल, ताप्युत्थ (स्वर्णमाक्षिक) तीन पल, बाकुची पाँच पल, शिलाजीत आठ पल, गुग्गुलु दश पल—इन सभी द्रव्यों को चूर्ण कर (घृत के साथ कूट कर) बुद्धिमान् व्यक्ति, गुटिका बनावे। इस गुटिका को एकशाण (चारमासा), एक कर्ष या आधा कर्ष की मात्रा में अग्निबल के अनुसार प्रयत्नपूर्वक (पथ्य के साथ) भक्षण करे। यह गुग्गुलु वातरक्त, कुष्ठरोग, अनेक प्रकार के श्वेतकुष्ठ, अर्शरोग, पामा आदि क्षुद्ररोग, ग्रहणीदोष, भगन्दर, शोथ, श्लीपद, विशेषकर यक्ष्मारोग, नाडीव्रण (नासूर), सभी प्रकार के विद्रधि तथा हृदय रोगों को नाश करता है। संसार में कालपाद का बनाया हुआ स्वायंभुव नामक गुग्गुलु वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, धनप्रद, केश के लिये हितकर, मेधा (धारणाशक्ति) तथा जाठराग्निवर्द्धक, वर्ण (कान्ति) प्रद, पुत्र तथा सौभाग्य को देनेवाला, गर्भ को संधान करनेवाला तथा गर्भ को पुष्ट करनेवाला है ॥ ३६५-३७१ ॥

कासे सप्तचत्वारिंशतिका गुग्गुलुगुटिका—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं कुटजं गजपिप्पलीम् ।
त्वगेलापत्रहपुषाग्रन्थिक जीरकद्वयम् ॥ ३७२ ॥
विडङ्गं चित्रकं पाठां त्रायमाणां दुरालभाम् ।
पटोलेन्द्रयवान् दारु पञ्चैव लवणानि च ॥ ३७३ ॥
यवानी बाष्पिकां भार्गीं हरिद्रे सारिवाद्वयम् ।
दाडिमं पौष्करं धान्यं वचां क्षारद्वयं तथा ॥ ३७४ ॥
हरेणुकाजमोदं च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।
सतुम्बरूणि सर्वाणि कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३७५ ॥
गुग्गुलुश्च समो देयो हविषा सह योजयेत् ।

गुटिकामक्षमात्रां तु भक्षयेन्मधुना नरः ॥ ३७६ ॥
कासं श्वासं तथा शोफमर्शांस्यथ भगन्दरम् ।
हृत्पृष्ठपार्श्वशूलं च हन्ति मन्दाग्नितामपि ॥ ३७७ ॥
आमवातमुदावर्तमेदोवृद्धिगुदक्रिमीन् ।
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठपाण्डूदरामयान् ॥ ३७८ ॥
नाडीदुष्टव्रणान् सर्वान्प्रमेहश्लीपदानपि ।

कासरोग में सप्तचत्वारिंशतिका गुग्गुलु गुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मोथा, करैला की जड़, गजपीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, हाऊबेर, पिपरामूल, सफेदजीरा, स्याहजीरा, विडंग, चित्रक, पाठा, त्रायमाणा, धमासा, परोरा का पत्ता, इन्द्रयव, देवदारु, सेन्धानमक, सौवर्चल, बिट, सांभर, सामुद्र नमक, अजवायन, नाडीहिंगु, भांगरा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, कृष्णसारिवा, श्वेतसारिवा, अनार, पुष्करमूल, धनिया, वच, सज्जीखार, यवक्षार, हरेणुका (मटर के बीज), अजमोदा, तिन्तिडीक, अम्लबेत, तुम्बरु—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा चूर्ण के बराबर शु० गुग्गुलु लेकर घृत के साथ कूटकर एक अक्ष परिमाण की गुटिका बनावे और मधु के साथ भक्षण करे। यह गुटिका, कास, श्वास, शोथ, अर्शरोग, भगन्दर, हृदयशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, आमवात, उदावर्त, मेदोवृद्धि, गुदकृमिरोग, आनाह, उन्माद, कुष्ठ, पाण्डुरोग, उदररोग, नाडीव्रण (नासूर), दुष्टव्रण, सभी प्रकार के प्रमेह तथा श्लीपद रोगों को नाश करती है ॥

वातरक्ते कन्थडिका गुग्गुलुगुटिका—

त्रिफलातिविपादारुदार्वीमुस्ताटरूपकैः ।
खदिरासननक्ताह्वागुडूचीनृपपादपैः ॥ ३७९ ॥
भूनिम्बनिम्बकटुकाकलिङ्गकुलकैः समैः ।
क्वाथं कृत्वा ततः पूर्वं शीतमष्टगुणेऽम्भसि ॥ ३८० ॥
गुडूच्याः कारयेत्क्वाथमर्धे शिष्टेऽथ वारिणि ।
क्षिप्त्वा पुरं नवे भाण्डे स्थापयेद्रजनीमथ ॥ ३८१ ॥
आतपेनैव तीव्रेण कौशिकं परिशोषयेत् ।
शुष्कस्य तु पलान्यष्टौ तावन्मानं शिलाजतु ॥ ३८२ ॥
ताप्यचूर्णात्पलं चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ।
एकीकृत सुसंक्षुद्य लिह्यात्तं त्रिफलाम्बुना ॥ ३८३ ॥
तनुना मुद्गयूषेण जाङ्गलानां रसेन वा ।
जीर्णे यूषेण भुञ्जीत पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ ३८४ ॥
यथारोगं यथासात्म्यं रसैर्यूषैश्च संस्कृतैः ।

त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ३८५ ॥
निहन्ति वीर्यतः शीघ्रं कुष्ठरोगं व्रणानपि ।
छिन्नभिन्नांश्च संधत्ते दरिद्र इव कन्थडीम् ॥ ३८६ ॥

वातरक्त में कन्थडिका गुग्गुलु गुटिका—त्रिफला (हर्रे, वहेडा, आंवला), अतीस, देवदारु, दारुहल्दी, मोथा, अडूसा, खैर, असनवृक्ष (विजयसार), नक्ताह्व (करंज), गुडूची, नृपपादप (अगस्त्य), चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रयव, कुलक (काकतिन्दुक)—समभाग—इन द्रव्यों को क्वाथ करे। इसके पहले अठगुने जल में गुडूची का क्वाथ बनावे, और आधा शेष रहने पर इसमें उपर्युक्त द्रव्यों के क्वाथ को मिला दे, और उसको नवीन वर्तन में रखकर गुग्गुलु छोड़ दे तथा एक रात तक रक्खे। इसके वाद सूर्य के तीव्र धूप में गुग्गुलु को सुखाये। सूख जाने पर गुग्गुलु आठ पल ले ले, और उसमे शिलाजीत आठ पल, स्वर्णमाक्षिक भस्म एक पल, मधु तथा घृत दो पल (विषम मात्रा में) मिलाकर कूटकर गुटिका (एक २ मासा के परिमाण की) बनाये और इस गुटिका को त्रिफला रस, पतला मूग का यूप या जंगली पशु-पक्षियों के मांस-रस के साथ खाय, औषधि के परिपाक हो जाने पर पुराने साठी चावल का भात यूप के साथ खाय या रोग के अनुसार या जैसा अनुकूल पड़े उसके अनुसार संस्कृत रस या यूष के साथ भक्षण करे। इस प्रकार एक्कीस दिन तक प्रयोग करने से भयंकर वातरक्त, कुष्ठरोग तथा व्रणों को नाश करता है और छिन्न-भिन्न व्रणों को सन्धान भी कर देता है। जैसे दरिद्र छिन्न-भिन्न कथरी को सुन्दर एवं सुसंग्रथित वनाकर, विस्तर आदि के रूप में वना लेता है ॥ ३७९–३८६ ॥

गण्डमालायामष्टाचत्वारिंशत्संज्ञा गुग्गुलुगुटिका—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं कुटजं गजपिप्पलीम् ।
त्वगेलापत्रहपुषाग्रन्थिकं जीरकद्वयम् ॥ ३८७ ॥
विडङ्गं चित्रकं पाठां त्रायमाणां दुरालभाम् ।
पटोलेन्द्रयवान् दारु पञ्चैव लवणानि च ॥ ३८८ ॥
यवानीं बाष्पिकां भार्गीं हरिद्रे सारिवाद्वयम् ।
दाडिमं पौष्करं धान्यं वचां क्षारद्वयं तथा ॥ ३८९ ॥
पिप्पलीं चाजमोदां च तिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
तुम्बरूणि च सर्वाणि कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ३९० ॥
सूक्ष्मचूर्णीकृतेष्वेषु पलानि दश पञ्च च ।
महिषाक्षस्य मतिमाँस्तत्पादेन च माक्षिकम् ॥ ३९१ ॥
द्रव्यैरष्टोत्तरैश्चत्वारिंशता परिनिर्मितः ।

गण्डमालापचीग्रन्थिमूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ३९२ ॥
क्षयाढ्यवातशोफांश्च मन्यास्तम्भं तथाऽर्दितम् ।
अर्शांसि च प्रमेहांश्च स्थौल्यदोषगुदामयान् ॥ ३९३ ॥
अर्बुदं व्रणरोगं च बाधिर्यं गृध्रसी तथा ।
पूतिनासं प्रतिश्यायं पिटिकां क्षतविद्रधिम् ॥ ३९४ ॥
सोदरामन्त्रवृद्धिं च जयेदग्निं च दीपयेत् ।

गण्डमाला से अष्टाचत्वारिंशत् संज्ञक गुग्गुलु गुटिका—त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मोथा, कोरैया की छाल, गजपीपर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, हाऊबेर, पिपरामूल, सफेद जीरा, स्याहजीरा, विडग, चित्रक, पाठा, त्रायमाणा, यवासा, पटोलपत्र, इन्द्रयव, देवदारु, पञ्चलवण (सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, सांभरनमक, सामुद्रनमक), अजवायन, नाडीहिंगु, भांगरा, आमाहल्दी, दारुहल्दी, रक्त-सारिवा, कृष्णसारिवा, अनार, पुष्करमूल, धनिया, वच, सज्जीखार, यवक्षार, पीपर, अजमोदा, तिन्तिडीक, अम्लवेत, तुम्बरु—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को सूक्ष्मचूर्ण बनावे और उसमे शु० गुग्गुलु पन्द्रह पल, स्वर्णमाक्षिक पौने चार पल मिलाकर इन अड़तालिस द्रव्यों को एकत्र (घृत के साथ) मर्दन कर गुग्गुलु निर्माण करे। यह गुग्गुलु गण्डमाला (ग्लैण्ड टी. बी.), अपची, ग्रन्थि, मूक (गूंगापन) मिनमिन (क्षीण आवाज), गद्गद (हकलाना), क्षयरोग, आढ्यवात, शोथ, मन्यास्तम्भ, अर्दितरोग, अर्शरोग, प्रमेह, स्थूलतादोष, गुदजरोग, अर्बुद, व्राण रोग, बाधिर्य (बहरापन), गृध्रसी रोग, पूतिनासा (नाक से दुर्गन्धयुक्त स्राव होना), प्रतिश्याय (जुकाम), पिटिकाक्षत, विद्रधि, उदररोग तथा आन्त्रवृद्धि को जीत लेता है और उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥

अमृताद्या गुग्गुलुगुटिका—

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सक कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिटिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ ३९५ ॥

अमृताद्य गुग्गुलु गुटिका—गुडूची एक भाग, इलायची दो भाग, वेल्ल (विडंग) तीन भाग, वत्सक (इन्द्रयव) चार भाग, कलि (बहेडा) पांच भाग, हर्रे छः भाग, आंवला सात भाग—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा शु० गुग्गुलु आठ भाग मिलाकर, मधु के साथ मर्दन करे और गुटिका बनावे। यह गुटिका, स्थूलता (अधिक मोटा होना) तथा भगन्दर रोग को जीत लेती है ॥ ३९५ ॥

शोफादौ गुडार्द्रकगुटिका—

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा ।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ३९६ ॥

शोफप्रतिश्यायगलास्यरोगान् सश्वासकासारुचिपीनसादीन्।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान् हन्यात्तथाऽन्यान् कफवातरोगान् ॥३९७॥

शोफादि रोग में गुडार्द्रक गुटिका—जो मनुष्य, गुड-अद्रक, गुड-सोंठ, गुड़-हर्रे या गुड़-पीपर को एक-एक कर्ष क्रमशः प्रति दिन बढ़ाकर तीन पल तक पन्द्रह दिन या एक मास पर्यन्त खाता है वह शोथ, प्रतिश्याय, गले का रोग, मुखरोग, श्वास, कास, अरुचि, पीनस (दुर्गन्धयुक्त पुराना नासास्राव), जीर्णज्वर, अर्शरोग, ग्रहणीविकार तथा अन्य कफ-वातजन्य रोगों को नाश करता है ॥ ३९६–३९७ ॥

गुल्मे आरोग्यलवणम्—

पलानि दश वारुण्याः स्नुक्काण्डात्पलविंशतिः।
शतं सिंहीफलानां तु कुमार्याश्च पलद्वयम् ॥ ३९८ ॥
अर्कपत्रशतं चैकं शतं पूतीकपत्रकात्।
महिषाक्षात्पिचुं चैकं रसोनात्पलपञ्चकम् ॥ ३९९ ॥
पलानि पञ्च सिन्धूत्थाच्चिरबिल्वत्वचस्तथा।
सौवर्चलात्तथा त्रीणि व्योषात्पञ्च पलानि च ॥ ४०० ॥
पलद्वयं तु काचस्य सामुद्रलवणाद्दश।
पलमेकं बिडाख्यस्य कुडवं दरकुष्णतः ॥ ४०१ ॥
यवान्याश्चाजमोदायाः पलार्धं तु पृथक् पृथक्।
रामठस्य पलं चैकं पलैकं जीरकद्वयात् ॥ ४०२ ॥
कुडवं राजिकायाश्च प्रस्थार्धं चित्रकस्य च।
सर्वमेकत्र संयोज्य कुट्टयित्वा ह्युलूखले ॥ ४०३ ॥
प्रस्थार्धं चार्कदुग्धस्य मानीं सर्षपतैलतः।
एकत्र मिलितं कृत्वा चान्तर्धूमं ततो दहेत् ॥ ४०४ ॥
मस्तुना तं पिबेत्क्षारं कर्षार्धं कर्षमेव वा।
गुल्मं शूलं तथाऽऽनाहमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ ४०५ ॥
हृद्रोगं ग्रहणीदोषमर्शोऽजीर्णं विसूचिकाम्।
अष्ठीलामूर्ध्ववातं च वातकुण्डलिकां तथा ॥ ४०६ ॥
मूत्रग्रन्थिं प्रतिश्यायं कासं श्वासं तथाऽश्मरीम्।
प्लीहानमामदोषांश्च वातश्लेष्मोद्भवान् गदान् ॥ ४०७ ॥
आरोग्यलवणं हन्यात् सन्नस्याग्नेश्च दीपनम्।

गुल्मरोग में आरोग्य लवण—इन्द्रवारुणी दशपल, सेंहुड का तना बीस पल, भटकटैया का फल एक सौ पल, घृतकुमारी दो पल, मदार का पत्ता एक सौ पल, पूतिकरञ्ज का पत्ता एक सौ पल, महिषाक्ष (गुग्गुलु) एक पिचु

(अम्ल), लहसुन पांच पल, सेन्धानमक पांच पल, चिरबिल्व की छाल पांच पल, सौवर्चलनमक तीन पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) पांच पल, काच (सांभर) नमक दो पल, सामुद्रनमक दश पल, विडनमक एक पल दरकुष्ण एक कुडव (चार पल), अजवायन आधा पल, अजमोदा आधा पल, हिंगु एक पल, स्याहजीरा आधा पल, सफेदजीरा आधा पल, राई एक कुडव (चार पल), चित्रकमूल आधाप्रस्थ (आठ पल)—इन सभी औषधों को एकत्रकर ओखरी (बडे खरल) मे कूटकर मदार का दूध आधा प्रस्थ (आठ पल), सरसो का तैल एकमानी (आठ पल)—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर अन्तर्धूम (मिट्टी के बड़े वर्तन को कपड़मिट्टी कर सुखा ले और उसमें भरकर मुख अच्छी तरह वन्द करे) आग मे रखकर जलावे। ठंढा होने पर निकाल कर महीन पीस ले और शीशी मे भरकर मुख वन्द कर दे। इस चार (लवण) को एक कर्ष या आधा कर्ष की मात्रा मे (अग्नि-वल के अनुसार) मस्तु (दही के तोड़) के साथ पान करे। यह आरोग्य लवण-गुल्मरोग, शूल, आनाह, अरुचि, पाण्डुरोग, हृदयरोग, ग्रहणीदोष, अर्शरोग, अजीर्ण, विसूचिका (हैजा), अष्ठीला, ऊर्ध्ववात (ऊर्ध्वगामी वायु), वात-कुण्डलिका, मूलग्रन्थि, प्रतिश्याय, कास, श्वास, पथरी, प्लीहावृद्धि, आमदोष तथा वातकफजन्य रोग नाश करता है तथा मन्दाग्नि को प्रदीप्त करता है॥

गण्डमालायां काञ्चनारगुग्गुलुः—

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः।
षट्पला त्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम्॥ ४०८॥
पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा।
कर्षकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्॥ ४०९॥
सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः।
संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधः॥ ४१०॥
भक्षयेत्प्रातरेकैकामनुपानविशेषतः।
गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च॥ ४११॥
ग्रन्थीन्नृणां सगुल्मांश्च विद्रधिं च भगन्दरम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यः क्वाथो मुण्डीसमुद्भवः॥ ४१२॥
क्वाथो वा खदिरस्याथ पथ्याक्वाथोऽथवा जलम्।

गण्डमाला मे काञ्चनार गुग्गुलु—काञ्चनार की छाल दशपल, त्रिफला (हर्रे, वहेडा, आंवला) छः पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन पल, वरुण एक पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण वनावे और चूर्ण के वरावर शु० गुग्गुलु मिलाकर मर्दन करे और

एक २ शाण (चार मासा) की गुटिका बनावे। इस गुटिका में से एक २ गुटिका प्रातःकाल अनुपान विशेष (रोग के अनुसार अनुपान) के साथ खाय। यह गुटिका भयंकर गण्डमाला (ग्लैण्ड टी. बी,), अपची, अर्बुद, मनुष्यों के ग्रन्थिरोग, गुल्मरोग, विद्रधि तथा भगन्दर रोग को जीत लेती है। अनुपान में मुण्डी का क्काथ, खैर का क्काथ, हर्रे का क्काथ या जल का प्रयोग करना चाहिए॥

गण्डमालायां काञ्चनगुटिका—

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषाच्च द्विगुणा मताः॥ ४१३॥
तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं काञ्चनारस्य वल्कलम्।
एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन् समो देयोऽथ गुग्गुलुः॥ ४१४॥
क्षौद्रस्य च ततो दद्याद्दश भागान् विचक्षणः।
सर्वासु गण्डमालासु गलगण्डे तथैव च॥ ४१५॥
नाडीव्रणे विद्रधौ च गुटिकेयं प्रशस्यते।

गण्डमाला में काञ्चनगुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला) तीन भाग, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) छः भाग, काञ्चनार की छाल बारह भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर शु० गुग्गुलु मिलाकर मधु दश भाग के साथ मर्दन कर गुटिका बनावे। इस गुटिका को गण्डमाला, गलगंड (घेघा), नाडीव्रण तथा विद्रधि में प्रयोग करना चाहिए॥

क्षतक्षीणे सर्पिर्गुटिका—

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वर्षभकजीवकैः।
वीरर्धिक्षीरकाकोलीबृहतीकापिकच्छुभिः॥ ४१६॥
खर्जूरफलमेदाभिः क्षीरपिष्टैः पलोन्मितैः।
प्रस्थैर्धात्रीविदारीक्षुरसैः प्रस्थं घृतात्पचेत्॥ ४१७॥
शर्कराऽष्टपलं शीते क्षौद्रार्धप्रस्थमेव च।
दत्त्वा सर्पिर्गुडान् कुर्यात्कासहिक्काज्वरापहान्॥ ४१८॥
यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम्।
शुक्रनिद्राक्षयं तृष्णां हन्युः कार्श्यं सकामलम्॥ ४१९॥

क्षतक्षीण मे सर्पिर्गुटिका—त्वक्क्षीरी (वंशलोचन), मुण्डी, द्राक्षा, मूर्वा (मरोरफली), ऋषभक, जीवक, वीरा (भुइ आंवला), ऋद्धि, क्षीरकाकोली, वनभंटा, केवाछ का बीज, खजूरफल, मेदा—एक २ पल—इन द्रव्यों को दूध में पीसकर कल्क बनावे, और इस कल्क को आंवला का रस एक प्रस्थ, विदारीकन्द का रस एक प्रस्थ, इक्षुरस एक प्रस्थ के साथ एक प्रस्थ घृत में मिलाकर सिद्ध करे, उस घृत में शक्कर आठ पल, मधु आधा प्रस्थ मिलाकर कास, हिक्का

(हिचकी) तथा ज्वर को नाश करनेवाले, सर्पिर्गुड को बनावे। ये सर्पिर्गुड—यक्ष्मारोग, तमकश्वास, श्वास, रक्तपित्त, हलीमक (पाण्डुरोग के बाद हरितरंग का वर्ण हो जाना), शुक्रक्षय, निद्राक्षय, तृष्णारोग, कृशता तथा कामला (पीलिया) रोग को नाश करते है ॥ ४१६–४१९ ॥

क्षतक्षीणे क्षीरादिलेहगुटिका—

विदारीस्वरसं नीत्वा चतुष्पलमित भिषक् ।
प्रस्थ तित्तिरिमांसस्य रसात् प्रस्थं घृतस्य च ॥ ४२० ॥
प्रस्थद्वयं गवां क्षीरं रसादिक्षोस्तथाऽऽढकम् ।
पाकार्थं प्रक्षिपेद्भाण्डे तत्र कल्कमिम क्षिपेत् ॥ ४२१ ॥
जीवन्ती चैव काकोल्यौ द्वे मेदे मधुकं तथा ।
जीवकर्षभकौ मुद्गमाषपर्ण्यौ प्रमाणतः ॥ ४२२ ॥
प्रत्येकं तत्पलार्धं स्यात्पियालस्य चतुष्पलम् ।
चतुष्पलं मधूकानां द्विपला वंशलोचना ॥ ४२३ ॥
मधुयष्ट्या भवेत् कर्षो ह्यक्षमज्जापलं तथा ।
कणापलं च खर्जूरात् पलानां विंशतिः स्मृता ॥ ४२४ ॥
कल्कं संपेषयेदिक्षो रसैः पूर्वद्रवे क्षिपेत् ।
मन्दाग्निपाचनाल्लेहीभूते शीते क्षिपेत्सिताम् ॥ ४२५ ॥
विंशत्पलप्रमाणां तु मधुनोऽष्टपलं तथा ।
अजाजीमरिचानां तु पलमेकं नियोजयेत् ॥ ४२६ ॥
क्षीरादिलेहपूर्वा तु गुटी हिक्काज्वरापहा ।
यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् ॥ ४२७ ॥
शुक्रनिद्राक्षयं तृष्णां हन्यात्कार्श्यं सकामलम् ।

क्षतक्षीण मे क्षीरादिलेह गुटिका—वैद्य विदारीकन्द का स्वरस चार पल, तित्तिर के मांस का रस एक प्रस्थ, गाय का घृत एक प्रस्थ, गाय का दूध दो प्रस्थ, गन्ना का रस एक आढक लेकर कडाही में रख दे और उसमे, जीवन्ती, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुलेठी, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी—प्रत्येक आधा २ पल, प्रियाल (चिरौंजी) चार पल, महुआ का फूल चार पल, वंशलोचन दो पल, मधुयष्टी (जेठी मधु) एक कर्ष, बहेडा का मज्जा एक पल, पीपर एक पल, खजूर बीस पल—इन द्रव्यों को गन्ना के रस में पीस कर कल्क बनावे और छोड दे। इसके बाद अच्छी तरह चलाकर मन्द आंच से पकावे। लेह तैयार होने पर उतार ले और ठण्ढा कर उसमें मिश्री बीसपल, मधु आठ पल, स्याहजीरा तथा मरिच का चूर्ण एक पल मिलाकर गुटिका बना ले। यह क्षीरादिलेह गुटिका—हिक्का तथा श्वास को नाश करने-

वाली है और यक्ष्मारोग, तमकश्वास, श्वासरोग, रक्तपित्त, हलीमक, शुक्रक्षय, निद्राक्षय, तृष्णारोग, कृशता तथा कामला रोग को नाश करती हैं ॥

प्रभावतीवटिका—

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ॥ ४२८ ॥
भद्रमुस्ता विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम् ।
सैन्धवं चित्रकं चैव कुष्ठं पाठा हरीतकी ॥ ४२९ ॥
एतानि समभागानि छागमूत्रेण पेषयेत् ।
गुटी कोलास्थिमाना च छायाशुष्का प्रभावती ॥ ४३० ॥

प्रभावती वटिका—हल्दी, नीम का पत्ता, पीपर, मरिच, नागरमोथा, विडंग, सोंठ, सेन्धानमक, चित्रक, कूठ, पाठा, हर्रे—समभाग—इन द्रव्यों को बकरी के मूत्र में पीसकर, बेर की गुठली के बराबर गुटिका बनावे और इस प्रभावती गुटिका को छाया में सुखाकर रख ले ॥ ४२८–४३० ॥

अग्निमुखवटी—

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् ।
त्रयो भागा विडङ्गानां सैन्धवं च चतुर्गुणम् ॥ ४३१ ॥
अजाज्याः पञ्चभागाश्च षड्भागाश्चैव नागरात् ।
मरिचात् सप्त भागाः स्युः पिप्पली चाष्टभागिका ॥ ४३२ ॥
कुष्ठं नवगुणं प्रोक्तं दशभागा हरीतकी ।
एकादश तथा वह्नेर्भागा द्वादश दीप्यकात् ॥ ४३३ ॥
गुडेन द्विगुणेनैव गुटिकां कारयेद् बुधः ।
ततो वातरुजार्तानां नित्यमेव प्रयोजयेत् ॥ ४३४ ॥

अग्निमुखवटी—शु० हिंगु एक भाग, वच दो भाग, विडंग तीन भाग, सेन्धानमक चार भाग, स्याहजीरा पांच भाग, सोंठ छः भाग, मरिच सात भाग, पीपर आठ भाग, कूठ नव भाग, हर्रे दश भाग, चित्रक ग्यारह भाग, अजवायन बारह भाग,—इन द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । चूर्ण के दुगुना गुड़ लेकर चासनी बनावे और उसमें चूर्ण मिलाकर पकाये, गाढ़ा होने पर गुटिका बनाले । इस गुटिका को वातव्याधि से पीड़ित व्यक्ति के लिये प्रतिदिन प्रयोग करे ॥ ४३१–४३४ ॥

श्वासादौ सूर्यचन्द्रप्रभागुटिका—

त्रिकत्रयं हरिद्रे द्वे तिक्ता तिक्त शटी वचा ।
वेल्लचित्रकतालीसभार्गीपद्मकजीरकम् ॥ ४३५ ॥
द्वौ क्षारौ पिप्पलीमूलं पटूनि त्रीणि तुम्बरु ।
देवदारु वचा चव्यं धान्यक गजपिप्पली ।

वत्सकातिविषादन्तीश्यामापुष्करकामृताः ॥ ४३६ ॥
भागोऽमीषां सूक्ष्मचूर्णीकृतानां भागश्चार्धो माक्षिकाद्देय एव ।
तद्वद्वंश्या, भागवृद्धया परे स्युरभ्रं लोहं शैलजं कौशिकञ्च ॥ ४३७ ॥
संमर्द्य गुटिका कार्या सूर्यचन्द्रप्रभाभिधा ।
पूर्वाह्णे ता प्रयुञ्जीत माक्षिकेण परिप्लुताम् ॥ ४३८ ॥
अनुपाने प्रयुञ्जीत तक्रं मधु रसोत्तमम् ।
क्षीरं बदरतोयं वा शर्करामिश्रितं जलम् ॥ ४३९ ॥
घृत मूत्र तथा चाम्लस्वादुदाडिमजं रसम् ।
कासं श्वासं तथा शोषमरुचिं पार्श्ववेदनाम् ॥ ४४० ॥
अर्शांसि कामलां मेहं पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
हृद्रोगं मूत्रकृच्छ्रं च श्वयथुं ग्रहणीगदम् ॥ ४४१ ॥
यकृत्प्लीहाभिवृद्धिं च कृमिं ग्रन्थिं भगन्दरम् ।
श्लीपदं गण्डमालां च व्रणान्नाडीव्रणानपि ॥ ४४२ ॥
अतिस्थौल्यातिकार्श्यं च विद्रधीर्न्पिटिकामपि ।
नासानेत्राश्रितान् रोगान् शिरोरोगान् सुदारुणान् ॥ ४४३ ॥
मुखरोगानशेषांश्च रक्तपित्तं स्वरक्षयम् ।
ज्वरं च सन्निपातोत्थं विषमं चापि पैत्तिकम् ॥ ४४४ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान् ।
निजानृतुभवांश्चैव ये चान्ये नात्र कीर्तिताः ।
तांस्तान् प्रशमयत्येषा वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४४५ ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।
स्त्रीषु प्रहर्षं बलमिन्द्रियाणा-मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्ता ॥ ४४६ ॥

श्वास आदि रोग में सूर्य-चन्द्रप्रभा गुटिका—त्रिकत्रय, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आंवला), त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र), आमाहल्दी, दारुहल्दी, तिक्ता (कुटकी), तिक्त (मरिच), शटी (कपूरकचरी), वच, वेल्ल (विडंग), चित्रक, तालीसपत्र, भांगरा, पद्मकाठ, स्याहजीरा, सज्जीखार, यवक्षार, पिपरामूल, सेन्धानमक, सौवर्चलनमक, विडनमक, तुम्वरु, देवदारु, वच, चव्य, धनिया, गजपीपर, वत्सक (कोरैया), अतीस, दन्तीमूल, कालानिशोथ, पुष्करमूल, गुडूची—समभाग—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इन चूर्णो के आधा भाग स्वर्णमाक्षिक, वंशलोचन एक भाग, अभ्रकभस्म दो भाग, लौहभस्म तीन भाग, शु० शिलाजीत चार भाग, शु० गुग्गुलु पांच भाग—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करे (कूटकर मुलायम बनावे) और सूर्यचन्द्रप्रभा नामक गुटिका बनावे । इस गुटिका को मधु मे मिलाकर

प्रातःकाल प्रयोग करे। अनुपान में तक्र (मट्ठा), मधु, उत्तम रस, दूध, बेर का रस, शक्कर का शर्बत, घृत, गोमूत्र, अम्लरस, मीठारस तथा अनार के रस का प्रयोग करना चाहिए। यह गुटिका-कास, श्वासरोग, सुप्तारोग, अरुचि, पार्श्वशूल, अर्शरोग, कामलारोग, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, शोथ, ग्रहणीरोग, यकृद्वृद्धि, प्लीहावृद्धि, कृमिरोग, ग्रन्थिरोग, भगन्दर, श्लीपद, गण्डमाला, व्रण, नाडीव्रण (नासूर), अतिस्थूलता, अतिकृशता, विद्रधि, पिडिका, नासागत रोग, नेत्रगत रोग, भयंकर शिरोरोग, सभी प्रकार के मुखरोग, रक्तपित्त, स्वरक्षय, सन्निपातजन्य ज्वर, विषमज्वर, पैत्तिकज्वर, संसृष्ट, सान्निपातिक, सहज, ऋतुजन्य, बीस प्रकार के कफजन्य रोग, तथा जिन अन्य रोगों को नहीं कहा गया है उन सभी रोगों को शान्त करती है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नाश कर देता है। यह गुटिका विधिपूर्वक उपयोग करने से मेधा (धारणाशक्ति), स्मृति (स्मरणशक्ति), निरोग, आयु की वृद्धि, वायु का अनुलोमन, स्त्रीप्रसंग में सामर्थ्य, इन्द्रियों को बलवान तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करती है ॥ ४३५–४४६ ॥

अतीसारे विशल्या गुटिका—

फलत्रयं त्र्यूषणजीरकं च कुबेरसंज्ञं पलमात्रमेतत् ।
पलद्वयं नूतनधूर्तपत्न्याः कर्षैकक चैव विषस्य योज्यम् ॥ ४४७ ॥
पलार्धमात्रं करभस्य चूर्णं ततः समेनैव गुडेन योज्यम् ।
गुटी निबद्धा चणकप्रमाणा नियोजनीया हि सदातिसारे ॥ ४४८ ॥
चतुर्विधाजीर्णभयापहन्त्री स्मृता विशल्या गुटिकेति नाम्ना ॥ ४४९ ॥

अतिसार में विशल्या गुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), जीरा, कुबेर (इन्द्रायण) एक २ पल, नूतन धूर्तपत्नी (नवीन धत्तूर का बीज) दो पल, गजपीपर का चूर्ण आधा पल इन द्रव्यों के चूर्ण के बराबर गुड़ की चासनी बनाकर उसमें चूर्ण मिला कर चना के बराबर गुटिका बनावे और अतिसार रोग में प्रयोग करे। यह विशल्यानामक गुटिका, चार प्रकार के अजीर्ण के भय को दूर करनेवाली है ॥ ४४७–४४९ ॥

श्रोटहरी गुटिका—

शुण्ठीसक्तुपुनर्नवात्रिफलिकासैरेयशेफालिका-
मुस्तावासकनिम्बपत्रकटुकाबोलाश्वगन्धावचाः ।
व्योषच्छिन्नरुहाविडङ्गसहिताः सर्वाः समांशा बुधै-
र्विशांशा च महौषधी परिमिता भण्डस्य विशांशकाः ॥४५०॥
तत्तुल्येन च गोघृतेन मधुना सर्वं च समर्दितं
बद्धा तेन शिवाप्रमाणगुटिका श्लेष्माणमुग्रं जयेत् ।

क्षीणस्यानिलजान्निहन्ति सहसा सर्वप्रमेहांस्तथा
नाम्ना त्रोटहरी गुटी च विजया लोके च या विश्रुता ॥ ४५१ ॥

त्रोटहरी गुटिका—सोंठ, सक्तु, पुनर्नवा, त्रिफला (हर्रे, बहेरा, आवला), सैरेय (पियावासा), शेफालिका (अपामार्ग), मोथा, घटूसा, नीम की छाल, तालीसपत्र, कुटकी, बोल (खूनखरावा), अश्वगन्धा, वच, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), गुडूचीसत्त्व, विडंग—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और उसमें सोंठ का चूर्ण बीस पल, मिश्री बीस पल, गाय का घृत बीस पल, मधु बीस पल—इन सभी द्रव्यों को मिलाकर मर्दन करे और मुलायम हो जाने पर हर्रे के बराबर गुटिका बनावे। यह गुटिका, भयंकर श्लैष्मिक रोगों को जीत लेती है और क्षीण व्यक्ति के वातजन्य रोगों को तथा प्रमेह को नाश करती है। यह वटी विजय को देनेवाली त्रोटहरी नाम से प्रसिद्ध है ॥ ४५०–४५१ ॥

कासे चन्द्रप्रिया गुटिका—

चन्द्रप्रिया लोमशगन्धवत्यौ कटुत्रिकं तिक्तकरोहिणी च।
भूनिम्बभार्ग्यौ गिरिमल्लिका च समानभागं खलु सर्वद्रव्यम्।
वासारसेनाथ गुटी विधेया सुदुस्तरं चाशु निहन्ति कासम् ॥ ४५२ ॥

कासरोग में चन्द्रप्रिया गुटिका—चन्द्रप्रिया (मांसरोहिणी), लोमश (वच), गन्धवती (मुरा), कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), कुटकी, चिरायता, भागरा, गिरिमल्लिका (कोरैया)—सम भाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को वासा के स्वरस में घोटकर वटी बनावे। यह वटी अति कष्टसाध्य कासरोग को नाश करती है ॥ ४५२ ॥

मुखरोगे खदिरगुटी—

जातीफलैलादलकुङ्कुमानि लवङ्गकङ्कोलकपुष्कराणि।
वराङ्गकर्चूरयुतान्यमूनि समानि भागानि निशाकरस्य ॥ ४५३ ॥
भागद्वयं स्यान्मृगनाभिजायाः सपूतिकायाः खलु तुर्यभागः।
षष्टिर्विभागाः खदिरस्य साराद्भागत्रयं तत्र वरस्य दद्यात् ॥ ४५४ ॥
एकीकृतं घृष्टसुचन्दनेन सुकामिनीहस्ततलैः प्रमर्द्य।
सुवासितं पुष्पचयैः सुगन्धैर्वटी कृता स्यान्मुखरोगहन्त्री ॥ ४५५ ॥
स्त्रीणां प्रमोदं विपुलं ददाति मुखं सुगन्धं विशदं करोति।
युवाऽतिरेताः सुभगो जनानां प्राणप्रियः स्यादति कामिनीनाम् ॥
कण्ठं विपञ्चीनिनदेन तुल्यं करोत्यसौ खादिरसंज्ञका वटी ॥ ४५६ ॥

मुखरोग में खदिरगुटी—जायफर, इलायची, तेजपत्र, कुंकुम (केशर), लवंग, पुष्करमूल, कबाबचीनी, वरांग (दालचीनी), कचूर, निशाकर (कपूर)—

दो २ भाग, कस्तूरी (चौथाई भाग), पूतिका (कत्तृण-गन्धजवासा) चौथाई-भाग, खैर साठभाग, वर (कुंकुम) तीन भाग—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और सफेद चन्दन को पीसकर उसमें चूर्ण मिलाकर कामिनियों के हस्ततल से मर्दन कराकर सुगन्धित पुष्पसमूहों से सुवासित कर वटी बनावे। यह वटी मुखरोग को नाश करने वाली है, स्त्रियों को अतिशय आनन्द देती है तथा मुख को साफ बनाती है। इस वटी को सेवन करने से युवक अतिशय वीर्यवाला तथा मनुष्यों में सुन्दर होता है और कामिनियों के लिये प्राणप्रिय हो जाता है। यह खदिर-संज्ञक वटी कण्ठ (स्वर) को वीणा के स्वर के तरह स्वर वाला बना देती है ॥ ४५२-४५६ ॥

मुखरोगे द्वितीया खदिरगुटिका—

पद्माह्ववक्रागुरुकुङ्कुमैश्च तुल्यांशकैः श्लक्ष्णशिलाविपिष्टैः।
सर्वैःसमः स्यात्खदिरस्य सारः सारङ्गदर्पस्फटिकाधिवासा ॥४५७॥
वल्लप्रमाणा गुटिका विधेयास्ताः सेविता घ्नन्ति कफप्रमेहम्।
हिक्काग्निसादारुचिपीनसांश्च रोगानशेषान् खलु चास्यजातान् ॥४५८॥
सूताभ्रहेमसहितां पूर्वोक्तां भक्षयेत्प्रातः।
नाम्ना खादिरवटिका कथितेयं सिहगुप्तेन ॥ ४५९ ॥

मुखरोग में द्वितीय खदिरगुटिका—पद्मकाठ, वक्र (तगर), अगर, कुंकुम (केशर)—समभाग—इन द्रव्यों को सिलपर पीस ले और सभी द्रव्यों के बराबर खैर लेकर कपूर तथा कस्तूरी से सुगन्धित कर वल्ल परिमाण (दो २ रत्ती) की गुटिका बनावे। यह गुटिका सेवन करने से कफ-प्रमेह को नाश करती है। हिचकी, मन्दाग्नि, अरुचि, पीनसरोग (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासास्राव) तथा सम्पूर्ण मुखगत रोगों को भी नाश करती है। इस वटिका में रससिन्दूर, अभ्रक तथा स्वर्ण भस्म मिलाकर प्रातः काल सेवन करे। इस खदिर नामक वटी को सिहगुप्त ने कहा है ॥ ४५७-४५९ ॥

वातरोगे त्वगाद्या गुटिका—

त्वगेले गन्धकं चैव गुग्गुलुं समभागतः।
कुर्याद्वातारितैलेन गुटिकां वातरोगिणाम् ॥ ४६० ॥

वातरोग में त्वगाद्या गुटिका—दालचीनी, इलायची, गन्धक, शु० गुग्गुलु—समभाग लेकर एरण्ड तैल में घोट कर गुटिका बनाये और वात के रोगियों को सेवन कराये। यह गुटिका वात रोगों को नाश करती है ॥ ४६० ॥

रसायनार्थे विजयागुटिका—

पलत्रयं हरीतक्याश्चित्रकस्य तथैव तु।
एलात्वक्पत्रमुस्तानां भागोऽर्धपलिकः स्मृतः ॥ ४६१ ॥

व्योषं चाथ कणामूलं विषं च पलमात्रकम् ।
नागकेसरचूर्णं तु कर्षं ग्राह्यं विचक्षणः ॥ ४६२ ॥
रेणुकार्धपलं चात्र रसस्य कर्षमेव च ।
एतत्संचूर्ण्य संभारं सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ ४६३ ॥
गुडस्यार्धतुलां दत्त्वा दर्व्या सम्यग्विमर्दयेत् ।
ततस्तु गुटिकाः कृत्वा तस्मात्षष्टिशतत्रयम् ॥ ४६४ ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातः कृताहारो यथाबलम् ।
मासेन पलितं हन्ति करोत्यग्निं द्वितीयके ॥ ४६५ ॥
शुक्रवृद्धिं तृतीये तु बलवर्णप्रसादनम् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४६६ ॥
प्लीहानं श्वासकासौ च ह्यन्त्रवृद्धिमरोचकम् ।
अशीतिं वातजान्रोगान्मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ४६७ ॥
प्रमेहान्विंशतिं चैव तथाऽर्शांसि गलग्रहम् ।
सर्पलूताविषं हन्ति सर्वं स्थावरजङ्गमम् ॥ ४६८ ॥
योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् ।
बलेन गजतुल्योऽसौ वेगेन तुरगोपमः ॥ ४६९ ॥
मायूरस्तु भवेदग्निर्वाराहश्रोत्र एव च ।
चटकः स्त्रीविलासेन गृध्रदृष्टिश्च जायते ॥ ४७० ॥
उपयोगात्परं जीवेन्नरो वर्षशतत्रयम् ।
न चान्ने परिहारोऽस्ति न चाध्वनि न मैथुने ॥ ४७१ ॥
(ग्राम्यधर्मं च कुर्वाणो भोजनं च यथेच्छया ।)
विजया नाम गुटिका विख्याता रुद्रभाषिता ।
भक्षयन्ति नरा ये तु तेषां सिद्धिर्न संशयः ॥ ४७२ ॥

रसायन के लिये विजया गुटिका—हर्रे तीन पल, चित्रकमूल तीन पल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागरमोथा—आधा २ पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), पिपरामूल, विष (शु० वत्सनाभ)—एक २ पल, नागकेशर चूर्ण एक कर्ष, रेणुका (सम्भालू का बीज) आधा पल, रस (रस सिन्दूर) एक कर्ष—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण बनावे। गुड़ आधा तुला लेकर चासनी बनावे और उसमें चूर्ण मिलाकर कलछुल से अच्छी तरह चलाकर मिला दे। इसके बाद तीन सौ साठ गुटिका बनावे और एक २ गुटिका बल के अनुसार भोजन करने के बाद प्रातः काल भक्षण करे। एक मास सेवन करने से पलित (असमय में बाल पकना) रोग को नाश करती है। दूसरे महीने में अग्नि को प्रदीप्त करती है। तीसरे मास में वीर्य-वृद्धि तथा

बल एवं वर्ण (कान्ति) को बढ़ाती है। यह गुटिका सेवन करने से अट्ठारह प्रकार के कुष्ठरोग, सात प्रकार के महाक्षयरोग, प्लीहावृद्धि, श्वासरोग, कासरोग, आंत्रवृद्धि, अरोचक, अस्सी प्रकार के वातरोग, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, बीस प्रकार के प्रमेहरोग, अर्शरोग, गलग्रह, सर्पविष, लूता (मकड़ी) का विष तथा सभी प्रकार के स्थावर एवं जंगमविष को नाश करती है, तथा योनिदोष, अपस्मार, उन्माद एवं विषम ज्वर को भी नाश करती है। यह रसायन सेवन करने से बल में हाथी के समान, वेग में घोड़ा के समान, अग्नि मे मयूर के समान, सुनने में वाराह के समान, स्त्री के साथ विलास करने में चटक (गौरैया) के समान तथा गृध्र के समान दृष्टि बना देता है। इस रसायन को सेवन करने से मनुष्य तीन सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहता है। इस के सेवन काल में भोजन, मार्गगमन तथा मैथुन आदि मे कोई प्रतिबन्ध नहीं है। अपनी इच्छा के अनुसार भोजन तथा स्त्रीप्रसंग आदि करता रहे। शंकर जी की बताई हुई प्रसिद्ध त्रिजया नामक गुटिका को जो व्यक्ति खाते हैं उनको सिद्धि हो जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४६१–४७२ ॥

वातरोगे योगोत्तमा गुटिका—

त्र्यूषणं त्रिफला क्षारौ लवणान्यथ चित्रकम्।
तालीसं चविक शृङ्गी निशे द्वे गजपिप्पली ॥ ४७३ ॥
एला त्वचं विडङ्गानि पौष्कर नागकेसरम्।
ताप्यकं दीप्यको मुस्ता समभागानि कारयेत् ॥ ४७४ ॥
द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्मात्रमयोरजः।
तावच्छिलाजतुर्देयः सर्वैस्तुल्यस्तु गुग्गुलुः ॥ ४७५ ॥
संकुट्य गुटिकां कुर्यादक्षमात्रप्रमाणतः।
खादेन्ना मधुना युक्तया तोयक्षीररसाशनः ॥ ४७६ ॥
नियन्त्रितं सदा भोज्यं सर्वर्तुषु निरत्ययम्।
अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ४७७ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव प्रमेहांश्चैव विंशतिम्।
उदराणि तथा चाष्टौ श्वयथु पवनात्मकम् ॥ ४७८ ॥
विंशतिं मूत्रकृच्छ्राणि दुष्टनाडीव्रणानि च।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ४७९ ॥
कासं श्वास तथा हिक्कां हृच्छूलं छर्दरोचकम्।
गुल्मांश्च पाण्डुरोगं जयेत्पञ्चप्रकारजम् ॥ ४८० ॥
चत्वारो ग्रहणीदोषाः षडर्शांसि तथैव च।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ४८१ ॥

एष शङ्करणो योगो वैद्यानामर्थकृत्तथा ॥ ४९५ ॥

पाण्डुरोग में क्षारवटक—सोंठ, विडंग, पीपर, मरिच, नील का पत्ता, पृथक्पर्णी (पिठवन), आमाहल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, नागरमोथा, सहिजन का बीज, चित्रकमूल, देवदारु, वच, दन्तीमूल, त्रिफला (हर्रे, बहेडा, आवला), गजपीपर, सरिवन, मूर्वा (मोरवेल), द्राक्षा, कुटकी, इन्द्रयव, शु० भल्लातक, वनभंटा, भटकटैया, यवासा, शतावरी, विशल्या (कलिहारी), पाठा, भांगरा, हैरणुका (सम्भालू का बीज)—समभाग—इन द्रव्यों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और इस चूर्ण के दुगुना लोहभस्म मिला दे। इसी प्रकार लौहभस्म के दुगुना यवक्षार मिलाकर गोमूत्र में घोटकर एक २ अक्ष परिमाण का वटक बनावे। इसमें से एक या दो वटक खाय और शीघ्र गरम जलपान करे। यह वटक अर्शरोग, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, भगन्दर, शोथ, श्वास, कास, तथा कृमि रोगों को नाश करता है। इस वटक को रोगी के बल को देख कर गाय के मूत्र के साथ देना चाहिए। यह वटक शीघ्र ही पाण्डुरोग को नाश करता है जैसे उद्दण्ड को ब्रह्मदण्ड नाश करदेता है। सिद्धि को चाहने वाला व्यक्ति इस क्षारवटक का प्रयोग करे। यह योग कल्याण को करनेवाला है तथा वैद्यों को धन देनेवाला है ॥ ४८७–४९५ ॥

कुष्ठे पथ्यावटकाः—

पथ्यां सेन्द्रयवां सकिंशुकफलां सार्कां तथाऽऽवर्तकीं
व्याधिघ्नेन तु योजिता हुतभुजा सारुष्करां बाकुचीम्।
तद्वच्च क्रिमिशत्रुणाऽप्युपगतामेकैकवृद्धानिमान्।
गोमूत्रेण विमृद्य तुल्यतुवरान्कुष्ठी वटान्भक्षयेत् ॥ ४९६ ॥
निहन्ति हतनासिकाकरजकर्णपादाङ्गुलि-
क्षरद्रुधिरपूतिपूयपरिजग्धजन्तुव्रणान् ।
प्रभिन्नचिरलक्षितस्वरमशेषकुष्ठं मह-
न्निहन्ति कुरुतेऽरुणार्कवपुषं नरं योगतः ॥ ४९७ ॥

कुष्ठरोग में पथ्यावटक—हर्रे एक भाग, इन्द्रयव दो भाग, मदार का पुष्प तथा फल तीन भाग, आवर्तिकी (अरणी) चार भाग, व्याधिघ्न (अमलतास) पांच भाग, चित्रक छः भाग, शु० भल्लातक सात भाग, बाकुची आठ भाग, विडंग नव भाग—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और चूर्ण के बराबर तुवरक चूर्ण मिलाकर गोमूत्र के साथ मसल कर वटक बनाये। और इन वटकों को कुष्ठ का रोगी सेवन करे। यह वटक उन सभी प्रकार के कुष्ठ के व्रणों को जिनमें नासिका हाथ, कान, पैर की अंगुलियां नष्ट हो गयी हैं। और रक्त, दुर्गन्धपूय वह रहा हो, व्रण सड़ गये हों तथा स्वर फट गया हो,

बहुत समय के बाद स्वर लक्षित होता हो इस प्रकार के महान् सभी कुष्ठों को नाश करता है और मनुष्य के शरीर को इस योग के सेवन करने से सूर्य के समान लालवर्ण का बना देता है ॥ ४९६–४९७ ॥

ज्वरे फलत्रिकाद्यो मोदकः—

फलत्रिकगुडव्योषशर्करात्रिवृताकृतम् ।
मोदकं भक्षयित्वाऽनुपिबेत्कोष्णं जलं पुनः ।
पार्श्वशूलेऽरुचौ कासे ज्वरे चानिलसंभवे ॥ ४९८ ॥

ज्वर में फलत्रिकाद्य मोदक—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), निशोथ—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को गुड़ सम भाग, शर्करा चूर्ण के दुगुना लेकर चासनी बनाकर उसमें चूर्ण मिलाकर मोदक बनाये और इस मोदक को पार्श्वशूल, अरुचि, कास तथा वातजन्य ज्वररोग में खाकर गरम जलपान करे ॥ ४९८ ॥

रसायने त्रिफलाद्या वटकाः—

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश संहरेत् ।
सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलत्रयम् ॥ ४९९ ॥
पलानि दश वाकुच्याः शतं भल्लातकात्तथा ।
शिलाजतु पलद्वन्द्वं गुग्गुलोस्तु पलद्वयम् ॥ ५०० ॥
पलं पुष्करमूलस्य पलार्धं तु फलस्य च ।
ग्रन्थिकाग्नी मरीचं च पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ॥ ५०१ ॥
त्वक्पत्रं कुङ्कुमं मुस्ता नागकेसरमेव च ।
यष्टीमधुकरोध्रं च कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ॥ ५०२ ॥
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावत्खण्डं प्रदापयेत् ।
पलिकान्वटकान्कुर्यात्सर्वव्याधिविनाशनान् ॥ ५०३ ॥
एकैकं भक्षयेत्प्रातर्यथेष्टं चात्र भोजनम् ।
प्लीहमर्शांस्यतीसारं वातगुल्मं भगन्दरम् ॥ ५०४ ॥
कुष्ठानि चैव सर्वाणि सप्तरात्राद्व्यपोहति ।
एतत्सर्वं प्रयुञ्जानो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ ५०५ ॥

रसायन में त्रिफलाद्य वटक—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण दश पल, विडंग चूर्ण सात पल, लौहभस्म तीन पल, वाकुची चूर्ण दश पल, शु० भल्लातक चूर्ण एक सौ पल, शु० शिलाजीत दो पल, शु० गुग्गुलु दो पल, पुष्करमूल चूर्ण एक पल, मदनफल चूर्ण आधा पल, पिपरामूल, चित्रक, मरिच पीपर, सोंठ, दालचीनी, तेजपत्र, केशर, मोथा, नागकेसर, जेठीमधु, लोध्र एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण तथा सभी चूर्ण के बराबर खांड लेकर उसकी

चासनी बनाकर उसमें चूर्ण छोडकर अच्छी तरह मिलावे और एक २ पल परिमाण का सभी व्याधियों को नाश करनेवाले वटकों को बनावे और एक २ वटक प्रातःकाल खाय। इसके सेवनकाल में अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करे। यह सात दिन तक प्रयोग करने से प्लीहावृद्धि, अर्शरोग, अतिसार, वातगुल्म, भगन्दर तथा सभी प्रकार के कुष्ठ रोगों को दूर करता है। इस वटक का प्रयोग करने से तीन सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ४९९–५०५ ॥

अरुचौ लाजाद्यो मोदकः—

द्वादशाष्टचतुस्त्रिंशद्द्व्येकार्धार्धसमायुतैः।
लाजैस्तुगातिन्तिडीककोलव्योषत्रिजातकैः।
सचन्द्रा मोदका रुच्याः क्रमाद् द्विगुणशर्कराः ॥ ५०६ ॥

अरुचि में लाजाद्य मोदक—लाजा (लावा) बारह भाग, वंशलोचन आठ भाग, तिन्तिडीक चौतिस भाग, कोल (बैर) दो भाग, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) एक भाग, त्रिजात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र) आधा भाग, कपूर चौथाई भाग, कपूर को छोड़कर सभी द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनाले और चूर्ण के दुगुना शर्करा लेकर चासनी बनावे और उसमें चूर्ण मिला दे ठंढा होने पर कपूर मिलाकर एक २ तोला का मोदक बनाले। ये मोदक रुचि को बढ़ानेवाले होते हैं ॥ ५०६ ॥

त्रिफलाद्या गुटिका—

त्रिफलाबदराणां स्याद् व्योषस्य च पलद्वयम्।
कर्पूरकर्षो लाजानां पलद्वादशकं भवेत् ॥ ५०७ ॥
एलात्वक्पत्रकाणां तु पलं स्याद्वंशरोचना।
पलाष्टिकाऽम्लवेत्रश्च चतुष्पल उदाहृतः ॥ ५०८ ॥
चूर्णाद् द्विगुणखण्डं स्याद्धृद्या वमिहरा परम्।
यक्ष्माणं रक्तपित्तं च ज्वरं कासं च नाशयेत् ॥ ५०९ ॥

त्रिफलाद्या गुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आवला), बैर, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) दो २ पल, कपूर एक कर्ष, लाजा (लावा) बारह पल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र एक पल, वंशलोचन आठ पल, अम्लवेत चार पल—इन द्रव्यों को (कपूर को छोडकर) सूक्ष्म चूर्ण बनावे और चूर्ण के दुगुना खाँड लेकर चासनी बनावे तथा उसमें चूर्ण छोड़कर मिलावे और ठंढा होने पर कपूर मिलाकर गुटिका बना ले। यह गुटिका हृदय को बल देनेवाली तथा वमन को दूर करनेवाली है। और यक्ष्मारोग, रक्तपित्त, ज्वर तथा कास (खांसी) को नाश करती है ॥ ५०७–५०९ ॥

अर्शसि चित्रकगुटिका:—

चित्रकस्य पलं दत्त्वा त्रिवृतोऽर्धपलं तथा ।
कणाकर्षो गुडस्याष्टौ पलानि समुपाहरेत् ॥ ५१० ॥
विंशतिश्च हरीतक्या गुटिका दश कारयेत् ।
दशमे दशमे चाह्नि त्वेकैकां भक्षयेत् सुधीः ॥ ५११ ॥
मण्डलानि च कण्डूश्च ह्यर्शांसि ग्रहणीं जयेत् ।

अर्शरोग में चित्रक गुटिका—चित्रक एक पल, निशोथ आधा पल, पीपर एक कर्ष, गुड आठ पल, हर्रे बीस पल लेकर चूर्ण बनावे और गुड़ की चासनी बनाकर उसमें चूर्ण मिलाकर दश गुटिका बनावे और दशवें-दशवें दिन एक २ बटी खाय। यह गुटिका मण्डल कुष्ठ, कण्डू, अर्शरोग तथा ग्रहणी रोग को जीत लेती है ॥

प्रमेहे वामदेवेन कथिता गुटिका—

कटुत्रिकं वचा मुस्ता विडङ्गं चित्रकं विषम् ॥ ५१२ ॥
एतानि समभागानि पथ्या च द्विगुणा विषात् ।
पञ्चत्रिंशद् गुडाद् भागाः क्वाथयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ५१३ ॥
कोलमाना गुटी ह्येषा हन्ति मेहं विशेषतः ।
मन्दाग्निमामवातं च लालामेहं सगुल्मकम् ॥ ५१४ ॥

प्रमेहरोग में वामदेव-कथित गुटिका—कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), वच, मोथा, विडंग, चित्रक, विष (शु० वत्सनाभ)—समभाग, हर्रे दो भाग लेकर चूर्ण बनावे और पैंतिस भाग गुड लेकर चासनी बनावे तथा चूर्ण मिलाकर बैर के बराबर गुटिका बना ले। यह गुटिका विशेष कर प्रमेहरोग, मन्दाग्नि, आमवात, लालामेह तथा गुल्मरोग को नाश करती है ॥ ५१२–५१४ ॥

गुग्गुलुगुटिका—

गुग्गुलुकुडवादर्धं ककुभत्वगयोरजोविडङ्गानि ।
भल्लातकगोक्षुरकौ त्रिवृता त्रिफला द्वितीयार्धम् ॥ ५१५ ॥
भुक्त्वैनां गुटिकां यथेष्टचरितः षण्मासयोगात्पुमान्
सव्याधीन्सभगन्दरान्सपिटिकानर्शांसि दुष्टव्रणान् ।
खालित्यं पलितं जरामपि तनोर्जित्वा प्रदीप्तानलः
सौभाग्याप्तसुखो निरामयतनुर्जीवेत्समानां शतम् ॥ ५१६ ॥

गुग्गुलु गुटिका—गुग्गुलु एक कुडव, ककुभत्वक् (अर्जुन की छाल), लोह भस्म, विडंग—आधा २ कुडव, शु० भल्लातक, गोखरू, निशोथ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) चौथाई कुडव (एक २ पल)—इन द्रव्यों को लेकर चूर्ण बनावे और गुग्गुलु को चौगुने जल में पकावे तथा गाढ़ा होने पर चूर्ण

मिलाकर गुटिका बना ले। इस गुटिका को खाकर अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करे। इस गुटिका को छः मास तक प्रयोग करने से मनुष्य भगन्दर, पिडिका, अर्शरोग, दुष्टव्रण, खालित्य (बालका गिरना), पलित (बालका असमय में पकना) तथा शरीर के जरा को भी जीतकर अग्नि को प्रदीप्त करता है, सौभाग्य से सुख प्राप्त कर तथा रोगरहित होकर सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहता है ॥ ५१५-५१६ ॥

शोफे लघुत्रिफलागुग्गुलुगुटिका—

गुग्गुलुस्त्रिफला कृष्णा पञ्चनेत्रत्रिभागिकाः ।
गुटिकाः शोषगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिताः ॥ ५१७ ॥

शोथरोग में लघु त्रिफला गुटिका—गुग्गुलु पांचभाग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) दो भाग, पीपर तीन भाग—इन द्रव्यों को एकत्र कर चूर्ण बनावे और गुग्गुलु का क्वाथ बनाकर चूर्ण मिलाकर गुटिका बना ले। यह गुटिका शोष (सूखा रोग), गुल्म, अर्श तथा भगन्दर के रोगियों के लिये हितकर है ॥ ५१७ ॥

वातव्याधौ पृथुत्रिफलाद्या गुग्गुलुगुटिका—

त्रिफला हपुषा मुस्तं चविका चित्रकः शटी ।
यवानीग्रन्थिकव्योषसौवर्चलदुरालभाः ॥ ५१८ ॥
अजमोदा विडङ्गं च दाडिमं साम्लवेतसम् ।
बाष्पिका पौष्कर दारु त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ ५१९ ॥
एषामर्धपलैर्भागैः पलानि दश गुग्गुलोः ।
संमिश्रच्य सर्पिषा साधं गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ ५२० ॥
भक्षयित्वा ससर्पिष्कां जीर्णे च प्रसिताशनम् ।
वातश्लेष्मविकारेषु नाडीदुष्टव्रणेषु च ॥ ५२१ ॥
श्लेष्मकासे च शोफे च योगमेनं प्रयोजयेत् ।
जठरे योनिशूलेषु त्वन्तर्भूतं च विद्रधिम् ॥ ५२२ ॥
पार्श्वशूलं कृमीन् गुल्मान्प्रमेहान् छर्द्यरोचकौ ।
केवलानिलजान् रोगानशीतिं श्लैष्मिकानपि ।
विंशतिं नाशयत्याशु रसायनमनुत्तमम् ॥ ५२३ ॥

वातव्याधि में पृथुत्रिफलाद्य गुग्गुलु गुटिका—त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आँवला), हाऊबेर, मोथा, चव्य, चित्रक, कपूरकचरी, अजवायन, पिपरामूल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), सौवर्चलनमक, यवासा, अजमोदा, विडंग, अनार, अम्लवेत, नाडीहिंगु, पुष्करमूल, देवदारु, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—इन द्रव्यों को आधा २ पल लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे और गु०

गुग्गुलु दश पल मिलाकर घृत के साथ कूटकर मुलायम होने पर (डेढ़ २ मासा की) गुटिका बना ले। इस गुटिका को खाकर परिपाक होने पर हलका भोजन करे। इस गुग्गुलु को वातश्लेष्मजन्य रोग, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, श्लेष्मकास तथा शोथरोग में प्रयोग करे। यह उदररोग, योनिशूल, अन्दर मुख वाला घाव, पार्श्वशूल, कृमिरोग, गुल्मरोग, प्रमेहरोग, छर्दि, अरोचक, केवल अस्सी प्रकार के वातरोग तथा बीस प्रकार के कफ रोगों को शीघ्र ही नाश करता है और उत्तम रसायन है ॥ ५१८–५२३ ॥

गुल्मे त्रिवृताद्या गुटिका—

त्रिवृत्पलं हिङ्गुकर्षस्त्रिक्षारस्य पलत्रयम्।
यवानीमरिचाजाजीधान्यकं शितिवारकम् ॥ ५२४ ॥
उपकुञ्चीविडङ्गाजमोदाश्चार्धपलोन्मिताः।
पृथक्पलद्वयं दद्यादम्लवेतसजं रजः ॥ ५२५ ॥
मातुलुङ्गरसेनैषा गुटिकां कारयेद्भिषक्।
पिबेत्क्षीरेण मन्थैर्वा सर्पिषाऽम्लैः सुखाम्बुना ॥ ५२६ ॥
काङ्कायनेन गुटिका संप्रोक्ता गुल्मनाशिनी।
कफजं तु गवां मूत्रैः पयसा पित्तसंभवम् ॥ ५२७ ॥
त्रिफलारसमूत्रैस्तु निहन्यात्साभिपातिकम्।
रक्तगुल्मे तु नारीणामुष्ट्रीदुग्धेन वा पिबेत् ॥ ५२८ ॥

गुल्मरोग में त्रिवृताद्या गुटिका—निशोथ एकपल, हिंगु एक कर्ष, त्रिक्षार (सज्जीखार, यवक्षार, टंकणक्षार) तीन पल, अजवायन, मरिच, स्याहजीरा, धनिया, शितिवार (चौपतिया का बीज), उपकुंची (मॅगरैल), विडंग, अजमोदा—आधा २ पल, अम्लवेत का चूर्ण दो पल—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनावे और बिजौरा नीबू के रस के साथ घोटकर गुटिका बना लें। इस गुटिका को दूध, मन्थ, घृत, अम्लजल या गरम जल के साथ पान करे। यह कांकायन की बतायी हुई गुटिका गुल्मरोग को नाश करने वाली है। यह गुटिका कफज गुल्मरोग को गाय के मूत्र के साथ, पित्तज गुल्मरोग को दूध के साथ, सान्निपातिक गुल्मरोग को त्रिफला का रस तथा मूत्र के साथ सेवन करने से नाश करती है। स्त्रियों के रक्तगुल्म में ऊटनी के दूध के साथ इस गुटिका को सेवन करे ॥ ५२४–५२८ ॥

कृष्णाद्या गुटिका—

शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभयानां पलं पलम्।
गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका श्रमनाशिनी ॥ ५२९ ॥

इति श्रीवैद्यसोढलग्रथिते गदनिग्रहे गुटिकाधिकारश्चतुर्थः समाप्तः।

कृष्णाद्या गुटिका—सोंठ, पीपर, सौंफ, हर्रे—एक २ पल लेकर चूर्ण बनावे और गुड़ छः पल लेकर चासनी बनावे और चूर्ण मिलाकर गुटिका बना ले। यह गुटिका श्रम को नाश करने वाली है ॥ ५२९ ॥

इति वैद्य सोढल-ग्रथित, गदनिग्रह में चौथा गुटिका अधिकार समाप्त ॥

अथातः पञ्चमो लेहाधिकारः प्रारभ्यते

अर्शसि पथ्यावलेहः—

श्यामागुडूच्यामलचित्रकाणां भागान् पलानां शतसम्मितांश्च ।
सर्वान्पृथक्सपरिकल्प्य युक्त्या द्रोणद्वयेऽपां तु विपाच्य पात्रे ॥ १ ॥
लौहे दृढे मन्दहुताशने च पादावशिष्टं विधिवद्विधिज्ञः ।
भूयः पचेत्तं तुलया गुडस्य शुक्लेन वस्त्रेण विशोधितस्य ॥ २ ॥
चूर्णीकृतैर्जीरकयुग्मदन्तीपाठात्रिवृत्त्र्यूषणग्रन्थिकाह्वैः ।
धान्याजमोदेभकणायवानीभल्लातकाख्यैश्च पलप्रमाणैः ॥ ३ ॥
प्रस्थत्रयेणाथ हरीतकीनामैकध्यमालोड्य शनैस्तु दर्व्या ।
ज्ञात्वा सुपक्वं रसगन्धवर्णैः कुम्भे निदध्यात्त्रिसुगन्धियुक्तम् ॥ ४ ॥
प्रस्थार्धयुक्तं मधुनोऽत्र शीते भल्लातकास्थिप्रभवाच्च तैलात् ।
दत्त्वा पलार्धं यवशूकजस्य चाष्टौ पलान्येव सितोपलायाः ॥ ५ ॥
एन लिहेदक्षफलप्रमाणमर्शोविकारी प्रसमीक्ष्य वह्निम् ।
कुष्ठानि सर्वाणि निहन्ति हिक्कां श्वासं च कासारुचिपाण्डुरोगान् ।
मन्दानलत्वं ग्रहणीविकारान् गुल्मान्सशोफानुदरामयांश्च ।
शूलानि यक्ष्माणमसृक्प्रवृत्तिं पथ्यावलेहोऽयमिति प्रदिष्टः ॥ ७ ॥

अब इसके बाद पांचवा लेहाधिकार प्रारम्भ करते हैं।

अर्शरोग में पथ्यावलेह—कालानिशोथ, गुडूची, आंवला, चित्रक—प्रत्येक सौ २ पल लेकर दो द्रोण जल में क्वाथ करे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को साफ कपड़ों से छान कर गुड एक तुला डालकर मन्द आंच से पकावे और उसमें स्याहजीरा, सफेदजीरा, दन्तीमूल, पाढ़ी, निशोथ, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), पिपरामूल, धनिया, अजमोदा, गजपीपर, अजवायन, और शु० भल्लातक—एक २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा हर्रे चूर्ण तीन प्रस्थ मिलाकर कलछी से चलावे रस, गन्ध एवं वर्ण के द्वारा परिपक्व जानकर उसमें त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) का चूर्ण मिलाकर उतार ले और घृत-स्निग्ध पात्र में रक्खे। ठंढा हो जाने पर मधु आधा प्रस्थ, भल्लातक तैल आधा प्रस्थ, यवक्षार आधापल, सितो-

पला (मिश्री) आठ पल अच्छी तरह मिला दें। इस अवलेह में से अर्श का रोगी—बल तथा अग्नि के अनुसार बहेड़े के फल के बराबर मात्रा में सेवन करे। यह पथ्यावलेह सभी प्रकार के कुष्ठ, हिक्का (हिचकी), श्वास, कास, अरुचि, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, ग्रहणीविकार, गुल्मरोग, शोथ, उदररोग, शूल तथा रक्त निकलने वाले यक्ष्मा (टी-बी) रोग को नष्ट करता है॥ १–७॥

अवलेह परिभाषा—

क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया।
सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता॥

क्वाथ, गुड, शर्करा आदि को पुनः पकाकर जो गाढ़ा बनाया जाता है उसको रसक्रिया कहते हैं उसी को अवलेह तथा लेह भी कहते हैं, उसकी मात्रा सामान्यतः एक पल की होती है। अवलेह में शक्कर आदि का परिमाण—

सिता चतुर्गुणा देया चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः।
द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः॥

अवलेह में चूर्ण के चौगुना शक्कर, दुगुना गुड तथा चौगुना द्रव पदार्थ मिलाकर पाक करे, यही सर्वत्र निश्चित परिमाण विधि है। अवलेह चार प्रकार से बनाया जाता है।

(१) प्रथम प्रकार जैसे—

गृहीत्वा क्वाथकल्पेन क्वाथं पूतं पुनः पुनः।
क्वाथयेत् फाणिताकारमेषा प्रोक्ता रसक्रिया॥

अर्थात् क्वाथ्य द्रव्यों को सामान्यतः क्वाथनियमानुसार क्वाथ बना छानकर पुनः गाढ़ा होने तक जो पाकक्रिया होती है उसको रसक्रिया कहते हैं।

(२) दूसरा प्रकार यह है कि—जिसमें यथोक्त परिमाण में क्वाथ्य द्रव्यों का क्वाथ बना उस क्वाथ को वस्त्र से छान कर उसमें शक्कर छोड़ पुनः पकाकर पाक सिद्ध होने पर चूर्ण को मिलाकर तैयार करते हैं।

(३) तीसरे प्रकार में केवल शक्कर या गुड जल में पकाकर गाढ़ा होने पर चूर्ण आदिक प्रक्षेप डालकर तैयार करते हैं।

(४) चौथी विधि में, चूर्ण को यथोक्त परिमाण से घृत तथा मधु आदि को मिलाकर तैयार करते हैं।

अवलेह में चूर्ण प्रक्षेप करने का विचार—

प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरि चूर्णस्य तेन हि।
आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते॥

अवलेह में चूर्णों को पकाना नहीं चाहिए किन्तु अधिक चूर्ण होने पर पाक तैयार होने लगे तब मिलाकर पका लेना चाहिए क्योंकि तैयार होने पर

अधिक चूर्ण मिलाना कठिन होगा तथा अवलेहवत् नहीं रह जायगा। थोड़े चूर्ण को तो पाक तैयार होने पर ईषदुष्ण अवस्था में प्रक्षेप करे। पाकलक्षण—

सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम्।
स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः॥
रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद् गाढमर्दनात्।

अवलेह में अच्छी तरह पक जाने पर तन्तु के समान निकलने लगता है तथा जल में डूब जाता है, मलने पर स्थिर हो जाता है एवं गन्ध, वर्ण, रस से युक्त होता है। नीचे गिराने पर मुद्रा (आकार) में बन जाता है। पकजाने पर अच्छे रस तथा गन्ध से युक्त होता है। अच्छी तरह मर्दन करने से वर्ति के आकार का बन जाता है।

अवलेह मधुर होने से सभी को रुचिकर होता है तथा अन्य कटु-तिक्तादि औषधियों को मिलाकर खाने में अरुचि नहीं होती है। अवलेह में भस्म, रस आदि मिलाकर भी प्रयोग करते हैं। यद्यपि अवलेह की मात्रा एक पल की बतायी गयी है किन्तु अग्नि-बल के अनुसार मात्रा की कल्पना करनी चाहिए।

अर्शसि चित्रकावलेहः—

चित्रकस्य शतं दद्यात्तत्तुल्यो ग्रन्थिको मतः।
पञ्चाशद्दशमूलस्य शेषान् पञ्चपलान् पृथक्॥ ८॥
बलां भार्ङ्गीं शटीं पाठां पौष्करं मूलमेव च।
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषे तथैव च॥ ९॥
पचेद् गुडशतं दत्त्वा लेहवत्साधु साधयेत्।
चतुष्पलं तु पिप्पल्यास्तुगाक्षीर्याः पलद्वयम्॥ १०॥
त्रिजाताच्च पलं चैकं मरिचस्य पलं तथा।
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दर्व्या सम्यग्विघट्टयेत्॥ ११॥
पलमात्रं ततः खादेत्प्लीहगुल्मोदरार्शसि।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं शीतार्तिं चाम्लपित्तकम्।
भारद्वाजेन सम्प्रोक्तो लेहश्चित्रकसञ्ज्ञकः॥ १२॥

अर्शरोग में चित्रकावलेह—चित्रक एक सौ पल, पिपरामूल एक सौ पल, दशमूल (बिल्व, गम्भारी, अरलु, पाढ़ल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) पचासपल, बला, भांगरा, कपूरकचरी, पाढ़ी, पुष्करमूल—पाच २ पल—इन सभी द्रव्यों को यवकुट कर चार द्रोण जल में क्वाथ करे। चौथाई शेष क्वाथ को छानकर गुड एक सौ पल मिला दे और मन्द आंच से अवलेह सिद्ध करे, पाक तैयार होने पर पीपर चूर्ण चार पल, वंशलोचन दो पल, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण एक पल, मरिच चूर्ण

एक पल मिलाकर कलछी से अच्छी तरह चला दे। उसके बाद एक पल की मात्रा में प्लीहावृद्धि, गुल्मरोग, उदररोग तथा अर्शरोग में सेवन करे। यह भारद्वाज का बनाया हुआ चित्रकावलेह भयंकर यक्ष्मारोग, शीतरोग तथा अम्लपित्त को नष्ट करता है ॥ ८-१२ ॥

अर्शसि चित्रकावलेहः—

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं साध्यं यावत्पाददलस्थमथेदम्।
अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि क्वाथ्यं भूयः सान्द्रतया समवेतम् ॥१३॥
त्रिकटुकमिशिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग-
क्रिमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः।
जयति गुदजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि
प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः ॥ १४ ॥

अर्शरोग में चित्रकावलेह—चित्रकमूल आधा तुला, एक द्रोण जल में क्वाथ करे। चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ को छानकर पुराना गुड आठ पल मिलाकर गाढ़ा अवलेह होने तक पुनः पकावे और उसमें त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), मिशि (सौंफ), हरड, कूठ, मोथा, दालचीनी, विडंग, चित्रक, इलायची—इन द्रव्यों को (चार पल) सूक्ष्म चूर्ण बनाकर मिला दे। यह अवलेह गुदज (अर्शरोग), कुष्ठरोग, प्लीहावृद्धि, गुल्मरोग तथा उदररोगों को जीत लेता है और निरन्तर सेवन करने से उदराग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १२-१४ ॥

रक्तपित्ते कूष्माण्डकावलेहः—

शतं पलानि कूष्माण्डात् सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्।
पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ १५ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं क्षिपेत्।
पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च ॥ १६ ॥
त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्धकम्।
न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत्ततः ॥ १७ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे क्षौद्रं दत्त्वा घृतार्धकम्।
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ १८ ॥
श्वासकासारुचिच्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः।
पुनर्नवकरं वृष्यं बलवर्णप्रसादनम् ॥ १९ ॥
उरःसन्धानकृद्धृद्यं बृंहणं स्वरबोधनम्।
अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ २० ॥

रक्तपित्त में कूष्माण्डकावलेह—छिलका उतारा कूष्माण्ड (श्वेत = सफेद कोहडा) एक सौ पल लेकर उबाले। अच्छी तरह उबल जाने पर, घृत एक—

प्रस्थ में कलईवाले तामे की कहाड़ी में छोडकर मधु के समान लाल वर्ण होने तक कूष्माण्ड के एक सौ टुकड़ों को पकावे और उसमें एक सौ पल शक्कर की चासनी छोड़ दे। इसके बाद पीपर तथा सोंठ दो २ पल, स्याहजीरा दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, मरिच, धनिया—आधा २ पल—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को छोड़कर कलछी से अच्छी तरह मिला दे। इस परिपक्व अवलेह को घृतस्निग्ध मिट्टी के बर्तन मे रक्खे तथा मधु—घृत के आधा (आधा प्रस्थ) मिला दे। इस अवलेह को, अग्नि-बल के अनुसार मात्रापूर्वक रक्तपित्त का रोगी, क्षतक्षय (यक्ष्मा) का रोगी, श्वास, कास, अरुचि, छर्दि (वमन), तृष्णा तथा ज्वररोग से पीड़ित रोगी—भक्षण करे। यह अवलेह शरीर को पुनः नवीन बनाने वाला है, वीर्यवर्द्धक, बलवर्द्धक, कान्ति-प्रसाधक, हृदय के घाव को पूरा करनेवाला, हृदय को बल देने वाला, शारीरिक शक्ति को बढ़ाने वाला तथा स्वर को साफ करने वाला है। अश्विनीकुमार का बनाया हुआ यह कूष्माण्ड रसायन सिद्ध रसायन है।

विमर्श—श्वेत कूष्माण्ड को छीलकर छोटे २ टुकड़ा बनावे और कांटादार कोचनी से कोंच कर चूना के पानी तथा फिटकरी के पानी में एक रात भिगोकर रक्खे। इसके बाद निकाल कर अच्छी तरह धोकर उबाले तत्पश्चात् शेष अवलेह-विधि के द्वारा तैयार करे। योग रत्नाकर में इसके अलावा भी कुछ प्रक्षेप-द्रव्यों का विधान किया है—

क्षौद्रार्धकां सितां केचित् केचिद् द्राक्षां सितार्धकाम्।
द्राक्षार्धकं लवङ्गं च मनाक् कर्पूरकं क्षिपेत्॥

इस अवलेह में कुछ वैद्य, मधु के आधा मिश्री, मिश्री का आधा मुनक्का, मुनक्का का आधा लवंग तथा ईषद् मात्रा मे कर्पूर मिलाने का विधान करते हैं॥ १५–२०॥

रक्तपित्ते खण्डकूष्माण्डकावलेहः—

प्रस्थेनाज्यस्य भृष्टं पलशतमलघुच्छिन्नकूष्माण्डकस्य
पक्वव्यं खण्डतुल्यं मधु शिशिरतरे तत्र दद्याद्घृतार्धम्।
व्योष धान्यं सजीरं प्रसृतिमितमथ स्याच्चतुर्जातकं च
प्रक्षेप्यं रक्तपित्तं हरति बलकरः खण्डकूष्माण्डकोऽयम्॥ २१॥

रक्तपित्त में खण्डकूष्माण्डकावलेह—श्वेत कूष्माण्ड (सफेद कोहड़ा) के छोटे २ टुक्ड़े एक सौ पल को उबाल कर घृत एक प्रस्थ मे भूने और कूष्माण्ड के बराबर एक सौ पल खांड ले चासनी बनाकर पकावे। ठंढा होने पर मधु घृत का आधा (आधा प्रस्थ) तथा व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), धनिया, स्याहजीरा—एक २ प्रसृति (दो पल), चातुर्जात (इलायची, दालचीनी,

तेजपत्र, नागकेशर) एक प्रसृति (दो पल)—इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिला दे। यह खण्डकूष्माण्डक अवलेह रक्तपित्त को दूर करता है और बल-वर्धक है ॥ २१ ॥

अर्शसि खण्डसूरणावलेहः—

कूष्माण्डकविधानेन शस्यते सूरणं सदा।
अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २२ ॥

अर्शरोग में खण्ड सूरणावलेह—कूष्माण्ड अवलेह के तरह खण्ड सूरण अवलेह बनावे। यह अवलेह अर्शरोगी, विलोम वातवाले तथा मन्दाग्नि के रोगियों के लिये प्रशस्त है। सूरण को छीलकर छोटा २ टुकड़ा बनावे और एक सौ पल लेकर फिटकरी के पानी में उबाले पुनः अच्छी तरह धोकर घृत एक प्रस्थ में भूने। इसके बाद शक्कर एक सौ पल की चासनी बनाकर परिपक्व सूरण के टुकड़ों को छोड़कर पकावे। अवलेहवत् पाक हो जाने पर व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), धनिया, स्याहजीरा—दो पल, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर—दो पल—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण तथा मधु आधा प्रस्थ मिला दे तथा घृत-स्निग्ध पात्र में रक्खे। इसमें से अग्नि-बल के अनुसार मात्रा-पूर्वक सेवन करे। इसकी सामान्यतः मात्रा एक छटांक है ॥ २२ ॥

गुडकूष्माण्डकावलेहः—

शतं पलानि कूष्माण्डात्सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्।
प्रस्थं तैलघृतादेयं तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत् ॥ २३ ॥
त्वकपत्रधान्यकं व्योषं जीरकैलाद्वयानलम्।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीशृङ्गवेरकम् ॥ २४ ॥
शृङ्गाटकं कसेरुं च पेलवं तालमस्तकम्।
चूर्णीकृत्य पलांशेन गुडस्य तुलया पचेत् ॥ २५ ॥
शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत्।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च दीपनम् ॥ २६ ॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम्।
प्रमदासु प्रसक्तानां ये चान्ये क्षीणरेतसः ॥ २७ ॥
क्षयेणैव गृहीतानां परमुक्तं भिषग्जितम्।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम्।
गुडकूष्माण्डकः ख्यातः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ २८ ॥

गुड कूष्माण्डावलेह—कूष्माण्ड (सफेद कोहड़ा) एक सौ पल लेकर छिलका निकाल ले तथा छोटे २ टुकड़ा बनाकर उबाले और घृत एक प्रस्थ में अच्छी तरह भून ले इसके बाद एक तुला गुड़ की चासनी बनाकर उसमें

कूष्माण्ड के उबाले टुकड़ों को छोड़कर अवलेहवत् पाक कर ले तथा दालचीनी, तेजपत्र, धनिया, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), स्याहजीरा, इलायची, चित्रक, पिपरामूल, चव्य, गजपीपर, अद्रक, सिंघाड़ा, कसेरू, पेलव (क्षेवटीसोथा) तथा तालमज्जा एक २ पल—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह चला दे और अवलेह सिद्ध कर लें। शीतल होने पर मधु आधा प्रस्थ (आठ पल) मिला दे। यह अवलेह कफ-पित्त तथा वातजन्य विकारों को दूर करता है। मन्दाग्नि को दीप्त करता है। दुर्बलों को बृंहण करता है तथा उत्तम वाजीकरण है। स्त्रियों में आसक्त, अन्य कारणों से क्षीणवीर्य तथा क्षय के रोगियों के लिये उत्तम औषध है। कृष्णात्रेय से पूजित प्रसिद्ध कूष्माण्डक अवलेह कास, श्वास, ज्वर, हिचकी, छर्दि (वमन) तथा अरोचक को नाश करता है ॥ २३–२८ ॥

शोषे एलाद्यवलेहः—

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्र्यरिष्टासनसारशालान् ।
विडङ्गभल्लातकचित्रकोग्राकटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रजांश्च ॥ २९ ॥
पक्त्वा जलेनैव पचेद्धि सर्पिस्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलं चात्र सितोपलाया दद्यात्तुगायाश्च पलानि षट् च ॥ ३० ॥
प्रस्थं घृतस्य द्विगुणं च कुर्यात्क्षौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात् ।
पलं पलं प्रातरतः प्रलिह्यात्पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ ३१ ॥
एतद्धि मेध्यं परमं पवित्रं चक्षुष्यमायुष्यमथो यशस्यम् ।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति चैव पाण्ड्वामयं चैव भगन्दरं च ॥ ३२ ॥
श्वासं च हन्ति स्वरभेदकासं हृत्प्लीहगुल्मग्रहणीगदांश्च ।
न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं रसायनं चैतदुपास्यमानम् ॥ ३३ ॥

शोषरोग में एलाद्यवलेह—बड़ी इलायची, अजमोदा, आंवला, हर्रे, बहेड़ा, गायत्री (खैर), अरिष्ट (निम्ब), असनसार (विजयसार), शालवृक्ष, विडंग, शु० भल्लातक, चित्रक, वच, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), मोथा, सुराष्ट्रज (कालामूंग)—समभाग—इन द्रव्यों को चौगुने जल मे क्वाथ करे और चौथाई शेष क्वाथ को छान कर उसमें घृत एक प्रस्थ पकावे। घृत सिद्ध हो जाने पर उतार कर उससे मिश्री तीस पल, वंशलोचन छः पल डाल दे तथा मधु दो प्रस्थ मिलाकर मथनी से चला दे और घृतस्निग्ध बर्तन में रख ले। इसमें से एक २ पल की मात्रा प्रातःकाल प्रतिदिन चाटे और उसके बाद आलस्य छोड़कर दूध पीवे। यह अवलेह धारणाशक्ति को बढ़ानेवाला उत्तम, पवित्र, नेत्र के लिये हितकर, आयुःप्रद तथा यशप्रद है और यक्ष्मा (टी० बी०) रोग, पाण्डुरोग एवं भगन्दर को दूर करता है। श्वास, स्वरभेद, कास, हृदय-

रोग, प्लीहावृद्धि, गुल्मरोग तथा ग्रहणी रोग को नाश करता है। इस रसायन के सेवनकाल में कोई वस्तु वर्जनीय नहीं है ॥ २९-३३ ॥

अर्शसि भल्लातकावलेहः—

भल्लातकसहस्र तु द्रोणेऽपां विधिवत्पचेत्।
ततः पादावशिष्टं तु पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ३४ ॥
गुडस्य तु तुलां दत्त्वा तत्र भूयो विपाचयेत्।
त्र्यूपणं त्रिफला दन्ती चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ३५ ॥
चव्याजमोदापाठाश्च पिप्पलीमूलमेव च।
एषां द्विपालिकान्भागान् सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३६ ॥
लेहीभूते ततः पश्चात्प्रक्षिपेन्मतिमान् भिषक्।
शीतीभूते ततः पश्चाच्चातुर्जातपलं क्षिपेत् ॥ ३७ ॥
उदुम्बरसमां मात्रां खादयेच्च यथाबलम्।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्लीहानं विषमज्वरम् ॥ ३८ ॥
कुष्ठगुल्मोदरं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
कासश्वासहरो हृद्यो भल्लातकगुडः स्मृतः ॥ ३९ ॥

अर्शरोग में भल्लातकावलेह—भल्लातक फल एक हजार एक द्रोण जल में विधिपूर्वक पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को छान कर फिर आग पर रक्खे और एक तुला गुड़ डाल कर पुनः पकावे, लेह सिद्ध हो जाने पर त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), दन्तीमूल, चित्रक, गजपीपर, चव्य, अजमोदा, पाठा, पिपरामूल—दो २ पल—इन द्रव्यों को सूक्ष्म चूर्ण बनाकर डाल दे, ठंढा होने पर चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण एक पल मिलाकर चलावे। और घृत के वर्तन में रख दे। इस अवलेह में से गूलर के फल के बराबर मात्रा में बल के अनुसार भक्षण करे। यह अवलेह अर्शरोग, ग्रहणीरोग, प्लीहावृद्धि, विषमज्वर, कुष्ठरोग, गुल्मरोग, उदररोग, मन्दाग्नि तथा अरोचक को नाश करता है। यह भल्लातक गुड श्वास तथा कास को दूर करनेवाला एवं हृदय को बल देनेवाला है ॥ ३४-३९ ॥

ग्रहण्यां कल्याणको गुडावलेहः—

प्रस्थत्रये ह्यामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वाऽर्धतुलां गुडस्य।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ४० ॥
विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टौ ह्यष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ४१ ॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टास्त्रसुगन्धियुक्तम्।

अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेददोषाः ॥ ४२ ॥
पाण्डूदरं गुल्मभगन्दरातिमेदःसमुत्थ च विकारजातम् ।
शाम्यन्ति, चायं चिरमन्दवह्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनः स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रतीतः ॥४३॥
भृष्टेषत्त्रिवृतां तैले त्रिसुगन्धि पिचुं पिचुम् ।
सिद्धे विधेयमत्रैव गुडे कल्याणपूर्वके ॥ ४४ ॥

ग्रहणीरोग में कल्याणक गुडावलेह—आंवला-स्वरस तीन प्रस्थ मे स्वच्छ गुड आधा तुला (पचास पल), पिपरामूल, स्याहजीरा, चव्य, व्योप (सोंठ, पीपर, मरिच), गजपीपर, हाऊवेर, अजमोदा, विडंग, सेन्धानमक, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), अजवायन, पाठा, चित्रक, धनिया—एक २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण, निशोथ चूर्ण आठ पल, तैल आठ पल मिलाकर विधिपूर्वक पकावे और ठंढा होने पर त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण (एक पल) मिलाकर चला दे। इस अवलेह को अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करता हुआ बहेडा के फल के बराबर मात्रा मे भक्षण करे। इस अवलेह के सेवन करने से सभी प्रकार के ग्रहणीरोग, श्वास, कास, स्वरभेद दोष, पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्मरोग, भगन्दरोग तथा मेदोजन्यविकार समूह, शान्त होते है। यह अवलेह पुराने मन्दाग्नि तथा नष्टपुंस्त्व (नामर्दी) को दूरकर पुंस्त्वशक्ति बढ़ाने का कारण है। यह कल्याणक नामक गुड स्त्रियों के वन्ध्यादोष (वांझपन) को नाश करता है। इस कल्याणक गुड के सिद्ध होने पर निशोथ एक पिचु (अक्ष) का चूर्ण तैल में थोडा भूनकर तथा त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण एक पिचु (अक्ष) मिलाकर प्रयोग करे ॥ ४०-४४ ॥

कार्श्ये पञ्चजीरकावलेहः—

कुस्तुम्बर्यो यवानी समरिचमगधा दीप्यकाजाजिचव्याः
पथ्या श्यामाह्वमूलं कृमिहरहपुषे कारवी सातला च ।
शुण्ठीवन्दाकनागोद्भवशतकुसुमा मेथिका चाक्षभागाः
कंसेल्लाद्धागयुग्मं सकलगणमिदं चूर्णयेदौषधानाम् ॥ ४५ ॥
सर्पिःप्रस्थ प्रदद्याद् गुडपलदशभिः साधयेन्मन्दवह्नौ
क्षीरप्रस्थैश्चतुर्भिः स च सकलगदान्हन्ति युक्तस्त्रिगन्धैः ।
लेहोऽयं चानिलघ्नः कृशबलजननः शोधनश्चार्तवस्य
या स्त्री गर्भं न धत्ते जनयति तनयं दीर्घजीवानुयुक्तम् ॥ ४६ ॥

कार्श्यरोग में पचजीरकावलेह—कुस्तुम्बरी (धनिया), अजवायन, मरिच, पीपर, दीप्यक (अजमोदा), स्याहजीरा, चव्य, हर्रे, कालानिशोथ का

मूल, विडंग, हाऊबेर, कारवी (मंगरैल), सातला, सोंठ, वन्दाक (वन्दाक-दूर्वा), नागोद्भव (नागकेशर), सौंफ, मेथी—एक २ अक्ष, कसेरु (कसेरू) दो अक्ष—इन सभी औषधियों को चूर्ण बनावे। इस चूर्ण को एक प्रस्थ घृत में भूनकर, गुड दश पल, गाय का दूध चार प्रस्थ मिलाकर मन्द आंच से अवलेह सिद्ध करे। और उसमें त्रिगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण मिला दे। यह अवलेह सभी प्रकार के रोगों को नाश करता है, तथा वातनाशक, दुर्बलों को बल देनेवाला एवं ऋतु (मासिकधर्म) को शोधन करनेवाला है। जो स्त्री गर्भ को धारण नहीं करती है वह इस अवलेह को सेवन करने से दीर्घजीवी पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ ४५-४६ ॥

योनिरोगे पञ्चजीरकावलेहः—

जीरकं हपुषा धान्यं यवानी बदराणि च।
शताह्वा मेथिका हिङ्गुपत्रिका कासवृक्षकम् ॥ ४७ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदा च वाष्पिका।
चित्रकं च पलांशानि तथा चैव चतुष्पलम् ॥ ४८ ॥
कसेरुकं तथा शुण्ठी कृष्णा जीरकमेव च।
गुडस्यार्धशतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ४९ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।
पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ५० ॥
नारीणां गर्भकामानां प्रदुष्टे चैव मारुते।
विंशतिर्व्यापदो योनेः कासं श्वासं स्वरक्षयम् ॥ ५१ ॥
दौर्गन्ध्यं मूत्रकृच्छ्रं च पाण्डुरोगं हलीमकम्।
हन्ति, पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ ५२ ॥
उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीकलिवर्जिताः।

योनिरोग में पञ्चजीरकावलेह—स्याहजीरा, हाऊबेर, धनिया, अजवायन, बेर, सौंफ, मेथी, हिंगुपत्री, कामवृक्ष (वन्दका "बांझी"), पीपर, पिपरामूल, अजमोदा, वाष्पिका (नाडीहिंगु), चित्रक—एक २ पल, कसेरू, सोंठ, पीपर, जीरा चार पल—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को एक प्रस्थ घृत में भूनकर पचास पल गुड की चासनी में मिला दे और दूध दो प्रस्थ मिलाकर धीरे २ मन्द आंच से अवलेह सिद्ध करे। यह पञ्चजीरक अवलेह प्रसूता स्त्री एवं गर्भ चाहने वाली स्त्रियों के लिये तथा वायु के दूषित होने पर प्रशस्त है। बीस प्रकार के योनिदोष, कास, श्वास, स्वरक्षय, दौर्गन्ध्य (दुर्गन्धपूर्ण मासिक स्राव होना), मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग तथा हलीमक (पाण्डुरोग के बाद शरीर का हरित वर्ण होना) को नाश करता है। स्त्रियां इस अवलेह को सेवन करने

से कड़ा एवं उन्नत कुच वाली होती हैं। नेत्र कमल के पत्र के समान बड़े २ होती हैं तथा नित्य दरिद्रता तथा कलह से दूर हो जाती हैं॥

श्रीबाहुशालो गुडावलेहः—

त्रिवृत्तेजस्वती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकः शटी।
गवाक्षी मुस्तकं बिल्वं विडङ्गानि हरीतकी ॥ ५३ ॥
पलोन्मितानि चैतानि भल्लातकपलाष्टकम्।
पलानि वृद्धदारोः पट् षोडशैव तु सूरणात्।
जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ ५४ ॥
पूतं रसं तु तं दत्त्वा क्वाथेऽथत्रिगुणो गुडः।
लेहं पचेद्धि तं यावद्दर्वीलेपं व्रजेद् बुधः ॥ ५५ ॥
अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्।
त्रिवृत्तेजस्वतीकट्वीचित्रकं द्विपलांशकम् ॥ ५६ ॥
एलात्वक्पत्रनागाह्वं षट्पलं परिकीर्तितम्।
द्वात्रिंशच्च पलानीह चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥ ५७ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीर रसायनम्।
पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ५८ ॥
जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च।
अयं सर्वान्गदांश्चैव कल्याणो लेह उत्तमः ॥ ५९ ॥
दुर्नामान्तकरश्चैव मेधाजनन उत्तमः।
गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ ६० ॥
सर्वरोगं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।

श्रीबाहुशाल गुडावलेह—निशोथ, तेजस्विनी (तेजबल), दन्तीमूल, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), चित्रक, शटी (कपूरकचरी), गवाक्षी (शाखोट "भूर्जपत्र"), मोथा, बेल की छाल, विडग, हर्रे—एक २ पल, शु० भल्लातक आठ पल, वृद्धदारु (विधारा) छः पल, सूरण सोरह पल लेकर यवकुट कर दो द्रोण जल में क्वाथ करे चौथाई शेष क्वाथ को छान कर, गुड को क्वाथ के तीनगुना मिलाकर मन्द आंच से पकावे। जब तक दर्वीलेप पाक न तैयार हो जाय। इसके बाद उतार कर, निशोथ, तेजबल, कुटकी, चित्रक—दो २ पल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर—छः २ पल—इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलित बत्तिस पल चूर्ण मिला दे। इस अवलेह में से मात्रापूर्वक प्रयोग करे। परिपाक होने पर दूध तथा रसायन का सेवन करे। यह उत्तम कल्याणकलेह, पांच प्रकार के गुल्मरोग, प्रमेहरोग, पाण्डुरोग, हलीमक, सभी प्रकार के अर्शरोग तथा सभी प्रकार के उदररोग एवं सभी

रोगों को जीत लेता है। यह अर्श का शत्रु श्रीबाहुशाल नामक गुड़ अर्श रोग को नाश करनेवाला तथा उत्तम मेधा शक्ति को बढ़ानेवाला है। यह सभी रोगों को शीघ्र ही नाश करता है जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नाश कर देता है॥

श्वासकासे बिभीतकावलेहः—

प्रस्थं बिभीतकानामनस्थ्नां हि साधयेद्गवां मूत्रे।
लेहवदवलेहो मधुसहितः श्वासकासहरः॥ ६१॥

श्वास-कास में बिभीतकावलेह—गुठलीरहित बहेड़ा एक प्रस्थ, गाय का मूत्र (चार प्रस्थ) में पकावे, चौथाई शेष क्काथ को छानकर पुनः पकावे। अवलेह के समान सिद्ध हो जाने पर उतार ले और ठंढा होने पर मधु (चार पल) मिला दे। यह अवलेह सेवन करने से कास तथा श्वास रोग को दूर करता है॥ ६१॥

कासेऽगस्त्यहरीतक्यवलेहः—

द्विपञ्चमूलेभकणात्मगुप्ताभार्गीशटीपुष्करमूलविश्वाः।
पाठामृताग्रन्थिकशङ्खपुष्पीरास्नाग्न्यपामार्गबलायवासान्॥ ६२॥
द्विपालिकानेव यवाढक च हरीतकीनां च शतं गुरूणाम्।
द्रोणे जलस्याढकसंयुते तु क्काथीकृते पूनचतुर्थभागे॥ ६३॥
पचेत्तुलां शुद्धगुडस्य दत्त्वा पृथक्सतैलात्कुडवं घृताच्च।
चूर्णं च तावन्मगधोद्भवानामनेकरोगौघमथाशु हन्यात्॥ ६४॥
तद्राजयक्ष्मग्रहणीप्रदोषशोफाग्निमान्द्यस्वरभेदकासान्।
पाण्ड्वामयश्वासशिरोक्षिरोगान्हृद्रोगहिक्काविषमज्वरांश्च॥ ६५॥
मेधाबलोत्साहमतिप्रदं च चकार चैतं भगवानगस्त्यः।

कासरोग में अगस्त्यहरीतकी अवलेह—दोनों पञ्चमूल (बेल की छाल, गम्भारी, श्योनाक, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू), गजपीपर, केवाछ का बीज, भांगरा, शटी (कपूरकचरी), पुष्करमूल, सोंठ, पाढ़ी, गुडूची, पिपरामूल, शंखपुष्पी, रास्ना, चित्रक, अपामार्ग, बला, जवासा—दो २ पल, यव एक आढक, बड़ा हरड़ एक सौ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण एक आढ़क जल में क्काथ करे। चौथाई शेष क्काथ को छान कर उसमें स्वच्छ गुड एक तुला, तल एक कुडव (चार पल), घृत एक कुडव (चार पल), पीपर चूर्ण एक कुडव (चार पल) मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। यह अनेक रोगसमूहों को तथा राजयक्ष्मा (टी. बी.) ग्रहणी-दोष, शोथ, मन्दाग्नि, स्वरभेद, कास, पाण्डुरोग, श्वासरोग, शिरोरोग, नेत्र-रोग, हृदयरोग, हिचकी तथा विषम ज्वर को नाश करता है। भगवान्

अगस्त्य ने इस अवलेह को धारणाशक्ति, बल, उत्साह तथा बुद्धि को बढाने-वाला बनाया है ॥

कासे द्वितीयोऽगस्त्यहरीतक्यवलेहः—

दशमूलीं स्वयङ्गुप्तां शङ्खपुष्पी शटीं बलाम् ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ६६ ॥
भार्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांश यवाढकम् ।
हरीतकीशतं चैकं जले पञ्चाढके पचेत् ॥ ६७ ॥
यवैः स्विन्नैः कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ।
पचेद् गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ६८ ॥
तैलाच्च पिप्पलीचूर्णात्सिद्धे शीते च माक्षिकात् ।
कुडवं, पलमानं च चतुर्जातं समावपेत् ॥ ६९ ॥
लिह्याद् द्वे चाभये नित्यं ततः खादेद्रसायनात् ।
वलीं च पलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ ७० ॥
पञ्च कासान् क्षयं श्वासं हिक्कां च विषमज्वरम् ।
गुल्ममेहग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ ७१ ॥
अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।
यथोद्दिष्टं गुणं कुर्वन्पित्तं च कुरुते यदा ॥ ७२ ॥
तदा सायं गुडो योज्य एष एवाल्पमात्रया ।
पादशेषे कषायेऽत्र स्विन्ना विद्याद्धरीतकीः ॥ ७३ ॥
भर्जितास्तिलतैलस्य कुडवे गोघृतस्य वा ।
पचेत्ताम्रमये पात्रे ह्यापाकाल्लोहितोदयात् ॥ ७४ ॥
फलानां तु शतं सङ्ख्या चातुर्जात पृथक्पलम् ।
बद्ध्वा पोटलके पथ्या यवान् स्विन्नांश्च कारयेत् ॥ ७५ ॥

कासरोग से द्वितीय अगस्त्य हरीतक्यवलेह—दशमूली (बेल की छाल, गम्भारी, श्योनाक, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया गोखरू), केवाछ बीज, शंखपुष्पी, कपूरकचरी, बरियार, गजपीपर, अपामार्ग, पिपरामूल, चित्रक, भांगरा, पुष्करमूल—दो २ पल, यव एक आढक, हर्रे एक सौ, पांच आढक जल में पकावे। क्वथित जव का कषाय छानकर उसमें उबाला हरड एक सौ, गुड़ एक तुला, घृत एक कुडव, तैल एक कुडव (चार पल), पिप्पली चूर्ण एक कुडव (चारपल) मिलाकर पकावे। अवलेह सिद्ध होने पर ठंढाकर मधु एक कुडव, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेज-पत्र, नागकेशर) का चूर्ण एक पल मिला दे। इस अवलेह में से दो हर्रे खाकर (एक पल) इस रसायन को प्रतिदिन चाटे। यह रसायन वली (मुख में झूरी

पड़ना), पलित (असमय में बाल पकना), पांच प्रकार का कास, क्षय, श्वास, हिचकी, विषम ज्वर, गुल्म, प्रमेह, ग्रहणीरोग, अर्शरोग, हृदयरोग, अरुचि, तथा पीनस (दुर्गन्ध युक्त पुराना नासा स्राव) को नाश करता है तथा आयु एवं बल को बढ़ाने वाला है। अगस्त्य का बनाया यह रसायन धन देनेवाला तथा श्रेष्ठ है। यह अवलेह जब पूर्वोक्त गुणों को करता हुआ पित्त का प्रकोप करे तब इसी अवलेह को सायंकाल थोड़े मात्रा में गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए।

क्वाथ के चौथाई शेष रहने पर हरीतकी को स्विन्न (परिपक्व) समझना चाहिए। इस हरीतकी को तैल एक कुडव तथा घृत एक कुडव में भूनकर तामा के कलईदार पात्र में रखकर लालवर्ण होने तक पकावे। हर्रा एक सौ, चातुर्जात एक २ पल पोटली में बांधकर यव को क्वाथ करे। (अवलेह सिद्ध करने के पहले हर्रें, चातुर्जात को पोटली में बाँधकर दोला यन्त्र के द्वारा बड़े वर्तन में दशमूलादि द्रव्य, यव तथा पांच आढ़क पानी मिलाकर क्वाथ करे। चौथाई क्वाथ शेष रहने पर हर्रें सिद्ध हो जाता है अवलेह पकाने के पहले हर्रें को घृत तथा तैल में भून लेना चाहिए उसके बाद क्वाथ छानकर उसमें गुड़ डालकर पकाना चाहिए और भुने हर्रें एवं प्रक्षेप के चूर्ण को मिलाकर अवलेह सिद्ध होने पर उतार लेना चाहिए एवं ठंढा होने पर मधु तथा चातुर्जात चूर्ण मिलाकर घृतस्निग्ध वर्तन में बन्द कर रख देना चाहिए) ॥ ६६–७५ ॥

वासिष्ठहरीतक्यवलेहः—

यवाढकं सप्त जलाढकानि हरीतकीनां च शतं गुरूणाम्।
दन्त्यश्वगन्धाचिरबिल्वमूलं भल्लातकांश्चापि च पक्वबिल्वम् ॥ ७६ ॥
उभे हरिद्रे गजपिप्पली च मूलानि पत्राणि च चित्रकस्य।
पिप्पल्यपामार्गमथात्मगुप्ता सर्वाणि कुर्यात्पलसंमितानि ॥ ७७ ॥
लौहे समादाय पचेत्कटाहे द्विपक्वमूलं च यवप्रमाणम्।
मृद्वग्निसिद्धांश्च यवान्विदित्वा शनैः प्रयत्नादवतारयेच्च ॥ ७८ ॥
निःस्राव्य तेनैव जलेन सम्यक् सार्धं पुराणस्य शतं गुडस्य।
भूयो गुरूणामथ तत्र दद्याद्धरीतकीनां च सहस्रमन्यत् ॥ ७९ ॥
प्रस्थं पुराणस्य घृतस्य चैव नवस्य तैलस्य च तावदेव।
शीते मधु स्नेहसमं च दद्यात्पलानि चाष्टावथ पिप्पलीनाम् ॥ ८० ॥
पथ्ये सलेहे त्वथ भक्ष्यमाणे सर्वा रुजो नाशयतो हि मासात्।
मासद्वयेनैव च नेत्ररोगान् हतो हि गार्ध्र लभते च चक्षुः ॥ ८१ ॥
मासैस्त्रिभिर्नाशयतो हि कुष्टं विशीर्णतां चाङ्गुलिनासिकानाम्।
भगन्दरश्लीपदवातगुल्मानर्शांस्यथो मासचतुष्टयेन ॥ ८२ ॥

केशान् घनान्कुञ्चितदीर्घनीलान्स पञ्चभिश्चैव करोति मासैः ।
सहस्रसङ्ख्यां च तथोपयुज्य बलं लभेतोत्तमकुञ्जरस्य ॥ ८३ ॥
स्वरं मयूरस्य जवं हयस्य शरच्छशाङ्कस्य तथैव कान्तिम् ।
सौभाग्यमेधास्मृतिसत्त्वतेजःशोभान्वितः पद्मसमानगन्धः ॥ ८४ ॥
जीवेत्समानां च सहस्रमन्यत्प्रयोगकालादिति सिद्धवाक्यम् ।
न चान्नपानेऽध्वनि मैथुने वा नरेण किंचित्परिहार्यमस्मिन् ॥
समीक्ष्य कल्पं तु रसायनानां चकार योगं भगवान्वसिष्ठः ॥ ८५ ॥

वासिष्ठ हरीतक्यवलेह—यव एक आढ़क, बडे २ हरड़ एक सौ, दन्तीमूल, अश्वगन्धा, चिरबिल्व (पूतीकरञ्ज) का मूल, शु० भल्लातक, पका बेल, आमा-हल्दी, दारुहल्दी, गजपीपर, चित्रक का मूल तथा पत्र, पीपर, अपामार्ग, केवाछ का बीज एक २ पल—इन द्रव्यों को मोटा चूर्ण बनाकर लोहे के वर्तन में छोड़ दे, और उसमें जल सात आढ़क भर दे । तथा दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, स्योनाक, पाढ़ल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) का मोटा चूर्ण एक आढ़क डाल दे । यव तथा हर्रे को पोटली में बांधकर दोला यन्त्र मे लटका दे । और मन्द आँच से पकावे । यव को परिपक्व जानकर चतुर्थांश, शेष क्वाथ को उतार एवं छानकर उसमें पुराना गुड एक सौ पल, दूसरे उवाले हुए हरड एक हजार, पुराना घृत एक प्रस्थ, नवीन तैल एक प्रस्थ, डाल दे और पकावे, (हरड को घृत तथा तैल मे भून लेना चाहिए) अवलेह सिद्ध हो जाने पर उतार कर ठंढा कर मधु एक प्रस्थ, पीपर चूर्ण आठपल छोडकर मिला ले । इसमें से दो हर्रे तथा एक पल अवलेह प्रतिदिन एकमास तक सेवन करने से सभी प्रकार के रोगों को नाश करते हैं । दो मास तक सेवन करने से नेत्र रोग को नाश करते हैं तथा गृध्र के समान दृष्टि प्राप्त होती है । तीन मास तक सेवन करने से सडे हुए अंगुली एवं नासिका के कुष्ठ को नाश करते हैं । चार मास तक सेवन करने से भगन्दर, श्लीपद, वातगुल्म तथा अर्शरोग को नाश करते है । पांच मास तक सेवन करने से यह अवलेह बालों को घना तथा टूटे बालों को लम्बा एवं काला बनाता है । एक हजार हरीतकी को खाकर मनुष्य उत्तम हाथी के समान वल प्राप्त करता है । मोर के समान स्वर, घोडे के समान वेग, शरत्कालीन चन्द्रमा के समान कान्ति को प्राप्त करता है । सौभाग्य, मेधा (धारणा शक्ति), स्मृति (स्मरण शक्ति), सत्त्व (पराक्रम), तेज तथा शोभा को प्राप्त करता है । पद्म के समान गन्ध से युक्त होकर, प्रयोग काल से एक हजार वर्ष तक जीवित रहता है । यह सिद्ध वाक्य है । अन्न-पान, मार्गगमन, मैथुन आदि

का निषेध नहीं है। भगवान् वसिष्ठ ने इस योग को रसायनों में उत्तम कल्प समझ कर बनाया है ॥ ७६–८५ ॥

वासाहरीतक्यवलेहः—

तुलामादाय वासायाः संक्वाथ्याष्टगुणे जले।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढक भिषक् ॥ ८६ ॥
गुरूणामभयानां तु खण्डाच्छुद्धात्तथा शतम्।
शीतीभूते निदध्यात्तु क्षौद्रस्याष्टौ पलानि च ॥ ८७ ॥
वंशोद्भवायाश्चत्वारि पिप्पल्यर्धपलं तथा।
चातुर्जातपलं चैव सर्वदा हन्ति सेवितः ॥ ८८ ॥
विद्रधिं जठरं गुल्मं रक्तपित्तं सुदारुणम्।
श्वासं क्षयं तथा कासं तृष्णाहृद्रोगपीनसान् ॥ ८९ ॥
पलार्धं भक्षयेदस्य यथेष्टं चात्र भोजनम्।

वासाहरीतक्यवलेह—अडूसा एक तुला लेकर अठगुने जल में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को छानकर उसमें बड़े २ हरड एक आढक, शक्कर एक सौ पल मिलाकर पुनः पकावे। ठंढा होने पर मधु आठ पल, वंशलोचन चार-पल, पीपर चूर्ण दो पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण एक पल छोड़कर मिला दे। यह अवलेह हमेशा सेवन करने से विद्रधि, उदररोग, गुल्मरोग, भयंकर रक्तपित्त, श्वासरोग, क्षयरोग, कास, तृष्णा; हृदय-रोग तथा पीनस (पुराना दुर्गन्ध युक्त स्राव) को नाश करता है। इस अवलेह को आधा पल की मात्रा में सेवन करे तथा अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करे ॥

गुल्मे दन्तीहरीतक्यवलेहः—

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ॥ ९० ॥
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च।
अष्टभागावशेषं च रसं पूतमधिश्रयेत् ॥ ९१ ॥
दन्तीसमं गुडं पूतं क्षिपेत्तत्राभयाश्च ताः।
तैलार्धकुडवं चैव त्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ॥ ९२ ॥
पलार्धं चूर्णितं दद्यात् पिप्पलीविश्वभेषजम्।
लेहवत्साधयेत्तं च शीते तैलसमं मधु ॥ ९३ ॥
क्षिपेच्चूर्णं पलं चैकं त्वगेलापत्रकेसरात्।
ततो लेहपलं लिह्याज्जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ॥ ९४ ॥
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषान् प्रशमयत्यलम्।
गुल्मं श्वयथुमर्शांसि पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ९५ ॥

हृद्रोगं ग्रहणीदोषं कामलां विषमज्वरम् ।
कुष्ठं प्लीहानमानाहं तथा हन्त्युपसेवितः ॥ ९६ ॥
न चात्र परिहार्यं स्याद्भोज्यो मांसरसौदनः ।

गुल्मरोग में दन्तीहरीतक्यवलेह—हर्रे पच्चीसपल, दन्तीमूल पच्चीसपल, चित्रक पच्चीसपल, लेकर एक द्रोण जल में क्वाथ करे, अष्टमांश शेष क्वाथ को छानकर पुनः आगपर चढावे तथा उसमें गुड दन्ती के समभाग—(पच्चीसपल) एवं उन हरड़ों को छोड़कर पकावे और तैल आधा कुडव (दो पल) निशोथ चूर्ण चार पल, पिप्पली चूर्ण आधा पल, सोंठ चूर्ण आधा पल मिला दे और अवलेह सिद्ध कर ले । ठंढा होने पर मधु आधा कुडव (दो पल), दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—इन द्रव्यों का चूर्ण एक पल मिला दे । इसके बाद इसमें से एक हरड़ खाकर अवलेह एक पल चाटे । यह अवलेह सुखपूर्वक विरेचन करता है और दोषों को अच्छी तरह शान्त करता है । यह अवलेह सेवन करने से गुल्मरोग, शोथ, अर्शरोग, पाण्डुरोग, अरोचक, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कामला, विषमज्वर, कुष्ठरोग, प्लीहावृद्धि तथा आनाह को नाश करता है । इसके सेवन काल में कोई चीज निषिद्ध नहीं है । मांसरस तथा भात खाना चाहिए ॥

कासे व्याघ्रीहरीतक्यवलेहः—

व्याघ्रीशतं हरीतक्यो दत्त्वा च शतसंमिताः ॥ ९७ ॥
जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ।
आलोड्यार्धतुलां तस्मिन् गुडस्य त्वभयाश्च ताः ॥ ९८ ॥
प्रक्षिप्यास्मिन् घनीभूते त्वगेलापत्रकेसरम् ।
मगधोषणसंयुक्तं पालिकं, चार्धकार्षिकम् ॥ ९९ ॥
यवक्षारं च संचूर्ण्य तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्पुनः ।
मधुनः पलषट्केन युक्तः कासक्षयापहः ॥ १०० ॥
स्वरवर्णावहः पुंसामग्नेर्दीप्तिकरः परम् ।

कासरोग में व्याघ्री हरीतक्यवलेह—व्याघ्री (भटकटैया) का फल एक सौ, हरड़ एक सौ, लेकर चौगुने जल में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को छानकर उसमें गुड़ आधा तुला (पचासपल), पूर्वोक्त हरड़, छोड़कर पुनः पकावे, गाढ़ा होने पर दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—इन द्रव्यों का चूर्ण एकपल, मरिच चूर्ण एक पल, यवक्षार आधा कर्ष मिला दे । ठंढा होने पर मधु छः पल मिलाकर रख दे । यह अवलेह कासरोग को दूर करने वाला है । यह अवलेह, स्वर तथा वर्ण (कान्ति) देनेवाला मुख्य रूप से अग्नि को प्रदीप्त करने वाला है ॥

सर्वकासे द्वितीयो व्याघ्रीहरीतक्यवलेहः—

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुतां च ।
हरीतकीनां च शतं विदध्यादथात्र पक्त्वा चरणावशेषम् ॥ १०१ ॥
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते ।
कटुत्रिकं च त्रिपलप्रमाणं पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र ॥ १०२ ॥
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि प्रयुज्यमानो विधिनाऽवलेहः ।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च द्विदोषजं कासमपि त्रिदोषम् ॥ १०३ ॥
क्षतोद्भवं च क्षयजं च हन्यात्सपीनसश्वासमुरःक्षतं च ।
यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ १०४ ॥

सभी प्रकार के कास रोग मे द्वितीय व्याघ्रीहरीतक्यवलेह—कण्टकारी (भटकटैया) का मूल, पुष्प तथा पत्र (पञ्चांग) एक तुला लेकर एक द्रोण जल में भिगो दे और हर्रे एक सौ डाल कर पकावे, चौथाई शेष क्काथ को छानकर उसमें पूर्वोक्त हर्रे एक सौ, गुड एक सौ पल छोड़कर पुनः पकावे। अवलेह सिद्ध हो जाने पर उतार ले तथा शीतल होने पर कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), चूर्ण तीन पल, पुष्परस (मधु) छः पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण एक पल मिला दे। यह अवलेह अग्निबल के अनुसार विधिपूर्वक सेवन करने से वातजन्य, कफजन्य, वात-कफजन्य, त्रिदोषजन्य, क्षत तथा क्षयजन्य, कास, पीनस (पुराना दुर्गन्धयुक्त नासास्राव), श्वास, उरःक्षत तथा उग्र ग्यारह प्रकार के यक्ष्मारोग को नाश करता है। यह भृगु का बताया रसायन है। (हर्रे को पोटली में बांधकर दोला यन्त्र में पकावे) ॥ १०१–१०४ ॥

प्लीहोदरे रोहितकावलेहः—

पक्त्वा शतं रोहितवल्कलानां पथ्याशतं माहिषमूत्रमग्नौ ।
पादावशेषे खलु पञ्चकोलमुत्सृज्य मूत्रे सह दन्तिनीभिः ॥ १०५ ॥
भूयः पचेद्यावदुपैति लेह पथ्याद्वयं नित्यमथोपयुज्य ।
पञ्चाल्लिहेल्लेहहितं हिताशी प्लीहोदरं हन्ति यकृच्च शीघ्रम् ॥ १०६

प्लीहोदररोग में रोहितकावलेह—रोहित (रोहेड़ा) की छाल एक सौ पल, हरड़ एक सौ लेकर, भैंस के मूत्र चौगुना (दो द्रोण) में अग्नि पर पकावे, चौथाई शेष क्काथ को छानकर उसमें पञ्चकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) का चूर्ण पांच पल, दन्तीमूल चूर्ण एक पल, पूर्वोक्त हरड़ एक सौ, गुड एक तोला मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। इसके बाद दो हर्रे खाकर एक तोला अवलेह प्रतिदिन चाटे। इस अवलेह को हितकर भोजन

करनेवाला सेवन कर प्लीहोदर (पुराना प्लीहावृद्धि) तथा यकृत् रोग को नाश करता है ॥ १०५-१०६ ॥

शोफे पुनर्नवहरीतक्यवलेहः—

प्रस्थं पुनर्नवायास्तु चित्रकस्य तथैव च ।
पाठानागरदन्तीनां भागान्दशपलोन्मितान् ॥ १०७ ॥
दशमूलतुलार्धं तु पथ्यानां शतमेव च ।
चतुर्गुणेऽम्भसः पक्त्वा पूत पादावशेषितम् ॥ १०८ ॥
गुडस्यैकां तुलां क्षिप्त्वा लेहवत्साधु साधयेत् ।
क्षिपेच्चूर्णीकृतं तत्र त्रिजातं त्रिकटु तथा ॥ १०९ ॥
नागकेसरसंयुक्तं पलांशमुपकल्पितम् ।
शीतीभूते ततो दद्यात्कुडवं माक्षिकस्य च ॥ ११० ॥
अतो लेहपलं लीढ्वा पथ्यां चैकां च भक्षयेत् ।
शोफगुल्मोदरार्शोघ्नी पुनर्नवहरीतकी ॥ १११ ॥

शोफरोग में पुनर्नवा हरीतक्यवलेह—पुनर्नवा (गदहपूरना) एक प्रस्थ, चित्रकमूल एक प्रस्थ, पाठा, सोंठ तथा दन्तीमूल दश २ पल, दशमूल (वेल की छाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) आधा तुला (पचास पल), हर्रे एक सौ—इन द्रव्यों को चौगुने जल मे पकावे चौथाई शेष क्वाथ को छानकर उसमें गुड़ एक तुला डालकर अवलेह सिद्ध करे तथा त्रिजात-(दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण तीन पल, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) तीन पल, नागकेशर एक पल मिला दे। शीतल होने पर मधु एक कुडव छोडकर अच्छी तरह चला दे। इसके बाद इसमें से एक हर्रे खाकर अवलेह एक पल चाटे। यह पुनर्नवा हरीतकी अवलेह—शोथरोग, गुल्म, उदररोग तथा अर्शरोग को नाश करता है ॥ १०७–१११ ॥

शोफे कंसहरीतक्यवलेहः—

द्विपञ्चमूलस्य तुलाकषाये कंसोऽभयानां च शतं गुडाच्च ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योष त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ११२ ॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुन. सुशीते किंचिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।
एकां ततः प्राश्य तथा च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् । ११३॥
कासज्वरारोचकमेहहिक्काप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ११४ ॥

शोफरोग में कंस हरीतक्यवलेह—दोनों पञ्चमूल (वेल की छाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, बनभंटा भटकटैया, गोखरू) एक

तुला के कषाय (दशमूल एक तुला एक द्रोण जल में पकावे चौथाई शेष कषाय) में हर्रे एक कंस (आढक), गुड़ एक सौ पल डाल कर पकावे, और उसमें व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण तीन पल, त्रिसौगन्ध्य (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण एक पल छोड़ दे। शीतल होने पर मधु आधा प्रस्थ (आठ पल), यवक्षार थोड़ा (एक कर्ष) मिला दे। इस लेह में से एक हरड़ तथा अवलेह एक शुक्ति (अक्ष) सेवन करे। यह अवलेह प्रबल शोथ रोग, कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, हिचकी, प्लीहावृद्धि, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्ररोग, वातरोग तथा वीर्यसम्बन्धी दोष को नाश करता है ॥ ११२–११४ ॥

शोफे हरीतक्यवलेहः—

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।
दत्त्वा गुडतुलां तस्मिँल्लेहे दद्यात्सुचूर्णितम् ॥ ११५ ॥
त्रिजातकं तथा व्योषं किंचिच्च यवशूकजम् ।
प्रस्थार्धं च हिमे क्षौद्रात्स निहन्त्युपयोजितः ॥ ११६ ॥
प्रवृद्धशोफज्वरमेहगुल्मकार्श्यामवाताम्लकरक्तपित्तम् ।
वैवर्ण्यमूत्रानलशुक्रदोषश्वासारुचिप्लीहगरोदरांश्च ॥ ११७ ॥

शोफरोग में हरीतक्यवलेह—दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) का कषाय एक आढक में हरड़ एक सौ पकावे और उसमें गुड एक तुला डाल दे, अवलेह सिद्ध होने पर त्रिजातक (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) एक पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण तीन पल, यवक्षार थोड़ा (एक कर्ष) छोड़ दे और शीतल होने पर आधा प्रस्थ मधु मिला दे। यह अवलेह (एक हरड़ तथा एक अक्ष अवलेह) सेवन करने से प्रवृद्ध शोथरोग, ज्वर, प्रमेह, गुल्मरोग, कृशता, आमवात, अम्लपित्त, रक्तपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष, श्वास, अरुचि, प्लीहावृद्धि, गर (संयोगज विष) तथा उदर रोगों को नाश करता है ॥ ११५–११७ ॥

अर्शःपीनसप्रयोश्चित्रकहरीतक्यवलेहः—

चित्रककषायपलशतममृताधात्रीरसं च तुल्यांशम् ।
संमिश्र्य गुडशतं च द्विपञ्चमूलीकषायेण ॥ ११८ ॥
तत्तुल्येन हरीतक्याढकमेकं विपाच्य गुडपाकम् ।
अर्धप्रस्थं मधुनस्तस्मिन्दत्त्वा ततोऽन्येद्युः ॥ ११९ ॥
द्वे द्वे पले निदध्यादेलात्वक्पत्रत्रिकटुकानाम् ।
सयवक्षारार्धपलं यथाग्नि पश्चात्प्रयुञ्जीत ॥ १२० ॥

एतद्रसायनोत्तममश्विभ्यामग्निवृद्धये प्रोक्तम्।
उपयुक्तवतां पुंसामपि काष्ठतृणानि जीर्यन्ति ॥ १२१ ॥
अर्शःश्वासभगन्दरकासक्रिमिशोफकुष्ठगुल्मांश्च।
मासद्वयोपयोगादेतद्विनाशयत्यन्त्रवृद्धिमपि ॥ १२२ ॥
रोगानीकमसेतं विशेषतो हन्ति राजयक्ष्माणम्।
अजितमपि भेषजशतैः पीनसरोगं त्र्यहाज्जयति ॥ १२३ ॥

अर्श तथा पीनस रोग मे चित्रक हरीतक्यवलेह—चित्रक का कषाय एक सौ पल, गुडूची का रस एक सौ पल, आंवला का रस एक सौ पल, द्विपञ्चमूल (बेल की छाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) कषाय एक सौ पल, गुड एक सौ पल, हरीतकी (हरड) एक आढक—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर पाकविधि से पकावे। शीतल होने पर मधु आधा प्रस्थ डालकर उसके दूसरे दिन इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच)—इन द्रव्यों का चूर्ण दो २ पल, मिला दे और यवक्षार आधा पल छोड दे। इसके बाद अग्नि के अनुसार प्रयोग करे। इस उत्तम रसायन को अग्निवृद्धि के लिये अश्विनीकुमारों ने कहा था। यह अवलेह उपयोग करनेवाले व्यक्ति के काष्ठ तथा तृण को भी खाने पर पचा देता है। यह अवलेह अर्शरोग, श्वासरोग, भगन्दर, कास, कृमिरोग, शोथ, कुष्ठरोग तथा गुल्मरोग को नाश करता है। यह अवलेह दो मास तक सेवन करने से आन्त्रवृद्धि को भी नाश करता है। विशेष कर राजयक्ष्मा को भी नाश करता है। इस अवलेह के सेवन करने से सैकडों औषधियों से अजेय पीनस रोग तीन दिन में छोड देता है ॥ ११८–१२३ ॥

मन्दाग्नौ द्वितीयश्चित्रकहरीतक्यवलेहः—

चित्रकपलशतमभिनवमाहृत्य कषायमेव कुर्वीत ॥
धात्रीरसस्य पलशतममृतायाः स्वरसमेव तत्तुल्यम् ॥ १२४ ॥
दशमूलस्य पलशतमष्टाविंशत्तथा जलद्रोणे।
अभयाढकं च भिषजा साध्यं पूते कषायेऽस्मिन् ॥ १२५ ॥
शुद्धगुडस्य शतं स्याद्रसेन चालोड्य सपदि तत्रैव।
अभयाश्च ताः समस्ता मृदुना ज्वलनेन मार्दवं नेयाः ॥ १२६ ॥
मधुनः पलानि षोडश तस्मिन्देयानि शीतलीभूते।
त्वक्पत्रमरिचकेसरमागधिकैलापले द्वे स्युः ॥ १२७ ॥
यवक्षारपलैकमेतत्प्राश्याग्निमात्रया विद्वान्।
जरयति तृणकाष्ठान्यपि त्रिसप्तदिवसोपयोगेन ॥ १२८ ॥
कासश्वासभगन्दरकुष्ठान्यष्टादशोदराण्यष्टौ।

मासोपयोगादेतत्क्षतक्षयं हन्ति राजयक्ष्माणम् ॥ १२९ ॥
पण्ढोऽप्यषण्ढतां च याति वर्षमात्रोपयोगेन ।
सुरलोकरोगनिचयप्रशमनकरणैकलक्ष्यमाहात्म्यौ ॥ १३० ॥
दिव्यं रसायनमिदं कृतवन्तावश्विनौ देवौ ।

मन्दाग्नि में द्वितीय चित्रक हरितक्यवलेह—चिकित्सक नवीन चित्रकमूल एक सौ पल लेकर (चौगुने जल में चौथाई शेष) कषाय बनावे तथा आंवला का रस एक सौ पल, गुडूची स्वरस एक सौ पल, दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, सरिवन, पिठवन वनभंटा, भटकटैया, गोखरू का कषाय एक सौ अट्ठाइस पल, तथा जल एक द्रोण में हरड़ एक आढक पकावे । चतुर्थांश शेष क्वाथ को छान कर उसमें स्वच्छ गुड एक सौ पल तथा पूर्वोक्त हरड़ एक आढ़क को मिलाकर चलावे और मन्द आंच से मुलायम होने तक पुनः पकाकर अवलेह सिद्ध करे । शीतल होने पर मधु सोरह पल, दालचीनी, तेजपत्र, मरिच, नागकेशर, पीपर तथा इलायची चूर्ण दो २ पल, यवक्षार एक पल मिलाकर, घृतस्निग्ध पात्र में रख ले । इस अवलेह को अग्नि के अनुसार मात्रापूर्वक विद्वान् मनुष्य एक्कीस दिन तक सेवन करने से काष्ठ तथा तृण को भी खाकर पचा देता है । यह अवलेह एक मास तक प्रयोग करने से कास, श्वास, भगन्दर, अट्ठारह प्रकार के कुष्ठरोग, आठ प्रकार के उदररोग, क्षतक्षय तथा राजयक्ष्मा रोग को नाश करता है । एक वर्ष तक प्रयोग करनेवाला नपुंसक भी पुंस्त्व प्राप्त करता है । देवलोक के रोगसमूहों को शान्त करने के माहात्म्य को एक मात्र लक्ष्य रखनेवाले दोनों अश्विनीकुमारों ने इस दिव्य रसायन को बनाया ॥

हलीमके आमलकावलेहः—

रसमामलकानां तु सुशुद्धं यन्त्रपीडितम् ।
द्रोणं पचेत्तु मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥ १३१ ॥
चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकद्विपलं तथा ।
प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेषितम् ॥ १३२ ॥
शृङ्गवेरपले द्वे च तुगाक्षीर्योः पलद्वयम् ।
तुलार्धं शर्करायाश्च तद्घनीभूतमुद्धरेत् ॥ १३३ ॥
मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलसंमितम् ।
हलीमकं च पाण्डुत्वं कामलां चापकर्षति ॥ १३४ ॥

हलीमक रोग में आमलकावलेह—परिपक्व आंवला को यन्त्र से कूट कर रस निकाल छानकर एक द्रोण ग्रहण करे और उसमें पीपर का चूर्ण एक प्रस्थ, मुलेठी चूर्ण दो पल गोस्तनिका (उत्तरापथिका द्राक्षाविशेष) एक

प्रस्थ तथा द्राक्षा (मुनक्का) का कल्क एक प्रस्थ, अदरक का कल्क दो पल, वंशलोचन दो पल, शक्कर आधा तुला (पचास पल) मिलाकर मन्द आंच से पकावे गाढ़ा होनेपर उतार ले। शीतल होने पर मधु एक प्रस्थ मिलाकर अच्छी तरह मिला दे और पात्र में रख दे। इस सिद्ध अवलेह को एक पल की मात्रा में चाटे। यह अवलेह हलीमक (पाण्डुरोग के बाद शरीर का हरितवर्ण होना 'सब्जबुहुस"), पाण्डुरोग तथा कामला (पीलिया) को दूर करता है ॥ १३१–१३४ ॥

कामलायां विडङ्गाद्यवलेहः—

विडङ्गत्रिफलामुस्तमधुकंक टुरोहिणी।
अयोरजो हरिद्रे च चित्रकं गुडशर्करे ॥ १३५ ॥
खदिरस्य कषायेण चूर्णान्येतानि साधयेत्।
मृद्वग्निसिद्धं तं लेहं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १३६ ॥
स लेहः कामलां हन्यादपि संवत्सरोत्थिताम्।
नाशयेत् पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापि पैत्तिकम् ॥ १३७ ॥

कामलारोग में विडंगाद्यवलेह—विडंग, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), मोथा, मुलेठी, कुटकी, लौहभस्म, आमाहल्दी, दारुहल्दी, तथा चित्रक—इन द्रव्यों को (लौहभस्म छोड़कर) सूक्ष्म चूर्ण बनावे (चूर्ण के चौगुना) खैर के कषाय में (चूर्ण के चौगुना) गुड शक्कर तथा चूर्ण को मिलाकर मन्द आंच से पकाकर अवलेह सिद्ध करे। ऐसे अवलेह को एक भाग मधु तथा आधा भाग घृत मिलाकर (एक पल की मात्रा में) चाटे। यह अवलेह एक वर्ष के पुराने कामला (पीलिया), पाण्डुरोग तथा पैत्तिक शोथरोग को नाश करता है ॥ १३५–१३७ ॥

श्वासे हरीतक्यवलेहः—

भार्गीजटापलशतं सलिलार्मणाभ्यां
युक्तं च मूलतुलया सहितं विपाच्य।
पादस्थिते तु शतमत्र हरीतकीनां
पक्तव्यमुज्ज्वलगुडस्य शतेन सार्धम् ॥ १३८ ॥
उत्तार्य तत्र शिशिरे मधुनः पलानि
चत्वारि च त्रिगुणितानि पलत्रयं च।
व्योषं त्रुटित्वगिभकेसरपत्रकाणा-
मेषां पल खलु निधेयमथोपयुज्य ॥ १३९ ॥
श्वासं सकासमपि शोषमथातिहिक्का-
मैकाहिकं ज्वरमपीनसमुत्कटं च।

हन्याद्रसायनमिदं हि पुरन्दरस्य
प्रोक्तं सहस्रकरपुत्रभिषग्वराभ्याम् ॥ १४० ॥

श्वासरोग में हरीतक्यवलेह—भांगरा की जड़ एक सौ पल, मूलतुलया (दशमूल—बेल की छाल, गम्भारी, अरलु, पादल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) एक तुला, जल दो द्रोण में क्वाथ करे, चौथाई शेष क्वाथ को छानकर उसमें हर्रे एक सौ—तथा स्वच्छ गुड एक सौ पल मिलाकर पुनः पकावे और अवलेह सिद्ध हो जाने पर उतार ले। ठंढा होने पर मधु बारहपल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) तीनपल, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, तेजपत्र एक पल—इन द्रव्यों का चूर्ण मिलाकर चला दे। इस अवलेह को खाकर मनुष्य श्वास, कास, शोथ, अत्यन्त हिचकी, ऐकाहिकज्वर, उग्र अपीनस (पूतिगन्ध युक्त चिरकालीन नासास्राव) को नाश करता है। इस रसायन को सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमारों ने इन्द्र के लिये बताया था ॥ १३८–१४० ॥

अर्शसि कुटजावलेहः—

तुलां कुटजमूलस्य जलद्रोणे विपाचयेत् ।
चतुर्भागावशेषं तु कषायमुपकल्पयेत् ॥ १४१ ॥
वस्त्रपूतं पुनः क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटु त्रिफलां तथा ॥ १४२ ॥
रसाञ्जनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषां बिल्वं प्रक्षिपेत्तु पलं पलम् ॥ १४३ ॥
त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ।
मधुनः कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ १४४ ॥
शमयेल्लेह एषस्तु ह्यर्शो रक्तसमुद्भवम् ।
वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १४५ ॥
ये च दुर्नामजा रोगास्तांश्च सर्वान् व्यपोहति ।
रक्तपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १४६ ॥
ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ।
अनुपाने घृतं दद्याद्दधि तक्रं जलं पयः ॥ १४७ ॥
जीर्णे तु पथ्यभोजी स्यादर्शोभ्यः प्रविमुच्यते ।
रोगानीकवधार्थाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १४८ ॥

अर्शरोग में कुटजावलेह—कोरैया (कुटज) की जड़ एक तुला, एक द्रोण जल में पकावे, चतुर्थांश शेष क्वाथ को वस्त्र से छानकर पुनः अवलेह होने तक पकावे और उसमें शु० भल्लातक, विडंग, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच),

त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), रसांजन, चित्रक, इन्द्रयव, वच, अतीस तथा बेल का गूदा—इन द्रव्यों का चूर्ण एक २ पल मिला दे। ठंढा होने पर मधु एक कुडव तथा घृत एक कुडव डालकर चला दे। यह अवलेह रक्तोद्भव (रक्तस्रावी रक्तार्श), वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक अर्शरोग को शान्त करता है। जितने दुर्नामज अर्श, भगन्दर आदि रोग हैं उन सभी रोगों को तथा रक्तपित्त, अतिसार, पाण्डुरोग, अरोचक, ग्रहणी की कमजोरी, कृशता, शोथ एवं कामलारोग को भी दूर करता है। अनुपान में घृत, दही, तक्र, जल तथा दूध का प्रयोग करे। परिपाक होने पर पथ्यपूर्वक भोजन करे। ऐसा करने से सभी प्रकार के अर्शरोगों से मुक्त हो जाता है। रोग समूहों को नाश करने के लिये यह कौटजलेह (कुटजावलेह) कहा गया है॥ १४१–१४८॥

अर्शसि द्वितीयः कुटजावलेहः—

कुटजत्वचं विपाच्य पलशतमात्रां महेन्द्रसलिलेन।
यावत्स्याद्धि शृत तद् द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः॥ १४९॥
मोचरसश्च समङ्गा फलिनी च पलांशकास्त्रिभिरतैश्च।
वत्सकबीज तुल्य चूर्णीकृतमत्र दातव्यम्॥ १५०॥
पूतः क्वथितः सान्द्रः स रसो दर्वीप्रलेपको ग्राह्यः।
मात्राकालोपहिता रसक्रियेपा जयति रक्तम्॥ १५१॥
छगलीपयसा युक्ता पेयामण्डेन वा यथाग्निबलम्।
जीर्णौषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुञ्जीत॥ १५२॥
रक्तार्शांस्यतिसारं रक्तं सासृग्दर निहन्त्याशु।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैपा ह्युभयभागम्॥ १५३॥

अर्शरोग में द्वितीय कुटजावलेह—कुटज (कौरैया) की छाल एक सौ पल, एक द्रोण माहेन्द्र सलिल (आकाश जल) में पकाकर अच्छी तरह उसके स्वरस को ग्रहण करे और उसमें मोचरस (सेमर का गोंद), मजीठ, फलिनी (प्रियगु)—एक २ पल, इन्द्रयव एक पल—इन द्रव्यों का चूर्ण छोड़ दे और गाढा होने तक पकावे, दर्वीलेप पाक होने पर ग्रहण करे। यह रसक्रिया समय तथा मात्रा के अनुसार सेवन करने से रक्तार्श को जीत लेती है। अग्नि-बल के अनुसार बकरी का दूध या पेया-मण्ड के साथ मिलाकर सेवन करे। औषधि के परिपाक होने पर बकरी के दूध के साथ जडहन का भात खाय। यह रसक्रिया रक्तार्श, अतिसार, रक्तातिसार, रक्तप्रदर तथा प्रबल ऊर्ध्वभाग तथा अधोभाग से निकलनेवाले रक्तपित्त को नाश करती है॥ १४९–१५३॥

अर्शसि कुटजाष्टकोऽवलेहः—

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत ।
तस्मिन्सुपूते पलसंमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥१५४॥
पाठां समङ्गाऽतिविषे समुस्तं बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्दर्वीप्रलेपस्तु रसस्तु यावत् ॥ १५५ ॥
पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽथवापि ।
निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ १५६ ॥
दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं पित्तं तथाऽर्शांसि सशोणितानि ।
असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ १५७ ॥

अर्शरोग में कुटजाष्टक अवलेह—गिरिमल्लिका (कोरैया) की हरी छाल एक तुला कूटकर (चौगुने जल में पकाकर चतुर्थांश शेष) पकाकर कषाय को छानकर ग्रहण करे और उसमें सेमर के गोंद के साथ पाढ़ी, मंजीठ, अतीस, मोथा, बेल तथा धाय का फूल—एक २ पल को पीसकर कल्क बनाकर छोड़ दे इसके बाद पुनः पकाकर दर्वीलेप पाक अवलेह तैयार करे। इस अवलेह को समय को जाननेवाला जल, मण्ड या बकरी के दूध के साथ पान करे। यह अवलेह सभी प्रकार के उग्र, काला, सफेद, लाल तथा पीतवर्ण के अतिसार को नाश करता है। यह कुटजाष्टक अवलेह अनेक प्रकार के ग्रहणीरोग, रक्तपित्त, रक्तस्रावी अनेक प्रकार के अर्शरोग तथा असाध्य रूप के रक्तप्रदर को अवश्य ही नाश करता है ॥ १५४–१५७ ॥

ग्रहण्यां मधुपाकविधिः—

पाठाऽजमोदा मधुकं समङ्गा मुस्ता जलोशीरविडङ्गधान्यम् ।
बिल्वाग्निशुण्ठीमगधाः सरोध्रश्यामाः कुधात्री करिकुङ्कुमं च ॥१५८॥
जम्ब्वाम्रयोरस्थि सवल्कलं च सर्वाणि चैतानि पलांशकानि ।
द्रोणे जलस्य प्रपचेत्कषायमष्टावशेषं सितवस्त्रपूतम् ॥ १५९ ॥
क्षौद्रं क्षिपेदष्टपलप्रमाणं पलार्धनागाह्वयचन्दनैलाः ।
सहैव संमर्द्य विधाय चूर्णं क्षौद्रान्वितं तच्च पुनर्विपाच्यम् ॥ १६० ॥
उत्तार्य लेहं घृतभाजने च निधापयेत्सप्त दिनानि गुप्तम् ।
तं पाययेद्व्याधिबलं समीक्ष्य जयेच्च सर्वान् ग्रहणीविकारान् ।
अरोचकं जीर्णमथातिसारं तृष्णाम्लपित्तं वमिहृद्ग्रहं च ॥ १६१ ॥

ग्रहणीरोग में मधुपाक विधि—पाठा, अजमोदा, मुलेठी, मंजीठ, जल (सुगन्धवाला), विडग, धनिया, बेलका गूदा, चित्रक, सोंठ, पीपर, लोध, कालानिशोथ, कुधात्री (भुइ आंवला), नागकेशर, जामुन तथा आम की गुठली और छाल—एल २ पल—इन सभी द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे।

अष्टमांश शेष क्वाथ को सफेद वस्त्र से छानकर, मधु आठ पल, नागकेशर, चन्दन, इलायची आधा पल—इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर मधु में मिलाकर पुनः पकावे और अवलेह सिद्ध हो जाने पर उतार कर घृत के वर्तन में भरकर सात दिन तक गुप्त स्थान में रक्खे। इसके बाद व्याधि तथा बल के अनुसार मात्रा पूर्वक पान कराये। यह अवलेह सभी प्रकार के ग्रहणी विकार, पुराना अरोचक, अतिसार, तृष्णा, अम्लपित्त, वमन तथा हृदय की अकड़न को जीत लेता है ॥ १५८–१६१ ॥

कासे कण्टकार्यवलेहः—

समूलफलशाखां तु कुट्टयेत्कण्टकारिकाम्।
तां पचेत्सलिलद्रोणे चतुर्भागावशेषिताम् ॥ १६२ ॥
कषायं तं परिस्राव्य पुनरग्नावधिश्रयेत्।
युक्त्या घृतं च दातव्यं कल्कं चैषां प्रदापयेत् ॥ १६३ ॥
दुरालभा गुडूची च त्र्यूषणं चित्रकस्तथा।
रास्ना कर्कटशृङ्गी च पिप्पलीमूलमेव च ॥ १६४ ॥
एतान्येकपलिकानि तथा फाणितशर्कराम्।
पलानां विंशतिं दत्त्वा तं लेहं सान्द्रमुद्धरेत् ॥ १६५ ॥
शीते दद्यात्पिप्पलीनां चूर्णं चात्र गुडान्वितम्।
कुडवं तु तुगाक्षीर्या मधुनः कुडवं तथा ॥ १६६ ॥
तं लिह्यान्मात्रया लेहं पञ्चकासनिवारणम्।
हृद्रोगानाहहिक्काश्च श्वासं चैवापकर्षति ॥ १६७ ॥

कासरोग में कण्टकारी अवलेह—कण्टकारी का मूल, फल तथा शाखा को कूटे, और उसको एक द्रोण जल में पकावे। चौथाई शेष क्वाथ को छानकर पुनः आग पर चढ़ाये तथा उसमे घृत (एक प्रस्थ) युक्तिपूर्वक डाल दे, और यवासा, गुडूची, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), चित्रक, रासन, काकड़ासिंघी, पिपरामूल—इन द्रव्यों का एक २ पल चूर्ण, फाणित शर्करा (बूरा) वीस पल मिलाकर गाढ़ा अवलेह तैयार करे। ठंढा होने पर पीपर का चूर्ण एक गुड (कुडव), वंशलोचन एक कुडव, मधु एक कुडव मिलाकर अच्छी तरह चला ले और घृत पात्र में रक्खे। पांचो प्रकार के कास (खांसी) को दूर करने वाले इस अवलेह को मात्रापूर्वक चाटे। यह अवलेह हृदयरोग, आनाह (पेट में वायु का भरना), हिचकी तथा श्वास रोग को दूर करता है ॥ १६२–१६७ ॥

शोषे निदिग्धिकाद्योऽवलेहः—

तुलां निदिग्धिकायास्तु तदर्धं ग्रन्थिकस्य च।

चित्रकस्य तदर्धं च दशमूलं च तत्समम् ॥ १६८ ॥
द्रोणद्वयेऽम्भसः क्वाथ्यमष्टभागावशेषितम् ।
पूते क्षिपेत्तदर्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १६९ ॥
सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।
अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातत्रिपलं तथा ॥ १७० ॥
मरिचानां पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
मधुनः कुडवं दत्त्वा भक्षयेत यथाबलम् ॥ १७१ ॥
स्वरबुद्धिकरश्चैव प्रतिश्यायहरः परम् ।
कासश्वासाग्निमान्द्यार्शोगुल्ममेहगलामयान् ॥ १७२ ॥
आनाहमूत्रकृच्छ्रांश्च हन्याद् ग्रन्थ्यर्बुदानि च ।

शोथरोग में निदिग्धिकाद्य अवलेह—निदिग्धिका (भटकटैया) एक तुला, पिपरामूल आधा तुला, चित्रक चौथाई तुला (पच्चीस पल), दशमूल (बेल की छाल, गम्भारी, अरलु, पाढ़ल, अरणी, सरिवन, पिठवन, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू) चौथाई तुला (पच्चीस पल)—इन द्रव्यों को दो द्रोण जल में पकावे । अष्टमांश शेष क्वाथ को छानकर उसमें पुराना गुड़ एक तुला मिलाकर अवलेह के तरह अच्छी तरह सिद्ध करे । अवलेह तैयार होने पर पीपर का चूर्ण आठ पल, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण तीन पल, मरिच चूर्ण एकपल, मधु एक कुडव अच्छी तरह मिला दे और घृतपात्र में रख दे । उसमें से बल के अनुसार एक पल की मात्रा में भक्षण करे । यह अवलेह स्वर एवं बुद्धि का वर्द्धक तथा प्रतिश्याय को अच्छी तरह दूर करने वाला है और कास, श्वास, मन्दाग्नि, अर्शरोग, गुल्मरोग, प्रमेह, गलेका रोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थिवृद्धि तथा अर्बुदों को नाश करता है ॥

उदावर्ते पटोलमूलावलेहः—

पटोलमूलं रजनी त्रिफला चतुरङ्गुलम् ॥ १७३ ॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती कृमिघ्नं च पुनर्नवा ।
कटुका सातला रोध्रं भागान्दशपलोन्मितान् ॥ १७४ ॥
दत्त्वा द्रोणचतुष्कं तु सलिलं पादशेषितम् ।
तैलस्य कुडवं तत्र गुडस्य तु शतं तथा ॥ १७५ ॥
त्रिवृच्चूर्णपलान्यष्टौ लेहवत्साधु साधयेत् ।
चूर्णीकृतं क्षिपेत्तत्र व्योषस्य पलपञ्चकम् ॥ १७६ ॥
पलत्रयं त्रिजातस्य दत्त्वा संघट्टयेत्पुनः ।
ततो यथाबलं खादेत्पलार्धं पिचुमेव वा ॥ १७७ ॥
नाहारे यन्त्रणा काचिन्न विहारे तथैव च ।

उदावर्तविबन्धार्शोगुल्मपाण्डूदरक्रिमीन् ॥ १७८ ॥
कुष्ठमेहारुचीर्हन्ति विड्विबन्धेषु शस्यते ।
लेहः पटोलमूलाख्यः सर्वकर्मसु पूज्यते ॥ १७९ ॥

उदावर्त में पटोलमूलावलेह—पटोलमूल (परोरा की जड़), हल्दी, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), अमलतास, नीलिनी (नीलीवृक्ष), निशोथ, दन्तीमूल, विडंग, पुनर्नवा, कुटकी, सातला, लोध्र—इन द्रव्यों को दश २ पल लेकर चार द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष क्वाथ मे तैल एक कुडव, गुड़ एक सौ पल, निशोथ का चूर्ण आठ पल डालकर लेह के तरह पुनः पकावे, और उसमें व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण पांच पल, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण तीन पल मिलाकर अच्छी तरह चलाकर जार में रख ले। इसके बाद बल के अनुसार आधा पल या एक पिचु (एक अक्ष) की मात्रा में खाय। इसके सेवन-काल मे आहार-विहार में कोई प्रतिवन्ध नहीं है। यह अवलेह उदावर्त, विबन्ध (मलावरोध), अर्शरोग, गुल्मरोग, पाण्डुरोग, उदररोग, कृमिरोग, कुष्ठ, प्रमेह तथा अरुचि को नाश करता है मलावरोध मे प्रशस्त है। यह पटोल नामक अवलेह सभी कार्य में उपयोगी होता है ॥ १७२-१७९ ॥

मुखरोगे दार्व्यवलेहः—

दार्व्यास्तु मूलार्धतुलां जलस्य द्रोणे शृतां पूतचतुर्थशेषाम् ।
भूनिम्बदार्वीखदिरारिमेदैः पुनर्विपक्वं पलिकैश्चतुर्भिः ॥ १८० ॥
पूतं ततो गैरिकचूर्णपादं मन्दानले तच्च पुनर्विपक्वम् ।
सन्नीय शीतं मधुशर्कराभ्यां सदा प्रयोज्यं घृतभाजनस्थम् ॥ १८१ ॥
नानाप्रकारेषु मुखामयेषु सुदारुणेषूग्ररुजेषु चैव ।
प्रशीर्णजीर्णेष्वबलद्विजेषु कृच्छ्रेषु दुष्टेषु व्रणेषु चैव ॥ १८२ ॥
कल्पोऽयमिष्टो मधुकस्य चैव प्रपौण्डरीकस्य वृषस्य चैव ।
जातीरिमेदत्रिफलासमङ्गारोध्रस्य जम्बोः खदिरस्य चैव ॥ १८३ ॥

मुखरोग में दार्वीअवलेह—दारुहल्दी आधा तुला एक द्रोण जल में पकावे चौथाई शेष क्वाथ को छानकर, चिरायता, दारुहल्दी, खैर, इरिमेद (विट्खैर) चार पल—इन द्रव्यों के मोटे चूर्ण को मिलाकर पुनः पकावे और छानकर गैरिक चूर्ण एक पल मिलाकर मन्द आंच से पकावे, शीतल होने पर मधु तथा घृत को मिलाकर घृत के बर्तन में रक्खे और अनेक प्रकार के भयंकर उग्र पीड़ा वाले मुख रोग में, सड़े पुराने, कष्टप्रद, दुर्बल दन्तरोग मे तथा दुष्ट व्रण मे प्रयोग करे। यह कल्प (योग), मुलेठी, प्रपौण्डरीक, अडूसा, चमेली, इरिमेद (विट् खैर), त्रिफला, मंजीठ, लोध, जामुन तथा खैर का बनाकर प्रयोग करना चाहिए ॥ १८०-१८३ ॥

नागराद्योऽवलेहः—

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम्।
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं खण्डस्यार्धशतं तथा॥ १८४॥
व्योषं त्रिजातकं चैव पलांशमुपकल्पयेत्।
बल्यं च वर्ण्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम्॥ १८५॥
शमनं ह्यामवातस्य सौभाग्यकरमुत्तमम्।

नागराद्य अवलेह—सोंठ का चूर्ण आठ पल, घृत पच्चीस पल, दूध दो प्रस्थ, शक्कर पचास पल मिलाकर पकावे। अवलेह सिद्ध होने पर व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण तथा त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) का चूर्ण एक २ पल मिला दे। यह अवलेह बल, कान्ति तथा आयु को बढ़ाने वाला है तथा वलि (मुख में झुरी पड़ना), पलित (असमय में बाल पकना) को नाश करता है। आमवात को शान्त करनेवाला एवं उत्तम सौभाग्य को देनेवाला है॥

कासे कसेर्वाद्योऽवलेहः—

कसेरोस्तु तुलार्धं हि द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत्॥ १८६॥
द्रोणार्धशेषे पूते च दद्याद् गुडतुलां तथा।
सर्पिषः कुडवं दद्याल्लेहवत्साधु साधयेत्॥ १८७॥
व्योषस्य कुडवं चैव त्रिजातं त्रिफलं तथा।
केशरस्य पलद्वन्द्वं चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत्॥ १८८॥
तद्यथाग्निबलं खादेत्कासक्रिमिज्वरापहः।
हृत्पाण्डुरोगवैवर्ण्यदौर्बल्यानाहनाशनः॥ १८९॥
कसेरुकावलेहोऽयं स्वरपुष्टिविवर्धनः।

कासरोग में कसेर्वाद्य अवलेह—कसेरू आधा तुला दो द्रोण जल में पकावे आधा द्रोण शेष क्वाथ को छानकर उसमें गुड़ एक तुला, घृत एक कुडव, (चार पल) डालकर लेह के समान सिद्ध करे और व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) का चूर्ण एक कुडव, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) का चूर्ण तीन पल, नागकेशर चूर्ण दो पल मिला दे। इस अवलेह को अग्नि-बल के अनुसार मात्रापूर्वक खाय। यह कसेरुक अवलेह कास, कृमि तथा ज्वर को दूर करता है, हृदयरोग, पाण्डुरोग, वैवर्ण्य (विवर्णता), दुर्बलता को नाश करता है और स्वर तथा पुष्टि (बल) को बढ़ानेवाला है॥

अर्शसि भल्लातकावलेहः—

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकाऽमृता॥ १९०॥
हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः।

एषां चतुष्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १६१ ॥
भल्लातकसहस्रे द्वे छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ।
तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् ॥ १६२ ॥
तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ।
त्र्यूषणं त्रिफलावह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् ॥ १६३ ॥
सौवर्चलं विडङ्गं च पलिकांशान् प्रकल्पयेत् ।
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ॥ १६४ ॥
सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ।
सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ॥ १६५ ॥
प्रातर्भोजनकाले च ततः खादेद्यथाबलम् ।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगमरोचकम् ॥ १६६ ॥
कृमिगुल्माश्मरीमेहाञ्छूलं चाशु व्यपोहति ।
करोति शुक्रवृद्धिं च वलीपलितनाशनम् ॥ १६७ ॥
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।

अर्शरोग में भल्लातकावलेह—चित्रक, त्रिफला, मोथा, पिपरामूल, चव्य, गुडूची, गजपीपर, अपामार्ग, दण्डोत्पल (कमल का नाल) कुठेरक, (तुलसी-भेद)—चार २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकावे और दो हजार भल्लातक को काटकर छोड़ दे, चतुर्थांशावशिष्ट रहने पर छानकर लोहे के पात्र में भर दे और लौहभस्म आधा तुला, घृत दो कुडव, त्र्यूषण (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, चित्रक, सेन्धानमक, विडनमक, औद्भिदनमक (सौवर्चलनमक) तथा विडंग—इन द्रव्यों का चूर्ण एक २ पल, विधारा चूर्ण एक कुडव, तालमूली (मुसली) का चूर्ण एक कुडव, तथा सूरण चूर्ण आठ पल मिलाकर पकावे। ठंढा होने पर मधु दो कुडव मिश्रित कर दे। इस अवलेह को बल के अनुसार प्रातःकाल भोजन के समय भक्षण करे। यह अवलेह अर्शरोग, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, अरोचक, कृमिरोग, गुल्म, पथरी, प्रमेह तथा शूल को दूर करता है, शुक्रवृद्धि करता है तथा बलि-पलित को नाश करता है और सभी रोगों को दूर करनेवाला उत्तम रसायन है ॥

पीनसे चित्रकावलेहः—

वह्निद्विपञ्चमूल्योस्तु क्वाथे पलशतद्वये ॥ १६८ ॥
अमृताया रसस्यैके पूतेऽस्मिन्नभयाशतम् ।
पचेद् गुडतुलां दत्त्वा यावदापाकलक्षणम् ॥ १६९ ॥
अन्येद्युस्तत्र माक्षीकात् सुशीते कुडवद्वयम् ।

प्रक्षिपेत्त्रिसुगन्धस्य त्रिकटोश्च पलद्वयम् ॥ २०० ॥
प्रत्येकं स्याद्यवक्षारः शुक्तिस्तस्मिन् रसायने ।
उत्तमं कथितं पुंसामश्विभ्यामग्निवृद्धये ॥ २०१ ॥
जीर्यन्त्यपि च काष्ठानि कासश्वासक्षयक्रिमीन् ।
गुल्मोदरार्शः कुष्ठं च जयेच्छोषं भगन्दरम् ॥ २०२ ॥
योगशतैरजेयं च त्र्यहाज्जयति पीनसम् ।

पीनस रोग में चित्रकाद्यवलेह—चित्रक एक सौ पल, द्विपञ्चमूल (बेल की छाल, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, भटकटैया, गोखरू), एक सौ पल—इन द्रव्यों को दो द्रोण जल में क्वाथ कर चतुर्थांश शेष क्वाथ छानकर तथा गुडूची का स्वरस एक सौ पल लेकर, उसमें हर्रे एक सौ, गुड़ एक तुला मिलाकर पाक सिद्ध होने तक पकावे। दूसरे दिन उसमें ठंढा होने पर मधु दो कुडव (आठ पल), त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) चूर्ण तथा त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच) चूर्ण दो २ पल, यवक्षार एक शुक्ति (आधा पल)—इस रसायन में मिला दे। इस उत्तम अवलेह को अश्विनीकुमारों ने पुरुषों के अग्नि को बढ़ाने के लिये कहा है। यह अवलेह काष्ठ के समान गरिष्ठ पदार्थ को भी पचा देता है। श्वास, कास, क्षयरोग, कृमिरोग, कुष्ठरोग, सूखारोग तथा भगन्दर को जीत लेता है। सैकड़ों योगों से अजेय पीनसरोग को भी तीन दिन में जीत लेता है॥

रक्तपित्ते खण्डखाद्योऽवलेहः—

शतावरी गुडूची च वृषमुण्डितिकाभयाः ॥ २०३ ॥
तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ।
भार्गी पुष्करमूलं च पृथक्पञ्चपलानि च ॥ २०४ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा ॥ २०५ ॥
पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णितम् ।
खण्डं घृतं समं देयं पलषोडशकं बुधैः ॥ २०६ ॥
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ।
प्रस्थार्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम् ॥ २०७ ॥
शृङ्गी विडङ्गकृष्णे च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम् ।
त्रिफला धान्यकं पत्रं त्र्यक्षं मरिचकेशरम् ॥ २०८ ॥
चूर्णं दत्त्वा तु निर्मथ्य स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदकं ततः ॥ २०९ ॥
गव्यक्षीरानुपानं च सेव्य मांसरसः पयः ।

गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम् ॥ २१० ॥
रक्तपित्तं क्षयं कासं पक्तिशूलं तथैव च ।
वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्त वमिं क्लमम् ॥ २११ ॥
श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ।
आनाहं मूत्रसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ २१२ ॥
चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यो मङ्गल्यः प्रीतिवर्धनः ।
आरोग्यपुत्रदः श्रेष्ठः कायाग्निबलवर्धनम् ॥ २१३ ॥
श्रीकरो लाघवकरः खण्डखाद्यः प्रकीर्तितः ।
छागं पारावतं मांसं तित्तिरिः कुक्करः शशः ॥ २१४ ॥
कुलिङ्गः कृष्णसारश्च तेषां मांसानि योजयेत् ।
नालिकेरपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम ॥ २१५ ॥
शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम् ।
फलं वार्ताकपक्वाम्रं खर्जूरं स्वादुदाडिमम् ॥ २१६ ॥
ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसंभवम् ।
वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्यं प्रकुर्वता ॥ २१७ ॥

रक्तपित्त रोग में खण्डखाद्य अवलेह—शतावरी, गुडूची, अडूसा, मुण्डी, हर्रे, तालमूली (मुसली), गायत्री (खदिर), त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आवला) का छिलका, भार्गी (भागरा) पुष्करमूल पांच २ पल, एक द्रोण जल में पकावे । अष्टमांशावशिष्ट क्वाथ में दिव्यौषधिहत (दिव्यौषधि—ऐन्द्री, ब्राह्मी, सोम, पयस्या, श्वेत कापोती, छत्रा, अतिछत्रा, ब्रह्मसुवर्चला, गोलोमी, आदि औषधियों से भावित कर भस्म किया), माक्षिकहत (मधु की भावना देकर भस्म किया गया) रुक्मलौह (कान्तलौह) का भस्म बारह पल, शर्करा सोलह पल, घृत सोलह पल मिलाकर ताम्र के पात्र में गुडपाक के तरह पकावे, और उसमें मधु आधा प्रस्थ, फिटकरी, शिलाजीत, दालचीनी, काकडासिघी, विडंग, पिप्पली, सोंठ, स्याहजीरा—एक २ पल, त्रिफला, धनिया, तेजपत्र, मरिच, नागकेशर—तीन २ अक्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर स्निग्ध भाण्ड में रख दे । इसमें से समय २ पर बिडालपदक (एक अक्ष) की मात्रा में प्रयोग करे । अनुपान मे गाय का दूध, मांसरस तथा जल सेवन करे । और गुरु, वृष्य (स्निग्ध मासादिक बृंहण) अन्नपान सेवन करे । यह अवलेह रक्तपित्त, क्षय, कास, परिणामशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमि, क्लम, शोथ, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रसंस्राव (बार २ मूत्र निकलना) तथा अम्लपित्त को नाश करता है, यह खण्डखाद्य चक्षुष्यबृंहण, वृष्य, मगलप्रद, प्रीतिवर्धक, आरोग्यप्रद, पुत्रप्रद, उत्तम कामाग्निदीपक, बलवर्द्धक,

श्रीकारक तथा शरीर को स्वस्थ तथा हल्का बनानेवाला है। बकरी, पारावत (परेवा), तित्तिर, कुक्कर, खरगोश, कुलिंग (गौरैया) तथा कृष्ण मृग का मांस सेवन करना चाहिए। नारियल का जल पीना चाहिए। सुनिषण्णक (शिरीयारी चौपतिया) तथा वास्तूक (बथुआशाक), शुष्कमूलक, जीवन्ती, परोरा तथा बृहती का शाक सेवन करना चाहिए। और वार्ताकफल (भंटा का फल), पका आम, खजूर तथा मीठा अनार का फल भक्षण करे। खण्ड-खाद्य को सेवन करनेवाला, ककारादि वर्ग का मांस तथा अनूपदेशोत्पन्न मांस त्याग दे॥ २०३-२१७॥

रक्तपित्ते द्वितीयो वासावलेहः—

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक्॥ २१८॥
चूर्णानामभयानां तु खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा।
द्वे पले पिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्॥ २१९॥
कुडवं पलमानं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम्।
क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती यथाबलम्॥ २२०॥
श्वासकासक्षतच्छर्दीर्यक्ष्माणं च नियच्छति।

रक्तपित्त में द्वितीय वासावलेह—अडूसा एक तुला लेकर अठगुने जल में पकावे चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ में हर्रे का चूर्ण एक आढक तथा शुद्ध खाड़ सौ पल, मिलाकर अवलेह सिद्ध करे। शीत होने पर, पिप्पली चूर्ण दो पल, मधु एक कुडव, चातुर्जात (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर) चूर्ण एक पल छोडकर मिला दे। इस अवलेह को रक्तपित्त का रोगी बल के अनुसार मात्रापूर्वक भक्षण करे। यह श्वास, कास, क्षत, छर्दि तथा यक्ष्मा को दूर करता है॥

श्वासकासयोर्भार्गीगुडावलेहः—

शतं संग्राह्य भार्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा परम्॥ २२१॥
शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे।
पादशेषे च तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिस्रुते॥ २२२॥
आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः।
पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम्॥ २२३॥
शीते तु मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत्।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पालिकं च पृथक् पृथक्॥ २२४॥
कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः।
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं तथा॥ २२५॥

श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा।
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठरानलदीपनः॥ २२६॥
हरीतकीशतैकस्य वारिप्रस्थमिहाधिकम्।

श्वास-कास में भार्गीगुडावलेह—भार्गी (भांगरा) एक सौ पल, दशमूल (बिल्व, गम्भारी, श्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू) एक सौ पल तथा हर्रे एक सौ लेकर चौगुने जल में पकावे। चतुर्थांशावशिष्ट क्वाथ को कपड़ा से छान कर उसमें स्वच्छ गुड एक तुला तथा पूर्वोक्त हर्रे मिलाकर मन्दाग्नि से लेहवत् पाक करे। शीत होने पर मधु छः पल छोड दे। इसके बाद त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) एक २ पल, यवक्षार दो पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। इसमें से एक हर्रे और आधा पल अवलेह भक्षण करे। यह अवलेह भयंकर श्वास तथा पांच प्रकार के कास को नाश करता है, स्वर, वर्ण को प्रसन्न करनेवाला एवं जाठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है। इसमें एक सौ हरीतकी से एक प्रस्थ जल अधिक है॥

श्वासकासयोः कुलत्थगुडावलेहः—

कुलत्थाद्दशमूलाच्च द्विजयष्ट्यास्तथैव च॥ २२७॥
शतं शतं च संग्राह्य चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
अष्टभागावशेषं तु गुडस्यार्धतुलां क्षिपेत्॥ २२८॥
शीतीभूतेऽथ पक्वे च मधुनोऽष्टौ पलानि च।
पलानि षट् तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्वे पले तथा॥ २२९॥
त्रिसुगन्धिसुगन्धं तं खादेदग्निबलं प्रति।
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा॥ २३०॥
मानसान्निध्यसंवादाद् द्विपल त्रिसुगन्धिनः।

श्वास-कास में कुलत्थगुडावलेह—कुलत्थ, दशमूल तथा द्विजयष्टी (बभनेटी) एक २ सौ लेकर चार द्रोण जल में पकावे। अष्टमांशावशेष क्वाथ में एक तुला गुड़ छोड़ दे। अवलेह सिद्ध एवं शीत होने पर मधु आठ पल, वंशलोचन छः पल, पिप्पली दो पल, त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र)—दो पल—इन द्रव्यों को मिला दे। इस अवलेह को अग्निबल के अनुसार भक्षण करे। यह श्वास, कास, ज्वर, हिक्का तथा तमक श्वास को नाश करता है। समीपस्थ परिमाण के आधार पर त्रिसुगन्धि दो पल लेना चाहिए॥

श्वासकासयोः पिप्पलीगुडावलेहः—

पिप्पली मधुसंयुक्ता मेदःकफविनाशिनी॥ २३१॥
श्वासकासज्वरघ्नी च पाण्डुप्लीहोदरापहा।

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुक्रिमिरोगिषु ॥ २३२ ॥
जीर्णज्वरेऽग्निसादे च शस्यते गुडपिप्पली ।

श्वासकास में पिप्पली-गुडावलेह—मधु के साथ पिप्पली मेदा तथा कफ को नाश करनेवाली है । श्वास, कास तथा ज्वर को नाश करती है । पाण्डु, प्लीहा तथा उदर रोग को दूर करती है । यह गुडपिप्पली कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पाण्डु, कृमिरोग, जीर्णज्वर तथा अग्निसाद में उत्तम है ॥

अतीसारे कुटजावलेहः—

कुटजस्य तुलां दत्त्वा चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २३३ ॥
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते गुडतुलार्धकम् ।
घृतस्य कुडवं तत्र क्षिप्त्वा मृद्वग्निना पचेत् ॥ २३४ ॥
प्रतिवापे च देयानि द्रव्याण्येतानि धीमता ।
समङ्गा बिल्वपेशी च मज्जा जम्ब्वाम्रसंभवा ॥ २३५ ॥
पिप्पली चाजमोदा च शुण्ठीमरिचवत्सकम् ।
मुस्ता भल्लातको रोध्रं धातकी गजपिप्पली ॥ २३६ ॥
अम्बष्ठा बालकं चैव द्वे बृहत्यौ सचित्रकौ ।
षड्ग्रन्थ पिप्पलीमूलं विडङ्गानि हरीतकी ॥ २३७ ॥
नागकेसरयष्ट्याह्वारलुत्वक्पत्रकेसरम् ।
विषा चेन्द्रयवाः पाठा सूदमैला जीरकद्वयम् ॥ २३८ ॥
एभिः कर्षसमैर्भागैर्लेहवत्संप्रसाधयेत् ।
मधुनः कुडवं सिद्धे शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ २३९ ॥
कायाग्निबलमालच्य मात्रया योजयेद्भिषक् ।
तक्रेण च, सतक्रं हि भोजनं हितमिष्यते ॥ २४० ॥
एतद्धि ग्रहणीरोगमतीसारान् सुदारुणान् ।
प्रवाहिकां निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २४१ ॥

अतिसार में कुटजावलेह—कुटज एक तुला चार द्रोण जल में पकावे । एक द्रोण अवशिष्ट छने हुए क्वाथ में आधा तुला गुड़, एक कुडव घृत छोड़कर मन्द आंच से पकाये और पकते हुए लेह में मंजीठ, बेल की छाल तथा गुदा, जामुन की मज्जा, आम की मज्जा, पिप्पली, अजमोदा, सोंठ, मरिच, कुटज, मोथा, शु० भल्लातक, लोध्र, धाय का फूल, गजपीपर, अम्बष्ठा (मोई), बालक (सुगन्धवाला), छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, चित्रक, वच, पिपरामूल, विडंग, हरीतकी, नागकेशर, जेठीमधु, अरलु की छाल, पत्र, केशर, अतीस, इन्द्रयव, छोटी इलायची, सफेदजीरा, स्याहजीरा—एक कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । सिद्ध शीत होने पर एक कुडव मधु मिश्रित

कर दे। शरीर के अग्नि और बल को देखकर मात्रापूर्वक तक्र के साथ प्रयोग करे और तक्र के ही साथ हितकर भोजन करे। यह ग्रहणी रोग, भयंकर अतिसार तथा प्रवाहिका को शीघ्र ही नाश करता है। जैसे इन्द्र का वज्र वृक्ष को नष्ट कर देता है ॥ २३३–२४१ ॥

अतीसारे कुटजावलेहः—

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत्।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन्पूते लेहं पुनः पचेत् ॥ २४२ ॥
सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली- ।
धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ २४३ ॥
लिह्याद्बदरमात्रं तु शीतं क्षौद्रेण संयुतम्।
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ २४४ ॥
दुर्वारं ग्रहणीदोषं जयेच्चैव प्रवाहिकाम्।

अतिसार में कुटजावलेह—कुटज का मूल एक सौ पल कूटकर एक द्रोण जल में पकावे। चतुर्थांशावशिष्ट छने हुए क्वाथ को पुनः लेहवत् पकावे। और उसमें सौवर्चल नमक, यवक्षार, विडनमक, सैन्धवनमक, पिप्पली, धाय का फूल, इन्द्रयव तथा स्याहजीरा—दो-दो पल मिलाकर शीत हो जाने पर मधु मिलाकर और एक बेर के बराबर चाटे। यह अवलेह आम तथा पक्व अतिसार, वेदनायुक्त, अनेक वर्णवाले, दुर्निवार ग्रहणीदोष तथा प्रवाहिका को जीत लेता है ॥

अर्शःसु कुटजावलेहः—

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषितम् ॥ २४५ ॥
कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रिकम्।
रोध्रद्वयं मोचरसं बालदाडिमजां त्वचम् ॥ २४६ ॥
बिल्वं कर्कटिकां मुस्तं समङ्गां धातकीपलम्।
पलानि दश दद्याच्च कुटजस्यैव च त्वचः ॥ २४७ ॥
विंशतिं सर्पिषः पूते पलानि विंशतिं गुडात्।
तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥ २४८ ॥
सवातं ग्रहणीदोषं कासश्वासं निबर्हति।

अर्शरोगों में कुटजावलेह—कुटज की छाल एक तुला एक द्रोण जल में पकावे। अष्टमांशावशिष्ट क्वाथ में, तार्क्ष्यशैल, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), रोध्रद्वय (लोध, पठानी लोध), सेमर का गोंद, कच्चे अनार की छाल, बिल्व, काकड़ासिंघी। मोथा, मंजीठ तथा धाय का फूल—एक २ पल, कुटज की छाल दशपल, घृत बीस पल, गुड बीस पल, मिला दे। पककर लेह तैयार हो

जाने पर एक पक्ष तक धान्य में रक्खे। इसको खाने से वातिक ग्रहणीदोष, कास तथा श्वास दूर होता है ॥ २४५-२४८ ॥

जरायां च्यवनप्राशावलेहः—

बिल्वाग्निमन्थकट्वङ्गकाश्मर्यः पाटला बला ॥ २४९ ॥
कणा पर्ण्यश्चतस्रश्च श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्।
शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु ॥ २५० ॥
अभया चामृता मुस्ता जीवकर्षभकौ शटी।
ऋद्धिः पुनर्नवा मेदा सैव्यं चन्दनमुत्पलम् ॥ २५१ ॥
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका।
एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य च ॥ २५२ ॥
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत्।
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्योषधान्यथ तं रसम् ॥ २५३ ॥
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः।
पलद्वादशके भृष्ट्वा दद्याच्चार्धतुलां भिषक ॥ २५४ ॥
शुद्धमत्स्यण्डिकायास्तु लेहवत्साधु साधयेत्।
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥ २५५ ॥
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा।
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेसरात् ॥ २५६ ॥
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः।
कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते ॥ २५७ ॥
वृद्धानां शोषिणां चैव बालानां चाङ्गवर्धनः।
स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ॥ २५८ ॥
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति।
अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम् ॥ २५९ ॥
च्यवनोऽस्य प्रयोगेण सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा।
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम्।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ २६० ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात्।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वं बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ २६१ ॥

जरावस्था में च्यवनप्राशावलेह—बिल्व, अग्निमन्थ, स्योनाक, गम्भारी, पाटला, बला, पिप्पली, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, काकड़ासिंगी, तामलकी (भुइ आंवला), द्राक्षा, जीवन्ती, पुष्करमूल, अगरु, हर्रे, गुडूची, नागरमोथा,

जीवक, ऋषभक, शटी (कपूरकचरी), ऋद्धि, पुनर्नवा, मेदा, सेव्य (खस), रक्तचन्दन, नीलकमल का फूल, विदारीकन्द, अडूसे की जड, काकोली, काकनासिका, ये द्रव्य एक २ पल तथा आंवला पाँच सौ लेकर एकत्र कर एक द्रोण जल मे क्वाथ करे। परिपक्व इन औषधियों को जानकर उस क्वाथ को तथा आँवला को निकालकर छानकर बारह पल तैल तथा घृत में भूनकर आधा तुला शुद्ध (मत्स्यण्डिका) शर्करा मिलाकर अच्छी तरह लेहवत् सिद्ध कर ले। सिद्ध शीत होने पर छः पल शहद, वंशलोचन चार पल, पिप्पली दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को प्रक्षेप कर दे। परम रसायन यह च्यवनप्राश कहा गया है। विशेषकर श्वास-कास को दूर करनेवाला है। वृद्ध, शोषरोगी तथा बालकों के अंग को बढ़ानेवाला है। स्वरक्षय, उरोरोग, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा तथा मूत्र-शुक्रस्थ दोषों को दूर करता है। इस अवलेह को उतनी ही मात्रा मे खानी चाहिए जितने से भोजन मे अरुचि न पैदा करे। च्यवन महर्षि इसके प्रयोग से वृद्ध भी युवा हो गये। इस रसायन के प्रयोग से मनुष्य मेधा, स्मृति, कान्ति, निरोगत्व, आयुवृद्धि, इन्द्रियों को बल, स्त्रीप्रसंगशक्ति, अतिशय अग्निवृद्धि, वर्णप्रसाद तथा वातानुलोमन को प्राप्त करता है। वृद्ध भी कुटीप्रवेश से जराकृत रूप को छोड़कर सभी नवयौवन का रूप प्राप्त करता है ॥ २४९–२६१ ॥

जरायां ब्राह्मरसायनावलेहः—

पञ्चानां पञ्चमूलानां भागान्दशपलोन्मितान् ।
हरीतकीसहस्रं च त्रिगुणामलकं नवम् ॥ २६२ ॥
विदारिगन्धां बृहतीं पृष्ठिपर्णीं निदिग्धिकाम् ।
विद्याद्विदारिगन्धाद्यं श्वदंष्ट्रापञ्चमं गणम् ॥ २६३ ॥
बिल्वाग्निमन्थकट्वङ्गकाश्मर्यः पाटला तथा ।
पुनर्नवा सूर्पपर्ण्यौ बला चैरण्ड एव च ॥ २६४ ॥
जीवकर्षभकौ वोरा जीवन्ती सशतावरी ।
शरेक्षुदर्भकासानां शालीनां मूलमेव च ॥ २६५ ॥
एतेषां पञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत् ।
भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वं साध्यं दशगुणेऽम्भसि ॥ २६६ ॥
दशभागावशेषं तु पूतं तद्ग्राहयेद्द्रवम् ।
हरीतक्यश्च ताः सर्वाः सर्वाण्यामलकानि च ॥ २६७ ॥
तानि सर्वाण्यनस्थीनि फलान्यापोथ्य कूर्चकैः ।
विनीय तस्मिन्निर्यूहे चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ २६८ ॥
मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याः शङ्खपुष्प्याः प्लवस्य च ।
मुस्तानां सविडङ्गानां चन्दनागुरुणोस्तथा ॥ २६९ ॥

मधुकस्य हरिद्राया वचायाः कनकस्य च ।
भागान् पञ्चपलान्कृत्वा सूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ॥ २७० ॥
सितोपलासहस्रं च चूर्णितं तुलयाऽधिकाम् ।
तैलं स्याद् द्व्याढकं तत्र तथा त्रीणि च सर्पिषः ॥ २७१ ॥
साध्यं ताम्रमये पात्रे तत्सर्वं मृदुनाऽग्निना ।
ज्ञात्वा लेहमदग्धं च शीतं क्षौद्रेण संसृजेत् ॥ २७२ ॥
स्नेहार्धं क्षौद्रमानं स्यात् तत्सर्वं घृतभाजने ।
तिष्ठेत्संमूर्च्छितं तस्य मात्रां काले प्रयोजयेत् ॥ २७३ ॥
आहारं नोपरुन्ध्याद्या ह्येवं मात्रा तु सा स्मृता ।
षष्टिकः पयसा चात्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥ २७४ ॥
वैखानसास्तथा चान्ये वालखिल्यास्तपोधनाः ।
रसायनमिदं प्राश्य बभूवुरमितायुषः ॥ २७५ ॥
मुक्त्वा जीर्णं वपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणं वयः ।
वीततन्द्रा-क्लम-श्वासा निरातङ्काः समाहिताः ॥ २७६ ॥
मेधास्मृतिबलोपेताश्चिरकालं तपोधनाः ।
ब्राह्मं तपो ब्रह्मचर्यं चेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥ २७७ ॥
आयुष्कामः प्रयुञ्जानो ब्राह्मं हीदं रसायनम् ।
दीर्घमायुर्बलं चाग्र्यं कामाञ्छ्रेष्ठान्समश्नुते ॥ २७८ ॥

जरावस्था में ब्राह्मरसायनावलेह—पांचों पञ्चमूल दश २ पल, हरीतकी एक हजार, नवीन आँवला त्रिगुण (तीन हजार), विदारीगन्धा, वृहती, पृष्ठिपर्णी, छोटी कटेरी, विदारीगन्धा से लेकर श्वदंष्ट्रा पर्यन्त पंचमगण जाने। विल्व, अग्निगन्ध, स्योनाक, गम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, सूर्पपर्णी (सूर्यवल्ली), वला, एरण्ड, जीवक, ऋषभक, वीरा, जीवन्ती, शतावरी, शर, इक्षु, दर्भ, कास तथा शालि का मूल, इन पञ्चमूलों को पूर्वोक्त मात्रा में लेकर दशगुने जल में सिद्ध करे। दशमांश शेषभाग को छानकर ले ले। सभी हरीतकी तथा सभी आंवला की गुठली निकाल कर कूर्चिका से मसल कर उसके सीठी में मण्डूकपर्णी (ब्राह्मीभेद), पिप्पली, शंखपुष्पी, प्लव (केवटीमोथा), मोथा, विडंग, रक्त-चन्दन, अगुरु, मुलेठी, हरिद्रा, वच तथा शु० धतूर वीज पांच २ पल, छोटी इलायची, दालचीनी—पांच पल, सितोपला (मिश्री) शर्करा एक हजार एक तुला से अधिक—इन सभी द्रव्यों के चूर्ण को तथा तेल दो आढक घृत तीन आढक को लेकर सभी द्रव्यों को ताम्र के पात्र में मृदु आंच से सिद्ध करे। परिपक्व लेह जानकर शीत होने पर डेढ़ आढक मधु मिलाकर घृत के पात्र में रख दे। संमूर्च्छित होने पर उसकी मात्रा समय पर प्रयोग करे। इसकी मात्रा इतनी

होनी चाहिए कि भोजन को न रोके, पुराना होनेपर दूध के साथ साठी का चावल भोजन करना चाहिए। वैखानस बालखिल्य आदि अन्य तपस्वी इस रसायन को खाकर चिरायु हुए थे और पुराने शरीर को छोड़कर युवावस्था को प्राप्त किये थे। तन्द्रा, क्लम, श्वासरहित होकर एवं रोगरहित होकर, मेधा, स्मृति, बल से युक्त तपस्वीगण बहुत कालतक अत्यन्त निष्ठा से ब्राह्मतप ब्रह्मचर्य का पालन किये, आयु को चाहनेवाला इस ब्राह्म रसायन का प्रयोग करता हुआ दीर्घ आयु, बल, यश तथा उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है ॥ २६२–२७८ ॥

क्षतक्षीणेऽमृतप्राशावलेहः—

जीवकर्षभकौ वीरा जीवन्ती नागर शटी।
मेदे पर्ण्यश्चतस्रश्च काकोल्यौ द्वे निदिग्धिके ॥ २७९ ॥
पुनर्नवे द्वे मधुकमात्मगुप्ता शतावरी।
ऋद्धिः परूषकं भार्गी मृद्वीका बृहती तथा ॥ २८० ॥
शृङ्गाटकस्तामलकी पयस्या पिप्पली बला।
बदराक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाणि च ॥ २८१ ॥
फलानि चैवमन्यानि कल्कान्कुर्वीत कार्षिकान्।
धात्रीरसविदारीक्षुच्छागमांसरसान् पयः ॥ २८२ ॥
दत्त्वा प्रस्थोन्मितान् भागान् घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ॥ २८३ ॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत क्षीरमांसरसाशनः।
नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलान् व्याधिकर्षितान् ॥ २८४ ॥
स्त्रीप्रसक्तान् कृशान्वर्णस्वरहीनांश्च बृंहयेत्।
कासहिक्काज्वरश्वासतृष्णादाहान् सपैत्तिकान् ॥ २८५ ॥
निहन्ति छर्दिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम्।

क्षतक्षीण रोग में अमृतप्राशावलेह—जीवक, ऋषभक, वीरा (भूम्यामलकी), जीवन्ती, सोंठ, शटी (कपूरकचरी), मेदा, महामेदा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, काकोली, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, मुलेठी, केवाछ, शतावरी, ऋद्धि, परूषक (फालसा), भांगरा, द्राक्षा, बृहती (वनभंटा), सिघाड़ा, तामलकी (क्षुद्र आँवला), पयस्या (क्षीरविदारी), पिप्पली, बला, बदर, अक्षोट (अखरोट), खजूर, वाताम (बादाम), अभिषुक तथा अन्य फलों के एक २ कर्ष का कल्क, धात्रीरस, विदारी, इक्षु, छाग-मांसरस तथा दूध एक-एक प्रस्थ, सभी द्रव्यों को मिलाकर सिद्ध करे। शीत होने पर आधा प्रस्थ मधु, आधा तुला शर्करा मिला दे। इसके बाद मात्रा-

पूर्वक प्रयोग करे और दूध तथा मांसरस पान करे। यह अवलेह, क्षीणवीर्य, क्षत-क्षीण, दुर्बल, व्याधि से कृश, स्त्री-प्रसंग से दुर्बल तथा स्वर-वर्णहीन व्यक्तियों को बढ़ाता है। पैत्तिक कास, हिक्का, ज्वर, श्वास, तृष्णा तथा दाह को नाश करता है और छर्दि एवं मूर्च्छा, हृद्रोग, योनिरोग तथा मूत्ररोग को दूर करता है ॥ २७९–२८५ ॥

लघुच्यवनप्राशोऽवलेहः—

बिल्वादिपञ्चमूलाब्दबलापर्णीचतुष्टयम् ।
ऋद्धिकृष्णाशटीपथ्याजीवकर्षभकामृताः ॥ २८६ ॥
द्राक्षा पुनर्नवा मेदे जीवन्ती काकनासिका ।
उत्पलैलाजशृङ्ग्यश्च काकोली वृषचन्दनम् ॥ २८७ ॥
विदारीगोक्षुरव्याघ्रीपौष्करं च पलोन्मितम् ।
शतानि पञ्च धात्र्याश्च जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८८ ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा धात्रीस्तास्तैलसर्पिषोः ।
सितार्धतुलया युक्ताः क्वाथं लौहे पुनः पचेत् ॥ २८९ ॥
द्वे पिप्पल्याः पले वांश्याश्चत्वारः षट् च माक्षिकात् ।
चातुर्जातपलं तस्मिन् सिद्धशीते प्रयोजयेत् ॥ २९० ॥
हृद्रोगश्वासहृत्कासवातरक्तक्षयार्तिजित् ।
सेव्योऽयं च्यवनप्राशः स्वर्यो वृष्यो रसायनः ॥ २९१ ॥

लघु च्यवनप्राशावलेह—बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, मोथा, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, ऋद्धि, पिप्पली, शटी (कपूरकचरी), हर्रे, जीवक, ऋषभक, गुडूची, द्राक्षा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा, जीवन्ती, काकनासिका, नीलकमल, इलायची, मेढासिंगी, काकोली, क्षीरकाकोली, अडूसा, रक्तचन्दन, विदारीकन्द, गोक्षुर, व्याघ्री (कटेरी) तथा पुष्करमूल, एक २ पल, आंवला पांच सौ एक द्रोण जल में पकावे और आंवला को निकाल कर क्वाथ को छान ले तथा आंवला की सिट्ठी छानकर छः पल घी तथा छः पल तैल में भूनकर पुनः लौह की कड़ाही में क्वाथ तथा आधा तुला शर्करा डाल कर पाक करे। शीत होने पर पिप्पली दो पल, वंशलोचन चार पल, मधु छः पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेसर) एक पल—इन द्रव्यों का चूर्ण मिला दे। यह च्यवनप्राशावलेह हृद्रोग, श्वास, हृत्कास, वातरक्त को जीत लेता है। यह स्वर बनानेवाला, वृद्धि करनेवाला च्यवनप्राश रसायन सेवन करना चाहिए ॥ २८६–२९१ ॥

शोपेऽमृतप्राशोऽवलेहः—

छागमांसरसक्षीरविदारीक्षुरसाढकम् ।

धात्रीफलरसश्चैव मृद्वीकानां रसो घृतम् ॥ २९२ ॥
पृथक्प्रस्थोन्मितैरेतैः पचेत्कर्षसमैर्भिषक् ।
वाताममधुकाक्षोटशृङ्गाटककसेरुकाः ॥ २९३ ॥
परूषकं शटी भार्गी जीवन्ती च पुनर्नवा ।
खर्जूरं पिप्पली शृङ्गी ह्यात्मगुप्ता सजीवका ॥ २९४ ॥
सिंही व्याघ्रपदी स्याच्च द्राक्षा तामलकी स्थिरा ।
बदरं कदरं चैव जीवनीयानि यानि च ॥ २९५ ॥
तत्सिद्धं राजते पात्रे निधेयं साधु साधितम् ।
प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा ॥ २९६ ॥
त्वगेलापत्रमरिचचूर्णं चार्धपलोन्मितम् ।
विनीय भक्षयेन्मात्रां लिह्यादपि यथाबलम् ॥ २९७ ॥
बलवर्णकरं वृष्यं बृंहणं स्वरबोधनम् ।
कासश्वासारुचि हन्यात्तृण्मूर्च्छासृग्दरं तथा ॥ २९८ ॥
वरं क्षीणक्षतहितं वन्ध्यापुत्रप्रदायि च ।
अमृतप्राशानामेतदमृतं देवतास्विव ॥ २९९ ॥

शोषरोग में अमृतप्राशावलेह—बकरी के मांस का रस, क्षीरविदारी, इक्षुरस—एक आढक, आंवला का रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ—इन द्रव द्रव्यों के साथ, वाताम (बादाम), मुलेठी, अखरोट, सिंघाड़ा, कसेरुक, परूषक, शटी (कपूरकचरी), भांगरा, जीवन्ती, पुनर्नवा, खजूर, पिप्पली, काकड़ासिंघी, केवाछ बीज, जीवक, सिंही (वनभंटा), व्याघ्रपदी, द्राक्षा, भुइं आंवला, स्थिरा (शालपर्णी), बदर (बैर), कदर (कृष्णगर्भक), जीवनीय गण (जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, माषपर्णी,, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को सिद्ध करे और चांदी के बर्तन में रक्खे। शीत होने पर आधा प्रस्थ मधु, आधा तुला शर्करा, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, मरिच का चूर्ण आधा २ पल मिलाकर, बल के अनुसार इसकी मात्रा भक्षण करे। यह बल-वर्ण को करनेवाला, वृष्य, बृंहण, स्वरबोधन है, और कास, श्वास, अरुचि, तृष्णा, मूर्च्छा, रक्तप्रदर को नाश करता है, क्षीणक्षत रोगियों के लिये हितकर है। वन्ध्या को पुत्र देनेवाला है, अमृतप्राशनों में यह अमृत है। जैसे देवताओं के लिये अमृत उत्तम है ॥ २९२–२९९ ॥

शोषे पिप्पल्याद्योऽवलेहः—

कृष्णाचूर्णं क्षिपेत्प्रस्थं सिताप्रस्थद्वयं तथा ।
प्रस्थार्धं गोघृतं चैव कुडवं माक्षिकं तथा ॥ ३०० ॥

दुग्धाढकेन संयुक्तं यथोक्तं विपचेद्भिषक् ।
चातुर्जातपलं चैकं चूर्णमेतद्विनिक्षिपेत् ॥ ३०१ ॥
प्रत्यूषे भक्षयेन्नित्यं ततः कार्यं समाचरेत् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि क्षयमेकादशात्मकम् ॥ ३०२ ॥
पञ्चकासाँस्तथा श्वासान् पाण्डुं प्लीहमपस्मृतिम् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा रक्तं शुक्रदोषं तथा जराम् ॥ ३०३ ॥
धातुक्षयं च मन्दाग्नि व्याधिं परमदुस्तरम् ।
सर्वास्तान्नशयत्याशु तमः सूर्योदयो यथा ॥ ३०४ ॥
सुभगो दर्शनीयश्च स गच्छेत्प्रमदाशतम् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठमश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ३०५ ॥

शोषरोग में पिप्पल्यादि अवलेह—पिप्पलीचूर्ण एक प्रस्थ, शर्करा दो प्रस्थ, गोघृत आधा प्रस्थ, मधु एक कुडव, दूध एक आढक—इन सभी द्रव्यों को वैद्य अच्छी तरह सिद्ध करे और चातुर्जात (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को छोड दे। प्रातःकाल इसको भक्षण करे उसके बाद कार्य प्रारम्भ करे। यह अवलेह अट्ठारह प्रकार के कुष्ठ रोग, ग्यारह प्रकार के क्षयरोग, पांच प्रकार के कास, श्वास, पाण्डु, प्लीहा, अपस्मृति, मूत्रकृच्छ्र, वातरक्त, शुक्रदोष, जरा, धातुक्षय, मन्दाग्नि तथा परम दुस्तर इन सभों को नाश करता है जैसे सूर्योदय से अन्धकार। अश्विनीकुमार का बनाया यह उत्तम रसायन सेवन करनेवाला सुन्दर दर्शनीय होता है तथा सैकडों स्त्रियों के साथ प्रसंग करने की शक्ति प्राप्त करता है ॥ ३००–३०५ ॥

शोषे द्वितीयः पिप्पल्याद्यवलेहः—

पिप्पलीप्रस्थमादाय क्षीरं चैव चतुर्गुणम् ।
अर्धाढकं घृतं गव्यं शुद्धखण्डात्तथाऽऽढकम् ॥ ३०६ ॥
पचेन्मृद्वग्निना तावद्यावत्पाकमुपागतम् ।
शीतीभूते क्षिपेत्तस्मिंश्चातुर्जातपलत्रयम् ॥ ३०७ ॥
योजयेन्मात्रया दोषधात्वग्निबलसात्म्यतः ।
बल्यो वृष्यस्तथा हृद्यो धातुपुष्टिकरः परः ॥ ३०८ ॥
जीर्णज्वरहरश्चैव स्त्रियं चैव तु बृंहयेत् ।
छर्दितृष्णारुचिश्वासशोषहिध्माः सकासलाः ॥ ३०९ ॥
हृद्रोगं पाण्डुगुल्मं च प्रदरं च त्रिदोषजम् ।
शोणितानिलकार्श्यं च रक्तपित्तं नियच्छति ॥ ३१० ॥
सतताभ्यासंयोगेन वलीपलितवर्जितः ।

शोषरोग में द्वितीयपिप्पल्याद्यवलेह—पिप्पली एक प्रस्थ लेकर, चौगुने

दूध में एक आढक गाय का घृत और शुद्ध खाट एक आढक मिलाकर, मन्द आंच से पाक-सिद्धि तक पकावे। शीत होने पर चातुर्जात (दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेसर) तीन पल का चूर्ण मिला दे। इस अवलेह को दोष, धातु, अग्नि तथा बल के अनुकूल मात्रा से प्रयोग करें। यह अवलेह बल को देनेवाला, वृष्य, हृद्य, धातुपुष्टिकारक, जीर्णज्वर दूर करनेवाला तथा स्त्रियों को बढ़ाता है। छर्दि, तृष्णा, अरुचि, श्वास, शोष, हिध्मा, कामला, हृद्रोग, पाण्डु, गुल्म, त्रिदोषज प्रदर, वातरक्त, कृशता तथा रक्तपित्त को दूर करता है। निरन्तर प्रयोग करने से वलीपलित को नाश करता है ॥२०६-३१०॥

क्षयादिरोगे रसाङ्गहरीतक्यवलेह.—

हरीतक्याः शतं द्रोणे पयसि परिसाधयेत् ॥ ३११॥
घृतावशेषमुत्तार्य निष्कुलीकृत्य च क्रमात्।
रसगन्धकलोहानां चूर्णेनापूर्य वेष्टयेत् ॥ ३१२ ॥
सूत्रेण मासमेकं तु मधुमध्ये निधापयेत्।
पथ्याशी भक्षयेदेकां सर्वरोगविमुक्तये ॥ ३१३ ॥

क्षयादिरोग में रसांग हरीतक्यवलेह—एक सौ हरीतकी को एक द्रोण दूध में परिपक्व करे, घृतावशेष उतार, गुठली निकालकर, रस (पारा), गन्धक तथा लोहे के चूर्ण से भरकर सूत्र से बांध दे, और एक माह तक मधु के बीच में रख दे, पथ्यपूर्वक खानेवाला, सम्पूर्ण रोगों की निवृत्ति के लिये एक २ हरीतकी भक्षण करे ॥ ३११-३१३ ॥

विमर्श—पारद-गन्धक की कज्जली बना लेना चाहिए।

खण्डार्द्रकावलेहः—

सुस्विन्नाच्छृङ्गवेरात्पलशतमनवं निस्तुषं संविधाय
प्रस्थे चाज्यस्य पक्त्वा पलशतसहितं शुद्धमत्स्यण्डिकायाः।
कौरङ्गी देवपुष्पं मधुकदलकणानागकिञ्जल्कभृङ्गं
शुक्लाजाजी सघनमरिचतुगा सार्धकर्षद्वयाः स्युः ॥ ३१४ ॥
तस्मिन्नीरं विदित्वा ज्वलनमुखगतं पात्रमुत्तार्य यत्नात्
कृत्वा चेषन्मदशशिसुरभितं चूर्णितेनावचूर्ण्य।
प्रातः शीतेऽतिमात्रं मधुकुडवयुगं सार्धमावाप्य सान्द्रं
तल्लीढ हन्ति जीर्णज्वरमथ कसनं राजयक्ष्माणमेव ॥ ३१५ ॥

खण्डार्द्रकावलेह—उबाले हुए पुराने अद्रक एक सौ पल लेकर छिलका निकालकर एक प्रस्थ घृत में पकाकर शु० मत्स्यण्डिका (शक्कर), एक सौ पल कौरङ्गी, देवपुष्प, मधु (मुलेठी), दल (तेजपत्र), पिप्पली, नागकिञ्जल्क (नागकेशर), भृङ्गराज, श्वेतजीरा, मोथा, मरिच तथा वंशलोचन ढाई २ कर्ष

का चूर्ण मिलावे, जल रहने पर आग पर पुनः पकाकर यत्नपूर्वक उतार कर शीतल होनेपर, मद-शशि (कस्तूरी, कपूर) से सुरभित, कर खूब ठण्ढा जानकर चार कुडव मधु के साथ गाढ़ा बनाकर भक्षण करे। यह जीर्णज्वर, कास तथा राजयक्ष्मा को नाश करता है ॥ ३१४-३१५ ॥

अतीसारेऽङ्कोलमूलावलेहः—

पलमङ्कोलमूलस्य दशांशं बिल्वमेव च ।
तद्भागो राजवृक्षस्य क्वाथ्यमष्टगुणे जले ॥ ३१६ ॥
तेन पादावशेषेण फाणितं कारयेद्भिषक् ।
शीतीभूते प्रदातव्यं मस्तुना सहितं बुधैः ॥ ३१७ ॥
फाणिते दीयमाने तु सत्वरं छर्दयेद्यदा ।
शीतलं भोजनं देयं दध्यन्नं भक्तमेव च ॥ ३१८ ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ।
दुर्वारं ग्रहणीदोषं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ३१९ ॥

अतिसार में अंकोलमूलावलेह—अंकोल (ढेरा) का मूल दश पल, अमलतास दश पल—इन द्रव्यों को अठगुने जल में क्वाथ करे, चतुर्थांशावशिष्ट रहने पर फाण्ट बना ले। शीत होने पर मस्तु के साथ पिलाये। फाणित देने पर जब शीघ्र ही छर्दि हो जाय तो दही-भात आदि शीतल भोजन देना चाहिए। यह पक्व तथा अपक्व वेदनायुक्त अनेक वर्णवाला अतिसार, दुर्जय ग्रहणीदोष तथा प्रवाहिका को जीत लेता है ॥ ३१५-३१९ ॥

अर्शसि भल्लातकावलेहः—

पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ।
पाठाशुण्ठीशटीभार्गीवासाभूनिम्बवत्सकम् ॥ ३२० ॥
श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गेन्द्रयवं जलम् ।
हस्तिकर्ण्यमृताद्राक्षापटोलरजनीद्वयम् ॥ ३२१ ॥
कणारग्वधसप्ताह्वबिल्वश्योनाकपाटलाः ।
एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३२२ ॥
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ।
भल्लातकसहस्राणि छित्त्वा द्रोणमितेऽम्भसि ॥ ३२३ ॥
चतुर्भागावशेषं तु कषायं परिकल्पयेत् ।
तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् ॥ ३२४ ॥
गुडस्य च तुला दत्त्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् ।
भल्लातकसहस्राणां मज्जानं तत्र दापयेत् ॥ ३२५ ॥
त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम् ।

सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ ३२६ ॥
दीप्यकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलांशकम् ।
संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्कोष्णे घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ३२७ ॥
महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ।
प्राणिनां च हितार्थं वै जयेच्छीघ्रं निषेवितः ॥ ३२८ ॥
श्वित्रमौदुम्बरं सिध्मं ऋक्षजिह्वं च काकणम् ।
पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ ३२९ ॥
कृच्छ्रं कापालिकं कृष्णं पामां चैव विपादिकाम् ।
वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वमिं कृमिम् ॥ ३३० ॥
अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम् ।
समाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुर्जयम् ॥ ३३१ ॥
कुरुते च परां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ।
अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा ।
भोजने च सदा त्याज्यमुष्णं चाम्लं विशेषत. ॥ ३३२ ॥

अर्शरोग में भल्लातकावलेह—पर्पट (पित्तपापड़ा), अवल्गुजा (बाकुची), अनन्तमूल, वच, खदिर, रक्तचन्दन, पाठा, सोंठ, भांगरा, अडूसा, चिरायता, कुटज, कालानिशोथ, इन्द्रवारुणी, मूर्वा (मरोडफली), विडंग, इन्द्रयव, मोथा, हस्तिकर्णी, गुडूची, द्राक्षा, पटोल, आमाहल्दी, दारुहल्दी, पिप्पली, अमलतास, सातला, बिल्व, स्योनाक तथा दल—दो २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल मे पकावे और अष्टमांशावशेष क्वाथ उतार ले। एक हजार भल्लातक काटकर एक द्रोण जल में चतुर्थांशावशिष्ट कषाय बनाये। दोनों कषायों को कपड़े से छान ले और एक तुला गुड मिलाकर लेह के समान सिद्ध कर ले और एक हजार स्विन्न भल्लातक के मज्जा को मिला दे। त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, मोथा, सेन्धानमक एक २ पल, सौगन्धिक चार पल, अजमोदा एक पल, चातुर्जात (दालचीनी, छोटी इलायची तेजपत्र, नागकेशर) एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे और थोड़ा गरम घृत के वर्तन मे रख दे। यह महाभल्लातक प्राणियों के हित के लिये महादेव जी का बनाया है। यह सेवन करने से शीघ्र ही श्वित्र, औदुम्बर, सिध्म, ऋक्षजिह्व काकण, पुण्डरीक, चर्मरोग, विस्फोट, रक्तमण्डल, कृच्छ्रकापालिक, कृष्ण, पामा, विपादिका, वातरक्त आदि कुष्ठभेद, उदावर्त, पाण्डुरोग, वमि, कृमि, छः प्रकार के अर्श, कास, श्वास, भगन्दर, पलित तथा दुर्जय आमवात को अच्छी तरह प्रयोग करने से जीत लेता है। उत्तमकान्ति को देता है और जाठराग्नि को दीप्त करता है। अनुपान में गुडूची-स्वरस या पय देना चाहिए। भोजन में

सदा विशेषकर उष्ण तथा अम्ल पदार्थ को त्याग देना चाहिए ॥ ३२०-३३२ ॥

अतीसारे कुटजाष्टकावलेहः—

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत ।
तस्मिन् सुपूते पलसंमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥३३३॥
पाठासमङ्गातिविषाः समुस्ता बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् ।
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्दर्वीप्रलेपं सुरसं च यावत् ॥ ३३४ ॥
पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाऽथवाऽपि ।
निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णासितं लोहितपीतकं वा ॥ ३३५ ॥
दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तपित्तं तथाऽर्शांसि सशोणितानि ।
असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ३३६ ॥

अतिसार में कुटजाष्टकावलेह—आर्द्र कुटज एक तुला कूटकर और पकाकर रस निकाल ले। इसमें सेमर के गोंद का चूर्ण, पाठा, मंजीठ, अतीस, मोथा, विल्व तथा धाय का पुष्प—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर पुनः सुरस, द्रवीलेप पाक करे। इसको समय को जाननेवाला जल, मण्ड अथवा बकरी के दूध से पान करने पर यह कुटजाष्टक अवलेह सभी प्रकार के भयंकर, कृष्ण, सित, लोहित, पीतक अतिसार, अनेक प्रकार के ग्रहणीदोष, रक्तपित्त, रक्तातिसार और असाध्य रक्तप्रदर को निश्चय ही नष्ट करता है ॥ ३३३-३३६ ॥

धातुक्षये मधुपक्वामलकी—

धात्रीफलानि भव्यानि तीक्ष्णलोहेन वेधयेत् ।
विश्वावरणपत्रैश्च फलैश्च स्वेदयेद् भृशम् ॥ ३३७ ॥
उष्णदुग्धेन संस्वेद्य पानीयेन ततः परम् ।
मधुमध्ये क्षिपेद्भाण्डे स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥ ३३८ ॥
विनष्टं मधु संत्यज्य मधुमध्ये पुनः क्षिपेत् ।
अधस्तु शर्करां धात्रीफलान्युपरि च न्यसेत् ॥ ३३९ ॥
सिताधात्रीफलान्येवमुपर्युपरि धारयेत् ।
दिनाष्टकमतो दद्याद्धातुक्षीणे बलक्षये ॥ ३४० ॥
वाजीकरणमत्युग्रं फलानां सेवनं सदा ।
वीर्यवृद्धिकराण्याहुर्वह्निवृद्धिकराणि च ॥ ३४१ ॥
त्वग्दोषं पित्तकोपं च शमयन्ति न संशयः ।

धातुक्षय में मधुपक्वामलकी—भव्य धात्रीफल को तीक्ष्ण लोहे (कांटा) से छेद दें, और विश्वावरण (कपास) के पत्र तथा फल से स्वेदन करे। इसके बाद उष्ण दूध तथा बाद में उष्ण जल से संस्वेदनकर मधु के वर्तन में

रखकर बीस दिन तक रक्खे। पहले के मधु को निचोड़ कर पुनः मधु के बीच में रक्खे, और नीचे शर्करा ऊपर आंवला रक्खे। इसी प्रकार नीचे २ शर्करा, ऊपर २ आंवला रखते जाय इसके बाद इसमें से धातुक्षीण तथा बलहीन व्यक्ति को आठ दिन तक दे। सदा इन फलों का सेवन करे। यह उत्तम वाजीकरण है। यह वीर्यवर्द्धक तथा अग्निवर्द्धक है और चर्मरोग तथा पित्त प्रकोप को निःसंदिग्ध शान्त करता है॥ ३३७–३४१॥

स्वरभङ्गे कुलिञ्जनाद्योऽवलेहः—

कुलिञ्जनं समानीय नवीनं पलविंशतिम्।
तुलाद्वये जले क्वाथ्यं तुलार्धमवशेषयेत्॥ ३४२॥
वस्त्रपूते जले तस्मिन् चूर्णान्येषां प्रदापयेत्।
कट्फलं पौष्करं भार्गी पञ्चकोलं कटुत्रिकम्॥ ३४३॥
त्रिफला च विडङ्गं च धान्यकं जीरकद्वयम्।
करञ्जः शिखरी वासा प्रत्येकं च पलद्वयम्॥ ३४४॥
सर्वार्धा प्रक्षिपेच्छुद्धां शर्करां गुडमेव च।
हन्त्ययं पञ्चकासांश्च हिक्का अपि सवेदनाः॥ ३४५॥
स्वरभङ्गं महाघोरं कण्ठरोगं मुखामयम्।
मन्दाग्निं च प्रतिश्यायं स्वरभङ्गं विशेषतः॥ ३४६॥

स्वरभंग में कुलिञ्जनाद्य अवलेह—नवीन कुलिञ्जन बीस पल लेकर दो तुला जल में क्वाथकर आधा तुला शेष रहने पर वस्त्र से छानकर कट्फल, पुष्करमूल, भांगरा, पञ्चकोल (पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ), कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, विडंग, धनिया, सफेदजीरा, स्याहजीरा, करंज, अपामार्ग, अडूसा प्रत्येक दो २ पल चूर्ण, सबसे आधा शर्करा या गुड़ मिला दे और अवलेह सिद्ध कर ले। यह अवलेह पांच प्रकार के कास, वेदनायुक्त हिक्का, महाघोर स्वरभंग, कण्ठरोग, मुखरोग, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय तथा विशेषकर स्वरभंग को नाश करता है॥ ३४२–३४६॥

कासे भार्ग्याद्यवलेहः—

भार्गीं हरीतकीं वासां कण्टकारीं तथैव च।
प्रत्येकं प्रस्थमादाय द्रोणेऽपां साधयेद्भिषक्॥ ३४७॥
क्वाथे पादावशेषे तु गुडं प्रस्थमितं क्षिपेत्।
ततः पाकघनीभूते शीतेऽर्धकुडवं मधु॥ ३४८॥
पिप्पलीं कट्फलं शृङ्गी मधुयष्टिं लवङ्गकम्।
त्वक्क्षीरीं रजनी चैव पलार्धप्रमितां क्षिपेत्॥ ३४९॥
एषोऽवलेहः शमयेत् पञ्च कासान् सुदारुणान्।

कासरोग में भार्ग्याद्यवलेह—भांगरा, हर्रे, अडूसा, कण्टकारी-प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर एक द्रोण जल में क्काथ करे। चतुर्थांशावशिष्ट क्काथ में एक प्रस्थ गुड़ छोड़ दे। पुनः पाक करने से गाढ़ा होने पर ठंढा कर एक कुडव मधु, पीपर, कट्फल, काकड़ासिंघी, जेठीमधु, लवंग, वंशलोचन तथा हल्दी प्रत्येक आधा २ पल के चूर्ण को मिला दे। यह अवलेह पांच प्रकार के भयंकर कास को शान्त करता है॥

हृद्रोगे चन्दनावलेहः—

मातुलुङ्गरसप्रस्थः प्रस्थार्धो दाडिमाद्रसः॥ ३५०॥
तत्तुल्यं नारिकेलाम्बु शर्करा कुडवद्वयम्।
पाकं कृत्वा यथान्यायं सिद्धे शीते समावपेत्॥ ३५१॥
चन्दनं च तुगाक्षीरीं धान्यकं सारिवां तथा।
कङ्कोलकमुशीरं च कुङ्कुमं शतपत्रिकाम्॥ ३५२॥
गुडूच्याश्च तथा सत्त्वं कर्षमानं पृथक् पृथक्।
लेह एष तु हृद्रोगं भ्रमं मूर्च्छां वमिं तथा॥ ३५३॥
दाहं च सुमहाघोरं शमयेन्नात्र संशयः।

हृद्रोग में चन्दनावलेह—बिजौरे नीबू का रस एक प्रस्थ, अनार का रस आधा प्रस्थ, दोनों के बराबर नारियल का जल डेढ़ प्रस्थ, शर्करा दो कुडव, मिलाकर, नियमपूर्वक पाक बनावे और सिद्ध-शीत होने पर चन्दन, वंशलोचन, धनिया, सारिवा, कंकोल (शीतलचीनी), खस, केशर, गुलाब का फूल तथा गुडूची का सत्त्व एक २ कर्ष का चूर्ण मिला दें। यह अवलेह, हृद्रोग, भ्रम, मूर्च्छा, वमि तथा महाघोर दाह को निःसन्देह शान्त करता है॥

धातुक्षये गोक्षुराद्यवलेहः—

गोक्षुरश्चाश्वगन्धा च शतवीर्या विदारिका॥ ३५४॥
बलाबीजानि यष्ट्याह्वं बीजानीक्षुरकस्य च।
कपिकच्छोश्च बीजानि शाल्मलीमूलकं तथा॥ ३५५॥
वृद्धदारुकबीजानि लवङ्गं जातिपत्रिका।
केशरं च फलं जात्यास्त्वक् पत्रं वशरोचना॥ ३५६॥
गुडूचीसत्त्वमेले द्वे तथा काश्मीरजन्म च।
एतेषां कर्षमादाय मधुनः कुडवत्रयम्॥ ३५७॥
कृत्वा लेहं ततो मात्रां यथायोग्यां प्रदापयेत्।
धातुक्षयं तथा वातं ध्वजभङ्गं नियच्छति।
अनेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव च वृषायते॥ ३५८॥
इति श्रीवैद्यसोढलग्रथिते गदनिग्रहे पञ्चमोऽवलेहाधिकारः।

धातुक्षय में गोक्षुराद्यवलेह—गोखरू, अश्वगन्धा, शतवीर्या (शतावरी), विदारीकन्द, बरियार का बीज, यष्ट्याह्व (जेठीमधु), इक्षुरक बीज (तालमखाना), केवाछ का बीज, सेमर का मूल, विधारा का बीज, लवंग, जातिपत्री (जावित्री), जायफल, चमेली की छाल, दालचीनी, पल, वंशलोचन, गुडूची का सत्व, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, तथा केशर चूर्ण एक २ कर्ष, मधु तीन कुडव मिलाकर लेह बनावे। इस लेह को उचित मात्रा में उपयोग करे। यह अवलेह धातुक्षय, वात तथा ध्वजभंग को दूर करता है। इस अवलेह के उपयोग से अस्सी वर्ष का बूढ़ा भी युवा के तरह बलवान् हो जाता है॥ ३५४-३५८॥

इति वैद्य शोढल-ग्रथित गदनिग्रह में पञ्चम अवलेह अधिकार

अथातः षष्ठ आसवाधिकारः प्रारभ्यते

कुमार्यासवः—

द्रोणमानं कुमार्यास्तु रसं भाण्डे निधापयेत्।
तुलार्धं दशमूलं तु तदर्धां पौष्करीं जटाम्॥ १॥
तत्समं धन्वयासं च चित्रार्धं च परिक्षिपेत्।
प्रस्थार्धममृता ज्ञेया तदर्धमभया तथा॥ २॥
लोध्रमामलकं पथ्यं मञ्जिष्ठा च कलिद्रुमः।
चव्यं च कुष्टयष्ट्याह्वे कपित्थं सुरदारुकम्॥ ३॥
कृमिशत्रुः कणा चैव भार्गी स्यादष्टवर्गकः।
जीरकं क्रमुको रास्ना शटी रेणकमेव च॥ ४॥
शृङ्गी निशा प्रियङ्गुश्च मांसी मुस्ता च सारिवा।
शक्रबीजं वरी वासा नागकेसरमेव च॥ ५॥
पुनर्नवा समांशानि षड्भिर्द्रोणैर्जलस्य तु।
क्वाथयेदनया रीत्या चतुर्थांशं जलं नयेत्॥ ६॥
त्रिंशत्पला च मृद्वीका दन्तसंख्यापलं मधु।
गुडात्तुलाचतुष्कं च तदर्धा धातकी भवेत्॥ ७॥
एलाद्वयं लवङ्गानि कङ्कोलं मलयोद्भवम्।
चातुर्जातं तथा कृष्णा मरिचं जातिपत्रकम्॥ ८॥
आकल्लकं फलं जात्याः कपिकच्छुश्च दीप्यकम्।
वचा खदिरसारश्च दहनो जीरकं तथा॥ ९॥
यवानी वालकं विश्वा मुस्ता धान्यं हरीतकी।

हपुषा तिन्तिडीकं च चूर्णमेषां प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
भाण्डे पुराणे सुस्निग्धे धूपिते गन्धभेषजैः ।
कोष्ठसारे तथा तप्ते भूमौ मासं विनिःक्षिपेत् ॥ ११ ॥
यो रोगी प्रातरुत्थाय पलमेकं तु भक्षयेत् ।
धातुक्षय जयेत्कासं श्वासं पञ्चविधं तथा ॥ १२ ॥
अर्शांसि वातारोगांश्च ग्रहणीपाण्डुकामलाः ।
हलीमकमुदावर्तं गुल्मं पञ्चविधं जयेत् ॥ १३ ॥
आध्मानं कुक्षिशूलं च प्रत्याध्मानं गुदग्रहम् ।
अष्ठीलिकां च हृद्रोगानेतान् व्याधीन्विनिर्जयेत् ॥ १४ ॥
कुमार्यासव इत्येष कथितः शूलपाणिना ।

अवलेहप्रकरणके बाद छठा आसवाधिकार प्रारम्भ करते है ।

कुमार्यासव—कुमारी का रस एक द्रोण भाण्ड मे रख दे और उसमें दशमूल (बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, गोखरू) आधा तुला, पुष्करमूल चौथाई तुला (पचीस पल), धमासा चौथाई तुला (पच्चीस पल), चित्रक अष्टमांश तुला (साढ़े बारह पल) छोड दे । गुडूची आधा प्रस्थ, हर्रे चौथाई प्रस्थ (चार पल), लोध्र, आमलक, हर्रे, मंजीठ, बहेडा, चव्य, कुष्ठ, मधुयष्टी, कपित्थ, देवदारु, विडग, पिप्पली, भांगरा, अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली), जीरा, सुपारी, रास्ना, शटी (कपूरकचरी), रेणुक (सम्भालू के बीज), काकडासिंघी, हल्दी, प्रियंगु, जटामांसी, मोथा, सारिवा, इन्द्रयव, शतावरी, अडूसा, नागकेशर तथा पुनर्नवा समभाग चार २ पल छः द्रोण जल में क्वाथ करे और इसी प्रकार चतुर्थांश क्वाथ को छोड कर पुनः उसमें द्राक्षा तीस पल, मधु बत्तीस पल, गुड चार तुला, धाय का फूल दो तुला, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, लवग, शीतलचीनी, मलयागिर चन्दन, चातुर्जात (त्वक्, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), पिप्पली, मरिच, जावित्री, आकल्लक (अकरकरा), जायफर, केवाछ बीज, अजमोदा, वच, खदिरसार, चित्रक, जीरा, अजवायन, बालक (सुगन्धवाला), सोंठ, मोथा, धनिया, हरीतकी, हाऊवेर तथा तिन्तिडीक (वृक्षाम्ल)—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर गन्ध द्रव्यों से धूपित स्निग्ध पुराने भाण्ड में भरकर कोष्ठसार (कोठार) तथा गरम जमीन पर एक मास तक रक्खे । जो रोगी प्रातःकाल उठ कर एक पल पान करता है वह धातुक्षय, कास, पांच प्रकार के श्वास को जीत लेता है । अर्श, वातरोग, ग्रहणी, पाण्डु, कामला, हलीमक, उदावर्त तथा पांच प्रकार के गुल्म को जीत लेता है । आध्मान, अम्लगत वातसंचय (पेट फूलना), उदरशूल, प्रत्याध्मान

(आमाशयगत वातसंचय), गुदग्रह, अष्ठीलिका (शूकदोष), हृद्रोग—इन व्याधियों को दूर करता है। इस कुमार्यासव को शूलपाणि ने कहा है ॥

आसवारिष्टप्रकरणपरिभाषा—

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संहितं भवेत्।
आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥

काष्ठादि औषधियाँ पुरानी होने पर न्यून गुणवाली होकर थोड़े ही दिन में नष्ट हो जाती हैं। एवं वनौषधियों के रस तथा क्वाथ भी थोड़े ही समय में बिगड़ जाते हैं। अतः इन के गुणों को दीर्घकाल तक अवस्थित रखने के लिये आसव-अरिष्ट बनाये जाते है।' आसुतत्वादासवसंज्ञा—अर्थात् जो आसुत-पद्धति (संयोगज मूर्च्छा-प्रक्रिया) से तैयार हो, उसे आसव कहते है। ये आसव, अरिष्ट वर्षों तक खराब नहीं होते, वल्कि गुण में दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जाती है। अतः औषधियों के गुण-संरक्षणार्थ आसव, अरिष्ट-विधि व्यवहार में आई है। आसव, अरिष्ट दीर्घ काल तक अवस्थित रहने मे मद्यार्क (अलकोहल) कारण होता है और उसकी उत्पत्ति आसुत प्रक्रिया से होती है। आसव-अरिष्ट मद्य के भेद है। वस्तुतः मद्य के आसव, अरिष्ट, सीधु, वारुणी, सुरा तथा मैरेय छ भेद है।

(१) आसव—यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। अर्थात् अपक्व औषधियों को मधुर द्रव्य और धाय के फूल आदि के साथ जल में मिला बिना क्वाथ किये पात्र में भर मुख बन्द कर कुछ काल बन्द रखकर जो मद्य सिद्ध किया जाय उसे आसव कहते हैं।

(२) अरिष्ट—अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात् सम्पक्वो मधुरद्रवैः। अर्थात् औषधियों का क्वाथ कर फिर मधुर द्रव्य और धाय के फूल आदि मिलाकर मद्य तैयार किया जाय वह अरिष्ट कहलाता है।

(३) सीधु—सीधुः इक्षुरसैः पक्वैः—अर्थात् ईख के रस को कुछ काल तक बन्द रखकर जो द्रव्य सिद्ध किया जाता है उसे सीधु (सिरका) कहते हैं। गन्ने (ईख) के समान द्राक्षा या जामुन के रस को किसी वर्तन में भर कर संधान उठाने पर भी सीधु तैयार होता है। इसमे पक्वरस, शीतरस, गुड़, शर्करा, आक्षिक और जाम्बव भेद माने गये है।

(४) वारुणी—यत्तालखर्जूररसैरासुतं सैव वारुणी। अर्थात् ताल या खर्जूर के शिखर प्रदेश पर कुल्हाडी से तिरछे घाव करने से कटे हुए भाग मे से जो रसस्राव होता है उसे वर्तन मे भरकर रख देने से थोड़े ही देर में खमीर आकर मद्योत्पत्ति हो जाती है वह वारुणी (ताड़ी) कहलाती है। इस तरह पुनर्नवा मूल और चावलों को पीस पिट्ठी वना जल में घोल देने से खमीर आकर मद्य वन जाता है उसे भी वारुणी कहते हैं।

(५) सुरा—परिपक्वान्नसंन्धानसमुद्भूता सुरा मता। अर्थात् जो चावल आदि को पका मीठा मिला खमीर उठाकर तैयार की जाय उसे सुरा (शराब) कहते हैं। इसके गौढी (गुड़ मिलाकर बनाई हुई), माध्वी (महुआ के फूल मिलाकर तैयार की हुई), पैष्टी (चावल आदि अन्न के सन्धानजन्य), और निर्यास (ईख में रस और फलों के रस में तैयार की हुई) ये चार भेद है। ये सब सुरा नलिका यन्त्र द्वारा वाष्प में से स्वच्छ वर्णरहित तैयार करायी जाती है।

(६) मैरेय—

आसवस्य सुरायाश्च द्वयोरेकत्र भाजने।
संधानं तद्विजानीयाद् मैरेयमुभयात्मकम् ॥

अर्थात्—आसव द्रव्य और सुरा (अन्न या फल रस आदि) मिलाकर संधान कराया जाय उसे मैरेय कहते हैं। एवं बबूल या बेर की छाल और गुड, शक्कर आदि को जल में मिलाकर मद्य बनाया जाय वह भी मैरेय कहलाता है।

मद्य और आसव दोनों की क्रिया में भेद है। घटक (अवयव) तथा गुण से भी भेद है। मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठम्, तथा 'आसवो विनष्टोऽम्लतां याति' इस प्रकार से शास्त्रकारों ने भेद दर्शाया है। तथापि सारग्राही दृष्टि से व मद्यार्कपन की दृष्टि से सुरा तथा आसवारिष्ट की एक ही जाति है। सुरा में मद्यार्क तथा जल रहते हैं और आसवारिष्ट मे मद्यार्क और जल के अतिरिक्त विविध औषध द्रव्यों का सत्त्व भी रहता है एवं मद्यार्क की मात्रा अति न्यून होती है। शराब में मादक गुण प्रधान है और आसवारिष्ट में औषध गुणों का ही प्राधान्य है। यह-इन दोनों द्रव्यों में अन्तर है। आसवारिष्ट में औषध गुणों का प्राधान्य होने से मर्यादित मात्रा में ही सेवन किया जाता है।

यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः।
अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्तन्मानं द्विपलोन्मितम् ॥

बिना क्वाथ किये बनाये मद्य को 'आसव' तथा क्वाथ कर बनाये हुए मद्य को 'अरिष्ट' कहते हैं। किन्तु कितने ही विद्वान् आचार्य चरक, सुश्रुतादि वचनों के आधार से निर्मूल दिखाते हैं। लोध्रासव, दुरालभासव, द्राक्षासव आदि अनेक आसवों की मुख्य औषधियों का क्वाथ करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने की है। एवं चरक संहिता के चिकित्सा स्थान में तक्रारिष्ट, अष्टशतारिष्ट, त्रिफलारिष्ट और अनेक अरिष्टों में क्वाथ करने का विधान नहीं है। इसके अतिरिक्त सुश्रुत संहिता में भी अनेक अरिष्टों में क्वाथ करने का विधान नही है। इसके अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता में भी अनेक अरिष्टों में क्वाथविधि नहीं कही

है अतः आसव और अरिष्ट दोनों पर्याय शब्द हैं ऐसा भी अनेक विद्वानों का मत है। इसकी मात्रा सामान्यतः एक २ पल की है किन्तु अग्नि-बल के अनुसार न्यूनाधिक मात्रा से भी सेवन कराया जाता है।

निर्माण-विधि—आसव बनाने में संधान-क्रिया अत्यावश्यक मानी जाती है। जल, औषध द्रव्य, मधुर द्रव्य आदि को मिला अमृतवान के मुख पर ढक्कन लगा संधिस्थान पर लेपन (संधान) करने को संधान-विधि कहते है। आधुनिक समय में अमृतवान के जगह लकड़ी का ढोल उपयोग में लाये जाते है। तथा उसका ढक्कन भी लेप के बजाय कपड़े से बांधकर पक्का बन्द किया जाता है। आधुनिक पद्धति की निर्माण-प्रक्रिया सामान्यतः इस प्रकार प्रचलित है।

जो भी आसव बनाना हो उसकी विधि के अनुसार मूल द्रव्यों को जव-कुटकर लेवे। जल को हिलाकर गुड़ को पूर्णतया मिश्रित कर ले। बाद मे जवकुट मुख्य द्रव्य जल में डाल दे। ढोल को ढकने लगा कपड़े से बांध ऊपर वर्तन रख देवें, इस प्रकार करने से उसमें आसवीकरण क्रिया प्रारम्भ होकर खमीर उठने लगेगा। खमीर उठते समय ढोल के अन्दर एक प्रकार की 'सूं, सूं, सी' उठने लगती है। विशेष निश्चय करने के लिये ढोल के मुख पर जलती दियासलाई रखे यदि खमीर बैठ गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी और खमीर बनता होगा तो दियासलाई बुझ जायगी। जल पर फेन चक्ररूप मे आ जायेंगे। खमीर में एक प्रकार के कीटाणु (किण्व) उत्पन्न होंगे जो मद्यांश को पैदा करेंगे। जल का उष्ण तापमान इस समय सामान्यतः ३० से ३५ सेन्टीग्रेड तक (८२ से ८५ फेरनहीट तक) होना चाहिए। उष्ण तापमान पर यह क्रिया अच्छी तरह होती है इससे अधिक उष्णता तथा शीतलता होने पर आसवक्रिया बन्द हो जाती है। आसवक्रिया प्रारम्भ में प्रबल होती है जैसे २ मद्यार्क अधिकाधिक तैयार होता जाता है वैसे २ यह क्रिया मन्द होती जाती है। १५ प्रतिशत मद्यार्क बन जाने पर उस में कीटाणु जीवित नही रह सकते। कीटाणु नष्ट होते ही क्रिया बन्द हो जाती है। ऐसे समय निवाया जल मिलाया जाय तो क्रिया फिर प्रारम्भ हो जाती है। यदि ठण्ढा जल मिलाया जाय तो आसव में फुंफुदी आने की सम्भावना है। परिवर्तनक्रिया में अम्ल परिवर्तन इष्ट नहीं है। अलकोहल परिवर्तन अपेक्षित है। अम्ल अधिक होने पर आसव बिगड़ जाता है। अम्लत्व यह मद्य का सहज गुण है और मधुर यह आसव का रस है। अम्लता बढ़ने से आसव मद्य बन जायगा। आसव खट्टा होकर शुक्त बन जाता है। आसव का पहला सन्धान बन्द होने पर छानकर दूसरे ढोल में भर लेना चाहिए। कपरौटी जो वर्तन के मुख बन्द

किये जाते हैं उसमें प्राणवायु के प्रवेश की जगह न होने से कार्वोलिक गैस को बाहर जाने की जगह नहीं रहती और वह अन्दर ही धूमायित होकर आसव को अम्ल बना देती है। अतः पात्र से ढकने में थोड़ी-सी वायु आने-जाने का रास्ता रहना आवश्यक है।

आसवारिष्ट में द्रव्य-परिमाणविधि—

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडात्तुलाम्।
क्षौद्रं दद्याद् गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम्॥

जिस आसव या अरिष्ट की निर्माण प्रक्रिया में द्रव्यों का मान नहीं बताया गया है वहां जल एक द्रोण, गुड़ एक तुला, मधु गुड़ के आधा तथा प्रक्षेप द्रव्य, धाय के पुष्प आदि गुड के दशमांश यानी बीस पल मिलाना चाहिए। पहले आसव या अरिष्ट की वस्तुओं के क्वाथ या स्वरस तैयार करे। पुनः शक्कर, गुड या शहद मिलाकर चीनी मिट्टी के बर्तन में भरे। पश्चात् मुँह तक कुछ भाग खुला रखकर ऊपर कपड़ा बांध कर एकान्त स्थान में दश-पन्द्रह दिन तक खमीर आकर शान्त हो जाने तक रहने दे। प्रारम्भ में कार्वोलिक गैस उत्पन्न होकर बाहर निकलती रहती है। इस गैस को यदि अरिष्ट के पात्र को मुख बन्द कर रोक दी जाय तो आसव में अम्लता बढ़ेगी। और आसव के स्थानपर शुक्त बन जायगी। खमीर उठाने के समय 'सूं, सूं', की जैसी आवाज पात्र के पास कान लगाकर सुनने में आती है। खमीर शान्त होने पर आवाज सुनने में नहीं आती। विशेष निश्चय करने के लिये माचिस जलाकर परीक्षा करते है। यदि खमीर शान्त हो गया होगा तो दियासलाई जलती रहेगी अन्यथा बुझ जायगी। इस प्रकार खमीर शान्त होने पर प्रक्षेप (धाय का फूल, जायफर, जावित्री आदि के चूर्ण या कल्क) डालना चाहिए। यह अनेक विद्वानों का मत है। कुछ प्राचीन विद्वान् प्रक्षेप को तुरन्त मिला देते हैं। आधुनिक प्रथा के अनुसार खमीर आने पर ऊपर स्थित पूड़ी के समान पपड़ी को निकाल कर फेक देते हैं और छान कर प्रक्षेप द्रव्य मिलाकर चौथाई हिस्सा छोड़ कर भर देते हैं। चौथाई खाली अवश्य रखना चाहिए अन्यथा अमृतवान फूटने का डर रहता है। प्रक्षेप डालने के बाद अच्छी तरह एक मास से तीन मास तक रखना चाहिए। अरिष्ट या आसव-पात्र को एकान्त तथा उष्ण प्रदेश में रखना चाहिए जिस से आसवीकरण शीघ्र प्रारम्भ हो कर आसव शीघ्र तैयार हो जाय। द्राक्षारिष्ट बनाने पर तल में जो गाढ़ा पदार्थ रह जाता है, उसको सुराबीज कहते हैं। उसको सुखा कर जामन के तरह अरिष्ट बनाने में प्रयोग करते हैं, इसके मिला देने से किण्वीकरण शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाता है और आसव के बिगड़ने का भय नहीं रहता है। आसव, अरिष्ट में कषाय रस प्रधान

धातकी पुष्प, बबूल छाल, बैर छाल, महुआ का फूल, सुपारी, नागकेसर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं उसे भी 'सुराबीज' कहते हैं। और वे सब सबल होने से सफलतापूर्वक शीघ्र ही कार्य करते हैं।

शीत काल में आसव-अरिष्ट नियत-समय से बाद में तथा ग्रीष्म ऋतु में नियत समय से चार-आठ रोज पहले तैयार हो जाते है। जब औषधियों के जाति भेद तथा ऋतु भेद से तैयार हो जाने का अनुमान हो तो अमृतवान को खोलकर परीक्षा कर लेनी चाहिए।'

यदि सुवर्ण, लोह आदि धातु को मिलाना हो तो इन धातुओं का लवण बनाकर प्रयोग करना चाहिए क्योंकि लवण पदार्थ शीघ्र घुलनशील होते हैं।

सुवर्ण लवण बनाने की विधि :—नमक का तेजाब तीन औंस (तीन ड्राम), शोरे का तेजाब चार औंस मिश्रित करे। उसे आतसी शीशी में डाल उसके भीतर में शु० सुवर्ण के पतले पतर तीन तोला डाल कर चार दिन तक रहने दे। फिर आतसी शीशी को स्प्रिट लैम्प पर रख कर गरम करे। अच्छी तरह गरम हो जाने पर दश तोला सेन्धा नमक डाल कर मिलावे सूंघने पर सुवर्ण का रंग नारियल के सदृश प्रतीत होने लगे तब शीशी उतार लेवे। स्वांग शीतल होने पर सुवर्ण लवण को निकाल लेवे। इस लवण को डाक्टरी में ओरम क्लोराइड कहते हैं।

कस्तूरी, केशर- कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों को मिलानी हो तो आसव, अरिष्ट तैयार हो जाने पर मद्यार्क में घोल शीशी में कुछ बूंदों की मात्रा में डालकर अच्छी तरह कार्क बन्द कर रख मिला देनी चाहिए। पहिले छोड़ने से गन्ध उड़ जाता है। आसव, अरिष्ट प्रायः प्रातः काल भोजन के बाद सवा तोला से लेकर ढाई तोले तक पान कराना चाहिए, अग्निबल के अनुसार इसकी मात्रा में न्यूनाधिक किया जा सकता है।

आसव, अरिष्ट सामान्यतः दीपन, पाचन, मलशोधक और पौष्टिक है। आसव अरिष्ट जितने पुराने होते हैं उतने लाभदायक होते हैं। आसव-अरिष्ट कच्चे रहने से खराब हो जाते हैं।

कुछ विशेप—

(१) आसव-अरिष्ट वर्षा ऋतु में नहीं तैयार करनी चाहिए। थोड़ी सी असावधानी से खराब होने की सम्भावना होती है।

(२) जल स्वच्छ एवं छानकर या गरम कर मिलाना चाहिए। खारा जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(३) आसव, अरिष्ट की औषधियों का मोटा चूर्ण लेवे। सूक्ष्म चूर्ण से गाढा होने का डर रहता है और गाढ़ापन आसव-प्रक्रिया में बाधक है।

ओषधि को जवकुट कर शाम को ही भिगो दे और दूसरे दिन क्वाथ बनाने की प्रक्रिया से क्वाथ बनावे।

(४) आसव-अरिष्ट बनाने के पात्र को साफ कर ले और उसको जटामांसी, चन्दन, अगर, गुग्गुलु, कर्पूर, कालीमिर्च, शक्कर आदि की धूप देकर दुर्गन्ध को दूर कर ले। इसके बाद आसव-अरिष्ट-द्रव भरे। मधुर द्रव और क्वाथ शीतल होने पर मिलावे। अच्छी तरह मिल जाने पर चूर्णादि प्रक्षेप द्रव्य मिश्रण कर अच्छी तरह चला दे।

(५) धाय का फूल ताजा ग्रहण करे। मुनक्का नया लेकर अच्छी तरह धोकर उपयोग में ले। गुड़ तथा शहद पुराना, दुर्गन्ध-रहित लेना चाहिए। काला-खारा तथा खट्टा गुड़ एवं मधु को उपयोग में नहीं लेना चाहिए।

(६) आसव-अरिष्ट तैयार होने पर पहले मोटे कपड़े से या बांस की टोकरी से छान लेना चाहिए। फिर दूसरे अमृतबान मे बन्द कर दश, या पन्द्रह दिन रहने दे फिर ऊपर २ का निथरा स्वच्छ आसव-अरिष्ट को बोतलों में भरकर अच्छी तरह कार्क लगाकर रख दे। और चार माह बाद प्रयोग में लावे। आसव-अरिष्ट को बोतल में पूरा नहीं भरे थोड़ा सा जगह खाली रक्खे अन्यथा बोतल फूटने का भय रहता है। आसव-अरिष्ट भरते समय बोतल में पानी न रहे अन्यथा दूषित होने का डर रहता है और बर्तन के नीचे जमे भाग को बोतल में नहीं जाने दे।

(७) आसव-अरिष्ट गाढ़ा, पचन काल में दाह उत्पन्न करनेवाला, दुर्गन्धयुक्त, कृमियुक्त, गुरुपाकी, नवीन, तीक्ष्ण, उष्ण, मैला, दूषित पात्र मे रक्खे हुए तथा स्वादहीन को प्रयोग मे नही लाना चाहिए।

द्वितीयः कुमार्यासव —

कन्यारसस्तुलार्धं वै तदर्धगुडमिश्रितः।
चतुर्जातलवङ्गानां सैन्धवस्य निशाद्वयात् ॥ १५ ॥
कृष्णोषणकुबेराणां धातकीनां पलं पलम्।
पथ्याचूर्णं पलद्वन्द्वं पलं चाकल्लकस्य तु ॥ १६ ॥
उग्रगन्धाविडङ्गानां जातीपत्र्याः पलं पलम्।
एकीकृत्य शुचौ भाण्डे पक्षमेकं निधापयेत् ॥ १७ ॥
पलार्धं भक्षयेन्नित्यं गुल्मोदावर्तनाशनः।
आध्मानं पार्श्वशूलं च जठरार्तिं कफं हरेत् ॥ १८ ॥
मन्दाग्निं शमयेच्छ्वासं कासं हिक्कां क्षयं तथा।
प्लीहानं यकृतं शोफं नाशयत्येष सेवितः ॥ १९ ॥

द्वितीय कुमार्यासव—कुमारी-स्वरस आधा तुला, गुड़ चौथाई तुला

(पच्चीस पल) मिश्रित कर, चातुर्जात (त्वक्, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), लवंग, सेन्धानमक, आमाहल्दी, दारुहल्दी, पिप्पली, मरिच, कुबेर (नन्दीवृक्ष) तथा धाय का फूल—एक २ पल, हरीतकी चूर्ण—दो पल, आकल्लक—एक पल, उग्रगन्धा (वच), विडंग, जावित्री—एक २ पल, —इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर स्वच्छ भाण्ड में एक पक्ष तक रक्खे। इसको आधा पल की मात्रा से पान करे, यह गुल्म तथा उदावर्त को नाश करता है। आध्मान, पार्श्वशूल, जठररोग तथा कफरोग को दूर करता है। मन्दाग्नि, श्वास, कास, हिक्का तथा क्षय को शान्त करता है और नित्य सेवन करने से यह प्लीहा, यकृत् तथा शोथ को नाश करता है ॥ १५-१९ ॥

नवविधा आसवयोनिः—

त्वक्पत्रकाण्डपुष्पाणि सारमूलफलानि च ।
धान्यानि च सिता चापि नव ह्यासवयोनयः ॥ २० ॥
द्रव्यसंयोगतः संख्यातीताः पथ्यतमाश्च ते ।
द्रव्याणां भेदतो वेदवसु (८४) संख्याः प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
तद्यथा—

नवविध आसवयोनि—त्वक्, पत्र, काण्ड, पुष्प, सार, मूल, फल, धान्य और शर्करा ये नव आसव के उत्पत्ति-स्थान हैं। ये द्रव्य संयोग से पथ्यतम असंख्य है। द्रव्यों के भेद से चौरासी भेद बताया गया है। जैसे—॥२०-२१॥

षड् धान्यासवाः—

सुरासौवीरमैरेयधान्यकाम्लतुषोदकाः ।
सभेदा रससंख्यास्ते ह्यासवा धान्यतो मताः ॥ २२ ॥

छः धान्यासव—सुरा, सौवीर, ऐरेय, धान्यकाम्ल, तुषोदक, सभेदा, ये छः धान्यासव माने गये हैं ॥ २२ ॥

षड्विंशतिफलासवाः—

द्राक्षाखर्जूरकाश्मर्यजम्बामलबिभीतकैः ।
धन्वराजादनैः पथ्यातृणशून्यपरूषकैः ॥ २३ ॥
कपित्थमृगलिण्डीस्नुक्कर्कन्धूबदरीफलैः ।
प्रियालपनसप्लक्षन्यग्रोधोदुम्बरैः सह ॥ २४ ॥
कपीनपीलुबकुलाजमोदाशङ्खिनीफलैः ।
शृङ्गाटाश्वत्थसंयुक्ताः षड्विंशाः फलनो मताः ॥ २५ ॥

षड्विंशति (छब्बिस) फलासव—१. द्राक्षा, २. खजूर, ३. गम्भारी, ४. जम्बू, ५. आंवला, ६. बहेड़ा, ७. धन्व (भल्लातक), ८. राजादन

(खिरिणी), ९. दर्भ, १०. तृणशून्य[1] (केवडाफल), ११. परूषक (फालसा), १२. कपित्थ (कैथ) मृगलिण्डी (बहेड़ा), (स्नुक् (सेहुंड), १३. कर्कन्धु (झरबेर), १४. बदरीफल (मध्यमबेर), १५ प्रियाल (चिरौंजी), १६ पनस (कटहल), १७. प्लक्ष (पाकड़), १८. न्यग्रोध (वट), १९. गूलर, २० कपीन (आंमड़ा), २१. पीलु (जंगलीफल), २२, बकुल (मौलेसरी), २३. अजमोदा, २४. शंखिनीफल (चोरपुष्पी), २५. शृङ्गाटक (सिंघाड़ा), २६. अश्वत्थ (पीपल) इन छब्बिस फलों के आसव होते हैं। अर्थात् इन छब्बिस द्रव्यों के फलों से जो आसव तैयार किये जाते है उन्हें फलासव कहते हैं।

विमर्श—चरक में कुवल (बड़ी बेर) लिया गया है, गदनिग्रह में बकुल (मौलेसरी) का पाठ है। आसवों की गणना चरक के अनुसार ही गदनिग्रहकार ने भी की है अतः प्राचीनतम होने से चरक के अनुसार मानना उपयुक्त है। साथ ही प्रमादवश एवं अक्षर-व्यतिक्रम होने से कुवल के स्थान पर बकुल पढ़ दिया गया हो यह सम्भव है। चरक में 'स्नुक्' का पाठ नहीं है। गदनिग्रहकार ने बहेड़ा को "विभीतक' शब्द से तथा 'मृगलिण्डी' शब्द से दो बार पढ़ा है। अतः चरक के अनुसार गदनिग्रह में भी छब्बिस फलासव माना जाना चाहिए। अन्यथा गदनिग्रहकार के अनुसार स्नुक् को लेकर सत्ताइस फलासव हो जाते हैं॥ २३–२५॥

एकादश मूलासवाः—

अश्वगन्धास्थिरादन्तीकृष्णगन्धाशतावरी- ।
श्यामैरण्डद्रवन्तीभिर्बिल्ववह्नित्रिवृत्समैः ॥ २६॥
मूलैरेकादशैते तु मुनिभिर्मूलतो मताः।

ग्यारह मूलासव—१. अश्वगन्धा (असगन्ध), २. स्थिरा (सरिवन), ३. दन्ती, ४. कृष्णगन्धा (सहिजन), ५. शतावर, ६ श्यामा (कालानिशोथ), ७. एरण्ड, ८. द्रवन्ती, ९. बेल, १०. वह्नि (चित्रक), ११, त्रिवृत् (सफेद निशोथ) इनके मूल से बनाये गये ग्यारह आसवों का नाम मूलासव है।

विंशतिः सारासवाः—

शालप्रियङ्गुस्यन्दनचन्दनखदिरार्जुनैश्च कदरयुतैः।
असनाश्वकर्णसप्तपर्णशमीशिंशिपासहितैः ॥ २७॥

---

१. तृणशून्यं तु मल्लिकायां तथा स्यात् केतकीफले। (मल्लिका शतभीरुश्च, गवाक्षी भद्रमल्लिका। शतभीरुर्मदयन्ती भूपदी तृणशून्यकम्)।

अरिमेदतिन्दुकिणिहीशुक्तिशिरीषैश्च वञ्जुलसमेतैः ।
धन्वनमधूकसारैर्विंशतिरात्रेयमुनिनोक्ताः ॥ २८ ॥

बीस सारासव—१. शाल (सागौन), २. प्रियंगु, ३, स्यन्दन (तिनिश), ४. श्वेतचन्दन, ५. खदिर, ६. अर्जुन, ७. कदर (श्वेत खदिर), ८. असन (विजयसार), ९. अश्वकर्ण (साल 'साखू'), १०. सप्तपर्ण (छतिवन), ११. शमी, १२, शिंशपा (शीशम), १३. अरिमेद (विट्खदिर), १४, तिन्दु (तेंदू), १५. किणिही (चिचिड़ी 'अपामार्ग'), १६. शुक्ति (बेर), १७. शिरीष, १८. वञ्जुल, १९. धन्वन (भल्लातक), २०. मधूकसार (महुआ)—इनके सार से बनाये हुए बीस आसवों का नाम सारासव है ॥ २७–२८ ॥

दश पुष्पासवाः—

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपौण्डरीकशतपत्रैः ।
पुष्पैर्मधूकजातैः प्रियङ्गुना धातकीकुसुमैः ॥ २९ ॥
दश पुष्पासवाः पूर्वं मुनिभिः परिकीर्तिताः ।

दशपुष्पासव—१ पद्म, २ उत्पल (नीलकमल), ३ नलिन, ४ कुमुद (कोंई), ५ सौगन्धिक, ६ पौण्डरीक (श्वेतकमल), ७ शतपत्र (लालकमल), ८ महुआ, ९ प्रियंगु, १० धाय का फूल—इनके फूल से बनाये हुए दश आसवों का नाम पुष्पासव है ॥

चत्वारः काण्डासवाः—

चत्वारः काण्डकैः पुण्ड्रेक्षुकाण्डेक्ष्विक्षुबालिकैः ॥ ३० ॥

चार काण्डासव—१. पुण्ड्र (पुण्ड्रक), २. इक्षु, ३. काण्डेक्षु, ४. इक्षुबालिका—ये चार ईख के भेद है। इनके काण्ड से बनाये हुए चार आसवों का नाम काण्डासव है ॥ ३० ॥

द्वौ पत्रासवौ—

पटोलकतमालाभ्यां द्वौ हि पत्रासवौ मतौ ।

दो पत्रासव—१. पटोल, २. तमाल (तमाल वृक्ष का पत्ता)—इन दोनों के पत्र से बनाये हुए आसवों का नाम पत्रासव है। चरक ने तमाल के स्थान पर ताडक पत्र लिखा है ॥

चत्वारस्त्वगासवाः—

क्रमुकैलेयलोध्रैश्च सतिल्वैस्त्वक्कृता हिताः ॥ ३१ ॥

चार त्वगासव—१. क्रमुक (सोपारी), २. ऐलेय (एलवालु), ३. लोध्र (लोध), ४. तिल्व (तिल्वक)—इन चारों की छाल से बनाये हुए आसव का नाम त्वगासव है ॥ ३१ ॥

शर्करासवः—

शर्करासव एवैकः,

एक शर्करासव—१. शर्करा से बनाये हुए आसव का नाम शर्करासव है। द्रव्यों के संयोग-भेद से, तथा संस्कार-भेद से बहुत प्रकार के आसव होते हैं। अपने २ योनि-द्रव्य से सिद्ध अपने २ गुण के अनुसार कार्य करते हैं। संयोग (अनेक द्रव्यों का संयोग), सस्कार (निर्माण प्रकार), देश, काल, मात्रा, तथा स्वभाव से उनके गुणों को जान कर कार्य में प्रयोग करें। दो श्लोकों में आत्रेय मुनि ने इन आसवों के गुणों को कहा है।

आसवानां विकल्पसंस्कारगुणाः—

द्रव्यसंयोगभावतः।
विकल्पा बहुधा ज्ञेयाः संस्कारश्च यथाविधि ॥ ३२ ॥
स्वयोनिसस्कृता ह्येते स्वं स्वं कर्म प्रकुर्वते।
सयोगसंस्कृतेर्देशकालमात्रस्वभावतः ॥ ३३ ॥
पृथक्तेषां स्वभावास्तु ज्ञात्वा कार्ये प्रयोजयेत्।
श्लोकद्वयमिहार्थे तु मुनिरात्रेय उक्तवान् ॥ ३४ ॥
मनःशरीराग्निबलप्रदानामस्वप्नशोकारुचिनाशनानाम्।
हर्षप्रदानां प्रवरासवानामशीतिरुक्ता चतुरुत्तरैषा ॥ ३५ ॥
शरीररोगप्रकृतौ मतानि तत्त्वेन चाहारविनिश्चयाय।
उवाच यज्ञःपुरुषादिकेऽस्मिन्मुनिस्तथाऽग्र्याणि वरासवांश्च ॥ ३६ ॥

आसव के गुण—मन, शरीर तथा अग्नि को बढ़ानेवाले, अनिद्रा, शोक एवं अरुचि को नष्ट करनेवाले और मनको प्रसन्न करनेवाले चौरासी उत्तम आसवों का वर्णन यहाँ किया गया है।

भगवान पुनर्वसु ने इस चरक के यज्ञःपुरुषीयाध्याय में शरीर, रोग एवं उसकी प्रकृति (कारण) के सम्बन्ध में ऋषियों के मत, तत्त्वपूर्वक आहार विनिश्चय का 'श्रेष्ठ' (अग्र्य द्रव्य) तथा उत्तम आसवों का वर्णन किया है ॥ ३२-३६ ॥

वातव्याधौ विडङ्गासवः—

विडङ्गं पिप्पलीमूलं पाठाधात्र्येलवालुकम्।
कुटजत्वक्फलं रास्नां भार्गीं पञ्चपलोन्मिताम् ॥ ३७ ॥
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषं तु कारयेत्।
पूते शीते क्षिपेत्तस्मिन्माक्षिकस्य शतत्रयम् ॥ ३८ ॥
धातक्या विंशतिपलं चूर्णं कृत्वा तु दापयेत्।
व्योषस्य तु पलान्यष्टौ त्रिजातद्विपलान्यपि ॥ ३९ ॥

फलिनीहैमतोयानां सरोध्राणां पलं पलम् ।
घृतभाण्डे समाधाय मासमेकं विधारयेत् ॥ ४० ॥
एष योगो हरत्येव प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान् ।
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहं गण्डमालां सविद्रधिम् ॥ ४१ ॥
आढ्यवातं हनुस्तम्भं विडङ्गाख्यो महासवः ।

वातव्याधि में विडङ्गासव—विडंग, पिपरामूल, पाठा, आंवला, एलवालु, कुटज छाल, इन्द्रयव, रास्ना, भांगरा—पांच २ पल आठ द्रोण जल में क्वाथ करे, अष्टमांशावशिष्ट क्वाथ (एक द्रोण) को छानकर शीत होने पर माक्षिक (मधु) तीन सौ पल, धाय का फूल बीस पल, त्र्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) आठ पल, त्रिजात (त्वक्, तेजपत्र, इलायची) दो पल, प्रियंगु, हैमतोय (भड़भाड़), लोध्र—एक २ पल का चूर्ण प्रक्षेप कर घृत के बर्तन में एकत्र कर एक मास तक रख दे । यह महासव विडंगाख्य योग प्रत्यष्ठीला (एक प्रकार की वातव्याधि जो अधोवायु, मल और मूत्र को रोकनेवाली वाता-ष्ठीला ग्रन्थि को पीडा देनेवाली) और भगन्दर, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, गण्डमाला, विद्रधि, आढ्यवात, अधोःशाखाघात तथा हनुस्तम्भ को दूर करता है ॥

प्रमेहे रोध्रासवः—

रोध्रं शटीं पुष्करमूलमेलां मूर्वां विडङ्गं त्रिफलां यवानीम् ।
चव्यं प्रियङ्गु क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च ॥ ४२ ॥
भार्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां च पाठाम् ।
कलिङ्गकान् केशरमिन्द्रसाह्वं नखं सपत्रं मरिचं प्लवं च ॥ ४३ ॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमं हि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ।
रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ४४ ॥
रोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रं निहन्याद् द्विपलप्रयोगात् ।
पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ॥४५॥

प्रमेहरोग में रोध्रासव—लोध्र, शटी (कपूरकचरी), पुष्करमूल, इलायची, मूर्वा (मोरवेल), विडंग, त्रिफला, अजवायन, चव्य, प्रियंगु, क्रमुक (सुपारी) । विशाला (इन्द्रायण), किराततिक्त (चिरायता), कटुरोहिणी (कटुकी), भांगरा, नत (तगर), चित्रक तथा पिप्पली का मूल, कुष्ठ (कूठ), अतीस, पाठा, कलिंग (कुटज), नागकेशर, इन्द्रयव, नख (व्याघ्रनख), तेजपत्र, मरिच तथा प्लव (केवटीमोथा)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल मे क्वाथ कर तथा चतुर्भागावशिष्ट क्वाथ में छानकर आधा भाग मधु मिलाकर घृत के पात्र में एकत्रकर एक पक्ष तक रक्खे । इसके बाद छानकर प्रयोग करे । यह रोध्रासव, दो पल की मात्रा में प्रयोग करने से कफ पित्त-

प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्श, अरुचि, ग्रहणीदोष, किलास तथा अनेक प्रकार के कुष्ठों को नाश करता है ॥ ४२–४५ ॥

प्रमेहे देवदार्वासवः—

देवदारोस्तुलार्धं तु वासायाः पलविंशतिः ।
दन्ती शक्राह्वमञ्जिष्ठास्तगरं रजनीद्वयम् ॥ ४६ ॥
रास्ना मुस्तं शिरीषश्च कृमिघ्नः खदिरार्जुनौ ।
भागान्दशपलानेषां गुडूच्याश्चित्रकस्य च ॥ ४७ ॥
चन्दनस्य यवान्याश्च रोहिण्या वत्सकस्य च ।
भागान् पञ्चपलानेषामष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ४८ ॥
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥ ४९ ॥
चतुष्पलं त्रिजाताच्च व्योषस्य च पलद्वयम् ।
केसरस्य पलद्वन्द्वं प्रियङ्गोश्च पलद्वयम् ॥ ५० ॥
घृतभाण्डे निदध्याच्च मासमेकं प्रयत्नतः ।
प्रमेहान्मूत्रकृच्छ्रांश्च वातरोगान् सुदारुणान् ॥ ५१ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च देवदार्वासवो जयेत् ।

प्रमेहरोग में देवदार्वासव—देवदारु आधा तुला, अडूसा बीस पल, दन्ती, शक्राह्व (इन्द्रवारुणी), मंजीठ, तगर, आमाहल्दी, निशा (हल्दी), रास्ना, मोथा, शिरीष, विडङ्ग, खदिर, अर्जुन—ये द्रव्य दश २ पल, गुडूची, चित्रक, चन्दन, अजवायन, रोहिणी (मांसरोहिणी), कुटज—ये द्रव्य पांच २ पल आठ द्रोण जल में क्वाथ कर एक द्रोण अवशिष्ट परिस्रावित शीतकषाय में धाय का फूल सोरह पल, मधु तीन तुला, त्रिजात (त्वक् इलायची, तेजपत्र) चार पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) दो पल, नागकेशर दो पल, प्रियंगु दो पल, मिला दे। घृत के भाण्ड में एकत्र कर एक माह तक प्रयत्नपूर्वक रक्खे। इसके बाद छान कर प्रयोग करे। यह देवदार्वासव प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, भयंकर वातरोग, ग्रहणी तथा अर्श-विकारों को दूर करता है ॥ ४६–५१ ॥

कुष्ठे कनकारिष्टः—

खदिरकषायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समावाप्य ।
पलिकां मात्रां दद्यां कृत्वा तामेव सूक्ष्मचूर्णं तु ॥ ५२ ॥
त्रिफलात्रिकटुकरजनीकतकत्वगवाकुचीगुडूच्यश्च ।
सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रक्षिपेत्सर्वम् ॥ ५३ ॥
धातकीपलान्यष्टौ क्वाथे चास्मिन्प्रदेयानि ।
प्रातः प्रातस्तु पिबेन्नाशयति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ५४ ॥

मासेन सर्वरोगान्निहन्ति च शोफमेहांश्च ।
निर्जितकासश्वासो गुदकीलभगन्दरैर्विनिर्मुक्तः ॥ ५५ ॥
कनकारिष्टं प्रपिबन्भवति पुमान्कनककान्तिश्च ।

कुष्ठरोग में कनकारिष्ट—खदिर का कषाय एक द्रोण घृतभावित घड़े में रखकर खदिर चूर्ण एक पल छोड़ दे, और त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, पीपर, मरिच), हल्दी, कतक (निर्मली), दालचीनी, बाकुची, गुडूची, विडंग तथा मधु दो सौ पल, इन द्रव्यों को प्रक्षेप करे। इसी क्वाथ में धाय का पुष्प आठ पल डाल दे। एक मास बाद प्रातःकाल पान करने से पुराने कुष्ट को नाश करता है। एक मास सेवन करने से शोफ, प्रमेह आदि सभी रोगों को नाश करता है। मनुष्य इस कनकारिष्ट का पान करने से श्वास, कास को जीत लेता है, गुदकील (अर्श) और भगन्दर से मुक्त हो जाता है और कनक के समान कान्तिवाला हो जाता है ॥

अर्शसि द्वितीयकनकारिष्टः—

नवस्यामलकस्यैकां कुर्याज्जर्जरितां तुलाम् ।
कुडवांशश्च मागध्या विडङ्गं मरिचानि च ॥ ५६ ॥
यवासः पिप्पलीमूलं क्रमुकं चव्यचित्रकौ ।
मञ्जिष्ठैल्वालुकं रोध्रं पलिकान्युपकल्पयेत् ॥ ५७ ॥
कुष्ठं दारुहरिद्रां च सुराह्वं सारिवाद्वयम् ।
मुस्तमिन्द्रयवांश्चैव कुर्यादर्धपलोन्मितम् ॥ ५८ ॥
चत्वारि नागपुष्पस्य पलान्यभिनवस्य च ।
जलद्रोणद्वयेनैतत्साधयित्वाऽवतारयेत् ॥ ५९ ॥
द्रोणावशेषपूते च शीते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
मृद्वीकाद्व्याढकद्रावं शीतं निर्यूहसाधितम् ॥ ६० ॥
शर्करायाश्च शुद्धाया दद्याद् द्विगुणितां तुलाम् ।
कुसुमस्वरसस्यैवमर्धप्रस्थं नवस्य च ॥ ६१ ॥
त्वगेलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेसरान् ।
मतिमांश्चूर्णयित्वा तु कार्षिकान्संप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥
तत्सर्वं स्थापयेत्पक्षं सुचौक्षे घृतभाजने ।
प्रलिप्ते सर्पिषा किंचिच्छर्करागुरुधूपिते ॥ ६३ ॥
पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयं कनको नाम विश्रुतः ।
पेयः स्वादुरसो हृद्यः प्रयोगाद्भक्तरोचकः ॥ ६४ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहमुदरं ज्वरम् ।
हृत्पाण्डुरोगशोथांश्च गुल्मवर्चोनिलग्रहान् ॥ ६५ ॥

कासान्कफामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति ।
वलीपलितखालित्यं दोषजं तु व्यपोहति ॥ ६६ ॥

अर्शरोग में द्वितीय कनकारिष्ट—नवीन आंवला कूटा हुआ एक तुला, पिप्पली एक कुडव, और विडंग, मरिच, जवासा, पिपरामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मंजीठ, एलवालु, लोध्र—एक २ पल, कुष्ठ (कूठ), दारुहरिद्रा, सुराह्व (देवदारु), श्वेतसारिवा, रक्तसारिवा, मोथा, इन्द्रयव—आधा २ पल, नवीन नागकेशर चार पल, दो द्रोण जल में सिद्ध करें। परिस्नावित द्रोणावशेष शीत क्वाथ में, शीत निर्यूहसाधित द्राक्षारस (अंगूर को मसल कर निकाला हुआ रस या मुनक्का को ठंढे जल में भिगोकर तथा मसल कर निकाला हुआ रस) दो आढक, स्वच्छ शर्करा दो तुला, नवीन धाय के फूल का स्वरस आधा प्रस्थ, दालचीनी, इलायची, प्लव (केवटीमोथा), तेजपत्र, अम्बु (सुगन्धवाला), सेव्य (खश), सुपारी, केसर—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को बुद्धिमान व्यक्ति डाल दे। इन सभी द्रव्यों को पवित्र थोड़े शर्करा तथा अगरु आदि से धूपित घृतस्निग्ध भाण्ड मे भरकर एक पक्ष तक रक्खे। एक पक्ष के बाद यह कनकारिष्ट तैयार हो जाता है। यह कनकारिष्ट पीने योग्य, स्वादुरस तथा हृद्य है और प्रयोग करने से भोजन मे रुचि पैदा करता है, यह अर्श, ग्रहणीदोष, आनाह, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोथ, गुल्म, वर्चोग्रह (विड्विबन्ध), अनिलग्रह (वातविबन्ध), सभी भयंकर कास तथा कफ रोगों को दूर करता है। दोषज वली-पलित तथा खालित्य को नष्ट करता है ॥ ५६–६६ ॥

ग्रहण्यां दुरालभारिष्टः—

दुरालभाया द्विप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च ।
मुष्टी चित्रकदन्त्योर्द्वे प्रत्यग्रं चाभयाशतम् ॥ ६७ ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः क्वाथ्यं शीतं द्रोणावशेषितम् ।
गुडस्य द्विशतं पूतं मधुनः कुडवान्वितम् ॥ ६८ ॥
तद्वत्प्रियङ्गोः पिप्पल्या विडङ्गानां च चूर्णकम् ।
कुडवं घृतकुम्भस्थं पक्षादूर्ध्वं पिबेन्नरः ॥ ६९ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत् ।
स्वरवर्णकरश्चैव रक्तपित्तकफापहः ॥ ७० ॥

ग्रहणीरोग मे दुरालभारिष्ट—दुरालभा (धमासा) दो प्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, चित्रक तथा दन्ती दो मुष्टि (एक पल), हरीतकी एक सौ पल चार द्रोण जल में क्वाथ कर शीत द्रोणावशेष क्वाथ में गुड़ दो सौ पल शु० मधु एक कुडव, प्रियंगु, पिप्पली, विडंग—एक कुडव इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर

घृतस्निग्ध भाण्ड में रख कर एक पक्ष बाद पान करे। ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, कुष्ठ, वीसर्प तथा प्रमेह को नष्ट करता है। स्वर-वर्ण को देनेवाला, रक्तपित्त तथा कफ को नष्ट करनेवाला है ॥ ६७–७० ॥

अर्शसि दन्त्यरिष्टः—

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः।
प्रत्येकं पलमापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ७१ ॥
त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत्।
रसे चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ ७२ ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने।
तन्मात्रया पिबन्नित्यमर्शोभ्यः स विमुच्यते ॥ ७३ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोनुलोमनम्।
दीपनं रुचिदं चैव दन्त्यरिष्टमिमं विदुः ॥ ७४ ॥

अर्शरोग में दन्त्यरिष्ट—दन्तीमूल, चित्रकमूल, दोनों पञ्चमूल (बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, गोखरू), प्रत्येक एक २ पल एक द्रोण जल में पकाकर त्रिफला का दल (गुठिली निकाला हुआ) तीन पल मिला दे। परिस्रावित चतुर्थभागावशिष्ट शीत क्वाथ में एक तुला गुड़ डालकर घृत के पात्र में पन्द्रह दिन तक रक्खे। इस अरिष्ट को मात्रापूर्वक पान करने से अर्श रोग से मुक्त हो जाता है। यह दन्त्यरिष्ट ग्रहणी तथा पाण्डुरोग को नाश करता है वायु तथा विट् का अनुलोमन करता है, अग्निदीपक तथा रुचिप्रद कहा गया है ॥ ७१–७४ ॥

अर्शसि अभयारिष्टः—

पथ्यार्धं तु हरीतक्याः प्रस्थमामलकस्य च।
दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धं चेन्द्रवारुणी ॥ ७५ ॥
विडङ्गं पिप्पली रोध्रं मरिचं सैलवालुकम्।
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ ७६ ॥
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत्।
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्सर्वं घृतभाजने ॥ ७७ ॥
पक्षादूर्ध्वं भवेत्पेया ततो मात्रा यथाबलम्।
अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति सङ्क्षयम् ॥ ७८ ॥
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरापहः।
कुष्ठशोफारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ७९ ॥
सिद्धोऽयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ ८० ॥

अर्शरोग में अभयारिष्ट—हरीतकी आधा प्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कपित्थ दश पल, इन्द्रवारुणी पांच पल, विडंग, पिप्पली, लोध्र, मरिच, एलवालु—दो २ पल—इन द्रव्यों को चार द्रोण जल में क्वाथ करे। परिस्रावित शीत एक द्रोण अवशिष्ट क्वाथ में गुड़ दो सौ पल मिलाकर सभी द्रव्यों को घृत के भाण्ड में रख दे। एक पक्ष बाद अरिष्ट तैयार हो जाता है। बल के अनुसार मात्रापूर्वक इस अरिष्ट को पान करने से अर्शरोग नष्ट हो जाते हैं। यह अरिष्ट ग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीह, गुल्म तथा उदररोग को नाश करता है। और कुष्ठ, शोफ, अरुचि को दूर करता है। यह सिद्ध अभयारिष्ट, कामला तथा श्वित्र को भी नाश करता है। कृमिग्रन्थि (पलक (वर्त्म) तथा शुक्ल भाग की सन्धि में होनेवाला नेत्ररोग), अर्बुद, व्यंग (अस्वाभाविक अंगवृद्धि), राजयक्ष्मा तथा ज्वर को नाश करता है ॥ ७५–८० ॥

ग्रहण्यां द्वितीयोऽभयारिष्टः—

हरीतकीदलप्रस्थं प्रस्थमामलकस्य च।
विशालायाः कपित्थस्य पाठाचित्रकमूलयोः ॥ ८१ ॥
द्वे द्वे पले समापोथ्य द्विद्रोणे साधयेदपाम्।
पादशेषे च पूते च रसे तस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ८२ ॥
गुडस्यैकां तुलां वैद्यः संस्थाप्य घृतभाजने।
पक्षस्थितं पिबेन्नित्यं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ८३ ॥
प्लीहहृत्पाण्डुरोगघ्नः कामलाविषमज्वरान्।
कासं श्वासमुदावर्तं फलारिष्टो व्यपोहति ॥ ८४ ॥

ग्रहणीरोग में द्वितीय अभयारिष्ट—हरीतकी एक प्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, इन्द्रायण, कपित्थ, पाठा, चित्रकमूल—दो २ पल—इन द्रव्यों को यवकुट कर दो द्रोण जल में सिद्ध करे। परिस्रावित शीत चौथाई रस में एक तुला गुड़ मिलाकर घृत के पात्र में एक पक्ष तक रक्खे। इसके बाद मात्रापूर्वक पान करे। यह ग्रहणी तथा अर्श-विकार दूर करता है। यह फलारिष्ट (अभयारिष्ट), प्लीहा, हृद्रोग तथा पाण्डुरोग को नाश करता है। और कामला, विषमज्वर, कास, श्वास तथा उदावर्त को दूर करता है ॥ ८१–८४ ॥

ग्रहण्यां तृतीयोऽभयारिष्टः—

अष्टौ पलानि वर्षाभूदशमूलार्कचित्रकात्।
दन्तीश्यामात्रिवृद्द्राक्षाश्चैव स्युस्त्रिफलाढकम् ॥ ८५ ॥
अम्बुद्रोणाष्टके पक्त्वा पादशेषे रसे स्थिते।
द्वे गुडस्य तुले पूते तत्पश्चाद्धटके क्षिपेत् ॥ ८६ ॥
गवां मूत्राढकं प्रस्थौ द्वावयोरजसस्तथा।

विडङ्गं कुटजं कुष्ठं चित्रकं मरिचं वचाम् ॥ ८७ ॥
संचूर्ण्य द्विपलान्यस्मिन्दत्त्वा मासस्थितं पिबेत् ।
अभयारिष्टनामायं मेहार्शःकुष्ठशोफहा ॥ ८८ ॥
प्लीहपाण्ड्वामयान् गुल्मान् जठराणि च नाशयेत् ।

ग्रहणीरोग में तृतीय अभयारिष्ट—पुनर्नवा, दशमूल (विल्व, गम्भारी, श्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, बृहती, कटेरी, गोखरू), मदार, चित्रक, दन्ती, कालानिशोथ, रास्ना—आठ २ पल, त्रिफला एक आढक आठ द्रोण जल में पकाकर चतुर्थांश रस में दो तुला गुड मिलाकर घृतस्निग्ध भाण्ड में छोड़ दे और उसमें गाय का मूत्र एक आढक, लौहभस्म दो प्रस्थ, विडंग, कुटज, कुष्ठ (कूठ), चित्रक, मरिच, वच—दो २ पल—इन द्रव्यों को चूर्ण कर मिला दे और एक मास तक रक्खे। एक मास बाद उसको पान करे। यह अभयारिष्ट प्रमेह, अर्श, कुष्ठ तथा शोफ को दूर करता है। प्लीहा, पाण्डु, गुल्म तथा जठर रोगों को नाश करता है ॥

पाण्डुरोगे मण्डूरारिष्टः—

मण्डूरस्य तु शुद्धस्य तुलार्धं परिकल्पितम् ॥ ८९ ॥
तद्वल्लोहस्य पत्राणि तिलोत्सेधप्रमाणतः ।
गुडाज्जीर्णात्तु पञ्चाशत्कोलप्रस्थत्रयं तथा ॥ ९० ॥
निकुम्भचित्रकाभ्यां च पले द्वे द्वे सुचूर्णिते ।
पिप्पलीनां विडङ्गानां कुडवं कुडवं पृथक् ॥ ९१ ॥
त्रींश्चापि त्रिफलाप्रस्थान् जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अर्धमासस्थितो धान्ये पेयोऽरिष्टः प्रमाणतः ॥ ९२ ॥
ऊर्ध्वाधोदोषनिर्हर्ता पाण्डुरोगं नियच्छति ।
कृमीनर्शांसि कुष्ठं च कासश्वासकफामयान् ॥ ९३ ॥
एषोऽरिष्टस्तु माण्डूरः शोफपाण्ड्वामयापहः ।

पाण्डुरोग मे मण्डूरारिष्ट—मण्डूर आधा तुला, तिलोत्सेध (तिलके समान मोटा) लौहपत्र आधा तुला, पुराना गुड़ पचास पल, बदर तीन प्रस्थ, निकुम्भ (दन्तीवृक्ष) तथा चित्रक दो २ पल, पिप्पली तथा विडंग एक २ कुडव, त्रिफला तीन प्रस्थ एक द्रोण जल में पकावे और धान्यराशि में एक पक्ष तक रखकर मात्रापूर्वक पान करे। इससे ऊर्ध्व तथा अधोदोष को वमन-विरेचन द्वारा निकलता है जिससे पाण्डुरोग नष्ट हो जाता है। यह मण्डूरारिष्ट कृमि, अर्श, कुष्ठ, कास, श्वास तथा कफ रोगों को दूर करता है तथा शोफ और पाण्डुरोग को नाश करता है ॥ ८९–९३ ॥

क्षयरोगे पिप्पल्यरिष्टः—

मरिचपिप्पलीरोध्रपाठाधात्र्येलवालुकम् ॥ ९४ ॥
चव्यचित्रकजन्तुघ्नक्रमुकोशीरचन्दनम् ।
प्रियङ्गुलवलीमुस्तहरिद्रामिशिपेलवम् ॥ ९५ ॥
नतं पत्रं त्वचं कुष्टं नागकेसरसंयुतम् ।
एषामर्धपलान् भागान् द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत् ॥ ९६ ॥
पलानि दश धातक्या गुडस्य च शतत्रयम् ।
तोयद्रोणद्वये सिद्धो भवत्येष सुखावहः ॥ ९७ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकासगुल्मोदरापहः ।
पिप्पल्यादिररिष्टोऽयं ज्वरारुचिविनाशनः ॥ ९८ ॥

क्षयरोग में पिप्पल्यरिष्ट—मरिच, पिप्पली, लोध्र, पाठा, आंवला, (एलवालु) चव्य, चित्रक, विडंग, सुपारी, खस, रक्तचन्दन, प्रियंगु, लवली (हर्फारेवडी), मोथा, हरिद्रा, मिशि (सौंफ), प्लव (केवटमोथा), तगर, तेजपत्र, दालचीनी, कुष्ट (कूठ), नागकेशर—आधा २ पल—इन द्रव्यों को तथा द्राक्षा साठ पल, धाय का फूल दश पल, गुड़ तीन पल दो द्रोण जल में छोड़कर सिद्ध करे। यह [1]सुखावह (निरोग करने वाला) है। ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, वात, गुल्म तथा उदररोग को नाश करता है। यह पिप्पल्यादि अरिष्ट ज्वर तथा अरुचिनाशक है ॥ ९०–९८ ॥

शोऽफेऽष्टशतारिष्टः—

काश्मर्यधात्रीमरिचाभयाक्षक्षुद्राफलानां तु सपिप्पलीनाम् ।
शतं शतं क्षौद्रगुडात् पुराणात्तुलां च कुम्भे मधुना प्रलिप्ते ॥ ९९ ॥
सप्ताहमुष्णे द्विगुणं तु शीते स्थितं जलद्रोणयुतं पिबेन्ना ।
शोफान्विबन्धान्कफवातजांश्च निहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽग्निकृच्च ॥१००॥

शोफरोग में अष्टशतारिष्ट—गम्भारी, आंवला, मरिच, हर्रे, बहेड़ा, क्षुद्रा फल (कण्टकारी फल), पिप्पली—एक २ सौ पल, पुराना गुड़ तथा मधु एक तुला एक द्रोण जल में मिलाकर, मधु से लिप्त घटे में संधान कर गर्मी के दिन में एक सप्ताह, शीतऋतु में दो सप्ताह तक रक्खे। उसके बाद पान करे। यह अष्टशत अरिष्ट वात-कफजन्य शोथ तथा विबन्ध को नष्ट करता है और जाठराग्नि को बढाता है।

विमर्श—यह योग चरक से विपरीत है चरक में 'बहेड़ा' नहीं है और 'क्षुद्रा' के स्थान पर 'द्राक्षा' दिया गया है। वस्तुतः यह अष्टशत, मधु तथा गुड़

1. 'सुखसंज्ञकमारोग्यम्' इति चरकः ।

को एक द्रव्य मानकर लिखा गया है। चरक के अनुसार चरेटा छोड़ देने से अष्टशत योग बन जाता है ॥ ९९–१०० ॥

तक्रारिष्टः—

हपुषा सुपवी धान्यमजाजी कारवी शटी।
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको गजपिप्पली ॥ १०१ ॥
यवानी चाजमोदा च तच्चूर्णं तक्रसंयुतम्।
मन्दाम्लकटुकं विद्वान् स्थापयेद् घृतभाजने ॥ १०२ ॥
व्यक्ताम्लकटुकं जातं तक्रारिष्टं सुखप्रियम्।
पाययेन्मात्रया कालेष्वन्नस्य तृषित त्रिषु ॥ १०३ ॥
दीपनो रोचनो बल्यः कफवातानुलोमनः।
गुदश्वयथुकण्ठार्तिनाशनो बलवर्धनः ॥ १०४ ॥

तक्रारिष्ट—हाऊवेर, सुपवी (रास्ना), धनिया, स्याहजीरा, कारवी (कलजीरी), शटी (कपूरकचरी), पिप्पली, पिपरामूल, चित्रक, गजपिप्पली, अजवायन, अजमोदा—समभाग—इन द्रव्यों के चूर्ण को, किंचिदम्ल, कटु तक्र के साथ मिलाकर घृत के भाण्ड में 'विद्वान्' रक्खे। अम्ल, कटु स्पष्ट मालूम होने पर सुखप्रिय तक्रारिष्ट तैयार हो जाता है। मात्रापूर्वक तीनों समय अन्न खाने की इच्छा करनेवाले को पान कराये। यह तक्रारिष्ट दीपन, रोचन, बल्य, कफ तथा वात को अनुलोम करनेवाला, गुदरोग (अर्श), शोथरोग, कण्ठरोग को नाश करनेवाला तथा बलवर्धक है ॥ १०१–१०४ ॥

अरोचके लघुचुक्रसन्धानम्—

गुडक्षौद्रारनालानां समस्तूनां यथोत्तरम्।
शंसन्ति द्विगुणान्भागान्सम्यक्चुक्रस्य सिद्धये ॥ १०५ ॥
यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सक्षौद्रगुडकाञ्जिकम्।
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥ १०६ ॥

अरोचक मे लघु चुक्र सन्धान—गुड मधु, आरनाल, मस्तु—इनके यथोत्तर द्विगुणित भाग (गुड एक भाग, मधु दो भाग, आरनाल चार भाग, मस्तु आठ भाग) के संमिश्रण को सम्यक् चुक्र-सिद्धि कहते है। जिस मस्तु आदि को पवित्र पात्र मे, मधु, गुड़, काञ्जी मिलाकर धान्य की राशि मे तीन रात्रि रक्खा जाता है उसको शुक्त-चुक्र कहते है ॥ १०५–१०६ ॥

मन्दाग्नौ बृहच्चुक्रसन्धानम्—

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुषजलात्प्रस्थत्रयं चाम्लतः
प्रस्थार्धं दधितोऽथ मूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिका।

मान्यौ शोधितशृङ्गवेरशकलाद् द्वे सिन्धुजातात्पले
द्वे कृष्णोपणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥ १०७ ॥
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्वासयेद्
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ।
षट् शीतेऽष्टदिनान्यतः परमिदं विस्राव्य संचूर्णितै-
श्चातुर्जातपलैः सुसंहितमिदं शुक्तं च चुक्रं तथा ॥ १०८ ॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान्
दुर्नामानिलशूलगुल्मजठरान्हत्वाऽनलं दीपयेत् ॥ १०९ ॥

मन्दाग्नि में बृहत् चुक-सन्धान—चावल का धोवन एक प्रस्थ, तुष (धान के छिलका) का क्वथित जल एक प्रस्थ, इमली का जल तीन प्रस्थ, दधि आधा प्रस्थ, मूलक आठ पल, गुड़ एक मानी, शोधित अद्रक का टुकड़ा दो मानी, सेन्धा नमक दो पल, पिप्पली तथा मरिच दो पल, हल्दी चार पल—इन द्रव्यों को मिलाकर स्निग्ध तथा दृढ भाण्ड में रखकर, धान्य, यव आदि की राशि में तीन दिन तक रक्खे। बुद्धिमान् व्यक्ति ग्रीष्म तथा वर्षा के अन्त में तीन दिन, वर्षा ऋतु में चार दिन, वसन्तऋतु में छः दिन, शीतऋतु में आठ दिन रक्खे। इसके बाद छानकर चातुर्जात (त्वक्, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) के चूर्ण को मिला दे। यह शुक्त-चुक सिद्ध हो जाता है। यह वात, कफ तथा आम दोषजनित अनेक प्रकार के रोगों को तथा दुर्नाम (अर्श), वातशूल, गुल्म तथा जठररोग को नाश कर अग्नि को प्रदीप्त करता है ॥ १०७–१०९ ॥

लवङ्गासवः—

लवङ्गपिप्पलीलोहमरिचं सैलवालुकम् ।
द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ ११० ॥
द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूते शीते प्रदापयेत् ।
गुडस्य द्विशतं तिष्ठेत्तत्सर्वं घृतभाजने ॥ १११ ॥
पक्षादूर्ध्वं रसे जाते दद्यान्मात्रां यथाबलम् ।
अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति संक्षयम् ॥ ११२ ॥
ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरापहः ।
अरुचिकुष्ठशोफघ्नो बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ११३ ॥
सद्यः क्षयहरोऽरिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः ।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ ११४ ॥

लवंगासव—लवंग, पिप्पली, लोह (मंजीठ), मरिच, एलवालु—दो २ पल, इन द्रव्यों को चार द्रोण जल में क्वाथ करे। एक द्रोण शेष छाने हुए शीत क्वाथ में गुड़ दो सौ पल मिलाकर सब को घृत के वर्तन में रक्खे। एक

पक्ष के बाद आसव सिद्ध हो जाने पर बल के अनुसार मात्रापूर्वक पान कराये। इस अरिष्ट के प्रयोग से गुदज (अर्शरोग) नष्ट हो जाते हैं। यह अरिष्ट ग्रहणी, पाण्डु, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म तथा उदररोगों को नाश करता है। अरुचि, कुष्ठ तथा शोफ का नाश करनेवाला है, बल तथा वर्ण को बढ़ानेवाला है। शीघ्र ही क्षय को दूर करता है, कामला तथा श्वित्र को नष्ट करता है। कृमि ग्रन्थि (पलक वर्त्म तथा शुक्ल भाग में होनेवाला रोग) या नीलिका, व्यङ्ग (छाही), राजयक्ष्मा तथा ज्वर का अन्त करता है ॥ ११०–११४ ॥

प्लीह्नि रोहीतकासवः—

रोहीतकशतमेकं क्वथितं द्रोणे चतुर्थशेषे तु।
तस्मिन्गुडशतमेकं योज्यं शेषैः सुचूर्णितैरभिः ॥ ११५ ॥
पलमेक त्रिफलाया देयं त्रिपल च धातकीपुष्पात्।
पलिकं च पञ्चकोलाद् घृतभाण्डे स्थापयेत्पक्षम् ॥ ११६ ॥
ज्वरगुल्मार्शःप्लीहरुगस्थिग्रहपाण्डुरोगघ्नः ।

प्लीहारोग में रोहीतकासव—रोहीतक (रोहेड़ा) एक सौ पल एक द्रोण जल में पकाने से चतुर्थांश शेष क्वाथ में एक सौ पल गुड मिला दे और त्रिफला एक पल, धाय का फूल तीन पल, पञ्चकोल (पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ)—एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर घृत के भाण्ड में एक पक्ष तक रक्खे। यह अरिष्ट ज्वर, गुल्म, अर्श, प्लीहारोग, अस्थिग्रह (हड्डियों का जकड़ना) तथा पाण्डु रोग को नाश करनेवाला है ॥

अर्शस्सु गण्डिकाद्रोणः—

दद्यात्सलिलद्रोण कृतमन्थेक्षुगण्डिकाद्रोणम् ॥ ११७ ॥
धान्ययवानीदीप्यकपृथ्वीकाश्चेति कुडवांशाः।
द्विपलीनाः स्युर्देयास्तेजस्वतीचव्यचित्रकाजाज्य. ॥ ११८ ॥
मधुनः कुडवं दत्त्वा घृतरूढे भाजने स्थाप्यः।
एष काञ्जिकराजो लवणयुतः कटतृणार्द्रकसुगन्धः ॥ ११९ ॥
दशरात्रात्पातव्यः सलिल च पुनः पुनर्देयम्।
अर्शोभगन्दरगदग्रहणीमेदःप्रमेहदोषांश्च ॥ १२० ॥
नाशयति सेव्यमानो वह्निकरो गण्डिकाद्रोणः।

अर्शरोग में गण्डिका द्रोण—जल एक द्रोण, कृतमन्थेक्षुगण्डिका (गन्ने का रस) एक द्रोण, धनिया, अजवायन, अजमोदा, बड़ी इलायची एक-एक कुडव (चार पल), तेजबल, चव्य, चित्रक, स्याहजीरा—दो २ पल, मधु एक कुडव (चार पल)—इन द्रव्यों को एकत्र कर घृतलिप्त, गन्धतृण, अद्रक आदि गन्ध द्रव्यों के लेप से सुगन्धित भाण्ड में भरकर सेन्धानमक मिलाकर

दशरात्रि रक्खे। दशरात्रि बाद, इस काञ्जिकराज को पान करे, पान करते समय प्रत्येक बार जल मिला ले।

यह गण्डिकाद्रोण, सेवन करने से अर्श रोग, भगन्दररोग, ग्रहणीदोष, मेदोरोग तथा प्रमेहरोग को नाश करता है और जाठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

कुष्ठे खदिरासवः—

खदिरस्य तुलार्धं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि ॥ १२१ ॥
वराया विंशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्चविंशतिम्।
वाकुच्या द्वादशपलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १२२ ॥
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते विनिक्षिपेत्।
माक्षिकस्य शतद्वन्द्वं धातक्याः पलविंशतिम् ॥ १२३ ॥
शर्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत्।
कक्कोलकं लवङ्गं च ह्येला जातीफलं त्वचम् ॥ १२४ ॥
केसरं मरिचं पत्रं पलिकान्युपकल्पयेत्।
कुडवं पिप्पलीनां तु स्थापयेद् घृतभाजने ॥ १२५ ॥
मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामपेक्ष्याग्निबलाबलम्।
सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत् ॥ १२६ ॥
कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थिगुल्मप्लीहोदरान्तकृत्।
एष वै खदिरारिष्टः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ १२७ ॥

कुष्ठरोग में खदिरासव—खदिर आधा तुला, देवदारु आधा तुला, वरा (त्रिफला) बीस पल, दारुहल्दी पच्चीस पल, बाकुची बारह पल—इन द्रव्यों को आठ द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण अवशिष्ट क्वाथ को छानकर शीत होने पर माक्षिक 'मधु' दो सौ पल, धाय का फूल पच्चीस पल, शर्करा एक तुला मिला दे और कंकोल (शीतलचीनी), लवंग, इलायची, जायफर, दालचीनी, नागकेशर, मरिच, तेजपत्र—एक २ पल, पिप्पली एक कुड़व—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर घृतस्निग्ध भाण्ड में अनुसन्धान कर एक मास तक रक्खे। एक मास के बाद अग्नि तथा बलाबल को देखकर उचित मात्रा में पान करे। कृष्णात्रेय से प्रशंसित यह खदिरारिष्ट सभी प्रकार के कुष्ठ को दूर करता है। पाण्डु, हृद्रोग तथा कास को दूर करता है। कृमिग्रन्थि, (वर्त्मगत रोग) अर्बुदग्रन्थि, गुल्म, प्लीहा तथा उदररोग को नाश करता है ॥ १२१-१२७ ॥

कुष्ठे द्वितीयः खदिरारिष्टः—

खदिरस्य तुलामम्भसि विपचेच्चतुर्द्रोणसंमिते शेषम्।

पादं विगृह्य शीते दद्यान्मधुनस्तुलां सार्धाम् ॥ १२८ ॥
वस्त्रविपूते चूर्णं व्योपत्रिफलापिण्डखर्जूरी- ।
स्वर्णत्वग्बाकुचिकामृताविडङ्गपलांशानाम् ॥ १२९ ॥
धातकीं दशपलां दत्त्वा प्रविलोडितं नित्यम् ।
यावत्षोडशदिवसाः पोडशके मधुतुलां दद्यात् ॥ १३० ॥
मासात्परतः पेयो दत्त्वा मृगनाभिमापकं पटे बद्धम् ।
कर्पूरमापद्वयमेप खदिरासवो महाकुष्ठे ॥ १३१ ॥

कुष्ठरोग मे द्वितीय खदिरारिष्ट—खदिर एक तुला चार द्रोण जल में पकावे एक द्रोण शेप क्वाथ को छानकर शीत होने पर, मधु डेढ़ तुला, व्योप (सोंठ, पीपर, मरिच), त्रिफला, पिण्डखजूर (छोहाड़ा), स्वर्ण, दालचीनी, बाकुची, गुडूची, विडंग—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को तथा धाय के फूल दश पल मिलाकर सोलह दिन तक चलावे। सोलहवें दिन एक तुला मधु देकर, एक मास रखने के बाद छानकर कस्तूरी कपड़ा में बांधकर छोड दे, तथा कपूर दो मासा मिला दे। इस खदिरासव को महाकुष्ठ रोग में पान करना चाहिए ॥१२८–१३१॥

क्षयरोगे बब्बूल्यासवः—

तुलाद्वयं तु बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रिशत क्षिपेत् ॥ १३२ ॥
धातक्याः प्रस्थमेकं तु पिप्पलीनां पलद्वयम् ।
जातीलवङ्गकङ्कोलमेलात्वक्पत्रकेसरम् ॥ १३३ ॥
मरिचेन समायुक्तं पलिकं तत्र कल्पयेत् ।
मासमात्रं स्थितो ह्येप बब्बुल्यासबसंज्ञितः ॥ १३४ ॥
क्षयं कुष्ठं प्रमेहांश्च कासश्वासांश्च नाशयेत् ।

क्षयरोग में बब्बूल्यासव—बब्बूल की छाल दो तुला जल चार द्रोण में पकावे, एक द्रोण शेष शीत क्वाथ में गुड़ तीन सौ पल छोड़ दे तथा धाय का फूल एक प्रस्थ, पिप्पली दो पल, जायफर, लवग, कंकोल (शीतलचीनी), इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, मरिच—एक २ पल के चूर्ण मिला कर संधान करे, एक मास तक रखने के बाद सिद्ध यह बब्बूल्यासव नामक आसव, क्षय, कुष्ठ, प्रमेह कास तथा श्वास को नाश करता है ॥

क्षयरोगे पुष्करमूलासवः—

तुलां पुष्करमूलस्य तदर्धं तु दुरालभा ॥ १३५ ॥
तदर्धेन तु धान्याकं व्योषाच्च पलविंशतिः ।
मञ्जिष्ठाकुष्ठमरिचं कपित्थं देवदारु च ॥ १३६ ॥

विडङ्गं चविका रोध्रं पिप्पलीमूलमेव च।
काश्मर्यं च तथोशीरं रास्ना भार्ङ्गी च नागरम् ॥ १३७ ॥
एषां द्विपलिकान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
द्रोणशेषे कषाये तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १३८ ॥
गुडस्य त्रिशतं तत्र धातक्याः पलविंशतिम्।
मरिचं केसरं श्यामासेलात्वक्पत्रकं पलम् ॥ १३९ ॥
कुडवं पिप्पलीनां तु चूर्णीकृत्य प्रदापयेत्।
घृतभाण्डे स्थित मासं पिबेन्मात्रां यथाबलम् ॥ १४० ॥
क्षयापस्मारकासासृक्शोफगुल्मभगन्दरान्।
पुष्करासव इत्येष प्रयोगादेव नाशयेत् ॥ १४१ ॥

क्षयरोग में पुष्करमूलासव—पुष्करमूल एक तुला, दुरालभा (धमासा) आधा तुला, धनिया चौथाई तुला तथा त्र्योष (सोंठ, पीपर, मरिच) पच्चीस पल, मजीठ, कूठ, मरिच, कपित्थ (कैथ), देवदारु, विडंग, चव्य, लोध्र, पिपरामूल, गम्भारी, खस, रास्ना, भांगरा, सोंठ—इन द्रव्यों को दो २ पल लेकर चार द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष क्वाथ को छानकर ठंढा होने पर गुड़ तीन सौ पल, धाय के फूल पच्चीस पल, मरिच, नागकेशर, कालानिशोथ, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र—एक २ पल, पिप्पली एक कुडव—इन द्रव्यों को चूर्ण कर मिला दे और घृत के पात्र में संधान कर एक मास तक रक्खे। इसको बल के अनुसार उचित मात्रा में पान करे। यह पुष्करासव, प्रयोग करने मात्र से ही क्षय, अपस्मार, कास, रक्त, शोफ गुल्म तथा भगन्दर को नाश करता है ॥ १३५–१४१ ॥

क्षयरोगे माचिकासवः—

माचिकायाः शतार्धं तु द्रोणेऽपां च विपाचयेत्।
तस्मिंश्चतुर्थशेषे तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १४२ ॥
गुडस्य द्विशतं दत्त्वा तत्सर्वं घृतभाजने।
विडङ्गपिप्पलीकृष्णात्वगेलापत्रकेसरैः ॥ १४३ ॥
मरिचैश्च तथा चूर्णं सम्यक्कृत्वा विचक्षणः।
क्षिपेच्च पालिकैर्भागैर्घटनीयं समन्ततः ॥ १४४ ॥
ततो यथाबलं पीत्वा कासश्वासगलामयान्।
हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रमुरःसन्धानकारकः ॥ १४५ ॥
माचिकासव इत्येष ब्रह्मणा निर्मितः पुरा।

क्षयरोग मे माचिकासव—माचिका (मकोय) पचास पल, जल एक द्रोण में पकावे चौथाई शेष क्वाथ को छान कर शीतल होने पर गुड़ दो सौ

पल, विडंग, पिप्पली, कृष्णा (मंगरैल), दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, मरिच—एक २ पल—इन द्रव्यों का अच्छी तरह चूर्ण बनाकर तथा सभी द्रव्यों को एकत्र कर घृत के भाण्ड में छोड़ दे तथा सभी प्रकार से संघटित करे। इसके बाद बल के अनुसार पान करे। यह आसव कास, श्वास तथा कण्ठ रोग को नाश करता है। पहले समय में ब्रह्मा का बनाया हुआ यह माक्षिकासव, अति भयंकर यक्ष्मा को नाश करता है तथा उरःसंधान, (फुफ्फुसगत-व्रण संधान) कारक है॥

शोफे पुनर्नवासवः—

पुनर्नवे द्वे च पले सपाठे दन्तीं गुडूचीं सह चित्रकेण।
निदिग्धिकां च त्रिपलां विपाच्य द्रोणावशेषे सलिले ततस्तु॥१४६॥
पूत्वा रस द्वे च तुले पुराणाद् गुडान्मधुप्रस्थयुतं सुशीते।
मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं पल्ले यवानां परतश्च मासात्॥१४७॥
चूर्णीकृतैरर्धपलांशकैस्तं हेमत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः।
गन्धान्वितं क्षौद्रघृतप्रदिग्धं जीर्णे पिबेद् व्याधिबलं समीक्ष्य॥१४८॥
हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान्।
भगन्दरार्शोजठराणि कासश्वासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः॥१४९॥
शाखानिलं बद्धपुरीषतां च हिक्कां किलासं च हलीमकं च।
क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोन्वितो मांसरसान्नभोजी॥१५०॥

शोफरोग में पुनर्नवासव—दोनों पुनर्नवा (श्वेतगदहपूरना, रक्तगदहपूरना), दो पाठा—दो २ पल, दन्तीमूल, गुडूची, चित्रक, निदिग्धिका (रेंगनी) तीन २ पल—इन द्रव्यों को चार द्रोण जल में पकावे, एक द्रोण शेष क्वाथ को छानकर शीत होने पर पुराना गुड़ दो तुला, मधु एक प्रस्थ मिलाकर घृतलिप्त घड़े में रख मुंह बन्द कर एक मास तक यव की राशि में रक्खे। एक माह बाद छानकर हेम (नागकेशर), दालचीनी, छोटी इलायची, मरिच, अम्बु (सुगन्धवाला), तेजपत्र आधा पल—इन द्रव्यों के चूर्ण से सुगन्धित बनाकर मधु-घृतभावित पात्र मे रक्खे। इसके बाद, रोग-बल के अनुसार मात्रा मे भोजन के पच जाने के बाद सेवन करे और सेवनकाल में मांसरस के साथ अन्न का सेवन करे। यह अरिष्ट सेवन करने से हृदयरोग, पाण्डुरोग, तीव्र शोथ, प्लीहा. भ्रम, अरोचक, प्रमेह, गुल्मरोग, भगन्दर, अर्श, जठररोग, कास, श्वास, ग्रहणीरोग, कुष्ठ, कण्डू, शाखागत वातविकार, विबन्ध, हिचकी, किलास नामक कुष्ठ तथा हलीमक को दूर करता है। सेवन करनेवाला वर्ण, बल, आयु तथा तेज से युक्त होता है॥ १४६–१५०॥

विमर्श—चरक के अनुसार 'पले' के स्थान में 'बले' पाठ है उनके मत से

दोनों बला (बरियारा, तथा ककही) लेते हैं और सभी द्रव्यों की मात्रा तीन पल है। घृत भावित तथा क्षौद्र-घृतभावित भाण्ड का दो वार विधान आया है,प्रथम वार क्वाथ्य तथा प्रक्षेप द्रव्याधान के लिये, द्वितीय वार सुगन्धित द्रव्याधान के लिये। अतः प्रथम संधान काल एक साल का तथा द्वितीय एक सप्ताह का मानना चाहिए। क्योंकि अरिष्ट किसी द्रव्य को मिलाकर पीने का कहीं भी विधान नहीं है और क्वाथ अनिर्णीत काल तक रखने से पूति-सड़न होने की सम्भावना है। अतः एक सप्ताह के बाद पुनः छान कर बोतल में रख लेनी चाहिए।

शोफे त्रिफलारिष्टः—

फलत्रयं पिप्पलिचित्रकौ च सदीप्यक लोहरजो विडङ्गम् ।
चूर्णीकृतं कौडविकं, द्विरंश क्षौद्रं, पुराणस्य तुलां गुडस्य ।
मासं निदध्याद् घृतभाजनस्थं यवेषु तानेव निहन्ति रोगान् ॥१५१॥

शोफरोग में त्रिफलारिष्ट—त्रिफला (आंवला, हर्रे, बहेड़ा), पीपर, चित्रक, अजमोदा, लौहभस्म, विडंग—एक कुडव—इन द्रव्यों के चूर्ण को चौगुने जल में क्वाथ कर चौथाई शेष रहने पर कपड़े से छान ले। शीत होने पर दो कुडव मधु एक तुला गुड़ मिलाकर मुख बन्द कर एक मास तक यव की राशि में रक्खे। एक मास के बाद प्रयोग में लाये। यह अरिष्ट पुनर्नवा अरिष्ट से नाश होनेवाले सभी रोगों को नाश करता है ॥ १५१ ॥

सर्वशोफे वासकासवः—

वासकस्य तुले द्वे तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत् ।
कृत्वा द्रोणार्धशेषं तु पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १५२ ॥
गुडस्यैकां तुलां तत्र धातक्यास्तु पलाष्टकम् ।
क्षिपेच्चूर्णीकृतं तस्मिन् त्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १५३ ॥
कङ्कोलव्योषतोयानि पलिकान्युपकल्पयेत् ।
सम्यक्पक्वं ततो ज्ञात्वा पक्षादूर्ध्वं पिबेदमुम् ॥ १५४ ॥
वासकासव इत्येष सर्वश्वयथुनाशनः ।

सभी प्रकार के शोफ (शोथ) में वासकासव—अडूसे की जड़ दो तुला, दो द्रोण जल में पकावे आधा द्रोण क्वाथ शेष रहने पर कपड़ा से छान कर शीत होने पर गुड़ एक तुला धाय का फूल आठ पल, तथा दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, शीतलचीनी, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), तोय (सुगन्धवाला), एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को प्रक्षेप कर दे और मुख बन्द कर पन्द्रह दिन तक उष्ण स्थान पर रक्खे। एक पक्ष के बाद अच्छी तरह तैयार होने पर छानकर पान करे। यह श्वास, कास, सभी प्रकार के शोथ रोग को नाश करता है ॥

अर्शस्सु शर्करासवः—

प्रस्थं दुरालभायास्तु चित्रकस्य वृषस्य च ॥ १५५ ॥
पथ्यामलकयोश्चैव पाठाया नागरस्य च ।
दद्याद् द्विपलिकान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १५६ ॥
पादशेषे रसे पूते सुशीते शर्कराशतम् ।
दत्त्वा कुम्भे दृढे स्थाप्यं मासार्धं घृतभाजने ॥ १५७ ॥
प्रलिप्ते पिप्पलीचव्यप्रियङ्गुमधुसर्पिषा ।
तस्य मात्रां पिबेत्काले शार्करस्य यथाबलम् ॥ १५८ ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगमुदावर्तमरोचकम् ।
शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५९ ॥
हृद्रोगं पाण्डुरोगं च सर्वमेतत्प्रणाशयेत् ।

अर्शरोग में शर्करासव—दुरालभा (धमासा) एक प्रस्थ, चित्रक, अडूसा, हर्रे, आंवला, पान, सोंठ—दो २ पल—इन द्रव्यों को एक द्रोण जल में क्वाथ करे, शेष चतुर्थांश भाग को छानकर ठंढा होने पर एक सौ पल शर्करा मिलाकर पिप्पली, चव्य, प्रियंगु, मधु तथा घृत से प्रलिप्त मजबूत मिट्टी के घृतपात्र में मुख बन्द कर आधा मास तक रक्खे। इसके बाद छानकर बोतल मे भर ले और बल के अनुसार मात्रा में समय पर पान करे। यह अरिष्ट अर्श, ग्रहणी रोग, उदावर्त, अरोचक, मल-मूत्र तथा वायु का उद्गार, विबन्ध, अग्निमान्द्य, हृद्रोग तथा पाण्डुरोग आदि सभी रोगों को नाश करता है ॥

ग्रहण्यां द्राक्षासवः—

मृद्वीकायास्तुलामेकां चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १६० ॥
द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ।
द्वे शते क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ॥ १६१ ॥
कङ्कोलकलवङ्गे च जातीफलमथैव च ।
पलांशकानि मरिचत्वगेलापत्रकेसरम् ॥ १६२ ॥
पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुकम् ।
घृतभाण्डे स्थितं चेदं चन्दनागुरुधूपिते ॥ १६३ ॥
कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहणीदीपनः परः ।
अर्शसां नाशनः श्रेष्ठ उदावर्तास्रपित्तनुत् ॥ १६४ ॥
जठरक्रिमिकुष्ठानि व्रणांश्च विविधांस्तथा ।
अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगविनाशनः ॥ १६५ ॥
ज्वरं हन्ति महाव्याधिं पाण्डुरोगं सकामलम् ।
नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष बृंहणो बलवर्णकृत् ॥ १६६ ॥

ग्रहणीरोग में द्राक्षासव—मुनक्का एक तुला चार द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष रहने पर कपड़ा से छानकर शीत होने पर दो सौ पल मधु तथा शर्करा (एक सौ पल मधु, एक सौ पल शर्करा), धाय का फूल एक प्रस्थ, शीतलचीनी, लवंग, जायफर, मरिच, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, पीपर, चित्रक, चव्य, पिपरामूल, सरभालू के बीज एक २ पल, इन द्रव्यों को चूर्ण बनाकर मिला दे और चन्दन, अगर से धूपित घृत के भाण्ड में एक मास रक्खे उसके बाद छानकर कर्पूर से सुगन्धित कर पान करे। यह ग्रहणी रोग के लिये उत्तम अग्निदीपक है। अर्श को नाश करता है, उदावर्त (मल-मूत्र तथा वायु का अवरोध और उदरशूल) तथा रक्तपित्त को दूर करता है। ज्वर, कृमि, कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के व्रण को दूर करता है। आंख का रोग, शिरोरोग, तथा गला के रोग को नाश करता है। महाव्याधि ज्वर, पाण्डु तथा कामला (पीलिया) को नाश करता है। यह द्राक्षासव नामक अरिष्ट शरीर को मोटा करने वाला बृंहण तथा बल, वर्ण को देने वाला है ॥ १६०–१६६ ॥

अर्शसि द्वितीयो द्राक्षासवः—

द्राक्षापलशतं दत्त्वा चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत् ॥ १६७ ॥
शर्करायास्तुलां दत्त्वा तत्तुल्यं मधुनस्तथा ।
पलानि सप्त धातक्याः स्थापयेदाज्यभाजने ॥ १६८ ॥
जातीलवङ्गकक्कोललवलीफलचन्दनम् ।
कृष्णां त्रिगन्धसंयुक्तां भागानर्धपलांशकान् ॥ १६९ ॥
त्रिःसप्ताहाद्भवेत्पेयस्तस्य मात्रा यथाबलम् ।
नाम्ना द्राक्षासवो ह्येष नाशयेद् गुदकीलकान् ॥ १७० ॥
शोफारोचकहृत्पाण्डुरक्तपित्तभगन्दरान् ।
गुल्मोदरकृमिग्रन्थिक्षतशोषज्वरान्तकृत् ॥ १७१ ॥
वातपित्तप्रशमनः शस्तश्च बलवर्णकृत् ।

अर्शरोग में द्वितीय द्राक्षासव—मुनक्का सौ पल चार द्रोण जल में पकावे एक द्रोण क्वाथ को छानकर शीत होने पर शर्करा एक तुला, मधु एक तुला, धाय का फूल सात पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर घृतस्निग्ध घड़े में रक्खे और उसमें जायफर, लवंग, शीतलचीनी, लवलीफल (हर्फारेवड़ी), चन्दन, पीपर, त्रिगन्ध (इलायची, दालचीनी, तेजपत्र) आधा २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। और मुह बन्द कर तीन सप्ताह तक रक्खे। इसके बाद पान करने योग्य हो जाता है। बल के अनुसार इसको मात्रा से पान करे। यह द्राक्षासव नामक आसव अर्श के अंकुरों को तथा शोफ, अरोचक,

हृद्रोग, पाण्डुरोग, रक्तपित्त तथा भगन्दर का नाश करता है। गुल्मरोग, उदररोग, कृमिग्रन्थि, (वर्त्म तथा शुक्लगत नेत्ररोग), क्षत, सूखारोग तथा ज्वर को दूर करने वाला है। वातपित्त को शान्त करने वाला तथा बल, वर्ण को देने वाला है॥

ग्रहण्यां बीजकासवः—

बीजकात्प्रस्थमेकं तु त्रिफलायाश्च विंशतिः॥ १७२॥
द्राक्षायाः पञ्च लाक्षायाः सप्त द्रोणे तथाऽम्भसि।
साध्यं पादावशेषे च पूतशीते प्रदापयेत्॥ १७३॥
शर्करायास्तुलां प्रस्थं क्षौद्रं दद्याच्च कार्षिकम्।
व्योषव्याघ्रनखोशीरं क्रमुकं सैलवालुकम्॥ १७४॥
मधुकं कुष्ठमित्येतच्चूर्णितं घृतभाजने।
यवेषु दशरात्रस्थं ग्रीष्मे, द्विः शिशिरे स्थितम्॥ १७५॥
पिबेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःशोफगुल्मनुत्।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकुष्ठकामलासन्निपातनुत्॥ १७६॥

ग्रहणीरोग मे बीजकासव—बीजक (विजयसार) एक प्रस्थ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) बीस पल, मुनक्का पांच पल, लाक्षा सात पल, एक द्रोण जल में पकावे, चौथाई भाग शेष क्वाथ को छान शीत होने पर शर्करा एक तुला, मधु एक प्रस्थ, तथा व्योष, (सोंठ, पीपर, मरिच), व्याघ्रनख, खश, सुपारी, एलवालु, मुलेठी, कूठ—एक २ कर्ष इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर घृतभावित भाण्ड मे भरकर यव की राशि मे गर्मी के दिन में दश दिन तथा शिशिर मे बीस दिन तक रक्खे और सिद्ध हो जाने पर पान करे। यह बीजकासव ग्रहणी रोग, पाण्डुरोग, अर्श तथा गुल्म रोग को दूर करता है। और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, कुष्ठ, कामला तथा सन्निपात को नाश करता है॥१७२–१७६॥

अर्शसि पीलवासवः—

द्रोण पीलुरसस्य वस्त्रगलित न्यस्त हविर्भाजने
युञ्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधात्रीफलैः।
पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योषत्वगेलोल्लकैः
स्पृक्काकोलतवङ्गवेल्लचपलामूलाग्निकैः पालिकैः॥ १७७॥
गुडशतविनियोजितं निवाते निहितमिदं प्रपिबेच्च पक्षमात्रात्।
प्रशमयति गुदाङ्कुरान्सगुल्माननलबलं प्रबलं च संविधत्ते॥ १७८॥

अर्शरोग मे पीलवासव—पीलुका (पीलु वृक्ष की छाल को कूटकर वस्त्र से छान), एक द्रोण रस लेकर घृत के भाण्ड मे रक्खे और उसमें धाय का फूल, मधुफल (महुआ), खजूर, आंवला—दो २ पल, पाठा (पाढी), माद्रि

(पिप्पली), दुरालभा (धमासा), अम्लविदुल (अम्लवेत), व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), दालचीनी, इलायची, उशक (ढेरा), स्पृक्का (गठिवन—सुगन्धित द्रव्य विशेष), चैर, लवंग, देश (वायविडंग), चपलामूल (पिपरा-मूल), अग्निक (चित्रक)—एक २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण मिला दे और एक सौ पल गुड़ मिलाकर मुह बन्द कर बन्द स्थान पर एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक रक्खे उसके बाद छानकर पान करें। यह अर्शांकुरों तथा गुल्म रोगों को शान्त करता है और अग्नि-बल को तीव्र बनाता है ॥ १७७-१७८ ॥

रक्तपित्ते उशीरासवः—

उशीरं पद्मकं रोध्रं प्रियगुं नीलमुत्पलम् ।
प्रपौण्डरीकं काश्मरी ह्रीवेरं धन्वयासकम् ॥ १७९ ॥
सेव्यं किराततिक्तं च पटोलं काञ्चनारकम् ।
पद्मं शाल्मलिनिर्यासं न्यग्रोधोदुम्बरं शटी ॥ १८० ॥
मञ्जिष्ठा पर्पटं जम्ब्वर्भागानेषां पलोन्मितान् ।
सूक्ष्मचूर्णीकृतान् दद्याद् द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १८१ ॥
धातक्याः प्रस्थमेकं तु तोयद्रोणे विनिक्षिपेत् ।
शर्करायास्तुलां दत्त्वा माक्षिकस्य तुलां तथा ॥ १८२ ॥
उशीरासव इत्येष रक्तपित्तविनाशनः ।
पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शःकृमिशोफहरस्तथा ॥ १८३ ॥

रक्तपित्त में उशीरासव—उशीर (खश), पद्मकाठ, पठानी लोध, प्रियंगु (फूलप्रियंगु), नीलकमल फूल, प्रपौण्डरीक, गम्भारी, [1]हाऊवेर (नेत्रवाला), धमासा, सेव्य ([2]खस), किराततिक्तक (चिरायता), पटोलपत्र, कांचनार की छाल, श्वेत कमल का पुष्प, सेमर का गोंद, न्यग्रोध (वटांकुर), गूलर, कपूरकचरी, मंजीठ, पित्तपापड़ा तथा जामुन की गुठली—एक २ पल—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण, मुनक्का बीसपल, धाय का फूल एक प्रस्थ—इन सभी द्रव्यों को एक द्रोण जल में छोड़ दे और उसमें शर्करा एक तुला तथा मधु एक तुला मिलाकर घृतलिप्त भाण्ड में भरकर एक मास तक उष्ण स्थान में रक्खे। एक मास बाद छान ले। यह उशीरासव रक्तपित्त को नाश करने वाला है। पाण्डुरोग, कुष्ठरोग, प्रमेह, अर्श, कृमि तथा शोथ को दूर करता है ॥ १७९-१८३ ॥

श्वासकासयोस्त्रायमाणासवः—

त्रायन्ती कट्फलं दन्ती पौष्कर कण्टकारिका ।
दुरालभाऽञ्जनं सिंही पिप्पलीमूलमेव च ॥ १८४ ॥

---

१. नेत्रवाला ।

२. भैषज्यरत्नावल्यां सेव्य-स्थाने-पाठा-इति पठितम् ।

धात्री कृमिहरं भार्ङ्गी माचिका चैलवालुकम् ।
पथ्या शटी विशाला च भागानष्टपलोन्मितान् ॥ १८५ ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शृतं द्रोणावशेषितम् ।
शतत्रयं माक्षिकस्य धातक्याः पलत्रिंशतिम् ॥ १८६ ॥
श्यामापलानि चत्वारि ह्येलात्वक्पत्रकेसरम् ।
भागान्द्विपलिकानेषां चूर्णं कृत्वा विनिःक्षिपेत् ॥ १८७ ॥
त्रायमाणासवो ह्येष कासश्वासामयप्रणुत् ।
पाण्डुहृद्रोगगुल्मार्शःसन्निपातज्वरापहः ॥ १८८ ॥

श्वास तथा कास में त्रायमाणासव—त्रायमाणा, कायफर, दन्तीवृक्ष, पुष्करमूल, बड़ी कटेरी, धमासा, अञ्जन, सिंही (छोटी कटेरी), पिपरामूल, आंवला, विडंग, भांगरा, माचिका (मकोय), एलवालु, हर्रे, कपूरकचरी, इन्द्रायण—आठ २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को चार द्रोण जल में पकाकर एक द्रोण अवशेष क्वाथ में मधु तीन सौ पल, धाय का फूल बीस पल, काला निशोथ चार पल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र नागकेशर दो पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को छोड़ दे, और घृतलिप्त भाण्ड में भरकर मुह बन्द कर उष्ण स्थान में एक मास तक रक्खे। एक मास बाद निकाल कर छान ले। यह त्रायमाणासव कास तथा श्वास रोग को दूर करता है और पाण्डुरोग, हृद्रोग, गुल्म, अर्श तथा सन्निपात ज्वर को नष्ट करता है ॥ १८४–१८८ ॥

गुल्मे चविकासवः—

तुलार्धं चविकायास्तु तदर्धं चित्रकस्य च ।
वाष्पिका पौष्करं मूलं षड्ग्रन्था हपुषा शटी ॥ १८९ ॥
पटोलमूलत्रिफलायवानीकुटजत्वचः ।
विशाला धान्यकं रास्ना दन्ती दशपलोन्मिताः ॥ १९० ॥
कृमिघ्नमुस्तमञ्जिष्ठादेवदारुकटुत्रिकात् ।
भागान्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १९१ ॥
द्रोणशेषे सुशीते च देयं गुडशतत्रयम् ।
धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातपलाष्टकम् ॥ १९२ ॥
लवङ्गव्योषकङ्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् ।
निदध्यान्माससेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ १९३ ॥
चतुष्पलां पिबेन्मात्रां प्रातः पीतो नियच्छति ।
सर्वान्गुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ १९४ ॥
प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्ठीला वातशोणितम् ।
उदराण्यन्त्रवृद्धिं च चविकाख्यो महासवः ॥ १९५ ॥

गुल्मरोग में चविकासव—चव्य आधा तुला (पचास पल), चित्रक पच्चीस पल, वाप्पिका (नाडी हिंगु), पुष्करमूल, पड्ग्रन्था (वच), ह्राऊवेर, कपूरकचरी, परोरा की जड़, त्रिफला (हर्र, वहेड़ा, आंवला), अजवायन, कोरैया की छाल, इन्द्रायण, धनिया, रास्ना, दन्तीमूल—दश २ पल, विडंग, मोथा, मंजीठ, देवदारु, कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच)—पांच २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को आठ द्रोण पानी में पकावे, एक द्रोण शेष क्वाथ को छानकर शीत होने पर गुड तीन सौ पल, धाय का फूल बीस पल, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) आठ पल, लवंग, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कंकोल (शीतलचीनी)—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर सुगन्धित द्रव्यों से संस्कृत घृतस्निग्ध भाण्ड में भरकर एक मास तक उष्ण स्थान में रक्खे। एक मास बाद छानकर चार पल की मात्रा में प्रातः काल पान करे। यह महाचविका आसव सभी प्रकार के गुल्मविकारों को, बीस प्रकार के प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्ठीला (अष्ठीलावृद्धि), वातरक्त, आठ प्रकार के उदररोग तथा आन्त्रवृद्धि को दूर करता है ॥ १८९–१९५ ॥

ग्रहण्या मूलासवः—

द्विपञ्चमूलरजनीजीवकर्षभजीरकम् ।
पृथक्पञ्चपलैर्भागैश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ १९६ ॥
द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य द्विशतं तथा ।
चूर्णितान्कुडवार्धांशान्दत्त्वा चात्र समाक्षिकान् ॥ १९७ ॥
प्रियङ्गुमुस्तमञ्जिष्ठाविडङ्गमधुकप्लवान् ।
रोध्रं सावरकं चैव मासार्धं स्थापयेद् भृशम् ॥ १९८ ॥
एष मूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तहा ।
आमहृत्कफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १९९ ॥

ग्रहणीरोग में मूलासव—दोनों पंचमूल (बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी वनभंटा, रंगनी, गोखरू), हल्दी, जीवक, ऋषभक, स्याहजीरा—अलग २ पांच २ पल—इन द्रव्यों के यवकुट चूर्ण को चार द्रोण जल में पकावे। एक द्रोण शेष क्वाथ को छानकर उसमें गुड दो सौ पल, मधु आधा कुडव, प्रियंगु, मोथा, मंजीठ, विडंग, मधुक (मुलेठी), प्लव (केवटी मोथा), लोध्र, सावरक—आधा २ कुडव (दो २ पल)—इन द्रव्यों के चूर्ण को घृतस्निग्ध भाण्ड में भरकर मासार्द्ध (पन्द्रह दिन) तक उष्ण स्थान में रक्खे और पन्द्रह दिन बाद छान ले। यह सिद्ध मूलासव दीपन, अग्नि को प्रदीप्त करने वाला—तथा रक्तपित्त को नाश करने वाला है और आमदोषजन्य

हृद्रोग, कफजन्य हृद्रोग; पाण्डुरोग तथा अंगसाद को दूर करता है ॥ १९६–१९९ ॥

क्षयरोगे वृहन्मूलासवः—

महावृक्षवटार्काणां विना मूलैः परैः शुभैः ।
अष्टोत्तरशतैरम्भस्त्रिशद्घटमितं पचेत् ॥ २०० ॥
तुलात्रयप्रमाणं च दशमूल्यास्तथैव च ।
अष्टावशेषमुत्तार्य गुडस्यानु दिनद्वयम् ॥ २०१ ॥
पलानां विंशतिशत क्षिपेत्तच्च दृढे घटे ।
आतपे तं विनिक्षिप्य धारयेत्त्रिदिनं ततः ॥ २०२ ॥
उद्धृत्य धूपिते पात्रे वस्त्रपूतं क्षिपेद्भिषक् ।
पलाष्टकं हरीतक्या धातक्याः पलविंशतिम् ॥ २०३ ॥
पूगानां विंशतिपलं पिप्पल्याः पलपञ्चकम् ।
एलालवङ्गकङ्कोलजातीत्वक्पत्रकेसरम् ॥ २०४ ॥
पलं पल समरिचं चूर्णीकृत्य भिषग्वरः ।
आसवे निक्षिपेत्तत्र मधुनः कुडवद्वयम् ॥ २०५ ॥
संजातेऽष्टदिने तस्मादुद्धृत्यान्यत्र तं न्यसेत् ।
आसवे सकषाये तु गुडमन्यं प्रदापयेत् ॥ २०६ ॥
निष्कास्य पूर्वचूर्णं तु नवं तत्र नियोजयेत् ।
नाम्ना मूलासवो ह्येष रोगराजनिकृन्तनः ॥ २०७ ॥
श्वासामवातविध्वंसी पाण्डुप्लीहोदरापहः ।
कृमिगुल्मप्रमेहाणां नाशनो वह्निदीपनः ॥ २०८ ॥

क्षयरोग में बृहन्मूलासव—महावृक्ष (पीपल), वड़, मदार—इन वृक्षों के मूल को छोड़कर, अन्य छाल, पत्र, आदि स्वच्छ अवयवों को एक सौ आठ पल लेकर तीस घट (द्रोण) जल में पकावे, और उसमें दशमूल (बिल्व, गम्भारी, अरलू, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेंगनी, गोखरू) तीन तुला डाल दे। आठवां भाग अवशेष रहने पर दो दिन के बाद गुड बीस सौ पल छोडकर मजबूत, घडे में भरकर धूप में तीन दिन तक रक्खे। इसके बाद धूपितपात्र में वस्त्र से छान कर भर दे और हरीतकी आठ पल, धव का फूल बीस पल, सुपारी बीस पल, पीपर पांच पल, इलायची, लवंग, शीतलचीनी, जायफर, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर तथा मरिच—एक २ पल इन द्रव्यों के चूर्ण को आसव में छोड़ दे तथा दो कुड़व मधु मिला दे। आठ दिन के बाद वहां से निकाल-छानकर दूसरे पात्र मे रक्खे। आसव के कषाय होने पर पुनः और गुड़ छोड़ दे। और पुराने चूर्ण को निकाल कर नवीन

चूर्ण मिला दे। यह मूलासव नामक आसव रोगराज (क्षयरोग) को नष्ट करने वाला है। श्वास, आमवात को नाश करने वाला, पाण्डु, प्लीहा तथा उदररोग को दूर करने वाला, कृमि, गुल्म, प्रमेह को नाश तथा अग्नि को दीप्त करने वाला है॥ २००-२०८॥

धातुक्षये भृङ्गराजासवः—

भृङ्गराजरसद्रोणं गुडस्य द्वितुलां तथा।
प्रस्थार्धं तु हरीतक्याः स्निग्धे भाण्डे निवेशयेत्॥ २०९॥
पक्षादूर्ध्वं पिबेदेनं मात्रया च यथाबलम्।
जाते ह्यस्मिन्पुनर्दत्त्वा पिप्पल्याश्च पलद्वयम्॥ २१०॥
जातीफलं लवङ्गानि त्वगेलापत्रकेसरम्।
धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा॥ २११॥
कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम्।
कामवृद्धिं करोत्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत्॥ २१२॥

धातुक्षय में भृङ्गराजासव—भृङ्गराज का रस एक द्रोण गुड़, दो तुला, हरीतकी एक प्रस्थ, घृतस्निग्ध भाण्ड में रक्खे। फिर इसमें पीपर दो पल, जायफर, लवंग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर—दो पल छोड़कर मुह बन्द कर एक पक्ष तक रक्खे। एक पक्ष (पन्द्रह दिन) बाद छानकर रख ले और बल के अनुसार मात्रा में पान करे। यह आसव पान करने से धातुक्षय को जीत लेता है। और पांच प्रकार के कास को जीत लेता है। दुर्बलों को महापुष्टि तथा महाबल देता है। काम की वृद्धि करता है और वन्ध्या को पुत्र देने वाला है॥ २०९-२१२॥

भगन्दरे गुग्गुल्वासवः—

शतं हरीतकीनां तु बिभीतकशतं तथा।
प्रस्थमामलकानां च गुग्गुलोश्च चतुष्पलम्॥ २१३॥
त्वगेलापिप्पलीमूलचव्यचित्रकदीप्यकम्।
व्योषं तालीसपत्रं च मुस्तकेसरकट्फलम्॥ २१४॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं पादशेषे जले ततः।
धातक्याः प्रस्थमेकं तु तथा गुडशतद्वयम्॥ २१५॥
द्राक्षादाडिमखण्डानां भागान्दशपलोन्मितान्।
सर्वमेतत्समालोड्य स्थापयेद्भाजने शुभे॥ २१६॥
यदा युक्तरसः स्याच्च सुजातो गन्धवर्णतः।
तं पूरयेत्तदा भाण्डे शुक्तस्येक्षुरसस्य तु॥ २१७॥
षण्मासंसंयुतो ह्येष द्रवः पेयः प्रयोगतः॥ २१८॥

गुग्गुल्वासव इत्येष देयः सर्वेषु रोगिषु।
प्राग्भक्तं मध्यभक्तं वा ग्रासे ग्रासान्तरे तथा ॥ २१९ ॥
दद्यात्क्रमेण योगं तु वयः सात्म्यमपेक्ष्य च।
नाशयेदुदरं प्लीहामूरुस्तम्भं सकामलम् ॥ २२० ॥
चिरोत्थितमपि श्वासं कासशोफभगन्दरान्।
कृमिकुष्ठप्रमेहेषु हितश्चैवाग्निदीपनः ॥ २२१ ॥

भगन्दर रोग में गुग्गुल्वासव—हर्रे एक सौ पल, बहेड़ा सौ पल, आंवला एक प्रस्थ, गुग्गुलु चार पल, दालचीनी, इलायची, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, अजमोदा, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), तालीसपत्र, मोथा, नागकेशर, कायफर—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को एक द्रोण जल में पकावे। चौथाई शेष क्वाथ से धाय का फूल एक प्रस्थ, गुड़ दो सौ पल, द्राक्षा, अनार, खांड़, दश २ पल—सभी द्रव्यों को एक जगह मिलाकर शुद्ध घृतलिप्त घडे में रक्खे। जब वर्ण तथा गन्ध से युक्त रस (सिद्ध रस) हो जाय तब गन्ने के रस के शुक्तपूर्ण भाण्ड में भर दे। छः मास बाद छानकर उचित मात्रा में पान करे। यह गुग्गुल्वासव सभी रोगियों को देना चाहिए। भोजन के पहले, भोजन के मध्य में, या प्रत्येक ग्रास (कवल) या ग्रास के बीच २ में अवस्था तथा बल देखकर क्रम से इस योग को थोड़ी मात्रा से प्रारम्भ कर पूर्ण मात्रा देना चाहिए। यह आसव उदररोग, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, कामला, पुराना श्वासरोग, कास, शोथ तथा भगन्दर को नाश करता है। कृमि, कुष्ठ तथा प्रमेह में हितकर है और अग्नि को दीप्त करने वाला है ॥ २१३–२२१ ॥

अर्शस्सु ताम्बूलासवः—

जतुलिप्तं ननु कृत्वा भाण्डकमर्धप्रवेशितं भूमौ।
तत्तरुणहरितजम्बूपत्रक्वाथेन संशुद्धम् ॥ २२२ ॥
शुद्धे च शर्कराभिरगरुं दद्यात्सुगन्धतरम्।
वासार्थं, धातक्याः पलानि खलु सप्त देयानि ॥ २२३ ॥
पूगीफलानि खदिरं दशपलिकानि दापयेत्तत्र।
ताम्बूलीपत्रशतैर्दशभिः क्षुण्णैश्च पञ्चभिश्चान्यैः ॥ २२४ ॥
पलशतमेकं मधुनः शतं च सार्धं तु वारिणो देयम्।
कङ्कोलकक्कुष्णानां प्रत्येकं द्वे पले च स्युः ॥ २२५ ॥
त्रिफलाजातिफलैलालवङ्गकुसुमानि चैकपलिकानि।
दत्त्वाऽवलोड्यमेतत्त्रीणि दिनानि पाणिना पात्रे ॥ २२६ ॥
स भवेद्यदा सशब्दस्ततो गुडशतपलानि त्रीणि।
देयानि प्रविलीनमग्नियोगात्तं तु जलद्रोणसंयुक्तम् ॥ २२७ ॥

पक्षद्वयेन पेयो रसनाक्षिमनोहरः सुरभिगन्धः ।
ताम्बूलासव एप रसायनानां भवेदग्र्यः ॥ २२९ ॥
प्रीणयति हन्ति गुदजान् सर्वांश्च कफोद्भवांस्तथा रोगान् ॥
बलवर्णशुक्रजननो ह्युपयोगादश्मरीं हन्यात् ।
संवत्सरमुपयुक्तः स्थिरवयसं मानवं कुरुते ॥ २३० ॥

अर्शरोगों में ताम्बूलासव—कलई किये हुए पात्र को आधा जमीन में गाड़ दे और उसको नये हरे जामुन के पत्र के क्वाथ से स्वच्छ करे। और उसमें शर्करा के साथ अगरु आदि सुगन्धित द्रव्यों को सुगन्धित करने के लिये डाल दे, उस स्वच्छ घड़े में धाय का फूल सात पल, सुपारी तथा खदिर का चूर्ण दश २ पल मिला दें। ताम्बूल का पत्ता कूटकर पन्द्रह सौ, मधु सौ पल, जल डेढ़ सौ पल, कंकोल (शीतलचीनी), पीपर दो २ पल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), जायफर, इलायची, लवंग, नागकेशर—एक २ पल के चूर्ण को डालकर तीन दिन तक हाथ से चलावे। जब शब्द होने लगे तब तीन सौ पल गुड मिला दे। अग्नि के संयोग से शब्द के बन्द हो जाने पर एक द्रोण अवशिष्ट जल को एक माह तक मुह बन्द कर रख दे, उसके बाद छान कर रख ले और पान करे। यह जिह्वा, तथा आख को मनोहर बनानेवाला है। मनोहर गन्ध से युक्त यह ताम्बूलासव, रसायनों में श्रेष्ठ है। प्रसन्न करता है और सभी प्रकार के अर्श रोगों को तथा कफोद्भव रोगों को नष्ट करता है। बल, वर्ण तथा शुक्रोत्पादक है। यह आसव उपयोग करने से पथरी रोग को नाश करता है, एक वर्ष तक उपयोग करने से बहुत दिन तक जीनेवाला बनता है ॥ २२२–२३० ॥

अपस्मारे पञ्चमूत्रासवः—

अजागोसुरभीणां च चतुष्कर्षं खरोष्ट्रयोः ।
मूत्रं संग्राह्य कुम्भे च दत्त्वा चूर्णं प्रदापयेत् ॥ २३१ ॥
वचाया वातकुम्भस्य लशुनस्यैलया सह ।
प्रत्येकं तु लवङ्गस्य पलार्धं कृमिनाशिनः ॥ २३२ ॥
व्योपस्यापि पलं सार्धमभयैकपला मता ।
चुल्ल्यग्रे वासरान्सप्त निक्षिप्याशु समुद्धरेत् ॥ २३३ ॥
प्लीहोदरहरं दिव्यं मूढवातकफापहम् ।
अशीतिवातशमनं पञ्चमूत्रासवं विदुः ॥ २३४ ॥

अपस्मार में पञ्चमूत्रासव—बकरी, गाय, सुरभी (सुरैया गाय), गदही तथा ऊंटिनी के मूत्र चार २ कर्ष लेकर घड़े में डाल दे उसमें वच, वातकुम्भ, लहसुन, इलायची, लवंग, विडंग—आधा २ पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच),

डेढ़ पल, हर्रे एक पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को छोड़कर मुख बन्द कर, चुल्ही (चूल्हा) के आगे सात दिन तक रक्खे और शीघ्र ही निकाल ले। यह पंच मूत्रासव प्लीहा, उदररोग को दूर करता है, मूढवात तथा कफ को नाश करता है। अस्सी प्रकार के वात रोगों को नष्ट करता है। (इसमें गुड़ का निर्देश नहीं किया गया है अतः मूत्र-मानके अनुसार आठ पल तथा मधु चार पल छोड़ना चाहिए। अन्य विधि-आसव के तरह समझना चाहिए) ॥२३१–२३४

धातुक्षये हरीतक्यासवः—

प्रस्थार्धं तु हरीतक्याः धात्रीप्रस्थद्वयं तथा।
दशमूलशतार्धं च पौष्करं च तदर्धकम् ॥ २३५ ॥
तत्तुल्यं चित्रकं दद्याच्चित्रकार्धा दुरालभा।
गुडूच्या विंशतिपल विशालापलपञ्चकम् ॥ २३६ ॥
खदिरस्य पलान्यष्टौ तदर्धं बीजपूरकम्।
मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपित्थं देवदारुकम् ॥ २३७ ॥
विडङ्गं चविकां रोध्रं भार्ङ्गी स्यादेलवालुकम्।
संवर्तक कणां चैव क्रमुकं शटिसुप्रभम् ॥ २३८ ॥
प्रियंगुसारिवामांसीनागकेसररेणुकम् ।
त्रिवृतां रजनीं रास्नां मेषश्रृङ्गीं पुनर्नवाम् ॥ २३९ ॥
शताह्वां रोहिणीं दन्तीं पलांशां क्वाथयेज्जले।
चतुर्थभागशेषे तु द्राक्षां षष्टिपलां क्षिपेत् ॥ २४० ॥
त्रिंशत्पलानि धातक्या गुडाच्छुद्धाच्चतुःशतम्।
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ २४१ ॥
भाण्डे पुराणे सुस्निग्धे मांसीमरिचधूपिते।
धूपिते च पुनर्दद्यात्पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ २४२ ॥
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेसरान्।
कर्षमात्रां च नेपालीं दत्त्वा पक्षं निधापयेत् ॥ २४३ ॥
कतकफलचूर्णेऽपि क्षिप्ते निर्मलता भवेत्।
पक्षादूर्ध्वं पिबेद्यस्तु मात्रया च यथाबलम् ॥ २४४ ॥
धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि तथाऽष्टावुदराणि च ॥ २४५ ॥
प्रमेहं च महाव्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा।
सर्वान् वातान् तथाऽप्यामं श्वासं छर्दिं तथैव च ॥ २४६ ॥
अष्टादशैव कुष्ठानि शोषं शूलं भगन्दरम्।
शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च ह्यश्मरीं च विनाशयेत् ॥ २४७ ॥

कृशानां च महापुष्टिं कुरुते च महाबलम् ।
महावेगो महातेजा महावीर्यबलोद्धतः ।
कामपुष्टिं करोत्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २४८ ॥

धातुक्षय में हरीतक्यवलेह—हरीतकी आधा प्रस्थ, आंवला दो प्रस्थ, दशमूल (बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू) पचास पल, पुष्करमूल पच्चीस पल, चित्रक पच्चीस पल, दुरालभा (यवासा) साढ़े बारह पल, गुडूची बीस पल, विशाला (इन्द्रायण) पांच पल, खैर आठ पल, बीजपूरक (बिजौरा नीबू का रस) चार पल, मजीठ, मुलेठी, कूठ, कैथ का गूदा, देवदारु, विडंग, चव्य, पठानी लोध, भांगरा, पलवालु, संवर्तक (बहेड़ा), पीपर, सोपारी, कपूरकचरी, प्रियंगु, सारिवा, जटामांसी, नागकेशर, सम्भालू के बीज, निशोथ, हल्दी, रास्ना, मेढासिंघी, पुनर्नवा, सौंफ, रोहिणी (कुटकी), दन्तीमूल—एक २ पल—इन द्रव्यों को यवकुटकर चौगुने जल में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष क्वाथ में मुनक्का साठ पल, धाय का फूल तीस पल, स्वच्छ गुड चार सौ पल, मधु बत्तीस पल—सभी द्रव्यों को एक जगह मिलाकर घृतस्निग्ध, जटामासी, मरिच आदि द्रव्यों से धूपित पुराने भाण्ड में भर कर पुनः पीपर दो पल, जायफल, लवंग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, नेपाली (नेपाली धनिया)—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। साफ बनाने के लिये कतकफल (निर्मली) का चूर्ण भी छोड दे। और अच्छी तरह मुह बन्द कर एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक गुप्त स्थान में रक्खे। पन्द्रह दिन बाद छानकर बल के अनुसार मात्रापूर्वक जो पान करता है वह धातुक्षय को जीत लेता है। पान करने से यह आसव पांच प्रकार के कास, छः प्रकार के अर्शरोग, आठ प्रकार के उदररोग, महाव्याधि प्रमेह, अरुचि, पाण्डुरोग, सभी प्रकार के वातरोग, आमवात, श्वास, छर्दि, अठारह प्रकार के कुष्ठरोग, शोष (सूखारोग), शूल, भगन्दर, शर्करा (पेशाब के रास्ते शर्करा आना), मूत्रकृच्छ्र तथा पथरी रोग को नाश करता है। दुर्बलों को पुष्ट तथा बलवान बनाता है। अधिक वेगवान् , तेजस्वी, वीर्यवान् तथा बलवान् बनाता है। और कामदेव को पुष्ट करता है। यह आसव वन्ध्या स्त्रियों को भी पुत्र देनेवाला है ॥ २३५–२४८ ॥

आवर्तक्याद्यासवः—

नेत्रभेषजशिफापलाष्टकं सार्धमैलपलमर्धमस्तकीम् ।
हेमजार्धपलमेकतः कृतं द्रोणवारिमिलितं दिनत्रयात् ॥ २४९ ॥
यः पिबेद् द्विपलिकं दिनोदये नीरमस्तसमये समाहितः ।
तस्य नश्यति कटीसमुद्भवं दद्रु मासयुगलेन निश्चितम् ॥ २५० ॥

आवर्तक्यासव—नेत्रभेषजशिफा (सना-सोनामुखी का मूल) आठपल, ऐल (एलिया, मुसब्बर) आधा पल, मस्तकी (रूमिमुस्तकी) आधा पल, हेमजा (धतूरबीज) आधा पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर एक द्रोण जल में तीन दिन तक रक्खे। पुनः तीन दिन के बाद छानकर दो पल की मात्रा में सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय में जो व्यक्ति पान करता है वह कटिभाग में उत्पन्न दद्रु (दाद) को दो माह में अवश्य ही नष्ट कर देता है ॥ २४९–२५० ॥

क्षये दशमूलासवः—

दशमूलतुलार्धं तु पौष्करं च तदर्धकम्।
तत्तुल्यं चित्रकं दद्याच्चित्रकार्धां दुरालभाम् ॥ २५१ ॥
गुडूचीं च तथा रोध्रं प्रदद्यात् पलविंशतिम्।
खदिरस्य पलान्यष्टौ तत्समं बीजसारकम् ॥ २५२ ॥
प्रस्थसामलकीनां च तदर्धा च हरीतकी।
मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं कपित्थं देवदारु च ॥ २५३ ॥
विडङ्गं चविका ह्यक्षं भार्ङ्गी स्यादष्टवर्गकम्।
त्रिवृता रजनी रास्ना कर्कटाख्या पुनर्नवा ॥ २५४ ॥
प्रियङ्गुसारिवामांसीनागकेसररेणुकम् ।
शताह्वेन्द्रयवा मुस्तं द्विपलान् क्वाथयेज्जले ॥ २५५ ॥
अष्टद्रोणे, चतुर्थांशं क्वाथमत्रावतारयेत् ।
द्राक्षायाः पलषष्टिं वै क्वाथयित्वा चतुर्गुणे ॥ २५६ ॥
जले त्रिभागशेषे तु पूते तस्मिन्विनिक्षिपेत्।
त्रिंशत्पलानि धातक्या गुडाच्छुद्धाच्चतुःशतम् ॥ २५७ ॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं सर्वमेकत्र कारयेत्।
भाण्डे स्निग्धे पुराणे च मांसीमरिचधूपिते ॥ २५८ ॥
धूपिते च पुनर्दद्यात्पिप्पलीनां पलद्वयम्।
जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेसरान् ॥ २५९ ॥
जातीपत्रीं च कङ्कोलं चन्दनं वालुकं तथा।
कर्षमात्रां च नेपालीं दत्त्वा भूमौ निधापयेत् ॥ २६० ॥
पक्षादूर्ध्वं पिबेदेतं मात्रया च यथाबलम्।
धातुक्षयं जयेत्पीतः कासं पञ्चविधं तथा ॥ २६१ ॥
अर्शांसि षट्प्रकाराणि तथाऽष्टावुदराणि च।
प्रमेहं च महाव्याधिमरुचिं पाण्डुतां तथा ॥ २६२ ॥
सर्वान्वातांस्तथाऽप्यामं श्वासं छर्दिमरोचकम्।
अष्टादशैव कुष्ठानि शोफं शूलं भगन्दरम् ॥ २६३ ॥

शर्करां मूत्रकृच्छ्रं च ह्यश्मरीं च विनाशयेत् ॥ २६४ ॥
महावेगो महावीर्यो महातेजा महाद्युतिः ।
कामपुष्टिकरो ह्येष वन्ध्यानां पुत्रदो भवेत् ॥ २६५ ॥

क्षयरोग में दशमूलासव—दशमूल (बिल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेंगनी, गोखरू) आधा तुला (पचास पल), पुष्करमूल पच्चीस पल, दुरालभा (जवासा) साढ़े बारह पल, गुडूची तथा पठानी लोध पच्चीस पल, खैर आठ पल, विजयसार आठ पल, आंवला एक प्रस्थ, हर्रें आधा प्रस्थ, मजीठ, मुलेठी, कूठ, कैथ, देवदारु, विडंग, चव्य, बहेड़ा, भांगरा, अष्टवर्ग (जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली), निशोथ, हल्दी, रास्ना, काकड़ासिंघी, पुनर्नवा, प्रियंगु, सारिवा, जटामांसी, नागकेशर, सम्भालू का बीज, सौंफ, इन्द्रयव, मोथा—दो २ पल—इन द्रव्यों को यवकुट कर आठ द्रोण जल में क्वाथ करे और चतुर्थांश क्वाथ उतार ले । मुनक्का साठ पल चौगुने जल में क्वाथ कर तीन भाग शेष क्वाथ को छानकर उसमें धाय का फूल तीस पल, स्वच्छ गुड़ चार सौ पल, मधु बत्तीस पल—इन सभी द्रव्यों को एकत्र कर घृतस्निग्ध जटामांसी, मरिच आदि से धूपित पुराने भाण्ड मे भर दे, और उसमें पिप्पली दो पल, जायफर, लवंग, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, जावित्री, कंकोल (शीतलचीनी), चन्दन, एलवालु तथा नेपाली धनिया—एक २ कर्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर जमीन के ऊपर गुप्त स्थान में रक्खे । एक पक्ष (पन्द्रह दिन) बाद छानकर बल के अनुसार मात्रा में पान करे । पान करने से यह आसव धातुक्षय को जीत लेता है, और पांच प्रकार के कास, छः प्रकार के अर्शरोग, आठ प्रकार के उदररोग, महाव्याधि प्रमेह, अरुचि, पाण्डु, सभी प्रकार के वातरोग, आमवात, श्वासरोग, छर्दि, अरोचक, अठारह प्रकार के कुष्ठरोग, शोथ, शूल, भगन्दर, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र तथा पथरी को नाश करता है । यह अतिवेग, वीर्य, तेज, द्युति तथा कामशक्ति को देता है और वन्ध्या स्त्रियों को पुत्र देनेवाला है ॥ २५१–२६५ ॥

खर्जूरासवः—

खर्जूरमुस्तामलकीनिकुम्भाद्राक्षाभयापूगफलानि पाठा ।
भार्ङ्गीशटीकुष्ठजलाजमोदं मूलं कणायाः सपलङ्कषं वै ॥ २६६ ॥
पुनर्नवा कायफलं प्रियङ्गुः कर्चूरकं कृष्णमजाजिविस्रे ।
त्रिवृच्छिवाच्छलि(ल्ल)धसासकं च लज्जालुरोहीतकलिङ्गमूलम् ॥२६७॥
अमूनि सर्वाणि महौषधानि चत्वारि चत्वारि पलानि चैव ।
मांसीचतुर्जातकणालवङ्गं जातीफलं चन्दनलोहचूर्णम् ॥ २६८ ॥

प्रमाणतो द्विद्विपलान्यमूनि सुधातकीपुष्पपलानि सप्त ।
गुडस्य सप्त त्रिगुणानि दद्यान्मणानि सचूर्ण्य ततः समस्तम् ॥२६९॥
घृतस्य भाण्डे विपुले निवेश्य दशोत्तर प्रस्थशतं जलस्य ।
क्षिप्त्वा क्षिपेत्पञ्च दिनानि भूमौ निष्पन्नकल्पं हृदये विचार्य ॥२७०॥
षष्ठे दिने तच्च सुयोजनीयं ताम्रस्य यन्त्रद्वयमध्यभागे ।
शतत्रयं नागलतादलानां सहस्रयुग्मं शतपत्रकाणाम् ॥ २७१ ॥
प्रक्षाल्य देय विधिनाऽथ सन्धि विमुद्रय चुल्ल्यां विनिवेश्य यन्त्रम् ।
निष्काशयेदर्कसतो यथावद्दत्त्वा जलं चोपरि यन्त्रकस्य ॥ २७२ ॥
बलाबलं रोगनिपीडितानां विमृश्य देयः पलकप्रमाणः ।
खार्जूरसंज्ञः प्रिय आसवोऽयं विसूचिकायक्ष्मभयं निहन्ति ॥ २७३ ॥
हृद्रोगकासविषमज्वरशोफतर्षश्वासप्रमेहबलसंक्षयपाण्डुरोगान् ।
हिध्माश्च नाशयति सर्वशिरोविकारान् रुच्यग्निवर्धनबलप्रदवृष्य एषः॥२७४॥

खर्जूरासव—खजूर, नागरमोथा, आंवला, निकुम्भ (दन्तीवृच) मूल, मुनक्का, हर्रे, सुपारी, पाठा (पाढ़ी), भांगरा, शटी (कपूरकचरी), कूठ, जल (सुगन्धवाला), अजमोदा, पिपरामूल, गुग्गुलु, पुनर्नवा, कायफर, प्रियंगु, कपूर, मरिच, अजाजी (स्याहजीरा), विस्रा (हाऊवेर), निशोथ, हर्रे, (अच्छल(ल्ल):=तिलकल्क), अच्छलि (तिलकल्क), धमासक (धमासा), लज्जालु, रोहित (रोहिडा), कलिञ्जमूल (कुलिञ्जन) चार पल—इन महौषधियों के चूर्ण, तथा जटामासी, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), पीपर, लवंग, जायफर, चन्दन, लौहभस्म—दो २ पल, धाय का फूल सात पल, गुड़ एक्कीस मण (मानिका)—सभी द्रव्यों को चूर्ण कर घृतस्निग्ध बड़े भाण्ड में छोड़कर एक सौ दस प्रस्थ जल भर पांच दिन पृथ्वी पर रक्खे, कल्प तैयार हो जाने पर छठे दिन तामा के दो यन्त्र के बीच (भभका) में रख दे और उसमें नागलता (पान 'नागवल्ली') का पत्र तीन सौ, शतपत्रक (लालकमल का फूल) दो हजार धोकर डाल दे। तथा अच्छी तरह सन्धि बन्द कर यन्त्र को चुल्ली पर (चूल्हा) रक्खें । इसके बाद यन्त्र के ऊपर जल देता रहे, और अच्छी तरह अर्क को निकाले। रोगियों के बल तथा दुर्बलता को देखकर एक २ पल की मात्रा में पिलाना चाहिए। यह खजूर-संज्ञक प्रिय आसव—हैजा तथा राजयक्ष्मा को दूर करता है। यह हृद्रोग, कास, विषमज्वर, शोथ, तृषा, श्वास, प्रमेह, बलक्षय, पाण्डुरोग, हिध्मा तथा सभी प्रकार के शिरोरोग को नाश करता है। यह योग रुचि तथा अग्नि को बढ़ानेवाला, बल देनेवाला तथा वृष्य (शक्ति बढ़ानेवाला) है ॥ २६६–२७४ ॥

मस्त्वासवः—

वंशपत्रीप्रतीकाशमस्तुद्रोणे सुनिर्मले ।
क्षिपेद् गुडतुलां भाण्डे वचाकुष्ठविलेपिते ॥ २७५ ॥
तस्मिन् दद्यात्तु कृष्णाया प्रस्थं प्रस्थत्रयं तथा ।
त्रिफलाया विडङ्गानां कुडवं मरिचस्य च ॥ २७६ ॥
काश्मरीफलमृद्वीकापरूपकफलानि च ।
वत्सकस्य च बीजानि समानि मरिचेन तु ॥ २७७ ॥
पञ्चमूलं च षड्ग्रन्थां दन्ती चित्रकमेव च ।
द्वे द्वे पले च भल्लाताद्भिषक् समुपकल्पयेत् ॥ २७८ ॥
यवपल्ले स्थितः पेयोऽरिष्टो मात्राबलं प्रति ।
पाण्डुरोगोदरे हन्ति ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ २७९ ॥
परं भगन्दरप्लीहशोषकासामयापहः ।
अग्निसंदीपनः पथ्यो बाधिर्यस्थौल्यनाशनः ॥ २८० ॥
मस्त्वासव इति ख्यातो लेखनो मेदुरे हितः ।

मस्त्वासव—वंशपत्री प्रतीकाश (वंशपत्री) मस्तु एक (दही का तोड़) एक द्रोण, वच तथा कूट को सूक्ष्म चूर्ण कर मधु के साथ लेप बनाकर उस लेप से लिप्त भाण्ड में भरकर एक तुला गुड़ डाल दे, और उसमें पीपर एक प्रस्थ, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) तीन प्रस्थ, विडंग एक कुड़व, मरिच एक कुडव, गम्भारी फल, मुनक्का, फालसा, इन्द्रजव—एक २ कुडव (चार २ पल), पंचमूल (विल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी), षड्ग्रन्था (वच), दन्तीमूल, चित्रक तथा भल्लातक—दो २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिला दे। मुह बन्द कर यव की राशि में एक माह तक रक्खे। एक मास बाद छानकर इस अरिष्ट को बल के अनुसार मात्रापूर्वक पान करे। यह अरिष्ट पाण्डुरोग, उदर रोगों को नाश करता है, ग्रहणीदोष, अर्शविकार को दूर करता है। भगन्दर, प्लीहा, शोप (सूखा रोग) तथा कास रोगों को दूर करता है। अग्नि को दीप्त करने वाला, पथ्य है, बाधिर्य तथा स्थूलता को नाश करता है। यह मस्त्वासव से प्रसिद्ध आसव लेखन है तथा मेदुर (वसावृद्धि) में हित कारक है ॥

ज्वरे कुब्जकासवः—

शतं कुब्जकमूलस्य मृद्वीकार्धशतं तथा ॥ २८१ ॥
मधूकपुष्पकाश्मर्यभागान् दशपलोन्मितान् ।
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा शीते पादावशेषिते ॥ २८२ ॥
शतत्रयं गुडस्याथ धातक्याः पलविंशतिम् ।

कनकस्य तु चत्वारि व्योषं कङ्कोलमेव च ॥ २८३ ॥
एलात्वक्पत्रजातीनां लवङ्गस्य तथैव च ।
भागान् पलप्रमाणांश्च सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत् ॥ २८४ ॥
कुब्जमूलासवो ह्येष मासमात्र विधारितः ।
शमयेत्सन्निपातोत्थान् ज्वरान् सर्वान् न संशयः ॥ २८५ ॥

ज्वर में कुब्जकासव—कुब्जक (सदा गुलाब पुष्प) सौ पल, मुनक्का पचास पल, मधूकपुष्प (महुआ का फूल), गम्भारीफल—दश २ पल—इन द्रव्यों को चार द्रोण जल में पकावे, चौथाई शेष (एक द्रोण) क्वाथ ठंढा होने पर गुड़ तीन सौ पल तथा धाय का फूल बीस पल, धतूर का बीज—चार पल, व्योष (सोंठ, पीपर, मरिच), कंकोल (शीतलचीनी)—चार २ पल, इलायची, तेजपत्र, जायफर, लवंग एक २ पल—इन द्रव्यों का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर घृतलिप्त भाण्ड में भरकर गुप्त स्थान में एक मास तक रक्खे। एक मास बाद तैयार यह कुब्जमूलासव सभी प्रकार के ज्वर तथा सन्निपातजन्य ज्वर को शान्त करता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥ २८१-२८५ ॥

नालिकेरासवः—

नालिकेरोदकं चैव द्रोणमात्रं प्रदापयेत् ।
द्रोणार्धं रसमिक्षोश्च रसप्रस्थं तु शाल्मलेः ॥ २८६ ॥
दशमूलरसस्यापि प्रस्थमात्रं तथैव च ।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मध्ये चूर्णं निवेशयेत् ॥ २८७ ॥
चातुर्जातकधातक्योः पलानि खलु षोडश ।
शाणमात्रा तु कस्तूरी केशरं तगरं तथा ॥ २८८ ॥
चन्दनं देवपुष्पं च पलमात्रं पृथक् पृथक् ।
मासादूर्ध्वं पिबेच्चामुं रूपे कामसमो भवेत् ॥ २८९ ॥
वृद्धोऽपि तरुणीं गच्छेत् षण्ढोऽपि पुरुषायते ।
वलीपलितसंत्यक्तः शतायुश्च भवेन्नरः ॥ २९० ॥
नालिकेरासवः प्रोक्तः शम्भुना परमेष्ठिना ।

नालिकेरासव—नालिकेर (नारियल) का जल एक द्रोण, गन्ने का रस आधा द्रोण (आठ प्रस्थ), शाल्मलि (सेमर) का रस एक प्रस्थ, दशमूल (विल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढ़ल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेगनी, गोखरू) का स्वरस एक प्रस्थ (हरा दशमूल न मिलने पर क्वाथ लेना चाहिए)—इन द्रव्यों को घृतलिप्त भाण्ड में रखकर बीच में—चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) तथा धाय का फूल सोरह पल, (चातुर्जात चार पल लेना चाहिए और धाय का फूल बारह पल), कस्तूरी एक

शाण, केशर, तगर, चन्दन, लवंग—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को डाल दे और मुह बन्द कर गुप्त स्थान में एक मास तक रक्खे। एक मास बाद छानकर पान करे। इस आसव को पान करने वाला, रूप में कामदेव के समान हो जाता है। वृद्ध भी नवयौवना के साथ प्रसंग करने में समर्थ हो जाता है और नपुंसक पुंस्त्व प्राप्त करता है। वली-पलित को त्याग कर मनुष्य शतायु होता है। इस नालिकेरासव को परमेष्ठी भगवान् शंकर ने कहा है ॥

कूष्माण्डासवः—

कूष्माण्डं जर्जरीकृत्य रसमादाय यत्नतः ॥ २६१ ॥
द्रोणं, गुडार्धं दातव्यं, चूर्णमेषां विनिक्षिपेत्।
कटुत्रिक लवङ्गं च चातुर्जातं तथैव च ॥ २६२ ॥
जातीफलं च कङ्कोल जातीपत्री प्रियङ्गुकम्।
कपित्थं वत्सकं चैव बीजं गोक्षुरकस्य च ॥ २६३ ॥
अमृतासत्त्वभार्ग्यौ च बलाबीज तथैव च।
हपुषा क्रमुक चैव देवदारु मदावहम् ॥ २६४ ॥
मुस्तं खदिरसारं च चित्रकं च फलत्रिकम्।
रास्ना यष्ट्याह्वकं चापि तुम्बरु नागकेशरम् ॥ २९५ ॥
ग्रन्थिकं चाजमोदा च कारवी दीप्यकस्तथा।
कट्फल च तुगाक्षीरी ह्याकल्लकमुटिङ्गणम् ॥ २६६ ॥
कपित्थवल्कलं चैव शताह्वा गजशेलुकम्।
कलिङ्गकाश्च काकोली शटी मोचरसो घनम् ॥ २९७ ॥
कोकिलाक्षस्य बीजानि कसेरुः सहदेविका।
भूनिम्बश्चविका स्पृक्का पद्मकं च निशाद्वयम् ॥ २६८ ॥
धान्यकं सुरदाली च क्षीरकन्दस्तथैव च।
एतानि चाक्षमात्राणि लोहचूर्ण पलाष्टकम् ॥ २६६ ॥
प्रक्षिपेदथ धातक्याः पलानि खलु षोडश।
मासार्धं घृतभाण्डे तु यत्नतः स्थापयेत्क्षितौ ॥ ३०० ॥
अनेन विधिना सिद्ध आसवः परिकीर्तितः।
पीत्वाऽस्य पलमेकं तु प्रातरुत्थाय नित्यशः ॥ ३०१ ॥
धातुक्षयं च मन्दाग्नि प्रमेहं पाण्डुमेव च।
अर्शांसि ग्रहणीदोषान् प्लीहोदरभगन्दरान् ॥ ३०२ ॥
रक्तपित्तामवाते च श्लेष्मरक्तं तथैव च।
निहन्ति वातजान् रोगान् मेदःस्थौल्यापहाऽऽसवः ॥ ३०३ ॥

कूष्माण्डासव—कूष्माण्ड श्वेत कोहड़े को कूटकर यत्नपूर्वक निकाला हुआ रस एक द्रोण तथा गुड आधा द्रोण लेकर घृतलिप्त भाण्ड में रक्खे और इसमें कटुत्रिक (सोंठ, पीपर, मरिच), लवंग, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर), जायफर, शीतलचीनी, जावित्री, प्रियंगु, कैथ, इन्द्रयव, गोखरू, गुडूचीसत्व, भांगरा, वरियार का बीज, हपुषा (हाऊवेर), सुपारी, देवदारु, प्यदावह (भृंगराज), मोथा, खैरसार, चित्रक, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला), रास्ना, जेठीमधु, तुम्बरू, नागकेशर, ग्रन्थिक (पिपरामूल), अजमोदा, कारवी (कलजीरी), अजवायन, कायफर, वंशलोचन, आकल्लक (अकरकरा), उटिङ्गण (उटङ्गन), कैथ की छाल, सौंफ, गज (गज पीपल), शेलुक (लसोड़ा), कलिंगक (इन्द्रजव), काकोली, कपूरकचरी, शेमर का गोद, मोथा, कोकिलाक्षबीज (तालमखाना), कसेरू, सहदेइया, चिरायता, चव्य, स्पृक्का (लताविशेष, पृका), पद्मकाठ, आमाहल्दी-दारुहल्दी, धनिया, देवदाली, क्षीरकाकोली—एक २ अक्ष—इन द्रव्यों के चूर्ण तथा लौह भस्म आठ पल, धाय का फूल सोरह पल—इन द्रव्यों को एकत्र कर मिला दे। मुह वन्द कर एक मास तक जमीन पर रक्खे। इस प्रकार सिद्ध (तैयार) आसव कहा गया है। इस आसव को जो प्रातः उठकर प्रतिदिन एक पल की मात्रा में पान करता है वह धातुक्षय, मन्दाग्नि, प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, प्लीहोदर, भगन्दर, रक्तपित्त, आमवात, श्लेष्म-रक्त तथा वातजन्य रोगों को नाश करता है। और यह आसव मेदा की स्थूलता को दूर करता है ॥ २९१–३०३ ॥

रसायनारिष्टः—

समूलां पिप्पलीं शृङ्गीं बृहतीमश्मभेदकम् ।
पाटलां देवकाष्ठं च श्वदंष्ट्रामभयां तथा ॥ ३०४ ॥
षोडशपलमेकैकं कोलानामाढकं पृथक् ।
दन्तीचित्रकमूलानां पलानि पञ्चविंशतिम् ॥ ३०५ ॥
चतुर्गुणे जले पक्त्वा ग्राह्यमर्धावशेषितम् ।
शीते समावपेद्भाण्डे प्रलिप्ते मधुसर्पिषा ॥ ३०६ ॥
खण्डस्य द्विशतं शुद्धं तद्वल्लोहस्य दापयेत् ।
पत्रीकृतं तिलोत्सेधं सूक्ष्मचूर्णान्यमूनि च ।
प्रियंगुं पिप्पलीं लोध्रं मृद्वीका चैलवालुकम् ॥ ३०७ ॥
क्रमुकं शतपुष्पां च निम्बं तेजस्वतीमपि ।
पलिकं देवदारोश्च खदिराच्च चतुष्पलम् ॥ ३०८ ॥
क्षौद्रप्रस्थद्वयं चापि समावाप्य घटे शुभे ।
सौम्ये पुष्ये तथा हस्ते रोहिण्यामुत्तरासु च ॥ ३०९ ॥

दशरात्रस्थितः पेयोऽरिष्टश्चात्रेयपूजितः ।
अश्विभ्यां कथितः पूर्वं रसायनवरो ह्ययम् ॥ ३१० ॥
मात्रामग्निबलापेक्षी पिबेदस्य हिताशनः ।
धन्यः पुष्टिकरो बल्यो वलीपलितनाशनः ॥ ३११ ॥

रसायनारिष्ट—पिपरामूल, पीपर, काकड़ासिंघी, बृहती (वनभंटा), पाषाणभेद, पाटला, देवदारु, गोखरू, हर्रे—सोलह २ पल, बेर एक आढ़क, दन्तीमूल, चित्रकमूल पच्चीस २ पल—इन सभी द्रव्यों को यवकुटकर चौगुने जल में पकावे, आधा भाग शेष, शीत क्वाथ को मधु तथा घृत से लिप्त भाण्ड में भर दे और उसमें शुद्ध खांड दो सौ पल, तिल के बराबर मोटा लोहपत्र, प्रियंगु, पीपर, पठानी लोध, मुनक्का, एलवालु, सुपारी, सौंफ, निम्ब, तेजस्वती (तेजबल)—एक २ पल, देवदारु, खदिर—चार २ पल—इन द्रव्यों का चूर्ण तथा दो प्रस्थ मधु मिला दे। मृगशिरा, पुष्य, हस्त, रोहिणी, तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों में, दशरात्रि तक संधान करे और उसके बाद छानकर पान करे। यह अरिष्ट आत्रेय द्वारा प्रशंसित है। यह श्रेष्ठ रसायन अश्विनीकुमार के द्वारा पहले कहा गया है। अग्निबल के अनुसार मात्रापूर्वक इस अरिष्ट को पान करे तथा हितकर भोजन करे। यह अरिष्ट उत्तम है, पुष्टि को देने वाला है, बल को देने वाला तथा वली-पलित को नाश करने वाला है ॥ ३०४–३११ ॥

ज्वरे धान्यकाद्यरिष्टः—

धान्यकोशीरमुस्तानां पलमेकत्र कारयेत् ।
द्विपलं पद्मकं कुष्ठं कुर्यान्निम्बं तदर्धकम् ॥ ३१२ ॥
सर्वांशेन ततो दद्याच्छिन्नाङ्गां च फलत्रिकम् ।
जलद्रोणद्वयं दत्त्वा षोडशांशेन संहरेत् ॥ ३१३ ॥
पलं दार्व्यास्ततस्तस्मिन् शीते पूते भिषग्वरः ।
पलानि षोडश क्षौद्राद्दत्त्वा सर्वं विमन्थयेत् ॥ ३१४ ॥
स्थापयेद् घृतभाण्डे तु मासादूर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
धान्यकादिररिष्टोऽयं सर्वज्वरविनाशनः ॥ ३१५ ॥

ज्वर में धान्यकारिष्ट—धनिया, खस, मोथा—एक २ पल, पद्मकाठ, कूठ—दो २ पल, निम्ब एक पल, गुडूची तथा त्रिफला सभी द्रव्यों के बराबर (आठ २ पल) लेकर दो द्रोण जल में पकावे, सोरहवां भाग शेष रहने पर कपड़ा से छानकर ठंढा होने पर दारुहल्दी एक पल, मधु सोरह पल डालकर सभी द्रव्यों को मिलाकर घृतलिप्त भाण्ड में भरकर एक मास तक जमीन पर रक्खे। एक मास के बाद छानकर प्रयोग करे। यह धान्यकारिष्ट सभी प्रकार के ज्वरों को नाश करता है ॥ ३१२–३१५ ॥

धातुक्षये लवङ्गासवः—

देवपुष्पं वराङ्गं च केशरं पृथुकां तथा ।
कलौञ्जीं मर्कटीबीजं मुशलीद्वयगोक्षुरम् ॥ ३१६ ॥
बलाबीजानि पोस्तत्त्वग्बीजं च करहाटकम् ।
पृथक् पृथक् प्रकुर्वीत पलानां पञ्चकं तथा ॥ ३१७ ॥
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्यात्पादावशेषितम् ।
शटी च पिप्पलीमूलं मरिचं साश्वगन्धकम् ॥ ३१८ ॥
शुण्ठी जातीफलं चापि कुङ्कुमं जातिपत्रिका ।
आकल्लकं कबाब च ह्येला कृष्णाऽगुरुस्तथा ॥ ३१९ ॥
तालिसं चन्दनं चैव विजया क्षीरकन्दका ।
वृद्धदारुभवं बीजं क्रमुकं वंशरोचना ॥ ३२० ॥
धत्तूरस्य च बीजानि पलमात्राणि कारयेत् ।
सर्वमेकत्र संचूर्ण्य पूते शीते विनिक्षिपेत् ॥ ३२१ ॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं धातक्याश्च पलाष्टकम् ।
तुलार्धं तु गुडाज्जीर्णाद् घृतभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ३२२ ॥
मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ।
धातुक्षयं जयेच्छीघ्रं लवङ्गाद्यासवस्त्वयम् ॥ ३२३ ॥

धातुक्षय में लवंगासव—लवंग, दालचीनी, केशर, पृथुका (हिंगुपत्री), कलौञ्जी (मंगरैल), मर्कटबीज (केवाछ का बीज), दोनों मुसली (कृष्णमुसली, सफेदमुसली), गोखरू, बरियार का बीज, पोस्तत्वक् (पूतिकरंज की छाल) तथा बीज, करहाटक (मदनफल)—पांच २ पल—चार द्रोण जल में पकावे, एक द्रोण शेष रहने पर छानकर ठंढा होने पर शटी (कपूरकचरी), पिपरामूल, मरिच, अश्वगन्धा, सोंठ, जायफर, केशर, जावित्री, आकल्लक (अकरकरा), कबाब (कबाबचीनी), इलायची, पीपर, अगरु, तालीस पत्र, चन्दन, विजया (भांग), क्षीरकन्दका (क्षीरविदारी), विधारा बीज, सुपारी, वंशलोचन, धतूर बीज—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण बत्तीस पल, मधु, धाय का फूल आठ पल, पुराना गुड़ आधा तुला (पचास पल)—सभी द्रव्यों को एकत्र कर घृतलिप्त भाण्ड में भरकर एक मास तक जमीन पर रक्खे। एक मास बाद छानकर पान करे। यह लवंगाद्यासव दुर्जय प्रमेह को नाश करता है तथा धातुक्षय को शीघ्र ही जीत लेता है ॥ ३१६-३२३ ॥

विद्रधौ वरुणासवः—

शतं पलानां वरुणस्य मूलं त्वक् शिंशपायाश्च तदर्धमात्रा ।

तावत्तथा पुष्करमूलमुक्तं तदर्धमग्निश्च तदर्धमात्रः ॥ ३२४ ॥
कुरण्टको रोहितकत्वचश्च तावच्च शिग्रुदेशमूलकं च ।
पलानि त्रिंशत्खलु देवदारोः क्षुद्रा च तुल्या सुरदारुणा च ॥ ३२५ ॥
दर्भस्य मूलानि पलानि पञ्च हिंस्रातरोस्त्रीणि च कण्टकार्याः ।
राजादनस्यापि पलानि सप्त शतावरीमूलपलत्रयं च ॥ ३२६ ॥
तत्तुल्यकाश्मर्यकमर्जुनश्च शृंगी शताह्वा गजपिप्पली च ।
बलाशटीनागबलाकरञ्जत्रायन्तिकाकेवुकमेषशृङ्ग्यः ॥ ३२७ ॥
कुष्ठं च वासासितकर्बुकं च विडङ्गकृष्णातिविषाश्च जीरम् ।
चव्यं च रास्नोत्पलसारिवा च स्यात्कौटजश्चाऽप्यथ दीप्यकं च। ३२८॥
वातार्यरिष्टारुरनार्यतिक्तं रक्ताऽमृता तेजनी(नि)वल्कलं च ।
स्व्याधिघाता हपुषा च भृङ्गी प्रत्येकमेषां हि पलद्वयं तु ॥ ३२९ ॥
पचेज्जलद्रोणचतुष्टये च तत्पादशेषे पलषट्शतं च ।
क्षिपेद् गुडं माक्षिकधातकीनां पलानि त्रिंशत्सकलं पुनस्तत् ॥३३०॥
निधापयेन्मांस्यगुरुप्रधूपिते भाण्ड ततः कुङ्कुमचन्दनद्वयम् ।
पलं क्षिपेद्वै कतकं निशाकरं लवङ्गमाकल्लकवंशरोचनम् ॥ ३३१ ॥
भार्गी सुराष्ट्री तगरं कबाबं जातीफल पत्रकजातिपत्र्यौ ।
लोहं चतुर्जातकबालकं च प्रत्येकमेषां हि पलं विनिक्षिपेत् ॥ ३३२ ॥
मासं निधेयो यवमध्यतस्तु पेयो यथाव्याधिबलं समीक्ष्य ।
प्लीहोदरं विद्रधिगुल्मकासं श्वासं तथा रक्तविकारहिक्के ॥ ३३३ ॥
शूलामवातार्बुदपाण्डुरोगं कुष्ठं तथा छर्दिसरोचकं च ।
शोफं तथाऽऽध्मानभगन्दरं च शुक्राश्मरीं ग्रन्थिमनेकभेदम् ॥३३४॥
शोपापतानार्दितपक्षघातसन्धिग्रहार्तींश्च हलीमकं च ।
निहन्ति वन्ध्यासुतदोऽथ वृष्यः प्राणप्रदोऽयं वरुणासवो हि ॥३३५॥
पित्तानिलश्लेष्मरुजापहश्च वैतालरक्षोग्रहभीतिहन्ता ।
ग्रन्थान्समालोक्य चिकित्सकानां हिताय नून कथितो मया हि॥३३६॥

विद्रधि में वरुणासव—वरुण का मूल सौ पल, शिंशपा (शीशम की जड़) पचास पल, पुष्करमूल पचास पल, चित्रक पच्चीस पल, कुरण्ट (पीतझिण्टी) साढ़े बारह पल, रोहितक की छाल साढ़े बारह पल, सहिजन साढ़े बारह पल, दशमूल, (विल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेगनी, गोखरु) साढ़े बारह पल, देवदारु तीस पल, छोटी कटेरी तीस पल, इन्द्रायण तीस पल, दर्भ का मूल पांच पल, हिंस्रातरु (हिंस्र) तीन पल, कण्टकारी (भटकटैया) सात पल, राजादन (खिरिनी) सात पल, शतावरीमूल तीन पल, गम्भारी तीन पल, अर्जुन तीन पल, काकड़ासिंघी, सौंफ, गजपीपर, बरियार, कपूरकचरी, नागबला (गगेरन), करञ्ज, त्रायमाणा, केवुक

(केमुककन्द वृक्षविशेष वै. श. सि.), मेढ़ासिंघी, कूट, अडूसा, असित (धववृक्ष), कर्बुक (गन्ध शटी), विडंग, पिप्पली, अतीस, जीरा, चव्य, रास्ना, नील कमल का फूल, सारिवा, कौटज (इन्द्रजव), अजवायन, वातारि (एरण्ड), निम्ब, अरुः (रक्त-खदिर) अनार्यतिक्त, (चिरायता), रक्ता (मंजीठ), गुडूची, तेजनीवल्कल (तेजवल की छाल), व्याधिघात (अमलतास), हाऊवेर तथा भृङ्गी (भृङ्गराज)—दो २ पल—इन द्रव्यों को यवकुटकर चार द्रोण जल में पकावे, एक द्रोण शेष रहने पर गुड़ छः सौ पल (छः तुला), मधु तथा धाय का फूल तीस २ पल—इन सभी द्रव्यों को जटामांसी तथा अगरु से धूपित घृतस्निग्ध भाण्ड में भर दे और केशर, सफेद चन्दन, लाल चन्दन—एक २ पल, कतक (निर्मली), निशाकर (कपूर), लवंग, आकल्लक (अकरकरा), वंशलोचन, भांगरा, सुराष्ट्री (गोपीचन्दन), तगर, कबाबचीनी, जायफर, तेजपत्र, जावित्री, लौहभस्म, चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) तथा बालक (सुगन्धवाला)—एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर मुह बन्द कर एक मास तक यवराशि के मध्य में रक्खे। एक मास बाद छान कर रोग के बल को देखकर मात्रापूर्वक पान करे। यह वरुणासव—प्लीहोदर, विद्रधि, गुल्म, कास, श्वास, रक्तविकार, हिक्का, शूल, आमवात, अर्बुद, पाण्डुरोग, कुष्ठ, छर्दि, अरोचक, शोथ, आध्मान, भगन्दर, शुक्राश्मरी (वीर्य की पथरी), अनेक प्रकार के ग्रन्थिरोग, शोष (सूखारोग), अपतानकवात, अर्दित, पक्षाघात, सन्धिग्रह तथा हलीमक आदि रोगों को नाश करता है और वन्ध्या स्त्रियों को पुत्र देनेवाला, शक्तिवर्द्धक तथा प्राणप्रद है। पैत्तिक, वातज तथा श्लैष्मिक रोगों को दूर करता है और वैताल (भूत), राक्षस, दुष्ट ग्रह—इन सबों के भय को नष्ट करनेवाला है। इस योग को मैंने अनेक ग्रन्थों को देखकर चिकित्सकों के हित के लिये कहा है॥ ३२४–३३६॥

प्लीहरोगे रोहीतकासवः—

रोहीतकात्तुलामेकां चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्।
द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूते शीते प्रदापयेत्॥ ३३७॥
पलानि खलु धातक्याः षोडश द्विशतं गुडात्।
पलं पृथक् त्रिजातस्य पञ्चकोलपलं तथा॥ ३३८॥
चूर्णीकृतं क्षिपेत्सर्वं घृतलिप्ते तु भाजने।
पक्षादूर्ध्वं पिबेच्चापि ततो मात्रां यथाबलम्॥ ३३९॥
प्लीहं प्लीहोदरं चैव प्लीहशूलं तथैव च।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथा सर्वमरोचकम्॥ ३४०॥
हन्ति विबन्धशूलं च पाण्डुरोगं सकामलम्।

नाशयेच्छर्दतीसारं ज्वरं जीर्णं तथैव च ॥ ३४१ ॥
रोहितकासवो ह्येष प्लीहं च शमयेद् ध्रुवम् ।

प्लीहारोग में रोहीतकासव—रोहीतक (रोहिड़ा) एक तुला जल चार द्रोण में पकावे, एक द्रोण शेष क्वाथ को छानकर ठंढा होने पर घृतलिप्त भाण्ड में भरकर धाय का फूल सोरह पल, गुड़ दो सौ पल, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र) पृथक् एक २ पल, पञ्चकोल (पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ)—एक २ पल—इन द्रव्यों को चूर्ण कर मिला दे और मुह वन्द कर जमीन पर पन्द्रह दिन तक रक्खे, इसके वाद छानकर वल के अनुसार मात्रापूर्वक पान करे। यह रोहितकासव—प्लीहारोग, प्लीहोदर, प्लीहाशूल, हृदय का शूल, पार्श्वशूल, सभी प्रकार के अरोचक, विवन्धशूल (कोष्ठबद्धता के कारण शूल), पाण्डुरोग तथा कामला रोग को नाश करता है और छर्दि अतिसार तथा जीर्ण ज्वर को भी नाश करता है। यह आसव प्लीहारोग को अवश्य ही शान्त करता है ॥

गण्डीरासवः—

जातसारं तु गण्डीरं सपुष्पं परिशोषयेत् ॥ ३४२ ॥
खण्डशः क्षोदितं कृत्वा तस्य पञ्चाढकं पचेत् ।
त्रींश्चैव त्रिफलाप्रस्थान् दशमूलीतुलां तथा ॥ ३४३ ॥
दद्यात्कुटजवल्कस्य पलानां पञ्चविंशतिम् ।
इन्द्रयवं सभल्लातं विडङ्गं घनमेव च ॥ ३४४ ॥
अर्धप्रस्थसमं भागानेकैकस्य समावपेत् ।
पाठा मधुरसा दन्ती पड्ग्रन्था चित्रकस्तथा ॥ ३४५ ॥
एषां दशपलान् भागान्मृद्वीकायास्तथाऽऽढकम् ।
दशद्रोणेषु तोयस्य पचेद् द्विद्रोणशेषितम् ॥ ३४६ ॥
पूते तस्मिन्कषाये तु गुडस्यैकां तुलां क्षिपेत् ।
तथा तु शोधितस्यापि, शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ३४७ ॥
द्वौ प्रस्थौ मधुनश्चैव द्वावयोरजसस्तथा ।
अर्धप्रस्थौ पिडङ्गानां कुडवो मरिचस्य च ॥ ३४८
एतयोः सूक्ष्मचूर्णानि प्रतिवापार्थमाहरेत् ।
चूर्णं मरीचकानां च मधुना सह योजयेत् ॥ ३४९ ॥
कर्तव्यो भाण्डलेपस्तु समासिच्य निधापयेत् ।
एष मासस्थितः पेयो यथाव्याधिबलाबलम् ॥ ३५० ॥
गण्डीरारिष्ट इत्येष व्यासतः परिकीर्तितः ।
एष शोषान् प्रमेहांश्च गुल्मांश्च जठराणि च ॥ ३५१ ॥

क्रिमिकुष्ठानि वर्ध्मानि प्लीहार्शांसि भगन्दरम् ।
श्वयथून् पाण्डुरोगांश्च ग्रहणीदोषमेव च ॥ ३५२ ॥
ग्रन्थींश्च गलगण्डं च गण्डमालां तथैव च ।
विषमज्वरकासांश्च विद्रधीन् वातशोणितम् ।
अरिष्टः शमयत्याशु युधि शक्र इवासुरान् ॥ ३५३ ॥

गण्डीरासव—परिपक्व गण्डर दूब को पुष्पसहित सुखा ले और छोटे २ टुकड़ा काटकर पांच आढक ले ले, और त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) तीन प्रस्थ, दशमूल (विल्व, गम्भारी, स्योनाक, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वनभंटा, रेगनी, गोखरू)—एक तुला, कुटज (कोरैया) की छाल पच्चीस पल, इन्द्रयव, भल्लातक, विडंग, मोथा—आधा २ प्रस्थ (आठ २ पल), पाठा (पाढ़ी), मधुरसा (मूर्वा), दन्तीमूल, वच तथा चित्रक—दश २ पल, मुनक्का एक आढक—इन द्रव्यों का यवकूट चूर्ण (मोटा चूर्ण) लेकर दश द्रोण जल में क्वाथकर दो द्रोण शेष क्वाथ छानकर उसमें गुड़ एक तुला मिलाकर अच्छी तरह परीक्षित मजबूत स्वच्छ भाण्ड में भर दे और उसमें मधु दो प्रस्थ, लौह-भस्म दो प्रस्थ मिला दे । विडंग आधा प्रस्थ, मरिच एक कुडव—इन द्रव्यों के सूक्ष्म चूर्ण को प्रक्षेप करे पहले भाण्ड को मरिच का चूर्ण मधु में मिलाकर अच्छी तरह लेप कर दे बाद उसमें सभी द्रवद्रव्य तथा चूर्ण द्रव्यों को भरे और एक मास तक जमीन पर रक्खे । इसके बाद छानकर व्याधि-बलाबल के अनुसार मात्रा में पान करे । गण्डीरारिष्ट विस्तारपूर्वक कहा गया है । यह अरिष्ट—शोष, प्रमेह, गुल्म, जठररोग, कृमिरोग, कुष्ठरोग, वर्ध्म, प्लीहा, अर्श, भगन्दर, शोथ, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, ग्रन्थिरोग, गलगण्ड, गण्डमाला, विषमज्वर, कास, विद्रधि तथा वातरक्त आदि रोगों को शीघ्र शान्त करता है । जैसे इन्द्र युद्ध में असुरों को शीघ्र शान्त कर दिये ।

प्लीहरोगे रोहीतकासवः—

तुलाद्वयं रोहितमूलकानां द्विद्रोणमात्रेण जलेन पक्त्वा ।
देयं गुडस्य द्विशतं पलानामष्टादश स्युस्त्रिफलापलानि ॥ ३५४ ॥
लवङ्गजातीफलधातकीनां पलानि लोहस्य षडेव दद्यात् ।
देयं चतुर्जातकपञ्चकोलं पृथक् पृथक् पञ्चपलं तथैव ॥ ३५५ ॥
गुल्मज्वरारोचकहृद्विकारभगन्दरप्लीहनिपीडितानाम् ।
रक्तामयश्वासनिपीडितानां सदाऽऽसवोऽयं विधिना प्रयोज्य. ॥ ३५६ ॥

प्लीहारोग में रोहितकासव—रोहितक (रोहिड़ा) का मूल दो तुला, जल दो द्रोण में पकाकर चतुर्थांश शेष क्वाथ को छानकर उसमें गुड़ दो सौ पल, त्रिफला (हर्रे, बहेड़ा, आंवला) अठारह पल, लवंग, जायफर, धाय का

फूल, लोह (अगर) छः पल, चतुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर) पांच पल, पंचकोल (पीपर, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ,) पांच पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को मिलाकर घृतलिप्त भाण्ड में एक मास रक्खे। एक मास बाद इस आसव को गुल्म, ज्वर, अरोचक, हृदयविकार, भगन्दर तथा प्लीहा, इन रोगों से पीड़ित तथा रक्तरोग, श्वास से पीड़ित व्यक्तियों के लिये विधिपूर्वक सदा प्रयोग करना चाहिए ॥ ३५४–३५६ ॥

योगराजासवः—

द्राक्षायाः शर्करायाश्च गुडस्य च पृथक् पृथक् ।
पलानि दश कार्याणि पथ्यापलचतुष्टयम् ॥ ३५७ ॥
लवङ्गबदरीसर्जार्जुनानां तु त्वचस्तथा ।
पलं पलं पृथग्ग्राह्यं देवदारुपलं तथा ॥ ३५८ ॥
चित्रकस्य च लोध्रस्य पिप्पलीमूलकस्य च ।
धातकीकुसुमानां च तद्वद्देयं पलं पलम् ॥ ३५९ ॥
तथा पूगफलानां तु कषायाणां पलं मतम् ।
मञ्जिष्ठायाः पले द्वे तु क्वाथ्यसंज्ञानि तानि च ॥ ३६० ॥
लवङ्गकलिकाजातीपत्रैलानागकेशरम् ।
मरीचपिप्पलीशुण्ठीत्वङ्मांसीचव्यमुस्तकम् ॥ ३६१ ॥
कुष्ठं जातीफलं ग्रन्थिपर्णं स्नुक् कटुरोहिणी ।
एषां पलं पलं ग्राह्यं तज्ज्ञेयं चूर्णसंज्ञितम् ॥ ३६२ ॥
क्वाथ्यद्रव्यात्ततः सम्यग्जलमष्टगुणं क्षिपेत् ।
क्वाथं तदुदके कुर्यादर्धभागावशेषितम् ॥ ३६३ ॥
तत्क्वाथं वस्त्रपूतं तु भाण्डेऽन्यस्मिन्मनोहरे ।
कृत्वाऽत्र प्रक्षिपेच्चूर्णं तद्भाण्डं धान्यराशिगम् ॥ ३६४ ॥
कृत्वा सप्तदिनं शीते काले चोष्णमये तथा ।
यावद्दिनानि त्रीणि स्युः पश्चाद्भाण्डे समुद्धरेत् ॥ ३६५ ॥
पुनस्तद्वस्त्रपूतं तु भाण्डे कर्पूरवासिते ।
निक्षिप्य सेवयेत्प्रातः पलमात्रोपलक्षितम् ॥ ३६६ ॥
स दत्तो वातपित्तघ्नो दीपनो रक्तरोगनुत् ।
योगराज इति ख्यात आसवोऽयं गुणोत्तरः ॥ ३६७ ॥

योगराजासव—मुनक्का, शर्करा, गुड दश २ पल, हर्रे चार पल, लवंग, बेर, सर्ज, अर्जुन, दालचीनी अलग २ एक पल, देवदारु एक पल, चित्रक, पठानीलोध्र, पिपरामूल तथा धाय का फूल एक २ पल, पूगफल (सुपारी) तथा कषाय द्रव्य एक २ पल मंजीठ दो पल—इन क्वाथ्य-संज्ञक द्रव्यों को द्रव्य से

अठगुने जल से क्काथ करने पर शेष आधे क्काथ को छानकर स्वच्छ भाण्ड में भर॰ कर, उससे लवंगकलिका (लवंग का फूल), जावित्री, इलायची, नागकेशर, मरिच, पीपर, सोंठ, दालचीनी, जटामांसी, चव्य, मोथा, कूठ, जायफर, ग्रन्थिपर्ण (गठि-वन या कुकुरौंधा) सेहुंड़ तथा कुटकी एक २ पल—इन द्रव्यों के चूर्ण को छोड़कर उस भाण्ड को धान्य की राशि में शीतकाल मे सात दिन, उष्णकाल में तीन दिन रक्खे और उसके बाद निकाल ले तथा पुन. कपड़े से छान कर कर्पूर से सुगन्धित पात्र में रक्खे और एक पल की मात्रा में प्रातः पान करे। यह आसव वात-पित्त को नाश करता है दीपन है और रक्तरोग को दूर करता है। यह योगराज नामक आसव उत्तरोत्तर गुणवान होता है ॥ ३५७–३६७ ॥

अर्शोरोगे पील्वासवः—

मूर्वाखर्जूरपाठानिलरिपुमधुकं कच्छुरा हारहूरा
कोलत्वग्वेतसाम्लं दहनमिशिकणाकृष्णविश्वालवङ्गम्।
त्वग्लोध्राद्दाडिमाच्च पलमिति पृथग् दन्तिमूलेन युक्त
पीलुद्रोणे द्विपक्षं गुडपलशतयुग् धान्यराशौ निदध्यात् ॥ ३६८ ॥
अर्शः प्लीहं च गुल्मं जठरगदमथो नाशयेच्चाग्निमान्द्यं।
कुर्याच्चाग्नि प्रदीप्तं प्रबलबलयुत पीलुसंज्ञासवोऽयम् ॥ ३६९ ॥

अर्शरोग मे पिप्पल्यासव—मूर्वा, खजूर, पान (पाढ़ी), अनिलरिपु (एरण्ड), मुलेठी, कच्छुरा (यवासा), हारहूरा (उत्तरा गोस्तनिका द्राचा विशेष), कोल (बैर), दालचीनी, अम्लवेत, चित्रक, सौफ, पिप्पली, मरिच, सोंठ, लवंग, पठानीलोध तथा दाडिम (अनार) की छाल अलग २ एक २ पल, दन्तीमूल एक पल, पीलुरस एक द्रोण, गुड़ दो सौ पल—इन सभी द्रव्यों को भाण्ड मे भरकर मुँह बन्द कर एक माह तक धान्य की राशि में रक्खे। एक मास बाद सिद्ध यह पीलुसंज्ञक आसव अर्शरोग, प्लीहा, गुल्म, जठररोग तथा अग्नि मान्द्य को नाश करता है और अग्नि को प्रदीप्त करता है तथा मनुष्य को बलवान बनाता है ॥ ३६८–३६९ ॥

प्रमेहे मध्वासवः—

विशालातिविषाभार्गीकुष्ठमुस्ताप्रियङ्गवः।
विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचव्यग्रन्थिकदीप्यकाः ॥ ३७० ॥
अक्षांशान् सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते।
दत्त्वा क्षौद्रं तदर्ध हि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्।
एष मध्वासवो हन्ति मेहं द्विपलयोजितः ॥ ३७१ ॥

प्रमेहरोग में मध्वासव—इन्द्रायण, अतीस, भांगरा, कूठ, मोथा, प्रियंगु, विडंग, त्रिफला, पीपर, चव्य, पीपरामूल तथा अजवायन—एक २ अक्ष—इन

द्रव्यों को एक द्रोण जल में पकाकर चौथाई शेष क्वाथ में उस क्वाथ का आधा मधु डालकर स्निग्ध भाण्ड में भरकर रक्खे। यह मध्वासव दो पल की मात्रा में प्रयोग करने से प्रमेह को नष्ट करता है ॥ ३७०–३७१ ॥

लोहासवः—

फलत्रिकं निम्बपटोलमुस्ता-पाठामृताचित्रकचन्दनं च।
वेल्लं समङ्गा च मधूकसार-कर्चूरवासात्रिवृताहरिद्राः ॥ ३७२ ॥
दुरालभापर्पटकण्टकारी-शक्राशनं यासकचर्मरङ्गे।
शशाङ्कलेखाकपिकच्छुमूलं मेथी च बिल्वं कुटजश्च तिक्ता ॥ ३७३ ॥
त्रायन्तिका पुष्करकस्य मूलं पलैकमानानि महौषधानि।
षष्टिः पलानां खदिरस्य सारो ह्ययोरजः स्यात्पलयुग्ममानम् ॥३७४॥
स्याल्लोहकिट्टं च तुलाप्रमाणं तत्पञ्चकं केवुकजीवनीयम्।
प्रक्षिप्य भाण्डे शशियुग्मघस्रान् सूर्यातपे स्थाप्य ततस्तु योज्यः
लोहासवोऽयं भिषजोपदिष्टः सर्वोत्तमो रोगविनाशहेतुः ॥ ३७५ ॥

इति श्रीसोढलग्रथिते गदनिग्रहे षष्ठ आसवाधिकारः संपूर्णः।
समाप्तश्चायं प्रथमः प्रयोगखण्डः।



लोहासव—त्रिफला, निम्ब, पटोलपत्र, मोथा, पाठा (पाढी), गुडूची, चित्रक, रक्तचन्दन, विडंग, मंजीठ, मधूकसार (महुआ की लकड़ी), कचूर, अडूसा, निशोथ, हल्दी, यवासा, पित्तपापड़ा, कण्टकारी (कटेरी), शक्राशन (भांग), यासक (धमासा) चर्मरङ्गा (शब्दार्थ चिन्तामणि मे आवर्तिकी लता विशेष 'आहुल'), शशाङ्कलेखा (वाकुची), कपिकच्छु मूल (केवाछ की जड़), मेथी, बिल्व, कोरैया, कटुकी, त्रायमाणा, पुष्करमूल—एक २ पल, खैरसार साठ पल, लौहभस्म दो पल, लोहकिट्ट (मण्डूर) एक तुला, केवुक जीवनीय (जल) पांच तुला—इन सभी द्रव्यों को भाण्ड मे छोडकर एक्कीस दिन तक सूर्य के धूप मे रक्खे और एक्कीस दिन के बाद प्रयोग करे। वैद्यों का बताया हुआ यह लोहासव सभी औषधों मे उत्तम है और रोगों को नाश करनेवाला है ॥ ३७२–३७५ ॥

इति श्री सोढल-ग्रथित गदनिग्रह मे छठां आसवाधिकार समाप्त।
गदनिग्रह का प्रथम प्रयोग खण्ड समाप्त।



परिशिष्टम् १

स्नेहचूर्णगुटीलेहासवानां परिभाषाः

(वैद्य श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य)

अत्र गदनिग्रहे वैद्यवरसोढलेन घृतादिसाधनपरिभाषा नोक्ता, अतोऽध्येतॄणां सौकर्यार्थं मया संक्षेपेण परिभाषा निर्दिश्यते। तत्र पूर्वं मानपरिभाषैव ज्ञेया भवति। अतः सोच्यते—

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित्।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया॥
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात्तच्चतुष्टयम्।
षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ॥
माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणं तन्निगद्यते।
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते॥
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते।
कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका॥
अक्षः पिचुः पाणितलं किञ्चित्पाणिश्च तिन्दुकम्।
बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता॥
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवडग्रहः।
उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते॥
स्यात्कर्षाभ्यामर्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका॥
प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते।
पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते॥
प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः।
अष्टमानं च स ज्ञेयः, कुडवाभ्यां च मानिका॥
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः।
शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाऽऽढकम्॥
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं स्मृतम्।
चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः॥

उन्मानं च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ।
द्रोणाभ्यां सूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः ॥
सूर्पाभ्यां च भवेद् द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ।
द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ।
पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्तितः ॥
तुला पलशतं ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः ।
मापटङ्काख्यबिल्वानि कुडवः प्रस्थ आढकम् ।
राशिर्द्रोणिः खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणाः ॥

युक्तिः योजना, कर्तव्यविधिरिति यावत् । यवेत्यादि अत्र परमाण्वादिमाना-कथनं तु तेषां चिकित्सायामनुपयोगादेव । सर्षपोऽत्र गौरसर्षपः । तैरष्टभिरेको यवः । यवोऽत्र निस्तुषो ग्राह्यः । चतुर्भिर्यवैरेका गुञ्जा, सा चात्र रक्ता ज्ञेया । षड्भिः रक्तगुञ्जाभिरेको माषकः । अयं च सुवर्णमाषक इति सुश्रुतादौ प्रसिद्धः । चतुर्भिर्माषकैरेकः शाणः । द्वाभ्यां शाणाभ्यामेकः कोलः, द्वाभ्यां कोलाभ्यां चैकः कर्षः । स च संप्रति भारतवर्षे प्रचलितरूप्यकाख्यव्यावहारिक-द्रव्यपरिमितः । अतो माषशाणकोला यथाक्रमं एकाणक-आणकचतुष्टय-अर्धरूप्यक-(रू० ४॥, रू० ।, रू० ।।,) परिमिता ज्ञेया । शरावस्य 'शेर' इति नाम्ना भाषायां व्यवहारः, द्रोणस्य च 'मण' इति नाम्ना । अन्यत्स्पष्टम् ।

शुष्काणां स्यादिदं मानं द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ।
न द्वैगुण्यं तुलामाने पलोल्लेखागते तथा ॥
शुष्कद्रव्येषु यन्मानमार्द्रस्य द्विगुणं हि तत् ।
शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णत्वं तस्मादर्धं प्रयोजयेत् ॥
शुष्कं नवीनं यद्द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु ।
आर्द्रं च द्विगुणं दद्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥

यत्र प्रयोगे यद्द्रव्यं शुष्कमुपयुज्यते तस्य यावन्मानं लिखितं तावन्मितमेव तद्ग्राह्यं, तदेव यद्यार्द्रमुपयुज्यते तदोक्तमानापेक्षया द्विगुणं ग्राह्यं; यच्च द्रव्यं क्षीर-तोयादिकं द्रवमेवोपयुज्यते तदप्युक्तमानापेक्षया द्विगुणं ग्राह्यं, एतच्च द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यं रक्तिकादौ कुडवादौ च सर्वत्रैव ज्ञेयं, परं यत्र तुलामानं यत्र वा पलशब्देन मानो-ल्लेखः यथा-'रोहितकत्वचः श्रेष्ठात्पलानां पञ्चविंशतिः' इत्यादौ तत्र तु द्रवार्द्रयोर्द्वैगुण्यं न कार्यम् । यत्तु "गुञ्जादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः । द्रवार्द्र-शुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः"—इति तत्तु न प्रमाणं, युक्तिविरोधाच्चरकसुश्रुतविरोधाच्च । येषां

तु द्रव्याणामार्द्रतायामेव नियमतः प्रयोगो न शुष्कतायां, तेषामार्द्राणां द्वैगुण्यं न कार्यं; आर्द्रतायामेवैषामुपयोगस्तु तदवस्थायामेवैषामुत्कृष्टवीर्यत्वात्। तानि च यथा—

"गुडूची कुटजो वासा कुष्माण्डं च शतावरी। अश्वगन्धासहचरौ शतपुष्पा प्रसारणी॥ प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणं नैव कारयेत्—" इति। अन्यच्च—"वासानिम्बपटोलकेतकिवलाकुष्माण्डकेन्दीवरीवर्षाभूकुटजाश्वगन्धसहितास्ताः पूतिगन्धामृताः। मांसं,नागबला सहाचरपुरौ हिङ्ग्वार्द्रके नित्यशो ग्राह्यास्तत्क्षणमेव न द्विगुणिता ये चेक्षुजाता घनाः"—इति।

अथ भेषजादिग्रहणसंकेतः—

लवणं सैन्धवं प्रोक्तं चन्दनं रक्तचन्दनम्।
चूर्णलेहासवस्नेहाः साध्या धवलचन्दनैः॥
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम्।
पयःसर्पिःप्रयोगेषु गव्यमेव हि गृह्यते॥
शकृद्रसो गोमयकं सूत्रं गोमूत्रमुच्यते।
सिद्धार्थः सर्षपे ग्राह्य उत्पले नीलमुत्पलम्॥
कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत्।
भागेऽनुक्तेच साम्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम्॥
द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्य तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम्।
एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते॥
मानतो द्विगुणं ग्राह्यं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः।
व्याधेरयुक्त यद् द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत्॥
अनुक्तमपि युक्तं यद्योजयेत्तत्र तद्बुधः।
कदाचिद् द्रव्यमेकं वा यदि योगे न लभ्यते॥
तत्तद्गुणयुतं द्रव्यं परिवर्तेन गृह्यते।
द्रव्याभावे तु तत्तुल्यं द्रव्यमेव प्रदीयते॥
न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारः स्याद्बीजकादितः।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत्।
महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च॥
तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं सूक्ष्ममूलानि कृत्स्नतः।
जाङ्गलानां वयःस्थानां चर्मरोमनखादिकम्॥
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारे तु ग्राहयेत्।
चतुष्पात्सु स्त्रियः श्रेष्ठाः पुमांसो विहगेषु च॥

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोपरमार्गजाः ।
जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥
शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।
विरेकवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥

अथ स्नेहपाकपरिभाषा—अत्राह सुश्रुतः,—"स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः, स्नेहचतुर्थांशो भेषजकल्कः, तदैकध्यं संसृज्य विपचेदित्येष स्नेहपाककल्पः। भवति चात्र—स्नेहभेषजतोयानां प्रमाणं यत्र नेरितम्। तत्रायं विधिरास्थेयो निर्दिष्टे तत्तदेव तु" इति। स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रव इति वचनं एकद्वित्रिद्रवेषु चतुर्गुणत्वन्यूने स्नेहसाधननिषेधार्थं, नतु पञ्चप्रभृतिद्रवेषु चतुर्गुणाधिक्ये प्रतिषेधार्थं, तेन यत्रैकेन द्रवेण पाकस्तत्रैकेनैव चातुर्गुण्यं, यत्र द्वाभ्यां द्रवाभ्यां स्नेहपाकस्तत्र स्नेहद्विगुणाभ्यां ताभ्यां चातुर्गुण्यं, यत्र त्रिभिर्द्रवैः स्नेहपाकस्तत्र त्रिभिः मिलितैश्चातुर्गुण्यं, यत्र तु चतुर्भिर्द्रवैः स्नेहपाकस्तत्र स्नेहसमैश्चतुर्भिश्चातुर्गुण्यमिति। यत्र तु पञ्चप्रभृतीनि द्रवाणि तत्र तु सर्वाणि स्नेहसमान्येव ग्राह्याणि। तत्र क्षीरे विशेषः–, यत्र द्रवान्तरं नोक्तं तत्र क्षीरं चतुर्गुणम्। द्रवान्तरप्रयोगे तु क्षीरं स्नेहसमं मतम्–इति। अस्यायमर्थः—यत्र केवलेन क्षीरेणैव पाकस्तत्र क्षीरमेव चतुर्गुणं दत्त्वा स्नेहः साधनीयः। यत्र तु एकद्रवान्तरयुतेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं स्नेहसमं द्रवान्तरं च स्नेहत्रिगुणमिति मिलित्वा स्नेहचतुर्गुणेन द्रवेण पाकः यत्र च द्रवान्तरद्वययुतेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं स्नेहसमं द्रवान्तरद्वयं च स्नेहसार्धमिति मिलित्वा स्नेहचतुर्गुणेन द्रवेण पाकः, यत्र द्रवान्तरत्रययुतेन क्षीरेण पाकस्तत्र क्षीरं द्रवान्तरत्रयं च स्नेह समिति प्रत्येकं मिलितैश्चतुर्गुणैः स्नेहपाकः। तदूर्ध्वं चतुःप्रभृतिद्रवान्तरयोगे क्षीरं द्रवान्तरं च प्रत्येकं स्नेहसमं दत्त्वा पाको निष्पादनीय। अथ कल्कमानापवाद–"वृषादि कुसुमैः कल्कैर्यत्रोक्तं स्नेहसाधनम्। कल्काढ्यत्वात्तु पादार्धं तत्र कल्कं प्रदापयेत्" इति स्नेहे कल्को नोक्तस्तत्र केवलेन द्रवेणैव चतुर्गुणेन स्नेहसाधनम्। यदुक्तं—अकल्कः खलु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे" इति। यत्र योगे द्रव्यगण एव निर्दिष्टः क्वाथो वा कल्को वा न निर्दिष्टस्तस्मिन्ननिर्देशे तस्माद्द्रव्यगणात्कल्कक्वाथावुभावपि प्रयोजयेत्। यदुक्तं सुश्रुते—"कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात्प्रयोजयेत्"—इति। अत्र च गणशब्दो गणसंज्ञया यो गणः पञ्चमूलादिरुक्तस्तन्मात्रं न विवक्षितः, किन्तु त्रिप्रभृतिद्रव्यसमूहे विवक्षितः, गणात्तस्मादित्युक्ते। एतेन यत्रैकेन द्रव्येण द्रव्यद्वयेन वा पाकस्तत्र कल्केनैव, यत्र तु त्रिप्रभृतिभिर्द्रव्यैः पाकस्तत्र क्वाथकल्काभ्यामुभाभ्यामिति ज्ञेयम्। स्नेहसाधने क्वाथकल्पनोक्ता सुश्रुतेन—तत्र यथायोगं त्वक्पत्रफलमूलादीनामातपपरिशोषितानां क्षेत्रानि खण्डशश्छेदयित्वा भेद्यान्यणुशो भेदयित्वाऽवकुट्याष्ट-

गुणेन षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्य स्थाल्यां चतुर्भागावशिष्टं क्वाथयित्वाऽपहरेदित्येष कषायपाककल्पः" इति । अत्राष्टगुणतोयं मृद्वादिसंघाताभिप्रायेण द्रवद्वैगुण्येनैवोक्तम् । यदुक्तमन्यत्र—"मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं जलम् । कठिनात्कठिनं यच्च तत्र षोडशिकं जलम् ॥ मृद्वादौ द्रव्यसंघाते मानानुक्तौ चिकित्सकाः । मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलमिति । तथा—क्वाथ्यादष्टगुणं वारि, पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् । स्नेहात्, स्नेहसमं क्षीरं, कल्कस्तु स्नेहपादिकः । चतुर्गुणं त्वष्टगुण द्रवद्वैगुण्यतो भवेत्" इति । यत्र क्वाथ्यद्रव्यमानमल्पमष्टगुणे तोये क्वाथकरणे स्नेहाच्चतुर्गुणः क्वाथो न भवति तत्रोक्तमानेन क्वाथ्यद्रव्यं गृहीत्वा षोडशगुणे तोये क्वाथयित्वा पादशेषं स्नेहचतुर्गुणं कुर्यादित्यभिप्रायेणोक्तं षोडशगुणेन वाऽम्भसाऽभिषिच्येति । "अथवा तत्रोदकद्रोणे त्वक्पत्रमूलादीनां तुलामावाप्य चतुर्भागावशिष्टमपहरेदित्येष कषायपाककल्पः । तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुलाऽम्भसि । ततः पलशते द्रव्ये जलद्रोणोऽपि चेष्यते ॥" यत्र तुलाद्रव्यं जले पचेदित्युक्तं परं जलप्रमाणं नोक्तं, तत्र द्रोणमितं जलं ग्राह्यं; यत्र तु द्रोणमिते जले द्रव्यं पचेदित्युक्तं परं द्रव्यप्रमाणं नोक्तं, तत्र द्रव्यं तुलाप्रमाणं ग्राह्यमिति भावः । 'अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते' इति ।

स्नेहपाककालनियम—स्नेहान् विपाच्यैव विरामयेत्तु क्षीरे द्विरात्रं स्वरसे त्रिरात्रम् । कल्के कषायेषु च पञ्चरात्रं दध्यारनाले पुनरेकरात्रम् ॥ अस्यायमर्थः—क्षीरादिद्रवाणि कल्कं चैकध्यं संसृज्य विपचेत । तत्र, क्षीरं कल्कश्च यत्र तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा द्विरात्रं विश्रामयेत्· स्वरसः कल्कश्च यत्र तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा त्रिरात्रं विश्रामयेत, यत्र केवलः कल्कस्तत्र कल्कं चतुर्गुणं जलं च संसृज्य पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत, यत्र कषायः कल्कश्च तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा पञ्चरात्रं विरामयेत; यत्र दधि कल्कश्च तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा एकरात्रं विश्रामयेत, यत्र आरनालः कल्कश्च तत्रैकध्यं द्वयं संसृज्य पक्त्वा एकरात्रं विरामयेत; अत्र दधिशब्दस्तक्रस्य, आरनालशब्दश्च सुरादीनां सधानविशेषाणां मूत्रादीनां च उपलक्षणम् । यत्र कल्कश्च क्षीरादीनां द्वित्र्यादिकानि द्रवाणि च तत्र कल्कं गर्भे दत्त्वा तत्तत् क्षीरादिकं प्रत्येकं दत्त्वा संसृज्य पक्त्वा स्वस्वोक्तकालं विरामयेत, यथा-क्षीरे द्विरात्रं, स्वरसे त्रिरात्रं, कषाये पञ्चरात्रं, दध्न्येकरात्रं, आरनाले चैकरात्रमिति । एतच्च विशेषेण गुणाधानार्थम् । उक्तं हि—"घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् । व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः"—इति । विरामरात्रान्न्यूनत्वे तु विशेषेण गुणाधानाभावमात्रं नतु स्नेहपाकासिद्धिः, अधिके च न दोषः । सिद्धं स्नेहं वस्त्राद्गालयित्वोपयुञ्ज्यात् । तत्र मृदुपाके द्रवसद्भावात्किट्टं सर्वथा न पीडनीयं, मध्यमे मनाक् पीडनीयं, द्रवा-

भावात्; खरे तु यथेष्टं पीडनीयं, द्रवरहितत्वात्। मध्यपाकस्तु सर्वत्र प्रशस्तः। यदुक्तं,—'वरं पाको मृदुः कार्यः स्नेहादीनां न वै खरः। स पूर्णं वीर्यमादत्ते तज्जहाति खरः पुनः'।

अथ स्नेहपाकविज्ञानम्। अत्राह सुश्रुतः—अत ऊर्ध्वं स्नेहपाकक्रममुपदेक्ष्यामः। स च त्रिविधः। तद्यथा—मृदुः, मध्यः, खर इति। तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुः, मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि च यत्र भेषजं स मध्यमः, कृष्णमवसन्नमीषद्विशदं चिक्कणं च यत्र भेषजं स खर इति। अत ऊर्ध्वं दग्धस्नेहो भवति, तं पुनः साधु साधयेत्। तत्र पानाभ्यवहारयोर्मृदुः, नस्याभ्यञ्जनयोर्मध्यमः, बस्तिकर्णपूरणयोस्तु खर इति। भवतश्चात्र—शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा। गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत्॥ घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक्। फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत्॥ इति॥

अथ चूर्णपरिभाषा—अत्यन्तशुष्कं यद् द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम्। तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत्। चूर्णेषु भर्जितं हिङ्गु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत्॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः। पिबेच्चतुर्गुणैरेव चूर्णमालोडितं द्रवैः॥ चूर्णविधाने द्विविधः प्रचारो दृश्यते वृद्धवैद्यानाम्। तत्रैके द्वित्र्यादिद्रव्यनिष्पाद्ये चूर्णप्रयोगे प्रत्येकं द्रव्यं संचूर्ण्य वस्त्रगालितं कृत्वा ततो यथोक्तमानेन गृहीत्वा एकीकृत्य प्रयुञ्जन्ति, अपरे तु सर्वाण्यपि द्रव्याणि यथोक्तमानानि सगृह्य एकध्यं संचूर्ण्य वस्त्रगालितं कृत्वा व्यवहरन्ति। बहुषु प्रयोगेषु चूर्णं जम्बरीरार्द्रकादीनां रसैर्भावयेदित्युक्तं, तत्र यस्य भावना देया तस्य यदि स्वरस उपलभ्यते तदा स्वरसेनैव भावयेत्, यदा तु स्वरसो नोपलभ्येत तदा "भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथ्यादष्टगुणं जलम्। अष्टांशशेषितः क्वाथो भाव्यानां तेन भावना—" इति परिभाषया क्वाथं निष्पाद्य तेनैव भावयेत्। भावनाविधिस्तु—"द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत्। भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः॥ दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ निवासयेत्। शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं यथोक्तं भावनाविधिः" इति। यथोक्तं भावनाविधिरिति सप्तवारं त्रिवारमेकवारं वा यावद्वारं भावनोक्ता तावद्वारं भावयेदित्यर्थः। अनुक्ते तु सप्तवारं भावयन्ति वृद्धवैद्याः।

गुटिकापरिभाषा—वटकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी। मोदको चटकः पिण्डी गुण्डी वर्तिस्तथोच्यते॥ लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा

शर्कराऽथवा। गुग्गुलुर्वा, क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी॥ कुर्यादवह्नि-सिद्धेन कचिद्गुग्गुलुना वटीम्। द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद्बुधः॥ यथा लेहार्थं गडादिकं साध्यते तथैवात्र गुड शर्करा गुग्गुलुर्वा पक्तव्यः। पाके सति चूर्णं प्रक्षिप्य वटकान कुर्यादिति भावः। गुडपाकलक्षणं तु गदनिग्रह एव प्रोक्तम् (प्रयोगखण्ड पृ० २४५)। गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सबन्धस्तु विशेषत। मण्डूराणां च सर्वेषां पाकोऽयं परिकीर्तितः॥ पक्षान्तरमाह-कचिदिति; न सर्वत्र। अवह्निसिद्धेन कुट्टितेन गुग्गुलुना वटकाः कार्याः। अथवा द्रवेण तोयक्षीरादिना, वा मधुना क्षौद्रेण संप्लाव्य संमर्द्य वटिकां कारयेत। वटिकाया गुडशर्करादीना मानं—सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः। चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम्। द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः॥ एतच्च शर्करादीना मानमनुक्तप्रमाणेषु प्रयोगेषु ज्ञेयम्।

अवलेहपरिभाषा--काथादीनां पुनःपाकाद्घनत्व सा रसक्रिया। सोऽवलेहश्च लेहश्च तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता॥ अनुक्ते सितादीना परिमाणमुच्यते--सिता चतुर्गुणा देया चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः। द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः॥ द्रवमिति क्षौद्रघृतादिकम्। चतुर्धा खलु निष्पाद्यते लेहः। तत्र प्रथमः दार्व्यादिद्रव्याणा सामान्यकाथपरिभाषया काथं निष्पाद्य पुनर्वस्त्रगालित यावद्घनं भवेत्तावत्पक्त्वा निष्पाद्यते, तस्य विशेषतो 'रसक्रिया' इति नाम्ना प्रसिद्धिः। तथाहि--"गृहीत्वा काथकल्पेन काथं पूतं पुनः पुनः। काथयेत्फाणिताकारमेषा प्रोक्ता रसक्रिया" इति। द्वितीयस्तु काथ्यद्रव्याणि यथोक्तमानेन काथयित्वा तं काथं वस्त्रपूतं कृत्वा, तत्र शर्करादिकं प्रक्षिप्य पुनः पक्त्वा पाके सिद्धे चूर्णं प्रक्षिप्य निष्पाद्यते। तृतीयः केवल शर्करादिकं जले पक्त्वा सिद्धे पाके चूर्णादिकं प्रक्षिप्य निष्पाद्यते। चतुर्थस्तु चूर्णं यथोक्तमानैः क्षौद्रघृतादिभिः संप्लाव्य निष्पाद्यते। अथ लेहादौ चूर्णप्रक्षेपविचारः--प्रायो न पाकश्चूर्णानां भूरिचूर्णस्य तेन हि। आसन्नपाके प्रक्षेपः स्वल्पस्य पाकमागते॥ आसन्नपाक इति उपस्थितपाके नतु पाकमापन्ने, तथा सति प्रचुरचूर्णस्य प्रवेशो न स्यादित्यर्थः। स्वल्पस्य चूर्णस्य पाकान्ते कदुष्णदशायां प्रक्षेप इति। पाकलक्षणं तु—सुपक्के तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहेऽप्सु मज्जनम्। स्थिरत्वं पीडिते मुद्रा गन्धवर्णरसोद्भवः॥ तथा—रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्दृढमर्दनात्॥ इति। स्थिरत्वमिति निश्चलत्वम्। एतेन द्रवरहित इत्यर्थः। मुद्राऽत्र निम्नता।

अथ आसवारिष्टपरिभाषा—द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सहितं भवेत्। आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम्॥ यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः। अरिष्टः काथसिद्धः स्यात्तन्मानं द्विपलोन्मितम्॥ अनु-

क्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे गुडात्तुलाम् । क्षौद्रं दद्याद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥ प्रक्षेपं पश्चाद्देयं द्रव्यं धातकीपुष्पादिकं, दशमांशिकं गुडपरिमाणादित्यर्थः । क्वाथ्यद्रव्याणि द्राक्षादीनि यथोक्तमानैर्जले निष्क्वाथ्य वस्त्रपूतं विधाय गुडादिकं धातकीकुसुमादिकं च यथोक्तमानेन प्रक्षिप्य घृतभाविते दृढे मृन्मये कुम्भे यावदर्धं प्रपूर्य पक्षं मासं वा भूमौ स्थाप्य जातरसे उद्धृत्य वस्त्रगालितं कृत्वा उपयुञ्ज्यादित्यरिष्टविधिः । आसवकरणे तु जलादौ द्रवे एव गुडादीनि प्रक्षिप्य संधानं, न न क्वाथकरणम् । शेषं अरिष्टवत् ।

अथ भेषजमात्राविचारः—न्यूनं चेन्मात्रया द्रव्यं न व्याधीन् विनिवर्तयेत् । मात्रयाऽधिकया युक्तं जनयेच्चापदं परम् ॥ मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः । व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ तथाऽप्यल्पबुद्धीनामवबोधाय तत्र तत्र यथास्थूलं मात्रानिर्देशः कृत इति ज्ञेयम् । संप्रति मनुष्याणा अल्पदेहबलवत्वात् प्राचीनग्रन्थोक्तमात्रापेक्षया पादप्रमाणा अर्धा वा मात्रा देया ।

इति वैद्य श्रीयादवजी-त्रिकमजी विरचितं परिशिष्टं समाप्तम्



परिशिष्ट[1] २

मान-परिभाषा

प्राचीन समय में मागध तथा कलिंग दो ही मान (तोल) प्रचलित थे। प्राचीन आचार्यों ने द्रव्य ग्रहण में प्रायः उन्हीं दो मानों का उल्लेख अपने अपने ग्रन्थों में किया है। कुछ आचार्यों ने कलिंग मान से मागध-मान को श्रेष्ठतम माना है।

व्यावहारिक जगत में वस्तुओं के आदान-प्रदान, क्रय-विक्रय तथा ओषधि निर्माण में द्रव्यों का शास्त्रोक्त मात्रा में प्रयोग करने के लिये मान-ज्ञान की आवश्यकता पडती है।

व्यवहार-कुशल वैद्य उपर्युक्त मागध तथा कलिंग मान के अनुसार ही आधुनिक प्रचलित मानों में नाम मात्र का हेर-फेर करके ओषधि द्रव्यों का ग्रहण करते हैं।

प्राचीन शास्त्रोक्त मान, पुरातन भारतीय मान तथा नवीनतम प्रचलित स्वतन्त्र भारतीय मानों का समन्वयात्मक विवेचन अधोलिखित तालिका द्वारा किया जाता है—

प्राचीन पारिभाषिक मानों की तालिका

चार माष = एक टंक	चार प्रस्थ = एक आढक
,, टंक = ,, अक्ष (कर्ष)	,, आढक = ,, द्रोण (राशि)
,, अक्ष = ,, बिल्व	,, द्रोण = ,, द्रोणी
,, बिल्व = ,, कुडव	,, द्रोणी = ,, खारी
,, कुडव = ,, प्रस्थ	

प्राचीन तथा अर्वाचीन मानो का समन्वयात्मक तालिका

मागध मान	आधुनिक मान	प्रचलित मान
८ सरसो = १ यव	×	३० मिलीग्राम
४ यव = १ गुंजा	१ रत्ती	१२१ ,,
६ रत्ती = १ माशा	×	७२९ ,,
४ माशा = १ शाण, धरण, टक-	३ माशा	२ ग्रा० ९१६ ,,
२ टक = १ कोल, वदर, द्रक्षण, क्षुद्रक, वटक	६ माशा	५ " ८३२ ,,
२ कोल = १ कर्ष, पिचु, पाणिमानिक, अक्ष, सुवर्ण, बिडालपदक, पोटलिका, कवडग्रह उदुम्बर	१ तोला	११ ग्राम ६६४ मि० ग्रा०

---

१. यह परिशिष्ट वस्तुतः प्रथम परिशिष्ट का ही संक्षिप्त भावानुवाद है। मूल वचन प्रथम परिशिष्ट में ही मिलेंगे।

२ कर्ष = ½ शुक्ति, पल	२ तोला	२३ ग्राम ३२८ मि० ग्रा०
२ शुक्ति = १ पल, मुष्टि, आम्र षोडशी—	४ ,,	४६ ,, ६५५ ,,
२ पल = १ प्रसृति	८ ,,	९३ ,, ३१० ,,
२ प्रसृति = १ कुडव अञ्जलि अर्द्ध-शराव, अष्टमान ४ पल—	१६ ,,	१८६ ,, ६२१ ,,
२ कुडव = १ मानिक, शराव	३२ ,,	३७२ ,, ७४२ ,,
२ मानिक = १ प्रस्थ	६४ ,,	७४६ ,, ४८३ ,,
४ प्रस्थ = १ आढक	२५६ ,,	२ किलो ९८५ ग्रा० ९३३ मि०
४ आढक = १ द्रोण, कलश	१०२४ ,,	११ ,, ८९० ,, ३८७ ,,
४ द्रोण = १ द्रोणी, वह, गोणी	४०९६ ,,	४७ ,, ५६१ ,, ५४८ ,,
४ द्रोणी = १ खारी	×	× × ×
१०० पल = १ तुला (५ सेर)	४०० ,,	४ कि० ६६५ ग्रा० ५२० मि०
२ हजार पल = १ भार (१०० सेर)	८००० ,,	९३ ,, ५२७ ,, ६०० ,,

कलिंग मान

१२ सरसो = १ यव
२ यव = १ रत्ती
३ रत्ती = १ वल्ल (वाल)
८ रत्ती = १ माशा
४ माशा = १ शाण, टंक
६ माशा = १ गद्याण
१० माशा = १ कर्ष
४ कर्ष = १ पल
४ पल = १ कुडव

भारतीय तौल

८ रत्ती = १ माशा
१२ माशा = १ तोला
५ तोला = १ छटाँक
८० तोला = १ सेर (प्रचलित सेर)

नोट—जहाँ ४ तोले का छटाँक होता है वहाँ ६४ तोले का सेर माना जाता है। प्राचीन प्रस्थ ६४ तोले का होता है, संभवतः इसी के आधार पर सेर को भी ६४ तोले का मानते हैं।

वर्तमान समय के मान

१० मिलीग्राम = १ सैंटीग्राम
१० सैंटीग्राम = १ डेसीग्राम
१० डेसीग्राम = १ ग्राम
१० ग्राम = १ डेकाग्राम
१० डेकाग्राम = १ हैक्टोग्राम
१० हैक्टोग्राम = १ किलोग्राम
१० किलोग्राम = १ मिरीयाग्राम
१० मिरीयाग्राम = १ क्वींटल
१० क्वींटल = १ मैट्रिक टनी
२०० मिलीग्राम = १ कैरेट

द्रव पदार्थ तौलने का प्रचलित मान

१० मिलीलीटर = १ सेन्टीलीटर
१० सेन्टीलीटर = १ डेसीलीटर

१० डेसी लीटर = १ लीटर
१० लीटर = १ डेका लीटर
१० डेका लीटर = १ हेक्टो लीटर
१० हेक्टो लीटर = १ किलो लीटर

द्रव्यग्रहण-प्रकार

औषधि निर्माण में तीन प्रकार के द्रव्यों का ग्रहण किया जाता है—शुष्क (सूखा), आर्द्र (गीला तथा द्रव (पिघलने वाला—स्निग्ध)। योग निर्माण में प्रायः शुष्क द्रव्य ही लेने का विधान है। जहाँ शुष्क द्रव्य नही मिले वहाँ आर्द्र द्रव्य दुगुनी मात्रा में और जहाँ आर्द्र द्रव्य लेने का विधान है वहाँ यदि आर्द्र (ताजा) नहीं मिले तो शुष्क द्रव्य आधी मात्रा में ही लेना चाहिए। परन्तु जिस प्रयोग में तुला-मान तथा पल के मान का उल्लेख किया गया हो वहाँ आर्द्र-द्रव्यों को दुगुना नहीं लेना चाहिए।

किसी भी योग में निम्नलिखित द्रव्यों का आर्द्र (कच्चा) ही लेने का विधान है। यथा—

गुडूची, कोरैया, अड़ूसा, कुष्माण्ड, शतावरी, असगन्ध, सहचर (कठसरैया), सौंफ, प्रसारणी तथा नीम, परवल, केतकी, वला, कुमुदिनी, पुनर्नवा, पूतिगन्धा, मोस, नागवला, गुग्गुलु, हिंगु, अदरक और गुड।

कहीं २ पर गुंजा (रत्ती) से लेकर कुडव (एक पाव) तक द्रव, आर्द्र तथा शुष्क द्रव्यों का मान औषध बनाने में बराबर लेने का विधान किया गया है तथा प्रस्थ (सेर) से ऊपर औषध बनाने में द्रव तथा आर्द्र द्रव्यों का सूखे द्रव्यों से दुगुना लेने का विधान किया गया है। परन्तु यह युक्तिविरुद्ध एवं चरक सुश्रुत आदि ग्रन्थों से विरुद्ध होने के कारण प्रामाणिक नहीं है।

द्रव्यग्रहण-नियम

जहाँ एक नाम से अनेक द्रव्यों का बोध होता है, वहाँ विशेष (रूढ) द्रव्य ग्रहण करने का संकेत मिलता है। यथा—लवण से 'सेन्धा नमक' तथा चन्दन से 'लाल चन्दन'। चन्दन के सम्बन्ध में विशेष नियम यह है कि—चूर्ण, अवलेह, आसव तथा स्नेह के लिये सफेद चन्दन तथा लेप एव कषाय के लिये प्रायः लाल चन्दन का ही प्रयोग होता है।

जहाँ पर दूध तथा घी का सामान्य वचन होता है वहाँ गाय का दूध तथा घृत लेते हैं। शकृद् रस से गाय का गोबर तथा मूत्र से गाय का ही मूत्र ग्रहण करते हैं। सरसों से सफेद सरसों तथा उत्पल से नील कमल ग्राह्य है। समय का निर्देश न किया गया हो तो प्रातः काल ग्रहण करना चाहिए। औषधों के अंग का निर्देश न हो तो जटा, (मूल) ग्रहण करें। वनस्पतियों के भाग का निरूपण न होने पर सामान्यतः सौम्यभाग का ग्रहण होता है। पात्र का निर्देश न हो तो मिट्टी का पात्र ग्रहण करे। जिस योग में द्रव का नामोल्लेख न किया गया हो वहाँ जल तथा तैल का नाम निर्देश न हो तो तिल तैल ग्राह्य है। एक ही योग में एक ही द्रव्य को दो बार कहा गया हो तो दुगुना ग्रहण करे। जिस किसी योग में गणोक्त द्रव्यों का विधान है किन्तु उस गण का कोई औषध व्याधि के लिये उपयुक्त नही है

तो उसे निकाल देना चाहिए और दूसरे उपयोगी औषध को ग्रहण कर लेना चाहिए। कदाचित् किसी योग में कोई एक द्रव्य न उपलब्ध हो सके तो उस द्रव्य के गुण के तुल्य द्रव्य को समान मात्रा में ग्रहण करे। वट आदि वृक्षों की छाल ग्राह्य है और विजयसार आदि का सार (लकडी के मध्य का भाग) ग्राह्य है। तालीसादि गण का पत्र, त्रिफला आदि फलवान् वृक्षों का फल, धाय आदि पुष्पवान् वृक्षों का पुष्प तथा सेंहुण आदि क्षीरी वृक्षों का क्षीर ग्रहण किया जाता है। जो वृक्ष बडी एव विस्तृत जड वाले होते है उनकी छाल एव छोटी-छोटी जडवाले वृक्षों की जड ग्रहण की जाती है।

जगली जवान पशुओं का चर्म, रोम तथा नख ग्रहण करना चाहिए। दूध, मूत्र तथा पुरीप को ग्रहण करना हो तो आहार पच जाने के बाद ग्रहण करे।

वल्मीक, कुत्सित स्थान, आनूपदेश, ऊषर तथा मार्ग में उत्पन्न एवं कीडे लगे, अग्निदग्ध, हिम विशीर्ण औषधियाँ कार्यसाधक (रोगनाशक) नहीं होती हैं। अतः इस प्रकार दूषित औषध को योग में ग्रहण नहीं करना चाहिए।

सभी कार्यों के लिये शरद् ऋतु में सरस औषधियों को ग्रहण करना चाहिए। वमन तथा विरेचन के लिये वसन्त ऋतु के अन्त में औषधों को ग्रहण करे।

स्नेहपाक-परिभाषा

सुश्रुताचार्य के मतानुसार स्नेह के चौगुना द्रव द्रव्य, तथा स्नेह के चतुर्थांश औषधि कल्क को एकत्र कर पकाये, यह स्नेह पाक करने का नियम है। यह नियम—जहाँ पर स्नेह औषध तथा जल के प्रमाण का निर्देश किया गया है, वहाँ के लिये है किन्तु जहाँ पर आचार्यों ने प्रमाण का निर्देश कर दिया है वहाँ तो निर्देशानुसार ही द्रव्यों को ग्रहण करे। स्नेह से चौगुना द्रव्य लेने का विधान है। यह वचन एक, दो तथा तीन द्रव्यों को जहाँ लिया गया है वहाँ के लिये है अर्थात एक द्रव पदार्थ हो तो चौगुना, दो द्रव पदार्थ हो तो दोनों को मिलाकर चौगुना, तीन पदार्थ हों तो तीनों द्रव्यों को मिलाकर चौगुना होना चाहिए। चौगुना से कम द्रव के साथ स्नेहपाक करने का विधान नहीं है। जहाँ चार द्रवों का निर्देश है वहाँ प्रत्येक द्रव स्नेह के समभाग होना चाहिए। जहाँ पर चार से अधिक द्रवों का निर्देश है वहाँ सभी द्रवों को स्नेह के समभाग लेना चाहिए। यहाँ चातुर्गुण्य के नियम का अपवाद हो जाता हैं यह सामान्य नियम है। जहाँ क्षीर के साथ स्नेहपाक का विधान हैं वहाँ कुछ वैशिष्ट्य है—

जहाँ केवल दूध के साथ स्नेहपाक का विधान है वहाँ स्नेह का चौगुना दूध लेना चाहिए। यदि दूध के साथ द्रवान्तर का भी निर्देश हो तो स्नेह के समभाग दूध और तीन भाग द्रव पदार्थ लेना चाहिए। जहाँ दूध के साथ दो द्रव पदार्थों का उल्लेख है वहाँ भी दूध स्नेह के समभाग ही होगा अर्थात् दो द्रव पदार्थों का तीन भाग, दूध एक भाग मिलाकर चौगुना द्रव पदार्थ लिया जायगा। इसी प्रकार जहाँ दो से अधिक द्रव पदार्थ का निर्देश हो वहाँ दूध एवं द्रव पदार्थ स्नेह के समभाग लेकर चातुर्गुण्य की कल्पना करे। इस प्रकार चार से अधिक द्रव पदार्थ का निर्देश होने पर स्नेह के समभाग दूध एवं द्रव पदार्थ लेकर स्नेह पाक करे।

स्नेह के चतुर्थांश औषध कल्क का निर्देश है किन्तु जहाँ अडूसा आदि के पुष्प के कल्क के साथ स्नेह-साधन का विधान है वहा कल्क के अधिक होने के कारण औषध कल्क अष्टमाश ग्रहण करना चाहिए। 'सौम्य एवं सुगन्धित पदार्थों का जैसे केशर नागकेशर, लौंग चम्पा, कमल-आदि पुष्पों का भी कल्कअष्ट मांश ही ग्रहण करे जहा केवल जल से स्नेह सिद्ध करना हो वहा चतुर्थांश कल्क, क्वाथ से सिद्ध करने पर षष्ठांश तथा स्वरस से सिद्ध करने पर अष्टमाश कल्क ग्रहण करे। जिस स्नेह में कल्क का निर्देश नही किया गया है वहा केवल द्रव के साथ ही स्नेहपाक करना अभीष्ट है।

जिस योग मे द्रव्य का निर्देश होने पर भी कल्क या क्वाथ का निर्देश नहीं है वहां पर उसी द्रव्य का चतुर्थांश कल्क तथा चौगुना क्वाथ द्रव ग्रहण किया जाता है। जहा एक या दो द्रव्य का निर्देश है वहा केवल कल्क के साथ स्नेह-साधन करे। यदि तीन द्रव्यों से अधिक द्रव्य का निर्देश हो तो उन्हीं द्रव्यों के कल्क एव क्वाथ से स्नेह सिद्ध करे। क्वाथ कल्पना के लिये सुश्रुत का कथन है कि—त्वक् पत्र, फल, मूलादिक द्रव्यों को लेकर काटने योग्य द्रव्यों को काट कर, भेदन करने योग्य द्रव्यों को भेदन कर, एवं कूट कर अठगुना या सोलह गुना जल में पकाकर चतुर्थांश शेष क्वाथ को ग्रहण करे। आठगुना या सोलह गुना का अभिप्राय यह है कि अति कठिन द्रव्यों को सोलह गुना जल और कठिन द्रव्यों को अठगुना जल मे क्वाथ करे क्यों कि अधिक जल में क्वाथ करने से द्रव्यांश परिपक्व होकर द्रव में आ जाता है। मृदु द्रव्यों को अन्य आचार्यो ने चौगुने जल में ही पाक करने का निर्देश किया है।

जिस योग में क्वाथ द्रव्य अल्प मात्रा में है वहां चतुर्थांश शेष क्वाथ, स्नेह मे चौगुना द्रव पदार्थ सम्भव नहीं है अत. सोलह गुने जल में क्वाथ करे और चतुर्थांश क्वाथ स्नेह का चौगुना ग्रहण करे।

जहा 'एक तुला द्रव्य जल में पकाये, ऐसा निर्देश मिले वहा जल एक द्रोण ग्रहण करे, जहा एक द्रोण जल का निर्देश हो किन्तु द्रव्य के मान का निरूपण न हो वहा एक तुला द्रव्य ग्रहण करे। इसी प्रकार जहां सौ पल द्रव्य का निर्देश हो जल के मान का निर्देश न किया गया हो वहा भी एक द्रोण जल ग्रहण करना चाहिए। जहा स्नेह का परिमाण नहीं कहा गया हो, वहा स्नेह एक प्रस्थ ग्राह्य है।

स्नेहपाकविवेचन

स्नेह सिद्ध होने पर जहा क्षीर, कल्क तथा कषाय के साथ स्नेह सिद्ध किया गया है वहाँ दो रात्रि रखना चाहिए, जहा स्वरस क्वाथ एव कल्क के साथ स्नेह सिद्ध किया गया हो वहां तीन रात्रि, कल्क एव कषाय के साथ स्नेह सिद्ध किया गया हो तो पाच रात्रि रखना चाहिए। दधि, आरनाल, मूत्र आदि, एवं कल्क के साथ स्नेह सिद्ध होने पर एक रात्रि रखना चाहिए क्योंकि इतने समय तक रखने से स्नेह में विशेष गुण का आधान होता है।

सिद्ध स्नेह को वस्त्र से छान कर उपयोग करे। मृदु पाक स्नेह में द्रव्य किट्ट आने की सम्भावना रहती है अत. निचोड कर नहीं छानना चाहिए। मध्य पाक में साधारणत

छान कर निचोड लेना चाहिए। खर पाक में अच्छी तरह स्नेह को निचोड कर छान लेना चाहिए। सर्वत्र मध्यम पाक उत्तम होता है। मृदु एव मध्य पाक में सम्पूर्ण वीर्य का आधान हो जाता है। तीनो प्रकार के पाक अपने अपने विशेष कर्म में उपयोगी है।

स्नेहपाक विज्ञान

स्नेह पाक तीन प्रकार का होता है। मृदु, मध्यम तथा खर। जिस सिद्ध स्नेह में स्नेह तथा औषधि कल्क रसयुक्त अलग अलग प्रतीत हो वह मृदु पाक है, जिसमे मोम की तरह स्वच्छ एव अविलेपि ओषध कल्क प्रतीत हो वह मध्यम पाक, तथा जिस में कृष्ण वर्ण का शुष्क थोडा स्वच्छ एवं चिकना औषध कल्क हो जाय वह खर पाक होता है। इसके वाद दग्ध स्नेह होता है अत. स्नेह को अच्छी तरह सिद्ध करे। मृदु पाकी स्नेह का प्रयोग पीने एवं मर्दन के लिये किया जाता है मध्यपाकी, नस्य एवं अजन के लिये तथा खर पाकी का वस्ति कर्म एवं कान में छोडने के लिये प्रयुक्त होता है। जव स्नेह में आवाज न हो, फेन समाप्त हो जाय, गन्ध, वर्ण तथा रस आदि की उपलब्धि हो जाय तव स्नेह को सिद्ध जानना चाहिए। कुशल वैद्य इस प्रकार परिपक घृत को सिद्ध घृत समझे। तैल के सिद्ध होने पर अत्यन्त फेन प्रतीत होता है। दूसरी परीक्षा यह है कि तैल या घृत सिद्ध होने पर कल्क निकाल कर आग में जलाये यदि किसी प्रकार का शब्द न हो और जल जाय तो स्नेह सिद्ध समझना चाहिए।



परिशिष्ट ३

व्याधि-नामावली

अ

अर्बुद (Tumour)
अंकुश कृमि (Hook-worms)
अग्निमांद्य (Dyspepsia)
अग्निरोहिणी (Plague)
अजकाजात (Staphyloma)
अजीर्ण (Gastritis)
अतिसार (Dysentery)
अपची (Scrofula)
अपस्मार (Epilepsy)
अभिष्यन्द (Conjunctivitis)
अम्लपित्त (Acidosis)
अरुंषिका (Eczema of Face or Scalp)
अरोचक (Anoraxia)
अर्श (Haemorrhoid)
अलस (Chilblain)
अव्रणशुक्र (Corneal opacity)
अश्मरी (Stone)

आ

आक्षेप (Convulsion, Tetany)
आघात (Injury)
आतप-व्यापद (Sun-Stroke)
आध्मान (Tympanitis)
आंत्रवृद्धि (Hernia)
आंत्रिक ज्वर (Typhoid Fever)
आमवात ज्वर (Rheumatic Fever)
आमाशयिकव्रण (Gastric ulcer)

इ

इन्द्रलुप्त (Alopasia)

उ

उत्कोठ (Allergy)
उदकमेह (Diabetes Insipidus)
उदावर्त (Intestinal obstruction)
उन्माद (Paralysis of Insane)
उपदंश (Soft chancre)
उरुस्तम्भ (Paraplegia)

क

कक्षा (Herpes Zoster)
कटिशूल (Backache)
कण्डू (Itch)
कामला (Jaundice)
कालाजार (Kala-azar)
कालीकास (Whooping Cough)
कास (Bronchitis)
किलास (Leuco-derma)
कृमिरोग (Worms)
कोष्ठबद्धता (Constipation)
क्षत (Wound)
क्षवथु (Sneezing)
क्षय (Tuberculosis)

ग

गञ्जत्व (Baldness)
गण्डमाला (Scrofula)
गर्भपात (Abortion)
गर्भस्राव (Miscarriage)
गुदकण्डू (Pruritus Ani)
गुदपाक (Proctitis)
गुदभ्रंश (Prolapse Ani)
गुदशोथ (Proctitis)
गुल्मरोग (Abdominal tumours)
गृध्रसी (Sciatica)

घ

घात (Paralysis)

च

चिप्प (Onychia)

ज

जतुमणि (Molluscum)
जलोदर (Ascites)
जीवाणुमयता (Septicaemia)
ज्वर (Fever)

त

तिल (Mole)
तुण्डिकेरी (Tonsilitis, Quinsy)
तृषा (Thirst)
तृष्णा (Thirst)
त्वगार्बुद (Wart)

द

दन्तपुप्पुटक (Gum Boils)
दन्तवेष्ठक (Pyorrhoea Alveolaris)
दग्ध (Burn)
दण्डक ज्वर (Dengue Fever)
दद्रु (Ring worm)
दारुणक (Pityriasis Capitis)
दाह (Irritation)
दीप्ति (Rhinitis)
दुर्जलज्वर (Black water Fever)

न

नष्टार्तव (Amenorrhoea)
नाडीव्रण (Fistula)
नाडीशोथ (Neuritis)
नाभिपाक (Omphitis)
नालभ्रंश (Prolapse of Cord)
नासारक्तस्राव (Epistaxis)
नासार्श (Nasal Polypus)
नासास्राव (Rhinitis)
नाशापाक (Suppurative Rhinitis)
न्यच्छ (Navi)

प

पाण्डु (Anaemia)
पाददरी (Phagades)
पामा (Eczema)
पद्मिनीकण्टक (Papillomata)
पाषाण गर्दभ (Mumps)
पीतज्वर (Yellow Fever)
पीनस (Atrophic Rhinitis)
पुनरावर्तक ज्वर (Relapsing Fever)
पूतिनस्य (Ozoena)
पूयमयता (Pyaemia)
पूयमेह (Gonorrhoea)
पेशीशूल (Myalgia)
पोथकी (Trauchoma)
प्रतिश्याय (Nasal catarrh)
प्रमेह (Diabetes)
प्रवाहिका (Diarrhoea)

फ

फिरंग (Syphilis)
फुफ्फुसप्रदाह (Broncho Pneumonia)
फुफ्फुसावरणशोथ (Pleurysi)

ब

वन्ध्यत्व (Sterility)
वल्मिकी (Actynomycosis)
बाघी (Bubo)
बालशोष (Ricket, marasmus)
बेरी बेरी (Beri Beri)

भ

भग-कण्डू (Pruritus Vulva)
भगन्दर (Fistula in Ano)
भ्रम (Vertigo)

म

मण्डल (Wheals)
मदात्यय (Alcoholism)
मधुमेह (Diabetes Mellitus)
मध्यकर्णशोथ (Otitis Media)
मन्यास्तम्भ (Torticollis)
मसूरिका (Variola)

माता (Small Pox)
मुखदूषिका (Acne Valgaris)
मुखपाक (Thrush)
मूत्रकृच्छ्र (Supression of urine)
मूत्राघात (Retention of urine)
मूत्रावरोध (Retention of urine)
मूत्राशयशोथ (Cystitis)
मूसिकदंश ज्वर (Rat Bite Fever)
मोच (Sprain)
मोतियाविन्दु (Cataract)

य

योषापस्मार (Hysteria)

र

रक्तपित्त (Haemalemesis and Haemop hysis)
रक्तप्रदर (Menorrhagia and Metrorrhagia)
राजयक्ष्मा (Phthisis)
राजिका (Lichentropicus)
रोमान्तिका (Measles)
रोहिणी (Diphtheria)

ल

लिंगनाश (Cataract)
लुपस (Lupus)

व

वातनाडी शूल (Neuritis)
वातरक्त (Gout)
वाधिर्य (Deafness)
विचर्चिका (Phagades)
विद्रधि (Abscess)
विषमज्वर (Malaria)
विसर्प (Erysipelas)
विसूचिका (Cholera)
विस्फोट (Pemphigus)

श

शिरःशूल (Headache)
शीतपित्त (Urticaria)
शीताद (Spongy gums)
शुक्रमेह (Spermatorrhoea)
शूलदोष (Typhoidstate)
शूल (Colic)
शोथ (Genral Anasarca)
शौषिर (Gingivitis)
श्लीपद (Elephantitis, Fileria)
श्वास (Asthma)
श्वेतपाद (White Leg)
श्वेतप्रदर (Leucorrhoea)
श्वेतमेह (Albuminuria)

स

संग्रहणी (Sprue, Enteritis)
सन्निपातज्वर (Typhoid State)
सर्वसर (Stomatitis)
सव्रणशुक्र (Corneal Ulcer)
सहजफिरंग (Congenital Syphilis)
सामान्य ज्वर (Unknown Fever)
सामुद्रिक ज्वर (Sea Sickness)
सूतिकारोग (Puerperal Fever)
सोमरोग (Polyurea)
सोरिएसिस (Psoriasis)
स्कर्वी (Scurvy)
स्वरभंग (Hoarsness)
स्वरयन्त्र प्रदाह (Laryngitis)

ह

हिक्का, हिचकी (Hiccough)
हृच्छूल (Angina Pectoris)

